संवर्ग 1–मन और मानसिक प्रशिक्षण

इकाई–1 : मन का स्वरूप, मन की समस्याएं, मानसिक विकास

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 मन का स्वरूप
1.2.1 संस्कार, धारणा और स्मृति
1.2.2 स्मृति और प्रत्यभिज्ञा
1.2.3 मशनसज्ञान : चार विकल्प
1.2.4 कल्पना
1.2.5 कल्पना और इच्छा
1.2.6 कल्पना की सार्थकता
1.2.6.1 कल्पना और संकल्प
1.2.6.2 कल्पना और विकल्प
1.2.6.3 विचार
1.2.7 मन की अवस्थाएं
1.2.7.1 एकाग्र मन की तीन अवस्थाएं
1.2.7.1.1 अवधान
1.2.7.1.2 धारणा
1.2.7.1.3 ध्यान
1.2.8 ध्यान और स्मृति
1.2.9 ध्यान और कल्पना
1.2.10 ध्यान और चिन्तन
1.3 मन की समस्या
1.3.1 अशान्ति का कारण
1.3.2 असीमित चिंतन
1.3.3 अधीरता
1.3.4 असहिष्णुता
1.3.5 आग्रह
1.3.6 पक्षपात
13..7 नाड़ी संस्थान की दुर्बलता
1.3.8 वर्तमान जीवन प्रणाली का परिणाम
1.3.9 पदार्थ-प्रतिबद्धता और तनाव
1.3.10 खाद्य-संयम : निदर्शन
1.3.11 प्रभावित करता है- भोजन
1.3.12 उदासी
1.3.12.1 उदासी से मुक्ति
1.3.13 संतुलन का प्रयोग : शरीर प्रेक्षा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.3.14 संयम का अर्थ
1.3.15 मनोविज्ञान तनावमुक्ति के परिप्रेक्ष्य में
1.3.16 क्रोध और मनोविज्ञान
1.3.17 हितकर नहीं है निरोध और दमन
1.3.18 तनाव विसर्जन का सूत्र
1.3.19 अध्यात्म की प्रक्रिया
1.4 मन का विकास
1.4.1 मानसिक विकास के चार रूप
1.4.2 मानसिक योग्यता के तत्त्व
1.4.3 अभ्यास और प्रतिभा
1.4.4 मानसिक विकास की भूमिकाएं
1.4.4.1 मूढ़
1.4.4.2 विक्षिप्त
1.4.4.3 यातायात
1.4.4.4 श्लिष्ट
1.4.4.5 सुलीन
1.4.4.6 निरूद्ध
1.4.5 अमनस्कयोग की भूमिका
1.4.6 एकाग्रता और आनन्द
1.4.7 आनन्द और विभिन्न भूमिकाएं
1.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.6 संदर्भ ग्रंथ

1.0 प्रस्तावना

व्यवस्थित जीवन यापन करने वाले व्यक्ति के लिए यह परम आवश्यक है कि वह मन के स्वरूप को समझे। मन के स्वरूप को समझने के लिए उसके कार्यों को समझना जरूरी है। स्मृति, कल्पना और विचार के द्वारा मन को समझा जा सकता है। ये तीनों मन के कार्य हैं।

1.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप निम्न उद्देश्यों को समझ सकेंगे—

1. मन के स्वरूप को जान सकेंगे।
2. संस्कार, धारणा और स्मृति क्या होती है? परिचित हो सकेंगे।
3. स्मृति और प्रत्यभिज्ञा क्या होती है? जान सकेंगे।
4. मानसज्ञान के चार विकल्पों को समझ सकेंगे।
5. कल्पना क्या होती है? परिचित हो सकेंगे।
6. कल्पना और इच्छा के संबंध को समझ सकेंगे।
7. कल्पना की सार्थकता का अनुभव कर सकेंगे।
8. कल्पना और संकल्प के संबंध को समझ सकेंगे।
9. कल्पना और विकल्प के संबंध को समझ सकेंगे।
10. विचार क्या है? समझ सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11. मन की अवस्थाओं से परिचित हो सकेंगे।
12. एकाग्र मन की तीन अवस्थाओं से परिचित हो सकेंगे।
13. ध्यान और स्मृति क्या होती है? परिचित हो सकेंगे।
14. ध्यान और कल्पना के संबंध को समझ सकेंगे।
15. ध्यान और चिन्तन के संबंध को समझ सकेंगे।
16. मन की समस्याओं को समझ सकेंगे।
17. अशांति के कारणों को समझ सकेंगे।
18. वर्तमान जीवन प्रणाली के परिणामों को समझ सकेंगे।
19. उदासी से मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे।
20. संतुलन का प्रयोग : शरीर-प्रेक्षा का अनुभव कर सकेंगे।
21. तनावमुक्ति के परिप्रेक्ष्य में मनोविज्ञान से परिचित हो सकेंगे।
22. क्रोध और मनोविज्ञान को समझ सकेंगे।
23. तनाव-विसर्जन के सूत्र को समझ सकेंगे।
24. अध्यात्म की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
25. आप भी अपने मन का विकास कर सकेंगे।
26. मानसिक योग्यता के तत्त्वों को जान सकेंगे।
27. मानसिक विकास की भूमिकाओं को समझ सकेंगे।
28. आप भी एकाग्रता और आनन्द को प्राप्त कर सकेंगे।
29. आनन्द और विभिन्न भूमिकाओं का अनुभव कर सकेंगे।

1.2 मन का स्वरूप

मन का अर्थ है—संकल्प-विकल्प। मन का अर्थ है स्मृति और चिन्तन। मन का अर्थ है—कल्पना। मन तीनों काल में बंटा हुआ है। जो अतीत की स्मृति करता है वह है मन। जो भविष्य की कल्पना करता है वह है—मन। जो वर्तमान का चिन्तन करता है वह है—मन। मन का अर्थ है स्मृति, चिन्तन और कल्पना आदि मानसिक प्रक्रियाएं। मनुष्य मन, वचन एवं शरीर से जो भी प्रवृत्ति करता है उसकी स्मृति बन जाती है। हम जो देखते हैं और सुनते हैं, उनका निश्चय होता है। निश्चय होने के बाद वह धारणा बन जाती है और धारणा स्मृति-चिह्न बन जाती है। बहुत सारी बातें हम देखते हैं, सुनते हैं, हमारे सामने आती हैं और चली जाती हैं, उनका स्मृति-चिह्न नहीं बनता। जिनका अध्यवसाय हो जाता है, जिनकी धारणा बन जाती हैं, वे ही स्मृति-चिह्न बन कर हमारे मस्तिष्क में संचित रहती हैं, निमित्तों के साथ वे प्रकट होती रहती हैं।

मनुष्य में मानसिक चेतना विकसित है। वह समनस्क प्राणी है। वह सोचता है, सोचना मन की एक क्रिया है। वह याद रखता है, स्मृति मानसिक प्रवृत्ति है।

1.2.1 संस्कार, धारणा और स्मृति

संस्कार या धारणा का पुनर्जागरण स्मृति है। प्रत्यय और प्रत्यय से शक्ति-संचय यानी धारणा। उसके बाद अगली प्रक्रिया शुरू होती है मन की। प्रत्यय आता है तत्काल चला जाता है। प्रत्यय सामने नहीं रहता। हमने व्यक्ति को देखा। व्यक्ति चला गया, पर प्रत्यय या निर्विकल्प ज्ञान अपने संस्कार छोड़ जाता है। मस्तिष्क में एक परिवर्तन होता है अर्थात् वह वहां संचित रह जाता है तब क्या होता है? प्रत्यय तो चला गया किन्तु हमारे मन में एक प्रतिमा बन गई। दूसरी कोई उत्तेजना सामने आती है, वह धारणा फिर जागृत हो जाती है उसे हम कहते हैं स्मृति। संस्कार के जागरण से होने वाला संवेदन स्मृति कहलाता है। संस्कार और धारणा का एक नाम है अविच्युत। जो अनुभव हुआ वह च्युत नहीं होता, टिका रह जाता है और वही हमारे सामने स्पष्ट होता रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.2.2 स्मृति और प्रत्यभिज्ञा

स्मृति का दार्शनिक अर्थ है—'संस्कारप्रबोधसम्भवा स्मृतिः'—संस्कार के जागरण से उत्पन्न होने वाला ज्ञान स्मृति है। स्मृति का आकार है 'वह'। दो बातें हैं। एक है—स्मृति और दूसरी है पहचान। पहचान अलग होती है, स्मृति अलग होती है। स्मृति में वस्तु, व्यक्ति प्रत्यक्ष नहीं होता, परोक्ष ही रहता है, किन्तु पहचान में वह प्रत्यक्ष ही होता है, इसीलिए स्मृति का आकार बनता है 'वह' और पहचान का आकार बनता है—'यह वह'। 'वह यह'—इसमें स्मृति और पहचान—दोनों हैं। स्मृति और पहचान में प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों होते हैं।

1.2.3 मानसज्ञान : चार विकल्प

इन्द्रियज्ञान और मानसज्ञान को अभिनिबोध भी कहा जाता है। जो हम सामने देखते हैं, नियमरूप से देखते हैं, उस बोध का नाम है—'अभिनिबोध'। इस बोध की दो शर्तें हैं। एक है—सामने होना और दूसरी है—नियत होना। सभी इन्द्रियों के कार्य नियत होते हैं। आंख का काम है देखना और कान का काम है सुनना। ये नियत हैं। इन दो शर्तों के साथ जो ज्ञान होता है, उसका नाम है अभिनिबोध। इसके चार रूप हैं—मति, स्मृति, संज्ञा और चिन्ता। मति का अर्थ है—मनन, विचार। स्मृति का अर्थ है—याद होना। संज्ञा का अर्थ है—प्रत्यभिज्ञा, पहचान। चिन्ता का अर्थ है—तर्कपूर्ण चिन्तन, व्याप्ति या संबंधों की खोज।

1.2.4 कल्पना

चेतना प्राणी का स्वरूपगत लक्षण है। इच्छा उसका व्यावहारिक लक्षण है। इच्छा और अभिलाषा की अभिव्यक्ति है कल्पना। प्राणी में इच्छा होती है और वह मनोरथ या कल्पना के रूप में प्रकट होती है। कल्पना में कोई नया ज्ञान नहीं होता, केवल ज्ञान का संयोजन होता है। जो बातें ज्ञात हैं, उनका विभिन्न प्रकार से संयोजन होता है। भारतीय साहित्य में 'नरसिंह' की कल्पना की गई। इसमें मुंह सिंह का होता है और धड़ मनुष्य का। सिंह भी जाना हुआ है और आदमी भी जाना हुआ है। किन्तु दोनों का संयोजन विभिन्न प्रकार से कर लिया गया और 'नरसिंह' का रूप बन गया। इसी प्रकार 'आग ठंडी है' यह एक कल्पना है। इसमें भी दो बातें हैं। दोनों हमें ज्ञात हैं। हम आग को भी जानते हैं और ठंड को भी जानते हैं। दोनों का हमने एकत्र संयोजन कर दिया और 'आग ठंडी है' यह हमारी कल्पना में आ गया।

1.2.5 कल्पना और इच्छा

कल्पना के आधार पर विचित्र आकार बना लिए जाते हैं, जिनमें कोई संगति प्रतीत नहीं होती। पर यह एक तथ्य है—कल्पना में जिस प्रकार का आकार, रूप, रंग आया, उससे यह पता चल जाता है कि इच्छा क्या चाहती है और किस रूप में प्रकट होना चाहती है। कल्पना के आधार पर ही इच्छा या आन्तरिक अभिलाषा को जाना जा सकता है।

1.2.6 कल्पना की सार्थकता

कल्पना का बहुत बड़ा उपयोग है। आदमी कल्पना करता है। वह कल्पना प्रेरक बनती है—वह कल्पना हमारे पुरुषार्थ और उद्यम की निमित्त बनती है। कल्पना के आधार पर ही व्यक्ति पुरुषार्थ करता है और उस कल्पना को साकार बनाता है। विश्व में जितने भी आविष्कार होते हैं, पहले उन सबकी कल्पना की जाती है। प्रत्येक आविष्कार का प्रारूप हमारी कल्पना में बनता है और वह धीरे-धीरे आकार ग्रहण करता है। कल्पना को साकार होने में लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। वह प्रक्रिया योजना कहलाती है। योजना कल्पना का ही पूरक तत्त्व है। कल्पना, योजना और फिर उस प्रकार के चिन्तनों, व्यवहारों या साधनों का संघटन करना होता है। वह कल्पना जब क्रियान्वित होती है आकार लेती है तब नया तथ्य संसार के सामने आ जाता है।

1.2.6.1 कल्पना और संकल्प

कल्पना का सघन रूप है—संकल्प। जिस व्यक्ति की कल्पना सघन और सुदृढ़ बन जाती है, वह संकल्प का रूप ले लेती है, तब उसमें अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। वह संकल्प उस व्यक्ति के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लिए कामधेनु, कल्पवृक्ष या चिन्तामणि रत्न बन जाता है अर्थात् उसके लिए सब कुछ बन जाता है। संकल्प जीवन की सफलता का रहस्य है।

संकल्प में बहुत बड़ी शक्ति होती है, जिस प्रकार का संकल्प होता है, परमाणुओं को भी उसी रूप में संगठित होने के लिए बाध्य होना पड़ता है। आकाश में बादल नहीं है। आदमी ने संकल्प किया। वह सघन और सुदृढ़ हुआ। इस स्थिति में परमाणुओं को बादल के रूप में बदलना होता है। यह इच्छाशक्ति का निदर्शन है। इच्छाशक्ति परमाणुओं का संयोजन या वियोजन करने में सक्षम है।

1.2.6.2 कल्पना और विकल्प

कल्पना का दूसरा रूप है—विकल्प। यह मान लेना कि मैं सुखी हूं, मैं दु:खी हूं—यह कल्पना ही तो है। वास्तव में सुख-दु:ख अनुभव के साथ जुड़ता है। कल्पना के कारण ही सुख और दु:ख की तीव्रता आती है। यदि आदमी दृढ़ता से यह मान लेता है कि कुछ भी पीड़ा नहीं है तो वास्तव में उसकी कष्टानुभूति पच्चीस प्रतिशत कम हो जाएगी। थोड़ी पीड़ा भी संकल्प के साथ अधिक तीव्र बन जाती है। पीड़ा की तीव्रता और मंदता विकल्प के आधार पर होती है। जिस प्रकार की कल्पना होती है, उसी प्रकार की अनुभूति होने लग जाती है।

यह टेबल है, यह घड़ी है—ये सारे हमारे विकल्प हैं। वास्तव में ये सब परमाणुओं के संगठन मात्र हैं। ये सभी पदार्थ परमाणुओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं किन्तु हमने आकार के साथ अपनी कल्पना जोड़ दी और उसको एक नाम दे दिया। यह विकल्प है। इस प्रकार के तीन रूप बन जाते है—कल्पना, संकल्प और विकल्प।

1.2.6.3 विचार

मन का तीसरा अर्थ है—विचार। आदमी निरंतर चिन्तन करता रहता है, सोचता रहता है। शब्द का व्यवहार उसका माध्यम है। शब्द भी विचार है। विचार का शाब्दिक अर्थ है— विचरण करना, गतिशील होना। इन्द्रियां अपने-अपने प्रतिनियत विषयों का ग्रहण करती हैं और वे सारे ग्रहण हमारे मस्तिष्क में अंकित होते रहते हैं। अब क्रिया का दूसरा क्रम चालू होता है। जो विषय गृहीत हैं, उनका निर्धारण करना, विश्लेषण करना यह सारा कार्य मन करता है। एक दु:खी व्यक्ति है उसने सारा कार्य किया है, उसको बाहरी जगत् तक पहुंचा देना विचार का काम है। हमारे भीतर जो संस्कार, वृत्तियां और इच्छाएं हैं, उनका संयोजन करना, नियोजन करना, वियोजन करना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के विषय में , एक वस्तु से दूसरी वस्तु के विषय में एक स्थान या काल से दूसरे स्थान या काल के विषय में—इन सारे संबंधों में आना-जाना, इनसे सम्पर्क स्थापित करना, ये सारी मानसिक क्रियाएं विचार कहलाती हैं।

1.2.7 मन की अवस्थाएं

मन की तीन अवस्थाएं हैं—विक्षेप, एकाग्रता और अमन।

विक्षेप की अवस्था में स्मृतियों, कल्पनाओं और विचारों का सतत विचरण होता है। एक स्मृति के बाद दूसरी स्मृति, एक कल्पना के बाद दूसरी कल्पना और एक विचार के बाद दूसरा विचार—यह क्रम चलता रहता है। यह विक्षेपावस्था की स्थिति है। इसमें मन की भूमिका व्यग्रता की होती है। व्यग्रमन किसी एक अग्र अर्थात् आलम्बन पर नहीं टिकता। अनेक अग्रों—आलंबनों पर भटकता रहता है। उसका भटकाव कभी नहीं मिटता। जितनी व्यग्रता होती है उतनी ही लक्ष्य से दूरी बनी रहती है।

मन की दूसरी अवस्था है—एकाग्रता। एकाग्रता का अर्थ है—एक आलम्बन पर टिके रहना, एक स्मृति पर टिके रहना, एक कल्पना या विचार पर स्थिर रहना, एक ही विषय का चिन्तन करते रहना।

मन की तीसरी अवस्था है—अमन। लोग स्थिरता को मन की तीसरी अवस्था मानते हैं। यह भ्रान्त मान्यता है। मन की प्रकृति ही है चंचलता। उसमें स्थिरता कैसे आएगी? मन को अमन बनाना, यह तीसरी अवस्था है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अमन का अर्थ है—मन को उत्पन्न ही नहीं होने देना। मन स्थायी तत्त्व नहीं है। वह उत्पन्न होता है और विनष्ट हो जाता है। जब व्यक्ति स्मृति, कल्पना और विचार से मुक्त होता है, सर्वथा निर्विचार अवस्था में चला जाता है, तब अमन की स्थिति प्राप्त होती है। उस स्थिति में मन नहीं होता क्योंकि उसके तीनों घटकों—स्मृति, कल्पना और विचार का वहां अस्तित्व नहीं है।

1.2.7.1 एकाग्र मन की तीन अवस्थाएं

योग की भाषा में एकाग्र मन की तीन अवस्थाएं हैं—अवधान, एकाग्रता/केन्द्रीकरण या धारणा और ध्यान। मनोविज्ञान भी इसी का संवादी विचार प्रस्तुत करता है। उसमें भी तीन अवस्थाएं मानी गई हैं—अटेन्शन, कॉन्सेन्टेशन और मेडिटेशन। मानसिक क्रियाएं इन तीन अवस्थाओं से गुजरती हैं।

1.2.7.1.1 अवधान

पहली अवस्था है अवधान, अटेन्शन। यह मन की क्रिया है, जहां हम मन को किसी वस्तु के प्रति व्यापृत करते हैं, लगाते हैं। जो मन घूमता रहता है, उसे सचेत करना, चैतन्यवान् बनाना—यह है अवधान अवस्था। इसमें पदार्थ के साथ मन का संबंध जुड़ जाता है। हम कहते हैं सावधान हो जाओ। इसका मतलब है कि एक कार्य के प्रति दत्तचित्त हो जाओ। जो करना है, चित्त को उसमें लगा दो।

अवधान जैसे बाह्य वस्तु के प्रति होता है, वैसे ही कभी-कभी अपने मूल स्वरूप के प्रति भी होता है। जब मौलिक स्वरूप के प्रति अवधान होता है, उस स्थिति में बाह्य के प्रति अवधान नहीं होता। मन का अवधान अपने प्रति हो जाता है।

1.2.7.1.2 धारणा

मन की दूसरी अवस्था है—धारणा या कॉन्सन्टेशन। योग की भाषा में एकाग्रता या धारणा। यह अवधान से अगली अवस्था है। जिसमें हमने अवधान लगाया, मन का पदार्थ के साथ संबंध स्थापित किया, उसी में केन्द्रित हो जाना। जो मन चारों ओर भटक रहा था, अनेक वस्तुओं पर जा रहा था, उसे सब वस्तुओं से हटाकर उसी एक वस्तु में केन्द्रित कर देना एकाग्रता या धारणा है। ध्यान से पहले धारणा करनी होती है।

1.2.7.1.3 ध्यान

मन की तीसरी अवस्था है—ध्यान या मेडिटेशन। अवधान के बाद धारणा और धारणा के बाद ध्यान। केन्द्रित मन की जो सघन अवस्था है, जहां मन लम्बे समय तक टिक जाता है, जम जाता है, वह है ध्यान।

1.2.8 ध्यान और स्मृति

जब व्यक्ति ध्यान प्रारम्भ करता हैं तब वह सबसे पहले स्मृति का प्रयोग करता है। वह जो भी आलम्बन लेता है, उस आलम्बन की स्मृति जरूरी है। यदि स्मृति दुर्बल है तो वह ध्यान भी नहीं कर पाता। ध्यान का प्रारंभिक अर्थ है सतत स्मृति। एक आलम्बन पर सतत स्मृति का रहना एकाग्रता है। उस काल में दूसरी स्मृति न आये। दूसरी स्मृति आते ही एकाग्रता खण्डित हो जाती है। यदि हम स्मृति पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेते हैं, जिस स्मृति को पकड़ा है, वही स्मृति निरन्तर बनी रहे, दूसरी स्मृति न आए तो यह स्मृति का सातत्य एकाग्रता बन जाती है। एकाग्रता ध्यान है। इसलिए ध्यान करने वाले व्यक्ति के लिए मन के इस रूप को पकड़ना जरूरी होता है।

1.2.9 ध्यान और कल्पना

कल्पना के बिना भी ध्यान नहीं होता। कोई न कोई कल्पना का सहारा लेना होता है। निर्विकल्प ध्यान प्रारम्भ में अत्यन्त कठिन होता है। हमने कल्पना की—हम विशाल प्रांगण में बैठे हैं और अपने आपको विशाल रूप में अनुभव कर रहे हैं। यह व्यापकता की कल्पना है। कल्पना की—हम रुई से भी अधिक हल्के हो गए हैं या शीशे की भांति अत्यन्त भारी हो गये हैं। ये सारी कल्पनाएं ध्यान में सहयोगी बनती हैं। जैसी कल्पना होती है वैसा अनुभव भी होने लग जाता है प्रश्न होता है कि इसका लाभ क्या है? जब हम एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कल्पना में अपनी चेतना का नियोजन कर लेते हैं तब शेष सारी कल्पनाएं और विकल्प रुक जाते हैं। यह है कल्पना को संकल्प में बदलना। यह मन पर हमारी दूसरी विजय है।

1.2.10 ध्यान और चिन्तन

ध्यैं चिन्तायाम्—इस धातु से ध्यान शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु के अनुसार ध्यान शब्द का अर्थ होता है चिन्तन।

विचार का प्रवाह चंचलता की ओर जाता है और ध्यान का प्रवाह स्थिरता की ओर। इसी आधार पर ध्यान की एक परिभाषा मिलती है—'एकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानम्।' एक आलम्बन पर चिन्तन को रोके रखना ध्यान है।

चिन्तन में एक संतति प्रवाह का होना आवश्यक नहीं है किन्तु ध्यान में एक संतति का होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। इसी आशय को लक्ष्य में रखकर ध्यान की एक परिभाषा की गई है—विषयान्तरास्पर्शवती चित्तसन्तति ध्यानम्—चित्त की वह सन्तति—प्रवाह जो अवलम्बित विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयों का स्पर्श नहीं करती, ध्यान कहलाती है। इससे फलिता होता है कि ध्यान सामान्य चिंतन नहीं है किन्तु एक ही विषय पर जो चिंतन की धारा प्रवहमान होती है, वह ध्यान है।

विचार का चक्र चलता रहता है। वह सतत गतिशील रहता है, रुकता नहीं। जब विचार में स्मृति और कल्पना दोनों का योग होता है तब ध्यान काल में स्मृति और कल्पना पर नियंत्रण होता है जिससे विचार भी नियंत्रित हो जाते हैं। विचार पर नियमन होना मन पर तीसरी विजय है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. मन का क्या अर्थ है?

2. कल्पना और संकल्प में क्या सम्बन्ध है?

3. अवधान से आप क्या समझते है?

1.3 मन की समस्या

1.3.1 अशांति का कारण

प्रश्न है—मन की अशांति क्या है? मन की ज्यादा गति ही मन की अशांति है। हम मन को रोक नहीं पाते। पागल कौन होते हैं? जो मन को रोक नहीं पाते, वे पागल होते हैं। व्यक्ति ने देखा—सड़क पर मोटर जा रही है, वह कहेगा—मोटर जा रही है, मोटर जा रही है। वह इस विचार को मन से निकाल ही नहीं सकता। इसी का नाम पागलपन है। समझदार आदमी वह होता है, जिसने घटना को देखा, समझा, मन में विचार आया, उसे मन से निकाल दिया और दूसरे विचार में लग गया वह पागल नहीं होता। पागल और समझदार में इतना ही फर्क होता है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे कहते हैं—विचार-प्रसक्ति। विचार की ऐसी प्रसक्ति हो जाती है कि व्यक्ति उस विचार को छोड़ नहीं पाता, अपने मन से निकाल नहीं पाता। जो रट लग गयी, वही घण्टों तक लगती चली जाएगी, आदमी पागल हो जाएगा। मन की स्थिति को भी समझना चाहिए। शरीर की गति और स्थिति का सन्तुलन, मन की गति और स्थिति का सन्तुलन, जो आदमी इन दोनों बातों को कर पाता है, वास्तव में वह योग का अधिकारी हो जाता है। यह योग न केवल साधु-संन्यासी के लिए ही है, किन्तु जो भी व्यक्ति अच्छा जीवन, सुख का जीवन जीना चाहता है, वह प्रत्येक व्यक्ति इस योग का अधिकारी है। कोई भी व्यक्ति इस योग को छोड़कर शान्ति का जीवन नहीं जी सकता।

यह सचाई है—जीवन में शांति नहीं होती तो सुख नहीं मिलता। सुख शांति के बाद आता है। शांति के बिना सुख की सामग्री प्राप्त हो सकती है, सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सुख प्राप्त होता है शांति के द्वारा और शांति हो सकती है गति और स्थिति के संतुलन के द्वारा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.3.2 असीमित चिंतन

मानसिक तनाव का एक कारण है—अधिक सोचना। सोचने की भी एक बीमारी है। कुछ लोग इस बीमारी से इतने ग्रस्त हैं कि प्रयोजन हो या न हो, वे निरंतर कुछ-न-कुछ सोचते ही रहते हैं। वे इसी में अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। प्रयोजनवश कोई प्रवृत्ति होती है तो वह सार्थक मानी जा सकती है। प्रयोजन के लिए सोचना समझ में आ सकता है। किन्तु यह नहीं कि व्यक्ति सोचता ही रहे। अधिक सोचना तनाव पैदा करता है। हम उतना ही सोचें जितना आवश्यक है। जरूरत पूरी होते ही सोचने का दरवाजा बंद कर दें, चिन्तन बंद कर दें। मन शांत हो जाएगा।

1.3.3 अधीरता

आदमी मानसिक दृष्टि से बड़ा अस्त-व्यस्त है। उसका दूसरा कारण है—जल्दबाजी। मनुष्य में धृति नहीं है। वह प्रतीक्षा करना नहीं जानता। इतनी जल्दबाजी कि काम अभी होना चाहिए, एक मिनट की भी देरी नहीं होनी चाहिए। वह डॉ. से कहेगा—ऐसी दवा दो कि अभी स्वस्थ हो जाऊं। अगर थोड़ी सी भी देरी हो जाती है तो डॉ. बदलने की बात आ जाती है। यह जल्दबाजी और अधीरता तनाव का बहुत बड़ा कारण बनती है।

1.3.4 असहिष्णुता

तनाव का तीसरा कारण सहिष्णुता की कमी है। एक छोटा बच्चा भी सहन करना नहीं जानता। लगता है—आज जन्मघूंटी ही असहिष्णुता की मिल रही है। वह न मां-बाप की बात को सहन करता है, न अध्यापक की बात को सहन करता है और न किसी पड़ौसी की बात को सहन करता है। कितना अच्छा हो कि आज उलाहना देने, कुछ कहने और सीख देने की बात समाप्त कर दी जाए। कोई किसी पर अनुशासन न करे। किसी को कुछ कहे ही नहीं। जिसके जैसा मन में आए, वैसा करें।

यह सहिष्णुता की कमी आज की जीवन प्रणाली की बड़ी समस्या है और उसका एक परिणाम है—मानसिक असंतुलन। दूसरा परिणाम है—पाचन-तंत्र की गड़बड़ी। पाचन-तंत्र बहुत विकृत हुआ है। पुराने आदमी काफी पचा लेते थे। आज पाचन की शक्ति नहीं रही। तीसरा परिणाम है—नींद की गड़बड़ी। आज की जीवन प्रणाली की देन है अनिद्रा की बीमारी। पाश्चात्य देशों में यह बीमारी बड़ी भयंकर है।

आज के वैज्ञानिक विद्युत् के झटके देकर बीमार व्यक्ति को नींद दिलाते हैं। पचीस मिनट की नींद से व्यक्ति को छह घंटे की नींद जैसा विश्राम महसूस होता है। यदि आधा घंटा कायोत्सर्ग किया जाए तो दो-तीन घंटे नींद की पूर्ति हो जाए। कायोत्सर्ग से जितनी भारहीनता की अनुभूति होती है उतनी नींद में नहीं होती।

1.3.5 आग्रह

मानसिक असंतुलन का एक कारण है—आग्रह। आग्रह बहुत असंतुलन पैदा करता है। हम सूक्ष्मता से ध्यान दें तो पता चलेगा कि पारिवारिक कठिनाइयों में जिद्द की प्रकृति सबसे ज्यादा तकलीफ देती है। एक बात पकड़ ली, बस अब नहीं छोड़ेंगे। समूचे परिवार में कलह का वातारण बन जाता है। घर में दीवारें खिंच जाती हैं, कई चूल्हें जल जाते हैं। कटुता के कारण बाप और बेटा वर्षों तक नहीं मिलते। बाप दूसरे व्यक्ति के आने पर हंस-हंस कर बात करता है किन्तु लड़के के सामने आने पर आंखें घुमा लेता है, बड़ी अजीब स्थिति होती है। इसमें आग्रह का बहुत बड़ा योग होता है।

1.3.6 पक्षपात

मानसिक असंतुलन का एक कारण है—पक्षपात। यह अपना संतुलन भी बिगाड़ता है और सामने वाले का संतुलन भी बिगाड़ता है। ये शिकायतें बहुत आती हैं कि मैं पिता का विनीत था और अभी हूं किन्तु पिता ने ऐसा पक्षपात किया कि बड़े भाई को सारा धन दे दिया और मुझे अगूंठा दिखा दिया। बड़े भाई के प्रति छोटे भाई का, मां के प्रति लड़के का और सौतेली मां हो तो फिर कहना ही क्या! इस पक्षपात के कारण मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.3.7 नाड़ी संस्थान की दुर्बलता

मानसिक संतुलन का एक कारण है—नाड़ी की दुर्बलता। नाड़ी संस्थान के दो मुख्य अंग हैं—एक मस्तिष्क और दूसरा सुषुम्ना का सारा हिस्सा। सुषुम्ना-शीर्ष और सुषुम्ना (स्पाईनल कोर्ड)। ये नाड़ी संस्थान के दो महत्त्वपूर्ण अंग हैं। जिसका स्पाईनल कॉर्ड या पृष्ठरज्जु दूषित होता है, उसका संतुलन बिगड़ जाता है।

नाड़ी संस्थान की दुर्बलता, पृष्ठरज्जु की दुर्बलता और मस्तिष्क की दुर्बलता—ये सब असंतुलन के कारण बनते हैं।

आजकल एक चिकित्सा पद्धति चली है—ओष्टियोपैथी। इस चिकित्सा में और कुछ नहीं किया जाता, केवल स्पाईनल कॉर्ड पर कुछ प्रेशर दिया जाता है। इससे सारे रोगों की चिकित्सा की जाती है। यही रोगों की जड़ है।

1.3.8 वर्तमान जीवन प्रणाली का परिणाम

उच्च रक्तचाप आदि बीमारियां वर्तमान जीवन प्रणाली का एक परिणाम है। पुराने जमाने के वैद्य तो इस बीमारी को कम जानते थे। यह होती भी कम ही थी। यक्ष्मा, उच्च रक्तचाप और हृदय की बीमारी—ये कुछ बड़े लोगों की बीमारियां थीं। आज तो ये जन साधारण की बीमारी बन गई।

जयपुर मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल ने कहा—रक्तचाप की बामारी का समाधान मिल जाए तो दुनिया को बहुत बड़ा समाधान मिल जाता है। यह विश्वव्यापी बीमारी है। हृदय रोग, हार्ट टर्बल और हार्ट अटैक—ये भी जीवन प्रणाली से बहुत संबंधित हैं।

1.3.9 पदार्थ-प्रतिबद्धता और तनाव

भगवान् महावीर ने एक शब्द दिया 'लाघव'। मुनि 'लाघव' का प्रतीक होना चाहिए। उसे हल्का होना चाहिए। व्यक्ति जितना पदार्थ से बंधता है, उतना भारी होता जाता है और पदार्थ से जितना मुक्त होता है, उतना हल्का होता जाता है। आज का युग पदार्थवाद का युग है। पदार्थवादी परंपरा ने भोगवाद को बढ़ाया है और इससे असंयम बढ़ा है। लोभ और कामवासना जितनी प्रबल होगी, तनाव उतना ही अधिक होगा। असंयम तनाव का जनक है। संयम के बिना तनाव को नहीं मिटाया जा सकता।

1.3.10 खाद्य-संयम : निदर्शन

जीवन रस को चूसने वाली दो बाते हैं अब्रह्मचर्य और जीभ की लोलुपता। इन दोनों की उच्छृंखलता सारे जीवन के रस को निचोड़ डालती है। व्यक्ति संभल नहीं पाता और धीरे-धीरे जीवन का रस चूस जाता है। जो व्यक्ति खाद्य-संयम करता है, वह लम्बे समय तक जवान रह सकता है।

1.3.11 प्रभावित करता है भोजन

जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है भोजन। किन्तु आश्चर्य है कि लोग इसके विषय में बहुत कम जानते हैं। अधिकतर महिलाएं रसोई बनाती हैं, पर वे रसोई के विज्ञान से अनभिज्ञ रहती हैं। उनकी दृष्टि में भोजन की दो ही कसौटियां हैं—दिखने में अच्छा हो, खाने में स्वादिष्ट हो। प्राय: आदमी आटे से चोकर निकालकर बाहर फेंक देता है। इसका अर्थ है—वे सार चीज फेंक देते हैं और निस्सार चीज खाते हैं। चोकर मिश्रित आटे की रोटी मुलायम या स्वादिष्ट नहीं होती पर लाभदायक बहुत होती है।

1.3.12 उदासी

मानसिक असंतुलन का एक कारण है—उदसी। उदासी-डिप्रेशन मानसिक विकार है। उदास व्यक्ति अपनी क्षमताओं का ठीक उपयोग नहीं कर सकता। उसकी शक्तियां मुरझा जाती हैं, क्षीण हो जाती हैं। प्रसन्न रहने वाला व्यक्ति ही अपनी शक्तियों का सही उपयोग कर सकता है।

इस संदर्भ में हम आन्तरिक वातावरण पर विमर्श करें। आन्तरिक वातावरण व्यक्ति- व्यक्ति का निजी होता है। उसको प्रफुल्लित बनाए रखना बहुत कठिन काम है। इसका कारण है कि ग्रन्थियों के रसायन, स्राव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संतुलित नहीं होते। मस्तिष्क का एक रसयान है—सेराटोनिन। इसकी कमी या असंतुलन उदासी का कारण बनता है। थाइराइड ग्रन्थि का स्राव कम होता है, उदासी छा जाती है।

पारिवारिक वातावरण भी उदासी का मुख्य हेतु है। परिवार में नाना प्रकार के लोग हैं, नाना प्रकार की समस्याएं हैं। वे अनेक प्रकार की परिस्थितियां पैदा कर देते हैं और व्यक्ति उदास हो जाता है। घरेलु स्थितियां, जो मन के अनुकूल नहीं होती, उदासी का हेतु बनती हैं। परिवार में बेटा और बहू—दोनों प्रसन्न रहने वाले हैं। किन्तु परिवार के अन्यान्य सदस्य उन दोनों को निरंतर टोकते रहते हैं, कमी निकालते रहते हैं, ताना कसते रहते हैं तो दोनों उदास हो जाते हैं। उनकी प्रसन्नता खिन्नता में बदल जाती है।

1.3.12.1 उदासी से मुक्ति

प्रश्न होता है कि उदासी से मुक्ति पाने का उपाय क्या है? वैज्ञानिकों ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है। उनका सुझाव है कि यदि पोषक आहार पर्याप्त मात्रा में होता है तो व्यक्ति उदासी से छुटकारा पा लेता है। उदासी का हेतु है—अपोषक आहार। यदि आहार में विटामिन्स और एमिनो एसिड का उचित संतुलन होता है तो उदासी का एक हेतु समाप्त हो जाता है।

उदासी से बचने के लिए निषेधात्मक भावों से बचना जरूरी है। निषेधात्मक भाव समस्या पैदा करते हैं। मनुष्य का स्वभाव कहें या कर्म का विपाक कहें, कुछ विचित्र-सा लगता है कि मनुष्य में विधायक भाव कम होते हैं और नकारात्मक भाव अधिक। नकारात्मक भाव मन में न आएं, इसका अभ्यास किया जा सकता है। प्रातःकाल व्यक्ति यह संकल्प लेकर उठे कि आज निषेधात्मक भावों को नहीं आने दूंगा, विधायक भावों में रहूंगा। धीरे-धीरे इन नकारात्मक भावों से मुक्ति मिल जाएगी।

मादक द्रव्यों का सेवन भी उदासी लाता है। तम्बाकू, भांग, चरस, मदिरा—इनके सेवन से भी उदासी आती है। सारा शरीर शिथिल हो जाता है। यदि उदासी से बचना है तो मादक द्रव्यों का सेवन त्याग देना होगा।

1.3.13 संतुलन का प्रयोग : शरीर-प्रेक्षा

मानसिक असंतुलन के ये कारण हमारे सामने हैं। हम चाहते हैं, मानसिक संतुलन बना रहे। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—शरीर-प्रेक्षा, शरीर को देखना। उससे नाड़ी संस्थान दृढ़ होता है और कुछ रसायनों की पूर्ति भी होती है। हमें ज्ञात होना चाहिए कि कुछ विटामिनों को हमारा शरीर पैदा करता है। सब बाहर से ही हम नहीं लेते। हम भीतर से भी लेते हैं। सूर्य का ताप लगता है और विटामिन 'डी' अपने आप आ जाता है, इसका सबसे अच्छा स्रोत है—सूर्य का ताप। और भी बहुत सारे रसायन, प्रोटीन, हमारा शरीर पैदा करता है पर करेगा तब, जब हम अनावेग की स्थिति में रहेंगे। यह ध्यान का प्रयोग, मानसिक संतुलन का प्रयोग, केवल मोक्ष पाने के लिए ही नहीं है, वर्तमान जीवन को सुख से जीने के लिए भी है।

1.3.14 संयम का अर्थ

हम इच्छाओं के दास नहीं हैं। हम इन्द्रियों के गुलाम नहीं हैं। हम उनके स्वामी हैं। अपने स्वामित्व को अनुभव करने का अर्थ है संयम। गुलाम होना या गुलामी का अनुभव करना संयम नहीं है। इच्छाओं पर नियंत्रण करना ही वास्तव में संयम है।

1.3.15 मनोविज्ञान तनावमुक्ति के परिप्रेक्ष्य में

मनोवैज्ञानिक मानसिक समस्याओं के समाधान के लिए बहुत प्रयत्नशील हैं। डॉ. जार्ज स्टीवन्सन और डॉ. टील ने एक पुस्तक लिखी है—'लाइफ टेन्सन एंड रिलेक्सेशन।' उस पुस्तक में तनावमुक्ति के कुछ उपाय निर्दिष्ट हैं। उनका कथन है कि जब क्रोध आए या क्रोध का तनाव बढ़े तब किसी न किसी प्रकार के शारीरिक श्रम में लग जाना चाहिए, जिससे कि ध्यान बंट जाने के कारण क्रोध का आवेग कम हो जाए। दूसरा प्रयोग यह है कि जब क्रोध आदि का आवेग आए तब स्वाध्याय या किसी मनोरंजन में लग जाना चाहिए।

ये दोनों उपाय भी तात्कालिक हैं, सामयिक हैं, समस्या को स्थायी रूप में समाहित नहीं कर सकते।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.3.16 क्रोध और मनोविज्ञान

मनोवैज्ञानिकों की शोध के अनुसार यह तथ्य प्रतिपादित हुआ है कि यदि व्यक्ति नौ मिनट तक क्रोध ा के आवेश में रहता है तो नौ घंटा तक काम करने में प्रयुक्त होने वाली शक्ति नष्ट हो जाती है। कहां नौ मिनट और कहां नौ घंटा! कितनी हानि! यह धार्मिक उपदेश नहीं है, प्रयोगशाला में परीक्षित सत्य है। क्रोध करने वाला नरकगामी होता है। क्षमा करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है। आज का आदमी इस भाषा को नहीं समझ सकता कि क्रोध करने से नरक मिलता है और क्षमा करने से स्वर्ग मिलता है। एक बार यह मान भी लिया जाए कि क्रोध करने से नरक मिलता है तो भी उसके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता क्यों कि उसके मन में न नरक का भय और न स्वर्ग का प्रलोभन। आदमी इस भय और प्रलोभन से ऊपर उठ चुका है।

1.3.17 हितकर नहीं है निरोध और दमन

आज की शरीरशास्त्रीय और मानसशास्त्रीय खोजों ने जिन सचाइयों का उद्घाटन किया है, वे सचमुच सोचने के लिए बाध्य करती हैं। यह माना गया है कि भावनात्मक आवेगों (इमोसन्स) का जो आघात होता है, उसे न रोकना चाहिए और न दबाना चाहिए। उनका निरोध और दमन—दोनों हितकर नहीं होते। उन आवेगों का तात्कालिक उपाय भी किया जा सकता है किन्तु उसे स्थायी मान लेना उचित नहीं होता। मानसिक तनाव को मिटाने में ध्यान बहुत उपयोगी बनता है जैसे-जैसे ध्यान की परिपक्वता आती है वैसे-वैसे मानसिक तनाव विसर्जित होता चला जाता है।

1.3.18 तनाव-विसर्जन का सूत्र

तनाव-विसर्जन का सूत्र है—विचय-ध्यान। विचय का अर्थ है—विश्लेषण। प्रेक्षा एक विश्लेषण है। सेल्फ एनलिसिस है। व्यक्ति आत्म विश्लेषण करे—क्रोध क्यों आता है? लोभ क्यों जागता है? मिथ्यादृष्टि क्यों जागती है? हम विश्लेषण नहीं करते हैं तब सारी भावनाएं पनपती रहती हैं। जब हम अपना विश्लेषण प्रारंभ करते हैं, अपनी ज्ञान-शक्ति को जगाते हैं तब ये सारी बातें छूटने लग जाती हैं। जो व्यक्ति अपनी ज्ञान-शक्ति का उपयोग नहीं करता, उसमें ये सारी विकृतियां पनपती रहती हैं।

आज का मनोचिकित्सक सबसे पहले विश्लेषण का सहारा लेता है। कोई भी व्यक्ति मानसिक बीमारी से ग्रस्त मनस-चिकित्सक के पास जाता है तो वह सबसे पहले कायोत्सर्ग कराता है, शिथिलीकरण करने के लिए कहता है। इसके बाद कहता है—'अपना विश्लेषण करो, प्रतिक्रमण करो, अतीत की ओर लौटो और मन में जो-जो बातें आए, निःसंकोच कहते जाओ। छुपाओ मत। तब वह रोगी अपना विश्लेषण करता है, प्रतिक्रमण करता है।

1.3.19 अध्यात्म की प्रक्रिया

अध्यात्म की प्रक्रिया भी इसी प्रकार चलती है। ध्यान की भी यही प्रक्रिया है। आर्त-रौद्र ध्यान के द्वारा जो ग्रन्थिया बनती हैं वे ग्रन्थियां शारीरिक और मानसिक विकृतियां पैदा करती हैं, रोग पैदा करती हैं। मैं मानता हूं—मनोविज्ञान का यह सूत्र गलत नहीं है कि जो वृत्ति दबाई जाती है, वह वृत्ति शारीरिक और मानसिक रोग पैदा करती है। इसे हम अध्यात्म की भाषा में समझें। ज्योंही वृत्ति का दमन किया, दबाने का प्रयत्न किया किन्तु निर्जरा नहीं की, उसका रेचन नहीं किया तो उसका बंध हो जाएगा। वह बंध सताता रहेगा।हमारे जो कर्म का बंध होता है वह परमाणु का बंध होता है। आणविक क्रोध हमारे भीतर है। वह सताता रहता है, तनाव पैदा करता है। हमें निर्जरा करना, रेचन करना, शोधन करना सीखना होगा। हम ध्यान के द्वारा यह सीखें। हम क्रोध का दमन न करें, उसका रेचन करें। क्रोध का संवर करें, विवेक करें। जो व्यक्ति अक्रोध बन गया, जिसमें क्रोध का लेश भी नहीं बचा, उस व्यक्ति के परमाणु करुणा का विकिरण करते रहते हैं। उससे आभामंडल सुन्दर और स्वच्छ बनता है। उस व्यक्ति की प्रत्येक प्रवृत्ति में मधुरता होती है। उसके व्यक्तित्व में निखार आ जाता है। ऐसा व्यक्ति तनाव की समस्या का हल स्वयं ढूंढने में सफल हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.4 मन का विकास

हमारे चेतन मन के पास सोचने की शक्ति है। यह किसी भी बात को स्वीकार भी करता है और अस्वीकार भी करता है। मगर अवचेतन मन सिर्फ स्वीकार करता है। यह इनपुट (Input) को लेकर कोई भेदभाव नहीं करता। हम अवचेतन मन में जो भी सुझाव देंगे वह वैसा ही घटित कर देगा। हमारा अवचेतन मन डाटा बैंक (Data bank) की तरह है। इन दोनों में अवचेतन मन ज्यादा शक्तिशाली है। शिव खेड़ा ने एक उदाहरण देते हुए बताया है कि अवचेतन मन एक गाड़ी की तरह है और चेतन मन एक ड्राइवर की तरह। शक्ति तो गाड़ी में होती है मगर उसका नियंत्रण ड्राइवर के पास होता है।

अवचेतन मन हमारे फायदे या नुकसान के लिए काम कर सकता है। उसमें सोचने- समझने की क्षमता नहीं है। अवचेतन मन एक बगीचे की तरह है, इसे कोई परवाह नहीं होती कि आप कैसे पौध लगाते हैं। इसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती लेकिन आप अच्छे बीज बोएंगे तो आपका बगीचा सुंदर लगेगा अन्यथा आपके बगीचे में जंगली पौधे उग आएंगे। अत: हमें अपने अवचेतन मन को इस तरह तैयार करने की जरूरत है कि वह हमें सही और ठीक रास्ते पर ले जा सके।

1.4.1 मानसिक विकास के चार रूप

मानसिक विकास के चार रूप हैं—

- औत्पत्तिकी बुद्धि—प्रतिभा या सहज बुद्धि।
- वैनयिकी बुद्धि—आत्म-संयम, अनुशासन या गुरु-शुश्रूषा या गुरु के सम्मुख सीखने से उत्पन्न बुद्धि।
- कार्मिक बुद्धि—कार्य करते-करते अभ्यास से प्राप्त कौशल।
- पारिणामिकी बुद्धि—आयु की परिपक्वता के साथ बढ़ने वाला अनुभव।

मानसिक विकास सब समनस्क प्राणियों में समान नहीं होता। उसमें अनन्तगुण तरतमभाव होता है। दो समनस्क व्यक्तियों के ज्ञान में परस्पर अन्नतगुण अन्तर हो जाता है। इसका कारण उनकी आन्तरिक योग्यता का तारतम्य है।

1.4.2 मानसिक योग्यता के तत्त्व

मानसिक योग्यता या क्रियात्मक मन के चार तत्त्व हैं—

- बुद्धि—इन्द्रिय और अर्थ के सहारे होने वाला मानसिक ज्ञान।
- उत्साह—कार्यक्षमता की योग्यता में बाधा डालने वाला कर्म पुद्गल के विलय से उत्पन्न सामर्थ्य।
- उद्योग—क्रियाशीलता।
- भावना—पर-प्रभावित दशा।

बुद्धि का कार्य है—विचार करना, सोचना-समझना, कल्पना करना, स्मृति करना, नये विचारों का उत्पादन, अनुमान करना, आदि-आदि।

उत्साह का अर्थ है—आवेश, स्फूर्ति या सानर्थ्य उत्पन्न करना।

उद्योग का अर्थ है—सामार्थ्य का कार्यरूप में परिणमन।

भावना का अर्थ है—तन्मयता उत्पन्न करना।

इन्द्रिय और आत्म-चेतना का मध्यवर्ती है—नन। इन्द्रियों का सम्पर्क बाहरी जगत् से है और चेतना का केन्द्र अन्तर्जगत् है। मन दोनों (इन्द्रिय और चेतना) के द्वारा प्राप्त तत्त्व का विश्लेषण करने वाला या भोग करने वाला है।

मानसिक विकास के लिए सबसे पहले अवधान का अभ्यास करना होगा। मन की वह स्थिति पैदा करनी होगी जो अवधान कर सके। मनोविज्ञान मानसिक विकास के दो साधन मानता है वंशानुक्रम और वातावरण। पहला स्वाभाविक क्षमता या देन है। दूसरा अभ्यास-साध्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

1.4.3 अभ्यास और प्रतिभा

कोई ऐसा प्रतिभाशाली होता है, जो आठ-दस वर्ष की अवस्था में ही महान् कवि बन जाता है। कुछ कवि ऐसे होते हैं जो अभ्यास के पथ पर चलते-खेलते महान् बनते हैं। प्रत्येक क्षेत्र की यही स्थिति है।

श्री कृष्ण से पूछा गया—मन का निग्रह कैसे किया जाये? उत्तर मिला—

असंशयं महाबाहो, मनः दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन च कौंतेय! वैराग्येण च गृह्यते।।

अभ्यास और वैराग्य द्वारा। अभ्यास कृत होता है, सहज नहीं है। वैराग्य स्वाभाविक होता है कृत नहीं। अभ्यास करते-करते निरोध की अन्तिम सीढ़ी तक पहुंचा जा सकता है।

1.4.4 मानसिक विकास की भूमिकाएं

मन का विकास कैसे हो? इस प्रश्न पर आचार्य हेमचन्द्र ने भी प्रकाश डाला है। उन्होंने इसके लिए चार भूमिकाओं का उल्लेख किया है—

1. विक्षिप्त
2. यातायात
3. श्लिष्ट
4. सुलीन

आचार्य श्री तुलसी ने मनोविकास की छह भूमिकाओं का उल्लेख किया है—

1. मूढ़
2. विक्षिप्त
3. यातायात
4. श्लिष्ट
5. सुलीन
6. निरुद्ध

1.4.4.1 मूढ़

मूढ़ अवस्था में आसक्ति और द्वेष बहुत प्रबल होते हैं। मूढ़ अवस्था में मन बाह्य जगत् और परिस्थिति का प्रतिबिम्ब लेता रहता है इसलिए वह एकाग्र होने की दिशा में गति नहीं कर पाता। भारतीय मनोविज्ञान में डॉ. शुक्ला ने लिखा है कि इस चित्त की अवस्था में मन आलस्य, तन्द्रा तथा विस्मृति में निमग्न रहता है।

1.4.4.2 विक्षिप्त

यह अगली भूमिका है। मूढ़ अवस्था की भूनिका पार कर लेने पर व्यक्ति के मन में भीतर की ओर झांकने की भावना जागृत होती है। वह इस भावना की पूर्ति के लिए अन्तर्निरीक्षण अर्थात् ध्यान का प्रयोग प्रारम्भ होता है। आरम्भ में कुछ समय तक ध्याता ध्यान करने की मुद्रा में बैठ जाता है किन्तु अन्तर्निरीक्षण की स्थिति का उसे कोई अनुभव नहीं होता। किसी के लिए यह स्थिति थोड़े समय के लिए होती है और किसी-किसी के लिए यह स्थिति लम्बे समय तक चली जाती है। जो इस स्थिति से घबराकर अन्तर्निरीक्षण के अभ्यास को छोड़ देता है, वह बीच में ही रुक जाता है और जो इस स्थिति से घबराता नहीं, वह अगली भूमिकाओं में पहुंच जाता है।

1.4.4.3 यातायात

विक्षिप्त की अगली भूमिका यातायात की है। इस भूमिका में ध्याता का मन अन्तर्निरीक्षण का अनुभव कर लेता है। यद्यपि वह उसमें लम्बे समय तक टिक नहीं पाता, अन्तर्निरीक्षण करते-करते वह फिर बाहर आ जाता है। फिर अन्तर्निरीक्षण का प्रयत्न करता है और फिर बाहर आ जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.4.4.4 श्लिष्ट

अन्तर्निरीक्षण का अभ्यास बढ़ते-बढ़ते मन एक विषय पर एकाग्र रहने लग जाता है। इस भूमिका में ध्याता के साथ ध्येय का श्लेष हो जाता है। जिस प्रकार गोंद से दो कागज चिपक जाते हैं, उसी प्रकार ध्याता का ध्येय के साथ चिपकाव हो जाता है। किन्तु चिपके हुए दो कागज आखिर दो ही रहते हैं उनमें एकात्मकता नहीं होती।

1.4.4.5 सुलीन

एकाग्रता का अभ्यास क्रमशः बढ़ता है। उसकी बुद्धि एक दिन तन्मयता या लीनता के बिन्दु तक पहुंच जाती है। यह मन की पांचवीं अवस्था है। पानी दूध में मिलकर जैसे अपना अस्तित्व खो देता है, वैसे ही इस भूमिका में ध्याता ध्येय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपने अस्तित्व का भान ही नहीं रहता। यह स्थिति पहले ही चरण में प्राप्त नहीं होती, किन्तु पूर्वोक्त क्रम से निरन्तर आगे बढ़ते रहने से एक दिन यह स्थिति अवश्य प्राप्त हो जाती है।

1.4.4.6 निरुद्ध

पांचवीं भूमिका में मन की स्थिरता शिखर तक पहुंच जाती है, किन्तु मन का अस्तित्व या उसकी गति समाप्त नहीं होती। ध्याता ध्येय में लीन होकर कुछ समय के लिए जैसे अपने उपलब्ध अस्तित्व को भुला देता है किन्तु ध्येय की स्थिति बराबर बनी रहती है। छठी भूमिका में वह ध्येय की स्मृति भी समाप्त हो जाती है। यह निरावलम्बन ध्यान या सहज चैतन्य के उदय की भूमिका है। इसमें प्रत्यक्षानुभूति प्रबल हो जाती है। इन्द्रिय और मन, जो परोक्षानुभूति के माध्यम हैं, अर्थहीन बन जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं।

1.4.5 अमनस्कयोग की भूमिका

मानसिक विकास की अगली भूमिका है—अमनस्क योग की भूमिका। यहां मन समाप्त हो जाता है। आदमी वहां पहुंच जाता है जहां कोई विचार नहीं, कल्पना नहीं, केवल प्रकाश और केवल चैतन्य। कोई दुःख नहीं, कोई कष्ट नहीं, केवल आनन्द की अनुभूति। इस भूमिका को भारतीय दार्शनिकों ने विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है। किसी ने सत, चित्त और आनन्द की भूमिका माना है। यही है सत्यं, शिवं सुन्दरं की भूमिका। यही है अमनस्क की भूमिका।

1.4.6 एकाग्रता और आनन्द

चैतन्य और आनन्द का स्वाभाविक सम्बन्ध है। जहां चैतन्य है, वहां आनन्द है और जहां आनन्द है, वहां चैतन्य है। इन दोनों में से एक को पृथक् नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जैसे चैतन्य का अजस्र प्रवाह है वैसे ही आनन्द का भी अजस्र प्रवाह है किन्तु मन की चचंलता के कारण उसकी अनुभूति निरन्तर नहीं होती। जैसे-जैसे मन की एकाग्रता की मात्रा बढ़ती है, वैसे-वैसे आनन्दानुभूति की मात्रा बढ़ती जाती है। मन का निरोध होने पर जीवन में सहज आनन्द का साक्षात्कार हो जाता है।

1.4.7 आनन्द और विभिन्न भूमिकाएं

मन की दूसरी और तीसरी भूमिका में विकल्प, कल्पनाओं का सिलसिला चालू रहता है। मन दूसरी-दूसरी चीजों में अटका रहता है। फलस्वरूप उस समय हम सहज चेतना के स्तर पर नहीं होते। उस समय जो आननद का अनुभव होता है वह मन की एकाग्रता के कारण अन्तःस्रावी नलिकाओं में होने वाले अन्तःस्राव से होता है।

चौथी और पांचवीं कक्षा में विकल्पों का सिलसिला नहीं रहता। हमारा मन एक ही विकल्प पर स्थिर हो जाता है। हमारे मस्तिष्क की सुखानुभूति की ग्रन्थि तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर उसका अधिक प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप आनन्द की अनुभूति अधिक होती है।

निरोध की भूमिका में सहज आनन्द के साथ साक्षात् संपर्क हो जाता है। उस पर शारीरिक परिवर्तन का प्रभाव नहीं होता इसलिए वह चिरस्थायी होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इससे पूर्व की भूमिकाओं में सहज आनन्द को स्थिति नहीं होती, ऐसी बात नहीं है किन्तु उसकी पूर्ण अनुभूति निरोध की भूमिका में होती है। अत: पूर्व भूमिकाओं में शारीरिक परिवर्तन से होने वाली आनन्दानुभूति होती है किन्तु उसमें सहज आनन्द का प्रतिबिम्ब या प्रभाव रहता ही है।

1.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबन्धात्मक प्रश्न

1. मन की समस्याओं का विस्तृत विवेचन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मानसिक विकास की भूमिकाओं का संक्षेप में वर्णन करें।
2. मन के स्वरूप का संक्षेप में विश्लेषण करें।

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक लाइन या एक वाक्य में उत्तर दें)

1. आदमी निरंतर क्या करता रहता है?
2. मानसिक तनाव का क्या कारण है?
3. चैतन्य और आनन्द का कैसा सम्बन्ध है?
4. योग की भाषा में एकाग्र मन की कितनी अवस्थाएं हैं?
5. जीवन रस को चूसने वाली कौन-सी दो बाते हैं?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें-

6. मनुष्य में मानसिक चेतना.....है।
7. संस्कार या धारणा का पुनर्जागरण.....है।
8. मादक द्रव्यों का सेवन भी.....लाता है।
9. मूढ़ अवस्था में आसक्ति और द्वेष बहुत.....होते हैं।
10. आदमी मानसिक दृष्टि से बड़ा.....है।

1.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
2. जीत आपकी—शिव खेड़ा
3. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—आचार्य महाप्रज्ञ, संपादक—मुनि धर्मेश
4. महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र—आचार्य महाप्रज्ञ
5. सोया मन जग जाए—आचार्य महाप्रज्ञ
6. भारतीय मनोविज्ञान—डॉ. लक्ष्मी शुक्ला

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–2 : मन के तत्त्व और मानसिक स्वास्थ्य

संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 मन : विभिन्न मत
2.2.1 मन का मुख्य केन्द्र
2.2.2 मन का कार्य
2.2.3 मन का स्थान
2.2.4 प्रत्यय : इन्द्रियजन्यज्ञान
2.2.5 मन की व्यापकता
2.2.6 विकास का तरतमभाव
2.2.7 मानसिक योग्यता के तत्व
2.2.7.1 बुद्धि
2.2.7.2 उत्साह
2.2.7.3 उद्योग
2.2.7.4 भावना का अभ्यास
2.3 मानसिक स्वास्थ्य
2.3.1 अपने आपको जानना
2.3.2 परिणामों की स्वीकृति
2.3.3 सत्य के प्रति समर्पण
2.3.4 सहिष्णुता का विकास
2.3.5 यथार्थ प्रस्तुति
2.3.6 मानसिक स्वास्थ्य की कसौटियां
2.4 योग और स्वास्थ्य
2.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.6 संदर्भ ग्रंथ

2.0 प्रस्तावना

जीवन विज्ञान में मन को जानना इसलिए आवश्यक है कि यह जीवन के विकास का एक मुख्य आधार है। मन स्वस्थ, संतुलित, एकाग्र एवं जागृत रहता है तो जीवन भी स्वस्थ, सफल एवं शांतिमय बनता है। मन के अध्ययन के अन्तर्गत उसके स्वरूप, उसकी विविध भूमिकाएं, उसका शरीर पर प्रभाव, मन की शक्ति का विकास, मानसिक शांति, मानसिक समस्या, मनोदशा, मन की जागृति, मानसिक रूपांतरण, मन का विलय एवं मनोनुशासन तथा अनुप्रेक्षा का समावेश किया गया है।

मन के तत्त्वों को जानने से पहले यह जानना जरूरी है कि मन क्या है? मन कोई स्थायी तत्त्व नहीं है। वह चेतना से सक्रिय बनता है। एक वाक्य में परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि जो चेतना बाहर जाती है, उसका प्रवाहात्मक, प्रवृत्यात्मक, प्रक्रियात्मक अस्तित्व ही मन है। शरीर का अस्तित्व जैसे निरन्तर है भाषा और मन का अस्तित्व निरन्तर नहीं है, किंतु प्रक्रियात्मक है। 'भाष्यमाण' भाषा होती है। भाषण से पहले भी भाषा नहीं होती और भाषण के बाद भी भाषा नहीं होती। भाषा केवल भाषण की प्रक्रिया के समय होती है। 'भासिज्जमाणे भाषा'। इसी प्रकार 'मन्यमान' मन होता है। मनन से पहले भी मन नहीं होता और मनन के बाद भी मन नहीं होता। मन केवल मनन की प्रक्रिया के समय होता है–मणिज्जमाणे मणे।

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ को पढ़ कर आप निम्नलिखित तथ्यों को समझ सकेंगे—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. मन के विभिन्न मतों को समझ सकेंगे।
2. मन का मुख्य केंद्र कौन-सा है? जान सकेंगे।
3. मन का कार्य क्या है? जान सकेंगे।
4. मन का स्थान कहां है? समझ सकेंगे।
5. मन की व्यापकता को समझ सकेंगे।
6. विकास के तरतमभाव को समझ सकेंगे।
7. मानसिक योग्यता के तत्त्वों को समझ सकेंगे।
8. मानसिक स्वास्थ्य के सूत्रों को जान सकेंगे।

2.2 मन : विभिन्न मत

मन के विषय में अनेक धारणाएं हैं—

समतात्मक भौतिकवाद के अनुसार मानसिक क्रियाएं स्वभाव से ही भौतिक हैं।

कारणात्मक भौतिकवाद के अनुसार मन पुद्गल का कार्य है।

गुणात्मक भौतिकवाद के अनुसार मन पुद्गल का गुण है।

जैन दृष्टि के अनुसार मन दो प्रकार के होते हैं—एक चेतन और दूसरा पौद्गलिक (Material)।

पौद्गलिक मन ज्ञानात्मक मन का सहयोगी होता है। उसके बिना ज्ञानात्मक मन अपना कार्य नहीं कर सकता। उसमें अकेले में ज्ञान शक्ति नहीं होती। दोनों के योग से मानसिक क्रियाएं होती हैं।

2.2.1 मन का मुख्य केंद्र

मन चैतन्य के विकास का एक स्तर है इसलिए वह ज्ञानात्मक है। उसका कार्य स्नायुमंडल, मस्तिष्क और चिंतन-योग्य पुद्गलों की सहायता से होता है इसलिए वह पौद्गलिक भी है। हमारी शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाएं स्नायुमंडल के द्वारा संचालित एवं नियंत्रित होती हैं।

मस्तिष्क के दो भाग हैं—

1. वृहद्मस्तिष्क 2. लघु मस्तिष्क

ज्ञानवाही स्नायु वृहद् मस्तिष्क तक अपना संदेश पहुंचाते हैं और उसके ज्ञान प्रकोष्ठ क्रियाशील हो जाते हैं। मन का मुख्य केन्द्र यह वृहद् मस्तिष्क है। वृहद् मस्तिष्क के द्वारा जो चैतन्य प्रकट होता है, जिसमें त्रैकालिक ज्ञान की क्षमता होती है, उसका नाम है मन।

2.2.2 मन का कार्य

मानव जीवन की प्रवृत्तियों के संचालन के लिए एक क्रियातन्त्र है। उसके तीन अंग हैं —शरीर, वाणी एवं मन। मन क्रियातन्त्र का अंग हैं। यह एक कर्मचारी है। इसका कार्य है स्वामी के निर्देशों का पालन करना। यह न अच्छा करता है और न बुरा। अच्छे या बुरे का सारा दायित्व स्वामी का होता है, कर्मचारी का नहीं। मन एक नौकर है और इसका काम है स्वामी की आज्ञा का पालन करना, चित्त के निर्देशों की क्रियान्विति करना।

2.2.3 मन का स्थान

एक प्रश्न है—मन कहां है? इस संबंध में चार विचारधाराएं हमारे सामने हैं—

0 मन समूचे शरीर में व्याप्त है।

0 मन का स्थान हृदय के नीचे है।

0 मन हृदय-कमल के बीच में है। हृदय-कमल की आठ पंखुड़ियां हैं, वहां मन है। कुछ योगाचार्यों का मत है—बाएं फेफड़े में जहां हृदय है, उसके एक इंच नीचे मन का स्थान है।

0 वर्तमान शरीरशास्त्र का अभिमत है कि मन का स्थान मस्तिष्क है।

वस्तुत: ये सारी सापेक्षताएं हैं। यदि हम कहें कि मन समूचे शरीर में व्याप्त है तो वह भी सापेक्ष ही होगा। हमारे स्नायु संस्थान में जितने भी ग्राहक स्नायु हैं जो बाह्य विषयों को ग्रहण करते हैं, उनका जाल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समूचे शरीर में फैला हुआ है। वे शरीर के सब भागों को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार मन का शासन संपूर्ण शरीर में व्याप्त है।

'मन हृदय के नीचे है'—वह भी सापेक्ष है। सुषुम्ना की एक धारा हृदय को छूती है। उसका हृदय के साथ संपर्क है इसलिए हृदय को मन का केन्द्र मानना युक्तिसंगत है। वह भाव पक्ष का मुख्य स्थान है।

मन का स्थान मस्तिष्क है यह बहुत स्पष्ट है। ज्ञानतंतुओं का संचालन इसी से होता है। यह उन पर नियन्त्रण व नियमन करता है।

2.2.4 प्रत्यय : इन्द्रियजन्यज्ञान

यह है हमारे शरीर की प्रक्रिया—ज्ञान करने की और क्रिया करने की। सर्दी का मौसम है, ठंडी हवा चल रही है। हमें सर्दी लग रही है। यह है प्रत्यय या निर्विकल्प प्रत्यक्ष। यह इन्द्रियजन्य ज्ञान है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे प्रत्यय कहते हैं। यह इन्द्रिय का सम्यक् बोध है। इसके बाद हमारा जो प्रत्यय हुआ, इन्द्रिय का ज्ञान हुआ, उसके साथ फिर मन जुड़ता है। मन साथ में जुड़ा तब तक विषय में तर्क, ऊह, अपोह होता है, निर्णय होता है और उसके बाद धारणा हो जाती है, अनुभव का संचय हो जाता है, शक्ति का संचय हो जाता है वे स्मृति चिह्न बन जाते हैं। जो कुछ भी देखा, उसके स्मृति चिह्न नहीं बनते। बहुत सारी बातें हम देखते हैं, सामने आती चली जाती हैं। जिनका अध्यवसाय, निर्णय हो जाता है वे धारणाएं बन जाती हैं एवं निमित्त पाकर प्रकट हो जाती हैं।

2.2.5 मन की व्यापकता

इन्द्रियों के विषय केवल प्रत्यक्ष पदार्थ बनते हैं। मन का विषय प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों प्रकार के पदार्थ बनते हैं। शब्द, परोपदेश या आगम-ग्रन्थ के माध्यम से अस्पृष्ट, अरसित, अघ्रात, अदृष्ट, अश्रुत, अननुभूत, मूर्त्त और अमूर्त्त सब पदार्थ मन द्वारा जाने जाते हैं।

इन्द्रियां सिर्फ वर्तमान को जानती हैं। मन त्रैकालिक ज्ञान है। स्वरूप की दृष्टि से मन वर्तमान ही होता है। मन मन्यमान होता है। मनन के समय ही मन होता है। मनन से पहले और पीछे मन नहीं होता। वस्तु ज्ञान की दृष्टि से वह त्रैकालिक होता है। उसका मनन वर्तमानिक होता है, स्मरण अतीतकालिक, संज्ञान उभयकालिक, कल्पना भविष्यकालिक, चिन्ता-अभिनिबोध और शब्द-ज्ञान त्रैकालिक। त्रैकालिक संज्ञान में स्मृति और कल्पना का विकास होता है तथा उसमें भूत और भविष्य की क्षमता होती है इसलिए मन को दीर्घकालिक संज्ञान भी कहा जाता है।

2.2.6 विकास का तरतमभाव

प्राणीमात्र में चेतना समान होती है, उसका विकास समान नहीं होता। अतः मन सभी प्राणियों में नहीं होता। वह केवल गर्भज-पंचेन्द्रिय प्राणी में होता है। चेतना का न्यूनतम विकास एकेन्द्रिय जीवों में होता है। इनमें सिर्फ एक स्पर्शन इन्द्रिय का ज्ञान होता है। स्त्यानर्द्धि-निद्रा-गाढतम नींद जैसी दशा उनमें हमेशा रहती है, इससे उनका ज्ञान अव्यक्त रहता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में क्रमशः ज्ञान की मात्रा बढती है।

अव्यक्त ज्ञान या चेतना को अध्यवसाय, परिणाम कहा जाता है। अर्ध-व्यक्त चेतना का नाम है—हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा। यह दो इन्द्रियों वाले जीवों से लेकर अगर्भज पंचेन्द्रिय जीवों में होती है। इसके द्वारा उनमें इष्ट की प्रवृत्ति एवं अनिष्ट की निवृत्ति होती है। व्यक्त मन के बिना भी इन प्राणियों के सम्मुख आना, वापस लौटना, सिकुड़ना, फैलना, बोलना, चलना और दौड़ना आदि-आदि प्रवृत्तियां होती हैं। मन गर्भज पंचेन्द्रिय जीवों में होता है। वे त्रैकालिक और आलोचनात्मक विचार कर सकते हैं।

2.2.7 मानसिक योग्यता के तत्त्व

मानसिक योग्यता या क्रियात्मक मन के चार तत्त्व हैं—

- बुद्धि—इन्द्रिय और अर्थ के सहारे होने वाला मानसिक ज्ञान।
- उत्साह—कार्यक्षमता की योग्यता में बाधा डालने वाला कर्म पुद्गल के विलय से उत्पन्न सामर्थ्य।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- उद्योग—क्रियाशीलता।
- भावना—पर-प्रभावित दशा।

उत्साह का अर्थ है—आवेश, स्फूर्ति या सानर्थ्य उत्पन्न करना।
उद्योग का अर्थ है—सामर्थ्य का कार्यरूप में परिणमन।
भावना का अर्थ है—तन्मयता उत्पन्न करना।

2.2.7.1 बुद्धि

बुद्धि का कार्य है—विचार करना, सोचना-समझना, कल्पना करना, स्मृति करना, नये विचारों का उत्पादन, अनुमान करना, आदि-आदि। मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य जगत के साथ संपर्क करता है। यह बाह्य जगत शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्शमय है। वह मन के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार का है। अनुकूल के प्रति आसक्ति और प्रतिकूल के प्रति द्वेष होता है। ये आसक्ति और द्वेष मन की चंचलता के वर्तमान हेतु हैं।

इस प्रकार स्मृति, कल्पना तथा आसक्ति और द्वेष—ये चारों आन्तरिक वृत्तियां मन को चंचल करती रहती हैं। मन की स्थिरता का अर्थ है—स्मृति का निरोध, कल्पना का निरोध, आसक्ति का निरोध और द्वेष का निरोध। मन की स्थिरता का अभ्यास क्रम है —स्मृति की शुद्धि, कल्पना की शुद्धि, आसक्ति की शुद्धि और द्वेष की शुद्धि।

2.2.7.2 उत्साह

शरीर में ज्ञान के दो मुख्य केंद्र हैं—एक मस्तिष्क या वृहद् मस्तिष्क, दूसरा मेरुदण्ड। सारे शरीर में तंतुओं का एक जाल जैसा बिछा हुआ है। उन तंतुओं में दो प्रकार के तंतु हैं—एक ज्ञानग्राही (Receptors) और एक ज्ञानवाही (Sensory nerves)। ज्ञानग्राही तंतु विषय को ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा गृहीत विषय को ज्ञानवाही तंतु मस्तिष्क तक पहुंचा देते हैं मेरुदण्ड के माध्यम से। वृहद् मस्तिष्क का जो मध्य भाग है, उसे भेजा-कारटेक्स कहा जाता है। ज्ञानवाही तंतु विषय को पकड़ते हैं फिर ज्ञानवाही तंतु उसे ले जाते हैं और मस्तिष्क के कारटेक्स तक पहुंचा देते हैं। फिर अनुभव होता है, प्रत्यय (Percept) होता है।

2.2.7.3 उद्योग

एक काम होता है ज्ञान का और दूसरा काम होता है चेष्टा का। मस्तिष्क में दो केंद्र हैं—एक ज्ञान केंद्र (Sensory Center) और एक चेष्टाकेंद्र या क्रियाकेंद्र (motor center)। ज्ञानकेंद्र का काम है ज्ञान को ग्रहण कर लेना। फिर अनुभव का आदेश होता है चेष्टाकेंद्र को, क्रियाकेंद्र को। वह फिर प्रवृत्ति करता है। पैर में कांटा चुभा, कांटा चुभते ही जो चुभन हुई, उसका ज्ञान मस्तिष्क तक पहुंच जाता है। वहां से हाथ को आदेश मिलता है कि कांटे को निकालो। चेष्टाकेंद्र सक्रिय हो जाता है। सक्रिय केंद्र का आदेश होता है और क्रियावाही तंतु सक्रिय होकर कांटे निकाल लेते हैं। यह सारी संवेदना से लेकर क्रिया करने तक की प्रक्रिया है।

2.2.7.4 भावना का अभ्यास

मन का चौथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—भावना। भावना का अभ्यास बहुत सूक्ष्म बात है। जब तक भावना का अभ्यास नहीं होगा, जब तक मन परम से भावित नहीं होगा, तब तक शक्तियों का विकास नहीं होगा। 'भाविअप्पा'—भावितात्मा शब्द जैन आगमों का महत्त्वपूर्ण शब्द है। उसके पीछे रहस्यमयी भावना छिपी हुई है। जो भावितात्मा होता है, वह अपनी भावना के अनुसार काम करने में सक्षम होता है। भावना का अर्थ केवल कुछ सोच लेना मात्र नहीं है। उसका अर्थ है—हमारे ज्ञान-तन्तुओं को, कोशिकाओं को वशवर्ती कर लेना, उन पर अपनी भावनाओं को अंकित कर देना।

बोध प्रश्न 1:

---

1. वर्तमान शरीर शास्त्र के अनुसार मन का स्थान कौन सा है?

2. कौनसी चार आन्तरिक वृत्तियां मन को चंचल बनाती हैं?

3. शरीर में ज्ञान के मुख्य दो केन्द्र कौन से हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हमारे शरीर में अरबों-खरबों न्यूरॉन हैं, जीव कोशिकाएं हैं। ये न्यूरॉन हमारी अनेक प्रवृत्तियों का नियमन करते हैं। ये नियामक हैं। जो संकल्प न्यूरॉन तक पहुंच जाता है, वह सफल हो जाता है। न्यूरॉन बड़े-बड़े काम संपादित करते हैं।

इनकी कार्य-प्रणाली को समझना बहुत ही कठिन है, अरबों-खरबों की संख्या में ये ज्ञान-तंतु हमारे मस्तिष्क में बिखरे पड़े हैं। इनका मन की शक्ति के जागरण में बहुत बड़ा उपयोग है।

2.3 मानसिक स्वास्थ्य

महावीर ने अस्तित्व का प्रतिपादन किया। उनका मुख्य सूत्र रहा आत्मा। जहां आत्मा की विशुद्धि नहीं है, वहां स्वास्थ्य नहीं है। जहां आत्मा की मलिनता है, वहां स्वास्थ्य की समस्या है। आत्मा की पवित्रता से जुड़ा है स्वास्थ्य का प्रश्न। प्रस्तुत संदर्भ में मैं अस्तित्व की चर्चा दार्शनिक दृष्टि से नहीं करना चाहता। जहां दार्शनिक दृष्टि है, वहां आत्मा और पुद्गल की मीमांसा होती है। स्वास्थ्य के संदर्भ में अस्तित्व की परिभाषा और व्याख्या बदल जाएगी। दार्शनिक दृष्टि से अस्तित्व है—आत्मा। जहां स्वास्थ्य का संदर्भ है, वहां अस्तित्व सात अंगों वाला होगा। सात अंगों का समुच्चय है अस्तित्व। शरीर, इन्द्रिय, श्वास, प्राण, मन, भाव और भाषा—ये सात अंग है।

अस्तित्व का पहला और दृश्यमान अंग है शरीर। दूसरा अंग है इन्द्रिय। इन्द्रियां शरीर के साथ संलग्न हैं, किन्तु कार्य की दृष्टि शरीर से सर्वथा पृथक् हैं। तीसरा अंग है श्वास। यह अस्तित्व और स्वास्थ्य दोनों दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। चौथा अंग है प्राण। प्राणी प्राण के आधार पर जीता है। जीवित का अर्थ है—प्राणधारा का प्रवाह और मृत का अर्थ है प्राणधारा का विनियोजन। जीवन का मौलिक आधार है प्राण। ये चारों शरीर के साथ बहुत जुड़े हुए हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार करें तो ये सातों तत्त्व एक-दूसरे को प्रभावित करने वाले हैं। शरीर मन को प्रभावित करता है और मन शरीर को प्रभावित करता है। श्वास मन को और मन श्वास को प्रभावित करता है। भाव श्वास को और श्वास भाव को प्रभावित करता है। स्वास्थ्य पर विचार किया गया और अनेक शाखाएं विकसित हो गईं। एक वह शाखा है जो मानसिक बीमारियों की चिकित्सा करती है और एक वह शाखा है जो मानसिक समस्याओं की चिकित्सा करती है। चिकित्सा क्षेत्र की दो ये मुख्य शाखाएं हैं।

अनेक शारीरिक रोग जिनका चिकित्सक प्रायः बाह्य औषधियों से उपचार किया करते हैं, मानसिक कारणों से होते हैं। बहुत से चिकित्सक तो मानसिक रोगों की चिकित्सा भी शरीर की चिकित्सा करके करना चाहते हैं। नवीन मनोविज्ञान ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि अस्वस्थ मन ही अनेक रोगों का कारण है।

जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य पर निर्भर रहता है, उसी प्रकार सदाचार भी मन में होने वाली अज्ञात क्रियाओं पर निर्भर होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मन में कुछ ग्रन्थियों का निर्माण हो जाता है। ये ग्रन्थियां मनुष्य की कुचेष्टाओं एवं दुराचारों के कारण होती हैं। निर्मल मन ही सदाचारी हो सकता है। नवीन मनोविज्ञान के अन्वेषण हमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचा रहे हैं।

2.3.1 अपने आपको जानना

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पहला सूत्र है—अपने आपको जानो। मानसिक स्वास्थ्य के लिए अपने आपको जानना बहुत जरूरी है। जो अपनी क्षमता को नहीं जानता, अपनी अक्षमता को नहीं जानता, वह व्यक्ति मन से स्वस्थ कैसे हो सकता है? हमारे में अपने आपको जानने की योग्यता है, क्षमता है किन्तु हमने कभी अपने आपको जानने का प्रयत्न नहीं किया। व्यक्ति सक्षम होते हुए भी अक्षम अनुभव करता है, मन अनुताप से भर जाता है। अपने प्रति अभद्र व्यवहार देखकर व्यक्ति भभक उठता है, मन में असंतोष उभर आता है क्योंकि वह अपनी अक्षमता को नहीं जानता। जब वह अपनी अक्षमता को नहीं जानता तब वह दूसरों को ही देखता है, स्वयं को नहीं देख पाता। पिता के दो पुत्र हैं। पिता एक पुत्र को दायित्व सौंप देता है तब दूसरे के मन में असंतोष की ज्वाला उभर आती है। यह इसलिए उभरती है कि वह यह नहीं जानता—वह इस दायित्व के लिए अक्षम है। जो व्यक्ति अपने आप को नहीं जानता, वह अपने मन में सदा जलने वाली आग सुलगा देता है और उसमें सदा जलता रहता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए स्वयं की योग्यता और अयोग्यता का निरीक्षण बहुत आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.3.2 परिणामों की स्वीकृति

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का दूसरा सूत्र है—परिणामों की स्वीकृति। हम प्रवृत्ति करते हैं किन्तु उसके परिणामों को स्वीकार नहीं करते और इसीलिए मन में असंतोष और अशांति पैदा होती है। कृत के परिणामों से जहां अपने आपको बचाने की मनोवृत्ति होती है, वहां मानसिक स्वास्थ्य खतरे में पड़ जाता है। रोग का एक कीटाणु उसमें घुस जाता है। परिणाम को स्वीकार करने के लिए मन बहुत शक्तिशाली चाहिए। जो मन शक्तिहीन होता है, वह कभी परिणामों को स्वीकार नहीं कर सकता। हमें अच्छे या बुरे—सभी प्रकार के परिणामों को स्वीकारना चाहिए। जिस व्यक्ति में परिणामों को स्वीकार करने का साहस नहीं होता, वह परिणामों को दूसरे के माथे पर मढ़ देता है, स्वयं बच निकलना चाहता है। यदि परिणाम अच्छा है तो उसका श्रेय स्वयं लेना चाहेगा और यदि परिणाम बुरा है तो उसका श्रेय दूसरे पर उंडेल देगा। यह साहसहीनता है। इससे मन मलिन होता है, बीमार होता है।

2.3.3 सत्य के प्रति समर्पण

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का तीसरा सूत्र है—सत्य के प्रति समर्पण। सत्य की व्याख्या बहुत ही जटिल है। किसे सत्य माना जाए? हमें इसमें उलझना नहीं है। सत्य का अर्थ है—सार्वभौम नियम। मृत्यु एक सार्वभौम नियम है, यह एक बड़ी सच्चाई है। कोई भी इसे नहीं टाल सकता। इस दुनिया में तीर्थंकर, भगवान्, अर्हत्, मसीहा आदि-आदि अनेक शक्तिशाली व्यक्ति हुए हैं, वे भी इस शाश्वत नियम को नहीं टाल पाए हैं। कोई भी इस सार्वभौम नियम का अपवाद नहीं है। कोई भी प्राणी सदेह अमर नहीं होता। विदेह में जो अमर होता है, वह हमारे सामने नहीं है। मृत्यु एक सच्चाई है। कर्म एक सच्चाई है। काल एक सच्चाई है। वस्तु-स्वभाव एक सच्चाई है। सार्वभौम सच्चाइयों के प्रति जो समर्पित रहता है वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकता है।

2.3.4 सहिष्णुता का विकास

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का चौथा सूत्र है—सहिष्णुता का विकास। सहिष्णुता को विकसित किए बिना कोई व्यक्ति संतुलित जीवन नहीं जी सकता। जो व्यक्ति सहिष्णु नहीं होता वह अपने मन को सदा दुःख में डाले रहता है। कांच का बर्तन कब फूट जाए कहा नहीं जा सकता। असहिष्णु व्यक्ति का मन कब टूट जाए कहा नहीं जा सकता। थोड़ी-सी स्थिति आती है और तत्काल मन बेचैन हो उठता है। व्यक्ति ध्यान करने बैठता है। गर्मी के दिन होते हैं और पंखा अचानक बंद हो जाता है। मन ध्यान से हट कर पंखें में उलझ जाता है। मन इतना आकुल-व्याकुल हो जाता है कि बेचारा ध्यान कहीं भटक जाता है।

जिसने सहिष्णुता को साध लिया, उसके लिए सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुविधा-असुविधा कोई अर्थवान् नहीं होते। ऐसा व्यक्ति अपने मन और शरीर का ऐसा निर्माण कर लेता है जिसे वह हर स्थिति को झेलने में समर्थ और सक्षम होता है।

2.3.5 यथार्थ प्रस्तुति

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पांचवां सूत्र है—अपने आपको यथार्थरूप में प्रस्तुत करना। व्यक्ति अपने आपको यथार्थ-रूप में प्रस्तुत करना नहीं चाहता। वह अपने आपको उस रूप में प्रस्तुत करता है जिससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़े किन्तु जब यथार्थ सामने आता है तब बहुत कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं।

सामाजिक संदर्भ में अपने-आपको अयथार्थरूप में प्रस्तुत करना अपने-आपको धोखा देना है, दूसरे को धोखा देना है। इससे अनेक कठिनाइयां और समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

2.3.6 मानसिक स्वास्थ्य की कसौटियां

मनोविज्ञान ने 'परसनेलिटि पैरामीटर' की पद्धति से व्यक्तित्व को अंकित करने और मानसिक स्वास्थ्य को जांचने के छह सूत्र दिए हैं। ये छह पैरामीटर हैं—

पहला पैरामीटर है—वेश-भूषा। व्यक्ति कैसे कपड़े पहनता है? वह अपने प्रति कितना सजग है? वह कपड़ों को किस चतुराई से धारण करता है। कपड़े पहनने की विधि से मन की प्रसन्नता नापी जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूसरा पैरामीटर है—व्यवहार। व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है। कभी संतुलित व्यवहार और कभी असंतुलित व्यवहार करने वाले का मन स्वस्थ नहीं होता। जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है तो उसके प्रति सामने वाला कितना ही दुर्व्यवहार क्यों न करे, वह अपना संतुलन नहीं खोएगा। वह अच्छा व्यवहार ही करेगा। वह अपने अच्छे व्यवहार के द्वारा सामने वाले व्यक्ति के व्यवहार को बदलेगा या उसे यह सोचने के लिए बाध्य करेगा कि यह व्यक्ति सचमुच ही विनम्र और सद्-व्यवहार करने वाला है।

मानसिक स्वास्थ्य का तीसरा पैरामीटर है—विचार। मानसिक अशांति का बहुत बड़ा कारण यह है कि व्यक्ति विचार करना नहीं जानता। आदमी सोचने कुछ बैठता है और सोच कुछ और लेता है। आदमी जानता ही नहीं कि कैसे सोचना चाहिए? कैसे चिंतन करना चाहिए? मनुष्य का सारा जीवन विचार के द्वारा संचालित होता है। उसके जीवन का सारा कार्यकलाप विचार के द्वारा निर्धारित होता है, किन्तु वह नहीं जानता कि कैसे सोचाना चाहिए? कैसे चिंतन करना चाहिए? सोचते समय मनुष्य के सामने अनेक तर्क प्रस्तुत होते हैं और वह अपने सोचने में मार्ग से भटक जाता है। विचार के द्वारा व्यक्ति को परखा जा सकता है। व्यक्ति के विचारों का विश्लेषण करो और तुम यह जान जाओगे कि वह कैसा है। विचार के द्वारा ही व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को जाना जा सकता है। जब मन स्वस्थ होता है तब व्यक्ति की उपज भी स्वस्थ होती है। वह सही बात को सही ढंग से सोचता है।

मानसिक स्वास्थ्य का चौथा पैरामीटर है—प्रतिक्रिया। विभिन्न परिस्थितियों में होने वाली विभिन्न प्रतिक्रियाओं के द्वारा समझा जा सकता कि व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य कैसा है। कोई व्यक्ति कटु बात कहता है तो उसका उत्तर कटु बात से ही दिया जाए, यह जरूरी नहीं है। किन्तु जब ये प्रतिक्रियाएं प्रगट होती हैं तब वह जान लिया जाता है कि व्यक्ति मन से कितना रुग्ण है। पिता यदि मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है तो पुत्र के क्रोधित होने पर भी वह विचलित नहीं होता। वह कहेगा—'बेटा! कोई बात नहीं है। धैर्य रखो। शांत होकर इस बात को सोचो।' लो सोचते हैं—बेटा गुस्से में है और बाप यदि उससे दुगुना गुस्सा न करे तो वह कैसा बाप! ऐसा सोचना मानसिक अस्वास्थ्य का लक्षण है।

मानसिक स्वास्थ्य को मापने का पांचवा पैरामीटर है—स्वभाव। आदमी का स्वभाव कैसा है? आदमी आलसी है या कर्मठ? आशावादी है या निराशावादी? कुछ लोग ऐसे होते हैं जो आशा में भी निराशा ढूंढ निकालते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं जो निराशा में भी आशा ढूंढ निकालते हैं। आशावादी व्यक्ति नीरस वातावरण में भी आशा और उत्साह भर देता है। यह न मानें कि जो व्यक्ति हमेशा आशा और उत्साह की बात करते हैं, वे अयथार्थ हैं। वह जीवन का यथार्थ है, जीवन का पलायन नहीं है। वे इस सचाई में एक तथ्य यह जोड़ देना चाहते हैं जिससे कि यह सचाई वास्तविक सचाई या क्रियान्विति की सचाई बन जाए। निराशा में आशा देखने वाले व्यक्ति ऐसे होते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य को मापने का छठा पैरामीटर है—निर्णय की शक्ति। व्यक्ति ठीक निर्णय लेता है या नहीं लेता? व्यक्ति तत्काल निर्णय लेता है या नहीं लेता? चिन्तन तो चलता है और निर्णय कुछ भी नहीं लिया जाता। इन सबके आधार पर मन के स्वास्थ्य का पता लगाया जा सकता है।

मनोविज्ञान ने मानसिक स्वास्थ्य के परीक्षण के ये छह पैरामीटर, छह बिन्दु सुझाए हैं। हमने आध्यात्मिक दृष्टि से समता के बिन्दुओं पर विचार किया और मनोविज्ञान की दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य के बिन्दुओं पर विचार किया। इसका निष्कर्ष यह है कि जो व्यक्ति संतुलित जीवन जीता है, समता का जीवन जीता है, सहिष्णुता का जीवन जीता है, मन को आवेगों और दुश्चिंताओं की भट्टी में नहीं झोंकता, वह व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। समता का बहुत बड़ा परिणाम है मानसिक स्वास्थ्य। जिस व्यक्ति ने समता का मूल्यांकन नहीं किया, उसने अपने मानसिक स्वास्थ्य को कभी भी संजोकर रखने का प्रयत्न नहीं किया। जो व्यक्ति समता का अनुभव करता है, संतुलन का अनुभव करता है, वह व्यक्ति अपने मानसिक स्वास्थ्य को एक बहुत बड़ी धरोहर मानकर उसकी सुरक्षा करता है। समता का होना मानसिक स्वास्थ्य का होना है और मानसिक स्वास्थ्य का होना समता का होना है।

बोध प्रश्न 2 :

---

1. मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पहला सूत्र क्या है?
2. मानसिक स्वास्थ्य के कितने पैरामीटर हैं? समझाइए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.4 योग और स्वास्थ्य

आरोग्य की आशंका और रोग की समस्या नई नहीं है। इतिहास के आदिकाल से मनुष्य ने रोग को भोगा है और आरोग्य की कामना की है। रोगोपचार की अनेक पद्धतियां हैं। उनमें रोग के अनेक कारण बतलाए गए हैं। आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त और कफ— इस त्रिदोष का वैषम्य ही रोग है। आयुर्विज्ञान के अनुसार कीटाणु और जीवाणु रोग के कारण बनते हैं। होम्योपैथी के सिद्धान्तानुसार रोग का मूल अवचेतन मन है। बायोकेमिकल के मत में रोग का हेतु हैं क्षर का असंतुलन। रंग चिकित्सा के अभिमत में रोग का हेतु है विजातीय द्रव्य। योगविद्या के अनुसार रोग का मूल कारण है प्राण का असंतुलन।

घटना एक है और मत अनेक। अनेक चिकित्सा पद्धतियां और अनेक प्रयोग। इन सबसे ही रोग मिटते हैं। इन फलश्रुति से सबका प्रामाण्य है। इस प्रामाण्य का आधार क्या है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसका समाधान एक सदस्य के अनावरण द्वारा ही हो सकता है। हमारे जीवन का रहस्य है प्राण। हम प्राणी हैं, प्राण के द्वारा ही हमारा जीवन संचालित है। हमारी इन्द्रियां प्राण से प्राणित होकर ही अपने विषयों को जानती हैं। हमारी भाषा, मन और शरीर—ये सब उसी की सक्रियता से सक्रिय हो रहे हैं। प्राण स्वस्थ तो सब स्वस्थ। स्वास्थ्य का अर्थ है प्राण का संतुलन।

आयुर्वेद में पांच प्राण निरूपित हैं—

1. प्राण, 2. अपान,
3. उदान, 4. समान और
5. व्यान।

जैन धर्म में दस प्राणों का प्रतिपादन है—

1. स्पर्शन इन्द्रिय प्राण
2. रसन इन्द्रिय प्राण
3. घ्राण इन्द्रिय प्राण
4. चक्षु इन्द्रिय प्राण
5. श्रोत्र इन्द्रिय प्राण
6. मनोबल
7. वचन बल
8. काय बल
9. श्वासोच्छ्वास प्राण
10. आयुष्य प्राण

इनमें आयुष्य प्राण मूल शक्ति है। यही है जीवन शक्ति। इसी के आधार पर शरीर अपना कार्य करता है। नाड़ी संस्थान, ग्रंथि संस्थान, नानाविध रसायन और सभी धातु शरीर प्राण के अधीन अपना कार्य संचालन करते हैं। आयुष्य और शरीर इन दोनों शक्तियों के मध्य हेतु है श्वासोच्छ्वास प्राण। पूरा जीवन जीना या अकाल में ही काल कवलित हो जाना, शरीर का सम्यक् गति से चलना या लड़खड़ाते चलना—इन सबमें श्वासोच्छ्वास का महत्त्वपूर्ण योगदान है। दीर्घश्वास पूर्ण जीवन में सहायक होता है। त्वरित छोटा श्वास अकाल मृत्यु को निमंत्रित करता है। श्वास लेना एक कला है, विज्ञान है। बहुत सारे लोग सम्यक् रीति से श्वास लेना ही नहीं जानते। योग का मूल सूत्र है श्वास और स्वास्थ्य का मूल सूत्र है श्वास। स्वास्थ्य के संदर्भ में इन्द्रिय प्राण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा—ये सब चिकित्सा के अच्छे माध्यम हैं। ये केवल चिकित्सा के ही नहीं, स्वास्थ्य के भी अच्छे माध्यम हैं।

हमें वचनप्राण का भी सही मूल्यांकन करना चाहिए। वैज्ञानिक जगत् में ध्वनि-प्रकंपनों पर बहुत कार्य हुआ है। पराध्वनि द्वारा अनेक कार्य संपादित किए जा रहे हैं। साधना की दृष्टि से ध्वनि प्रकंपनों का बहुत मूल्य है तो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उनका मूल्य कम नहीं है। एक मुमुक्षु छात्रा यकृत की बीमारी से पीड़ित थी। लम्बे समय तक दवा ली पर कोई लाभ नहीं हुआ। उनकी साधना और अध्ययन में बाधा आ रही थी। उसने अपनी समस्या आचार्य श्री महाप्रज्ञ के सामने रखी। आचार्य श्री ने उसे 'हूं' की ध्वनि का प्रयोग बताया। तीन मास बाद उसका यकृत बिल्कुल ठीक हो गया। ध्यान की शक्ति, संकल्प की शक्ति और एकाग्रता की शक्ति भी बढ़ी और साथ-साथ शरीर भी स्वस्थ हो गया। इससे निष्कर्ष निकलता है कि स्वास्थ्य और ध्वनि-प्रकंपनों का गहरा संबंध है।

शरीर और मन दोनों की परस्पर निरपेक्ष व्याख्या नहीं की जा सकती है। ये दोनों नितान्त सापेक्ष हैं। शरीर से मन प्रभावित होता है और मन से शरीर प्रभावित होता है। शरीर स्वस्थ, मन स्वस्थ। मन स्वस्थ, शरीर स्वस्थ। शरीर रुग्ण होता है, मन भी रुग्ण हो जाता है। मन रुग्ण होता है तो शरीर भी रोगमुक्त नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रह सकता। शरीर में उत्पन्न रोग मन को रोगी बनाता है, उसे 'सोमेटो साइकिक डिसीज' कहा जाता है। मन में उत्पन्न रोग शरीर को रोगी बनाता है, उसे 'साइकोसोमेटिक डिसीज' कहा जाता है। आयुर्वेद में अधिष्ठान भेद से रोग के दो भेद किए गए हैं—

1. शरीर के अधिष्ठान से होने वाले रोग—शारीरिक रोग
2. मन के अधिष्ठान से होने वाले रोग—मानसिक रोग।

ज्वर आदि शारीरिक रोग हैं। क्रोध आदि मानसिक रोग है। उन्माद, अपस्मार आदि रोग शरीर और मन दोनों के योग से होते हैं। यह तीसरा प्रकार दोनों के संयोग से होता है। मन के रोग शरीर को पीड़ित करते हैं और शरीर के रोग मन को पीड़ित करते हैं। मानसिक शुद्धि के अभ्यास द्वारा न केवल मन स्वस्थ होता है, शरीर भी स्वस्थ होता है। योगविद्या का मुख्य सूत्र है—भावनात्मक स्वास्थ्य, मानसिक स्वस्थता। मन का विषय है—चिन्तन। चिन्तन न करना, अतिचिन्तन करना और मिथ्यारीति से चिन्तन करना—ये तीनों रोग के कारण बनते हैं। वर्तमान की जटिल बीमारियों का प्रमुख कारण क्या नकारात्मक चिन्तन नहीं है? स्वस्थ जीवन जीने के लिए 'कैसे सोचें' इस विषय पर गंभीरतापूर्वक मनन और निदिध्यासन होना जरूरी है।

चिकित्सा पद्धतियां स्वस्थता के लिए संतुलित भोजन, सकारात्मक चिन्तन, संयमित व्यायाम और औषधि सेवन का निर्देश करती हैं। प्रेक्षाध्यान योग की एक सर्वांगीण पद्धति है उसके निर्देश सूत्र हैं—

1. भोजन और उपवास का संतुलन।
2. शरीर की सक्रियता और निष्क्रियता का संतुलन।
3. इन्द्रिय-प्रवृत्ति और इन्द्रिय-संयम का संतुलन।
4. दीर्घश्वास और श्वास-संयम का समन्वय।
5. भाषा और मौन का संतुलन।
6. चिन्तन और अचिन्तन का संतुलन।

स्वास्थ्य के विषय में सर्वांगीण दृष्टिकोण होगा—चिकित्सा पद्धति और प्रेक्षाध्यान पद्धति दोनों का तुलनात्मक अध्ययन। एक साधक भावना के स्वर में कहता है—प्रभो! मैं आरोग्य, बोधि और समाधि को प्राप्त हो जाऊं। तीन आशंसाएं समन्वित हैं, ऊपर से चलें तो दीखेगा—समाधि के बिना बोधि नहीं और बोधि के बिना आरोग्य नहीं। नीचे से चलें तो दीखेगा—आरोग्य से बोधि और बोधि से समाधि।

मानसिक स्वास्थ्य के बिना शारीरिक स्वास्थ्य टिक नहीं सकता—इस सचाई में आस्था हो, इसका साक्षात्कार हो। आदमी शरीर को बहुत स्वस्थ रखना चाहता है। हर आदमी चाहता है कि शरीर स्वस्थ रहे किन्तु जब तक यह सचाई समझ में नहीं आएगी कि चित्त स्वस्थ नहीं है और मन स्वस्थ नहीं है तब शरीर स्वस्थ रह ही नहीं सकता। इस सचाई का साक्षात्कार होना चाहिए। यह बहुत बड़ी सचाई है। आज चिकित्सा विज्ञान और आयुर्विज्ञान में भी इस सचाई को स्वीकारा गया है कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य बहुत आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य को पाने के लिए आवेगों पर, क्षोभ और चंचलता पर नियंत्रण आवश्यक है। सुख का संवेदन हमारे भीतर है। मन स्वस्थ होता है तो सुख का संवेदन होता है और मन स्वस्थ नहीं और भाव स्वस्थ नहीं तो हजार सुविधा मिल जाने पर भी सुख का संवेदन नहीं हो सकता।

2.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. मानसिक स्वास्थ्य की साधना के सूत्रों का विवेचन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मन का स्थान कहां है? वर्णन करें।
2. मानसिक योग्यता के तत्त्वों का विश्लेषण करें।

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक वाक्य या एक लाइन में उत्तर दें)

1. कौन शरीर को बहुत स्वस्थ रखना चाहता है?
2. मानसिक स्वास्थ्य की साधना का तीसरा सूत्र कौन-सा है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. मानसिक स्वास्थ्य का तीसरा पैरामीटर क्या है?
4. शारीरिक रोग क्या हैं?
5. परिणामों की स्वीकृति मानसिक स्वास्थ्य की साधना का कौन-सा सूत्र है?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. कोई भी प्राणी.....अमर नहीं होता।
2. नवीन मनोविज्ञान ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि अस्वस्थ मन ही.....का कारण है।
3. मन का मुख्य केन्द्र यह.....मस्तिष्क है।
4. भावना का अर्थ केवल कुछ सोच लेना.....नहीं है।
5. हमारी शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की क्रियाएं.....के द्वारा संचालित एवं नियंत्रित होती हैं।

2.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
2. अमूर्त्त चिंतन—आचार्य महाप्रज्ञ
3. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—आचार्य महाप्रज्ञ
4. भारतीय मनोविज्ञान—डॉ. लक्ष्मी शुक्ला
5. सोया मन जग जाए—आचार्य महाप्रज्ञ
6. अपने घर में—आचार्य महाप्रज्ञ
7. महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र—आचार्य महाप्रज्ञ
8. मनोनुशासनम्—आचार्य तुलसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–3 : मन का अनुशासन

संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 इच्छा का अनुशासन
3.3 आहार का अनुशासन
3.4 इन्द्रियों का अनुशासन
3.5 शरीर का अनुशासन
3.5.1 शरीर के दो छोर
3.6 श्वास का अनुशासन
3.7 प्राण का अनुशासन
3.8 वाणी का अनुशासन
3.9 मन का अनुशासन
3.9.1 अनुशासन की प्रक्रिया
3.9.1.1 मन के अनुशासन का महत्व
3.9.1.2 आत्मानुशासन का प्रयोग : विपाक दर्शन
3.9.1.3 कैसे देखें?
3.9.1.4 आत्मानुशासन और सहिष्णुता
3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.11 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

व्यावहारिक दृष्टि से अनुशासन का अर्थ है नियंत्रण। आध्यात्मिक दृष्टि से अनुशासन का अर्थ है— संयम। अर्थात् अपने पर अपना अनुशासन ही नियंत्रण है। अनुशासन और नियंत्रण बराबर चलते हैं। यद्यपि अनुशासन और नियंत्रण में एक अन्तर होता है। कोई नियंत्रण बाहरी प्रभाव से आता है और कोई नियंत्रण भीतरी प्रभाव से आता है। बाहर से आने वाला नियंत्रण ऐसे नियंत्रण की श्रेणी में आता है जिसे परानुशासन कहा जा सकता है, यह आरोपित अनुशासन कहलाता है। जबकि भीतर से फूटने वाला नियंत्रण आत्मानुशासन की प्रक्रिया है। अपने पर अपना अनुशासन आत्मानुशासन है। बाह्य व्यवस्था से प्राप्त अनुशासन परानुशासन है, आत्मानुशासी होते हैं उनके लिए व्यवस्था और बाह्य अनुशासन बन्धन नहीं होते। पर आत्मानुशासन क्षण भर में नहीं सधता। जैसे जैसे मोह और आसक्ति की सघनता कम होती है वैसे बाह्य अनुशासन की अपेक्षा भी कम होती जाती है। अभ्यास करते करते एक दिन ऐसा आता है जिसमें पूर्ण रूप से आत्मानुशासन का उदय होता है। उस स्थिति के बाद बाह्य अनुशासन की अपेक्षा नहीं रहती। आत्मानुशासी अनुशासन में रहता हुआ भी उससे मुक्त रहता है। जैसा कि आचार्य पूज्यपाद ने कहा है—

आत्मानुष्ठान निष्ठस्य व्यवहार बहिः स्थिते।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः।।

ध्यान और कायोत्सर्ग के द्वारा आत्मानुशासन का विकास होता है। यदि ऐसा न हो तो ध्यान और कायोत्सर्ग भी एक तरह से नशे की गोली बनकर रह जाएंगे।

हमारे पुराने जमे हुए संस्कार, वृत्तियां, संज्ञाएं पग-पग पर आदमी को विवश करती हैं, बाध्य करती हैं। आदमी अतीत की सांकल से बन्धा हुआ दौड़ रहा है। यह बड़ी विचित्र बात लगती है। एक संस्कृत कवि ने ठीक कहा है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आशा नाम मनुष्याणां, काचिदाश्चर्यशृंखला।
यया बद्धाः प्रधावन्ति, मुक्ताः तिष्ठन्ति पंगुवत्।।

आशा नाम की एक अजीब सांकल है। बड़ी विचित्र सांकल है कि उससे बंधे हुए आदमी तो दौड़ते हैं और उससे छूटे हुए आदमी पंगु की तरह बैठे हुए रह जाते हैं।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ के विचार हैं कि ध्यान की भूमिका में कोई गंध नहीं है, उसके लिए सब पवित्र होते हैं। हमारी एक निष्ठा होनी चाहिए—गंदगी को मिटाने की क्षमता ध्यान में है। गंदगी को मिटाया जा सकता है और अभ्यास के द्वारा मिटाया जा सकता है। हमारी ऐसी त्रिआयामी और त्रिसूत्री आस्था होनी चाहिए। ये तीन सूत्र हैं—1. क्षमता, 2. समाप्त किया जा सकता है या विकास किया जा सकता है, 3. समाप्ति और विकास अभ्यास के द्वारा किए जा सकते हैं।

ये तीन सूत्र हैं—इन पर आस्था जमे तो आत्मानुशासन भी दुर्लभ नहीं है। आत्मानुशासन तभी प्रकट होगा जब भीतर में जमे हुए संस्कार उखड़ेंगे। उन संस्कारों को उखाड़ने की हमारी क्षमता है, तब आत्मानुशासन को विकसित करने की क्षमता भी हमारे भीतर विद्यमान है। वह अशक्य या असंभव अनुष्ठान नहीं है इसे अभ्यास के द्वारा किया जा सकता है। अभ्यास के लिए मार्ग खोजना होगा। उसके सूत्र उपलब्ध करने होंगे। उसके सूत्र हैं—संयम और तपस्या। एक आरोपित न्यियंत्रण होता है, जो बंधन और वध के द्वारा किया जाता है। दंड का नियंत्रण, दंड का अनुशासन। उसके भी दो सूत्र हैं—बंधन और वध। जब तक बंधन और वध की बात रहती है तब तक आत्मानुशासन का विकास नहीं हो सकता। जिस व्यक्ति में आत्मानुशासन का विकास हो जाता है, वह बंधन और वध—दोनों भयों से मुक्त होकर सर्वतो अभय हो जाता है।

समूचे समाज में व्याप्त भय से ही नियंत्रण जटिल से जटिल बनते जा रहे हैं। इसका एक ही समाधान है—आत्मानुशासन का विकास। हमारे भीतर से अनुशासन जागे। अनुशासन जागने का अर्थ है कि वहां बंधन नहीं है, वध नहीं है। वहां दो प्रेरणाएं काम कर रही हैं। एक है संयम की प्रेरणा और दूसरी है तपस्या की प्रेरणा। ये दो प्रेरणाएं प्रेरित करती हैं और आत्मानुशासन प्रकट हो जाता है।

इच्छा का अनुशासन, आहार का अनुशासन, इन्द्रियों का अनुशासन, शरीर का अनुशासन, श्वास का अनुशासन, प्राण का अनुशासन, वाणी का अनुशासन और मन का अनुशासन—ये अनुशासन इकट्ठे होते हैं तो फिर एक अनुशासन बनता है वह है आत्मानुशासन। आत्मानुशासन के ये आठ आधारभूत स्तम्भ हैं। इन आठों अनुशासनों को पाए बिना, प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति आत्मानुशासन को प्राप्त नहीं हो सकता।

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में आप मन को अनुशासित करने वाले निम्न तथ्यों को जान सकेंगे—

1. इच्छा का अनुशासन क्यों करें, समझ सकेंगे।
2. आहार का अनुशासन क्यों आवश्यक है? समझ सकेंगे।
3. शरीर का अनुशासन कैसे करें? परिचित हो सकेंगे।
4. इंद्रियों का अनुशासन कर सकेंगे।
5. श्वास का अनुशासन सीख सकेंगे।
6. प्राण का अनुशासन साध सकेंगे।
7. भाषा का अनुशासन क्यों जरूरी है? समझ सकेंगे।
8. मन का अनुशासन कितना मुश्किल है, समझ सकेंगे।
9. अनुशासन की प्रक्रिया को सीख सकेंगे।
10. मन के अनुशासन के महत्त्व को जान सकेंगे।
11. आत्मानुशासन का प्रयोग : विपाक दर्शन है, इसे समझ सकेंगे।
12. कैसे देखें? इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया को जान सकेंगे।
13. आत्मानुशासन और सहिष्णुता के संबंध को जान पाएंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.2 इच्छा का अनुशासन

इच्छा प्राणी का गहनतम लक्षण है। यह एक ऐसी विभाजक रेखा है जो केवल प्राणी में ही होती है, अप्राणी में नहीं होती। मन चंचल होता है इच्छा के द्वारा। इच्छा होती है अन्तर्मन में, गहरे सूक्ष्म जगत् में और मन बेचारा चंचल हो जाता है। उस पर नियंत्रण होना चाहिए। इसके आधार पर समाज ने एक सूत्र दिया—इच्छा परिष्कार। इच्छा का परिष्कार करना चाहिए। इच्छाएं अपरिष्कृत होती हैं। यदि इच्छा के अनुसार व्यक्ति चलता चले तो हमारा यह सभ्य समाज आदिवासियों का समाज बनकर रह जाएगा। व्यक्ति के मन में अनेक प्रकार की इच्छाएं जाग सकती हैं। यदि वह उन सब क्रियाओं को क्रियान्वित करता है तो समाज में कोई जी नहीं सकता। मन में किसी को मारने की इच्छा जागती है और वह किसी को मार डालता है। मन में धन लूटने की इच्छा जागती है, दूसरे के घर पर कब्जा करने की इच्छा जागती है और वह धन लूटता है, दूसरे के घर पर कब्जा करता है। इस स्थिति में न्याय की सारी अवस्थाएं अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। इसलिए समाज ने इच्छा परिष्कार का सूत्र दिया। इच्छा का परिष्कार या शोधन होना चाहिए। इच्छा वही मान्य हो सकती है जो दूसरों की इच्छा में बाधक न बने, दूसरों को क्षति न पहुंचाए, बाधा न पहुंचाए। इच्छा के परिष्कार के बिना समाज का निर्माण नहीं हो सकता।

परिष्कृत इच्छा के लिए भी संयम और अनुशासन आवश्यक होता है। आयुर्वेद में एक सिद्धांत के तीन अवयवों की चर्चा है। तीन अवयव हैं—योग, अयोग और अतियोग। अयोग हो तो कोई बात पनपती नहीं। किसी व्यक्ति को शिक्षा का अयोग हो तो वह नितांत मूर्ख ही बना रहेगा। अतियोग भी हानिकारक होता है। कोई व्यक्ति चौबीस घंटा रात-दिन पढ़ता ही चला जाए तो उसकी आंखें खराब हो जाएंगी और मस्तिष्क विकृत हो जाएगा, शक्ति-शून्यता आ जाएगी। वह भी कुछ नहीं कर पाएगा। न अयोग हो और न अतियोग हो किन्तु योग होना चाहिए। दिन में 2-4 घंटा पढ़ा, विश्राम किया फिर पढ़ा, फिर विश्राम किया। यह है इच्छा का अनुशासन। योग का अर्थ है—परिष्कृत इच्छा पर नियंत्रण, संयमन।

अनुशासन का स्वरूप है—इच्छा का निरोध करना। व्यक्ति के मन में अनेक इच्छाएं उत्पन्न होती रहती हैं। जैसे किसी की सुन्दर कार देख कर इच्छा हो जाती है कि मैं भी ऐसी ही अमुक कम्पनी की कार खरीदूं। किसी का अच्छा मकान देख कर इच्छा हो जाती है कि मैं भी ऐसे ही मकान का निर्माण करवाऊं। भगवान महावीर ने कहा है—'इच्छा हु आगास समा अणंतिया'—इच्छाएं आकाश के समान अनन्त होती हैं। एक दिन में न जाने कितनी इच्छाएं पैदा होती हैं। व्यक्ति में जो जो इच्छाएं उत्पन्न होती हैं वह वैसा ही करने लग जाए तो एक ही दिन में समाज की व्यवस्था गड़बड़ा जाएगी। चारों ओर लूट-खसोट, हिंसा, आतंक फैल जाएगा। अत: समाज में अनुशासन सीखाया जाता है, उसके स्वरूप से परिचित कराया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि मेरे पास जो वस्तु है मुझे उसी में संतुष्ट रहना चाहिये। मेरा कपड़ा ही मुझे पहनना है। मेरी रोटी ही मुझे खानी है। जब इस अनुशासन को व्यक्ति जानता है तभी समाज की व्यवस्थाएं अच्छी तरह से चलती हैं। इसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार मनमानी नहीं कर सकता। जो इच्छा मन में पैदा होती है, वह उसमें काट-छांट करता है, इच्छा का निरोध करता है। विवेक शक्ति (रिजनिंग माइण्ड) का काम है—इच्छा की काट-छांट करते रहना। यही इच्छा के अनुशासन का स्वरूप है। जो व्यक्ति अनुशासित होता है वह मनमानी नहीं करता, इच्छाओं का संयम करता है।

सबसे बड़ी बात है—नियंत्रण के केन्द्रों का बोध होना। शरीर में अनगिनत नियंत्रण केन्द्र हैं। मस्तिष्क सबसे बड़ा नियामक है। नाड़ी-संस्थान, रीढ़ की हड्डी, सुषुम्ना आदि भी नियंत्रण केन्द्र हैं। इच्छाओं पर अनुशासन करने के लिए जरूरी है नियंत्रण केन्द्रों को समझना। इच्छा भीतर से आती है। प्राण शक्ति के साथ काम करती है। यदि प्राण शक्ति का सहारा न मिले तो इच्छा भीतर और उत्पन्न होगी और बाहर में आकर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

और निष्क्रिय बन जाएगी। हम प्राण शक्ति को ऐसे नियंत्रण केन्द्रों में संयोजित करें जिनसे हमारे ऊपरी भाग के केन्द्र जागृत हों और इच्छा पैदा करने वाला केन्द्र सो जाए।

3.3 आहार का अनुशासन

मन के अनुशासन में आहार का नियंत्रण भी सशक्त साधन बनता है। मानसिक स्वस्थता का आहार के साथ गहरा संबंध है। जीवन का संचालन मस्तिष्कीय केन्द्रों द्वारा होता है। ये केन्द्र रसायनों द्वारा शोषित एवं संचालित होते हैं। अनेक रसायन, न्यूरोटान्समीटर आहार द्वारा बनते हैं। वे हमारे विचार, आहार एवं व्यवहार को प्रभावित करते हैं। सम्यक् व संतुलित आहार से सम्यक् रसायन बनते हैं। आहार अनुशासन के निम्न सूत्र हैं–

1. निश्चित समय का अनुशासन—अर्थात् खाने के समय का निर्धारण बार-बार न बदला जाये।
2. मात्रा का अनुशासन—खाने की मात्रा का विवेक।
3. खाने की सामग्री में वस्तुओं की सीमा—विविध प्रकार की अनेक खाद्य सामग्री को एक साथ खाना पाचन-तंत्र को अव्यवस्थित करना है। इससे वैचारिक पवित्रता में भी बाधा आती है।
4. बार-बार न खाना।
5. खाने में जल्दबाजी न करना।
6. आहार और निराहार का संतुलन रखना।

3.4 इन्द्रियों का अनुशासन

इन्द्रियों के अनुशासन के बिना मन के अनुशासन की कल्पना नहीं की जा सकती। इन्द्रियों के माध्यम से ही मन को खुराक मिलती है। मन में अच्छे विचार, अच्छे भाव और अच्छी कल्पनाएं तभी आ सकती हैं जब इन्द्रियों का प्रत्यक्षीकरण भी वैसा ही शुद्ध हो। अध्यात्म के आचार्यों ने इन्द्रियों को उतना ही मूल्य दिया है जितना उनका मूल्य है, अधिक मूल्य नहीं दिया।

इन्द्रिय अनुशासन के दो सूत्र हैं—1. अपने-अपने विषयों के प्रति सम्यक् योग 2. प्रतिसंलीनता।

1. विषयों के प्रति सम्यक् योग का अर्थ है कि व्यक्ति ज्ञेय इन्द्रियों को ज्ञाता की दृष्टि से जाने। न उसके साथ प्रियता को जोड़े, न अप्रियता को जोड़े। तभी मन स्वच्छ एवं पवित्र रह सकेगा।
2. प्रतिसंलीनता—इसका अर्थ है कि जो लीनता बाहर की तरफ है वह अपनी चेतना के प्रति हो जाये। जब बाहर की तल्लीनता भीतर की ओर होने लगती है तो प्रियता और अप्रियता का भाव टूट जाता है। व्यक्ति को जब भीतरी रसों का अनुभव हो जाता है तो बाहरी रसों का तांता टूट जाता है। उस स्थिति में इन्द्रियों का अनुशासन सहज हो जाता है।

चेतना के ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया है—ध्यान। इस प्रक्रिया में पहला आलम्बन है संयम। संयम के बिना विकास नहीं किया जा सकता। हम नाभि पर ध्यान करते हैं यह हमारा संयम है। हम आनन्दकेन्द्र पर ध्यान करते हैं, यह हमारा संयम है। सब वृत्तियों से चित्त को हटा कर किसी एक पुद्गल या परमाणु पर उसे केन्द्रित कर देना संयम है। ध्यान में इन्द्रिय संयम परम आवश्यक तत्त्व है। इन्द्रिय संयम के अभाव में आत्मानुशासन को नहीं साधा जा सकता।

3.5 शरीर का अनुशासन

आत्मानुशासन चाहने वाले व्यक्ति के लिए सबसे पहले शरीर को अनुशासित करना जरूरी है, काय-सिद्धि करना होता है। शरीर को साधने में कष्ट जरूर होता है लेकिन उसका उद्देश्य शरीर को कष्ट देना नहीं है। काया को साधने के लिए आसन किये जाते हैं। इससे शरीर में जमा हुआ मैल निकल जाता है। शरीर सध जाता है। शरीर की स्थिरता मन की स्थिरता में भी साधक बनती है। संयम और तपस्या के द्वारा भी शरीर का अनुशासन सधता है। हाथ का संयम, पैर का संयम—ये दो बड़े संयम हैं शरीर के। पैर उसी दिशा में उठता है जिस दिशा में हम जाना चाहते हैं। विपरीत दिशा में एक चरण भी आगे नहीं बढ़ेगा। हाथ भी उसी दिशा में उठेगा जिस दिशा में हम उसे आगे बढाना चाहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हाथ का संयम, पैर का संयम, खड़े रहने का अभ्यास, बैठने का अभ्यास बहुत कठिन होता है। व्यक्ति ध्यान करता है तो कभी पैर सो जाता है, कभी हाथ सो जाता है, बहुत कठिन होता है शरीर का अनुशासन। शरीर पर अनुशासन करने वाला व्यक्ति तीन घंटे तक एक आसन में बैठ सकता है, तीन दिन, तीन महीने और तीन वर्ष तक भी बैठ सकता है। शरीर पर अनुशासन करने वाला व्यक्ति तीन घंटे तक खड़ा रह सकता है, तीन दिन, तीन महीने और तीन वर्ष तक भी खड़ा सकता है।

बाहुबलि मुनि बन कर कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े हो गये। पूरे एक वर्ष तक अविचल मुद्रा में खड़े रहे। कितना कठिन है शरीर का यह अनुशासन! मनुष्य के भीतर कितनी क्षमताओं का भण्डार है, उसका अनुमान लगाना कठिन है। इतनी अज्ञात क्षमताएं हमारे मस्तिष्क में भरी पड़ी हैं कि मस्तिष्क का नब्बे प्रतिशत भाग तो काम में ही नहीं आ रहा है। यह क्षमता का भण्डार पड़ा का पड़ा रह जाता है। शेष बचे दस प्रतिशत क्षमता का उपयोग करने वाले भी विरले ही होते हैं। आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार 'सामान्य आदमी तो दो, चार या पांच प्रतिशत को ही काम में ले पाता है। सात प्रतिशत को काम में लेने वाला एक अच्छा आदमी, भाग्यशाली आदमी बन जाता है और दस प्रतिशत को काम में लेने वाला तो महान आदमी, बड़ा आदमी बन जाता है। इस प्रकार नब्बे प्रतिशत शक्तियां तो सोयी की सोयी पड़ी हैं। उन शक्तियों को जगा सकें, उन शक्तियों को प्रकट कर सकें, शक्ति के उस महास्रोत को खोल सकें तब कोई काम बनता है और तब यह अनुशासन प्रकट होता है। उस अनुशासन को, उन शक्तियों को जगाने की प्रक्रिया ध्यान के सिवाय आज तक कोई नहीं। उस महान अज्ञात स्रोत को उपलब्ध करने का, उस अनन्तकाल से बन्द दरवाजे को खोलने के लिए कोई चाबी बन सकता है तो वह ध्यान बन सकता है।

बोध प्रश्न 1:

1. अनुशासन के स्वरूप को समझाएं?
2. आहार अनुशासन के कौन-कौन से सूत्र है?
3. शरीर के अनुशासन से क्या तात्पर्य है?

3.5.1 शरीर के दो छोर

शरीर के दो छोर हैं—एक है कामना का और दूसरा है चेतना का। योगशास्त्र में शरीर को चेतना की दृष्टि से दो भागों में बांटा गया है—

1. नीचे का भाग, जिसे मूलाधार या शक्तिकेन्द्र कहा जाता है, कामना या वासना का केन्द्र है।
2. ऊपर का भाग, सिर का भाग, ज्ञानकेन्द्र—यह चेतना का केन्द्र है।

अशुद्ध आलम्बनों को छोड़ना और शुद्ध आलम्बनों का सहारा लेना—यह ध्यान की प्रक्रिया का मूल तत्त्व है। उसका तात्पर्य है—कामकेन्द्र की ओर प्रवाहित होने वाली चेतना को ऊपर उठा कर ज्ञानकेन्द्र में ले जाना। नीचे के प्रवाह को ऊपर की ओर मोड़ देना। यह शुद्ध आलम्बन की स्वीकृति है। यह प्रयत्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस प्रयत्न से सारी वृत्तियों का परिष्कार होता है, मन का अनुशासन सधता है।

शरीर के अनुशासन के मुख्य प्रयोग निम्न हैं—आसन, मुद्रा, बंध, कायोत्सर्ग एवं अन्यत्व अनुप्रेक्षा। शरीर का अनुशासन बहुत कठिन होता है तो श्वास का अनुशासन और भी कठिन है।

3.6 श्वास का अनुशासन

बच्चा जैसे जैसे बड़ा होता है भावनाओं और आवेशों से उसका जीवन भरता चला जाता है। उसका श्वास छोटा, तीव्र व छिछला हो जाता है। जो लोग श्वास-प्रेक्षा का अभ्यास करते हैं वे श्वास को ठीक लेना सीखते हैं। सम्यक् श्वास का मतलब होता है—सही तरीके से श्वास को लेना और सही तरीके से श्वास को छोड़ना और धीरे-धीरे उसे रोकने का अभ्यास करना ही श्वास का संयम, श्वास का अनुशासन होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो व्यक्ति श्वास पर अनुशासन करना सीख लेता है वह एकाग्र हो जाता है। वह जीवन में आने वाली मानसिक बुराइयों में उलझता नहीं है। वह उन्हें जटिल समस्या नहीं बनाता। एक तरफ बुरे विचार चलते हैं और दूसरी तरफ श्वास-दर्शन का प्रयोग चलता है। श्वास-दर्शन का प्रयोग जैसे जैसे पुष्ट होता है वैसे वैसे ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास होता चला जाता है और समस्या समाहित हो जाती है।

श्वास के अनुशासन के निम्न प्रयोग हैं—प्राणायाम, दीर्घश्वास-प्रेक्षा, समवृत्ति श्वास-प्रेक्षा एवं कायोत्सर्ग आदि।

3.7 प्राण का अनुशासन

प्राण का अनुशासन उससे भी कठिन है। श्वास का पता तो चलता है कि आ रहा है। यह जीवन का लक्षण है। किंतु प्राण तो और भी सूक्ष्म है, वह पकड़ में भी नहीं आता। जब प्रेक्षा-ध्यान का अभ्यास कराया जाता है कि प्राण के प्रकम्पनों को पकड़ें, प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें तो लोग कहते हैं कि हमें तो कुछ भी पता नहीं चलता है। सूक्ष्म को पकड़ने के लिए चित्त को भी सूक्ष्म करना होगा।

जब प्राण के अनुशासन की क्षमता जाग जाती है तो एक हाथ के तापमान को बढाया जा सकता है, दूसरे हाथ के तापमान को घटाया जा सकता है। इसका क्रम उलटा भी किया जा सकता है। चाहे जिस अवयव को स्तब्ध किया जा सकता है और चाहे जिस अवयव को अधिक सक्रिय किया जा सकता है। समस्त कलाओं का विकास भी प्राण शक्ति का विकास है। संकल्प शक्ति का विकास, सम्मोहन की समस्त क्रियाओं का प्रयोग प्राण शक्ति का ही चमत्कार है। प्राण शक्ति से लोहे की सांकल को भी तोड़ा जा सकता है। प्राण पर अनुशासन होने का मतलब है स्वत:चालित नाड़ी-तंत्र पर नियंत्रण हो जाना।

3.8 वाणी का अनुशासन

वाणी का अनुशासन यानी वचन का अनुशासन। वाणी पर अनुशासन करना बहुत कठिन होता है। वाणी ही मनुष्य की अभिव्यक्ति का साधन है। समाज का विस्तार एवं संबंध वाणी के द्वारा ही संभव होता है। मन का आश्रय वाणी ही है। मन पर अनुशासन करने से पूर्व वाणी पर अनुशासन करना जरूरी है। स्मृति, चिंतन, कल्पना भी भाषा के बिना नहीं शब्दों के बिन चिंतन नहीं होता अत: चिंतन भी वाणी ही है। इसलिए बहिर्जल्प नहीं, अन्तर्जल्प चलता है। वैज्ञानिक परीक्षण किये गये कि सपने के समय भी व्यक्ति का स्वर-यंत्र सक्रिय होता है। स्वर-यंत्र निष्क्रिय हो जाए तो स्मृति, चिंतन और कल्पना भी समाप्त हो सकती है। जिस व्यक्ति ने कण्ठ पर कायोत्सर्ग करना सीख लिया, स्वर-यंत्र को शिथिल करना सीख लिया, वह बहुत सारी समस्याओं का समाधान पा सकता है। स्वर-यंत्र के शिथिल होने पर ही ध्यान सधता है। ध्यान की स्थिति को प्राप्त करने पर मानसिक तनाव को, भीतर से आने वाले तनाव को, आवेगों और संवेगों से उत्पन्न होने वाले तनावों को मिटाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी वाणी पर अनुशासन के कुछ प्रयोग निर्दिष्ट है, जैसे—शुद्ध उच्चारण, प्रलम्बनाद का अभ्यास, सत्यनिष्ठा आदि।

3.9 मन का अनुशासन

मन के अनुशासन की एक प्रक्रिया है उसे समझे बिना मन पर अनुशासन करना संभव नहीं बन पाता। आचार्य श्री तुलसी ने एक ग्रन्थ लिखा—मनोनुशासनम्। इसका अर्थ है—मन का अनुशासन। उस ग्रन्थ में अनेक प्रकार के अनुशासनों की चर्चा की गयी है, जैसे आहार का अनुशासन, शरीर का अनुशासन, इन्द्रिय का अनुशासन, श्वास का अनुशासन, भाषा का अनुशासन और मन का अनुशासन। मन पर अनुशासन करने के लिए पांच और अनुशासन सीखने जरुरी होते हैं। एक मन देवता को सिद्ध करने के लिए पांच अन्य देवताओं को साधना भी जरुरी है। मानसिक प्रशिक्षण से मन को अनुशासित किया जा सकता है। उसके प्रशिक्षण का पहला सूत्र है—भावक्रिया का अभ्यास। अर्थात् हम जो कार्य कर रहे हैं उसी में दत्तचित्त होकर कार्य करना। मन को प्रशिक्षित करने का दूसरा सूत्र है—कल्पना का विकास, संकल्प का या इच्छा शक्ति का विकास करना। तीसरा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सूत्र है—एकाग्रता का अभ्यास। सहीमार्ग, ध्यान की प्रक्रिया, श्रद्धा, दीर्घकालीन और निरन्तर अभ्यास से मन के अनुशासन का प्रश्न समाहित हो जाता है।

3.9.1 अनुशासन की प्रक्रिया

मनोनुशासनम् में मन के अनुशासन की सुव्यवस्थित प्रक्रिया है। प्राचीन ग्रन्थों में वैसी प्रक्रिया उपलब्ध नहीं है। अनुशासन की प्रक्रिया के छह अंग है। प्रश्न यह उठता है कि आहार का संयम क्यों करें? आहार का मन से क्या संबंध है? शरीर पर अनुशासन क्यों करें? शरीर और मन का क्या संबंध है? इन्द्रियों पर अनुशासन क्यों करें? इन्द्रियों का मन के साथ क्या संबंध है? श्वास अपने आप गति करता है। हम जागते हैं तब भी श्वास आता है और हम सोते हैं तब भी वह अपना कार्य करता रहता है। हम बैठते हैं तब भी श्वास आता है और हम चलते हैं तब भी श्वास आता है। इस प्रकार श्वास हर क्षण हमारे जीवन के साथ जुड़ा हुआ है, वह कभी भी विश्राम नहीं करता। तब प्रश्न उठता है कि हम श्वास पर अनुशासन क्यों करें? मन में उभरने वाले ये प्रश्न सहज हैं। लोग सीधा मन को ही पकड़ना चाहते हैं। मन के अनुशासन का मार्ग ऐसा है, जिसमें रज्जु का सहारा चाहिए। आकाश निरालम्ब है उसमें यदि व्यक्ति चलना चाहे तो उसे आलम्बन लेना होगा। एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर जाना है, कैसे जाएं? मानव मस्तिष्क ने उपाय खोज निकाला और रज्जु मार्ग का विकास हो गया। रज्जु मार्ग से व्यक्ति एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ की यात्रा कर सकता है उसे नीचे उतरने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मन पर अनुशासन करने वालों ने, अध्यात्म की यात्रा करने वालों ने अनेक आलम्बनों की खोज की है। उन्होंने छोटे-बड़े आलम्बनों की एक श्रृंखला बनाई है। जयाचार्य ने आलम्बनों की एक पूरी सूची प्रस्तुत की है। निरालम्ब तक पहुंचने में जिन आलम्बनों की आवश्यकता है, उनमें मुख्य आलम्बन इस प्रकार हैं—संयम, तप, जप, शील, स्वाध्याय, अनित्य अनुप्रेक्षा, अशरण अनुप्रेक्षा, अनन्त अनुप्रेक्षा और निर्मल ध्यान। इन आलम्बनों का उपयोग किये बिना कोई भी साधक निरालंब तक नहीं पहुंच सकता। अशुद्ध आलम्बनों को छोड़ कर शुद्ध आलम्बनों को स्वीकार करना आवश्यक है।

हम ऐसे चित्त का निर्माण करें जिससे समस्याओं का सामना करने में सक्षम हो सकें। इस प्रकार के चित्त के निर्माण के लिए आत्मानुशासन अपेक्षित है। आत्मानुशासन तब घटित होता है जब व्यक्ति में इच्छा, आहार, इन्द्रिय, शरीर, श्वास, प्राण, वाणी और मन—इन आठों पर अनुशासन करने की क्षमता विकसित होती है। इन सब अनुशासनों का घटक है ध्यान। ध्यान के माध्यम से ही हम आत्मानुशासन को विकसित करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

साध्यं प्रसाधितं येन, लब्धमात्मानुशासनम्।
स्वायत्त स सुखाढ्यश्चेतरे तु नाममात्रका:।।

अर्थात् जिसने आत्मा को पा लिया उसने साध्य भी पा लिया है। वही स्वतंत्र और सुखी है। दूसरे तो केवल नाम मात्र के स्वाधीन हैं।

3.9.1.1 मन के अनुशासन का महत्त्व

आत्मानुशासन को बहुत महत्त्व दिया गया है। जब तक आत्मानुशासन नहीं सधता है तब तक व्यक्ति सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता। जैसा कि कह भी है—

तद् विना जीवने नैति, साम्यं काम्यं प्रकामत:।
मुक्ता: प्रतिक्रियातो नो, विना साम्यं भवन्ति हि।।

आत्मानुशासन के बिना जीवन में समता फलित नहीं होती और बिना समता के व्यक्ति प्रतिक्रियाओं से भी मुक्त नहीं हो सकता। अत: कहा गया है—

सर्व तस्याऽत्म-सम्मत्या, प्रवर्तनं निवर्तनम्।
इन्द्रियाणि, मनो बुद्धि:, स्ववशा नैव कर्हिचित्।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आत्म-द्रष्टा साधक का प्रवर्तन और निवर्तन सब आत्म सम्मति से होता है। इन्द्रियों, मन और बुद्धि का वहां कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। इसी को संपुष्ट करने वाला श्लोक मिलता है—

स्वच्छन्दचारिणी कामं, प्रजेव शासकं विना।
विविधं कुरुतेऽनिष्टं, मनोऽपि स्वामिनं विना।।

शासक के बिना जैसे प्रजा स्वच्छन्द चारिणी बन जाती है वैसे ही मन भी बिना स्वामी के विविध अनिष्टों की सृष्टि करता है। अस्तु, आत्मानुशासन पुष्ट कैसे हो इसको बताते हुए कहा है—

स्थिरं सुलीनं सुविधाय देहं, चेतश्चलत्वं प्रविहाय विश्वम्।
अन्तःस्थमात्मानमलोल-दृष्ट्या, प्रोद्भावयेयु र्विशदस्वरूपम्।।

देह को स्थिर तथा एकाग्र कर, चित्त की चपलता को दूर कर, निर्निमेष दृष्टि से अपने अन्तःस्थ आत्मा के विशद स्वरूप को प्रकट करो। **(आत्मनिवेदनम्, पृ. 14-26)**

3.9.1.2 आत्मानुशासन का प्रयोग : विपाक दर्शन

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने लिखा है—

स्वशरीरमनोवस्थाः, पश्यतः स्वेन चक्षुषा।
यथैवायं भवस्तद्वद्, अतीतानागतावपि।।

हम अपने ज्ञान चक्षुओं के द्वारा अपने शरीर की अवस्थाओं को देखें, अपने मन की अवस्थाओं को देखें, इसका अर्थ है—अपने द्वारा अपना दर्शन। देखने वाला है हमारा ज्ञान चक्षु। शरीर हमारी आत्मा का एक अंग है, इसे आत्मा से अलग नहीं किया जा सकता। हर व्यक्ति के शरीर में प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहे हैं। हम ध्यान में शरीर में घटित होने वाली अवस्थाओं को जागरुकता से देखें। हमें प्रतीत होगा कि शरीर में हजारों प्रकार के परिवर्तन होते हैं। हमारे व्यक्तित्व के साथ आठ कर्म जुड़े हुए हैं और आठों कर्मों की सैकड़ों प्रकृतियां होती हैं। वे प्रकृतियां प्रतिक्षण अपना विपाक कर रही हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय—इन सब प्रकृतियों का अपना अपना विपाक हो रहा है। इनका पूरा एक तंत्र शरीर के भीतर चल रहा है। उन सारी अवस्थाओं को ज्ञान चक्षु से देखना अपने द्वारा अपना दर्शन है, इसी से आत्मानुशासन सधता है।

3.9.1.3 कैसे देखें?

मन की अवस्थाओं को देखना भी सरल नहीं है। हमारे विचारों के एक सैकण्ड में तैंतीस प्रकंपन हो जाते हैं। अतः इन अवस्थाओं को देखना भी अपने आप में जटिल कार्य है। प्रश्न उठता है कि इन अवस्थाओं को कौन देख सकता है? जिस व्यक्ति का आत्मानुशासन सधा हुआ है जो तटस्थ होकर देखता है, जो ज्ञाता-द्रष्टा भाव से देखता है वही व्यक्ति इन विविध अवस्थाओं को देख सकता है। व्यक्ति इन्हें शांत भाव से देखता चला जाए, इसी का नाम है—आत्म-दर्शन।

ललाट के मध्य में ज्योति-केन्द्र है। उससे सारा संचालन होता है। भृकुटी से लेकर सिर के अगले भाग तक पांच-छह अंगुल का जो भाग है वह पूरे संचालन का काम कर रहा है। इसलिए सबसे ज्यादा इस पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। यह खोज आज से हजारों वर्ष पहले हो चुकी थी। आज के शरीर-शास्त्र ने इसका प्रतिपादन किया है कि पिच्यूटरी, पिनियल और हाइपोथेलेमस—ये तीन हमारे पूरे व्यक्तित्व का संचालन कर रहे हैं। संचालन करना और संतुलन करना हमारे विशेष केन्द्रों पर निर्भर है। एक भाई ने बताया कि मेरी बहिन के एक बीमारी हो गई उसका संतुलन खो गया। खड़ी नहीं रह सकती गिर जाती थी। चलते-चलते लड़खड़ा जाती थी। बहुत निदान किया पता नहीं चला। आखिर बम्बई गए। एक कुशल डॉक्टर से मिले। उसने सही निदान किया। दवा दी और ठीक हो गई। कान के पास एक स्नायु है। उस स्नायु में गड़बड़ी हो जाती है तो हमारा संतुलन खो जाता है। आदमी लड़खड़ाने लगता है, फिर वह ठीक से न बैठ सकता है, न लेट सकता है और न चल सकता है। संतुलन रखने वाले अवयवों का बड़ा महत्त्व होता है। नियंत्रण रखने वाले, शासन करने वाले तत्त्वों का बहुत ज्यादा महत्त्व होता है। हमारे शरीर का यह नियंत्रण कक्ष जो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समूचे शरीर की गतिविधियों का नियंत्रण करता है, यह नियंत्रण-कक्ष जो समूचे साम्राज्य का नियंत्रण करता है, केवल पांच-छह अंगुल की सीमा में है। इसको साधने का अर्थ होता है—मन के अनुशासन का विकास।

दर्शन-केन्द्र अन्तर्दृष्टि को विकसित करता है, ज्योति-केन्द्र सारी आचारात्मकप्रवृत्तियों का नियंत्रण करता है और अग्रिम मस्तिष्क समूचे तापमान का नियंत्रण करता है। सबको नियंत्रित करता है—हाइपोथेलेमस। यह पीनियल को भी नियंत्रित करता है। पीनियल पिच्यूटरी को नियंत्रित करती है। यह पांच-छह अंगुल का सारा भाग नियंत्रण करता है और यहां से समूचे शरीर का नियंत्रण होता है।

3.9.1.4 आत्मानुशासन और सहिष्णुता

सामाजिक जीवन को स्वस्थ रखने का एक उपाय है—सहना। सहिष्णुता का विकास शक्ति का विकास है। सहिष्णुता के बिना अनुशासन का विकास नहीं हो सकता। अनुशासन एक परिणाम है और सहिष्णुता की शक्ति उसका कारण है। सहिष्णुता की शक्ति का विकास हुए बिना अनुशासन का विकास नहीं हो सकता। इसलिए हमारा सारा प्रयत्न सहिष्णुता की शक्ति को विकसित करने के लिए होना चाहिए। तब अनुशासन स्वयं फलित होगा।

सहिष्णुता की शक्ति का विकास करने के लिए अग्र मस्तिष्क (फ्रन्टल लॉब या इमोशनल एरिया) पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना होगा। प्रेक्षाध्यान की दृष्टि से इसे शांति केन्द्र, ज्योति केन्द्र का स्थान कहा जाता है। मस्तिष्क का इमोशनल एरिया ही सारी उत्तेजनाओं, आवेगों और असहिष्णुता का जनक है। दूसरी बात है कि इन केन्द्रों पर सफेद रंग का ध्यान करना। ये दोनों प्रयोग मस्तिष्क के इमोशनल एरिया पर नियंत्रण करते हैं उसे शांत करते हैं। इस पर नियंत्रण जैसे-जैसे होता जाएगा, वैसे-वैसे उत्तेजनाएं और आवेग कम होते जाएंगे और सहिष्णुता की शक्ति का विकास होता जाएगा। जब सहिष्णुता का विकास होगा तब अनुशासन की शक्ति अपने आप आएगी। जब सहिष्णुता का विकास होता है तब व्यक्ति संतुलित हो जाता है। वह न प्रियता में फूलता है और न अप्रियता में कुम्हलाता है। जब सहिष्णुता का विकास होता है तब प्रियता में भी विवेक करने की शक्ति जाग जाती है। सहिष्णुता के विकास का सूत्र है—शांतिकेन्द्र व ज्योति केन्द्र पर ध्यान करना, तद्विषयक चिंतन और विचार करना।

हृदय परिवर्तन का पहला सूत्र है—आत्मानुशासन। हृदय परिवर्तन एक अमूर्त्त क्रिया है हमारी चेतना की। उसे देखा नहीं जा सकता। किन्तु आत्मानुशासन के विकास को देखकर जान जाते हैं कि इस व्यक्ति का आत्मानुशासन सध गया है।

आत्मानुशासन का विकास समाज और सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का एक महत्त्वपूर्ण अवदान है। आत्मानुशासन के बिना अहिंसा की कल्पना नहीं की जा सकती। अहिंसा का पूरा विकास आत्मानुशासन के आधार पर हुआ है।

3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. मन के अनुशासन को प्राप्त करने के लिए अनुशासन के कितने घटकों को साधना जरूरी है? उनका वर्णन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आत्मानुशासन के महत्त्व पर प्रकाश डालें।
2. 'आत्मानुशासन का प्रयोग : विपाक दर्शन'—से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक लाइन में उत्तर दें)

1. कौन से ग्रन्थ में अनुशासन की सुव्यवस्थित प्रक्रिया है?
2. हमारे विचारों के एक सैकण्ड में कितने प्रकंपन होते हैं?
3. मनोनुशासनम् ग्रन्थ के रचनाकार कौन हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का एक महत्त्वपूर्ण अवदान क्या है?
5. हृदय परिवर्तन का पहला सूत्र क्या है?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

6. सब अनुशासनों का घटक है.....।
7. इन्द्रियों के अनुशासन के बिना.....के अनुशासन की कल्पना नहीं की जा सकती।
8. समस्त कलाओं का विकास भी.....का विकास है।
9. .....तभी प्रकट होगा जब भीतर में जमे हुए संस्कार उखड़ेंगे।
10. सहिष्णुता के बिना.....का विकास नहीं हो सकता।

3.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. आत्मनिवेदनम्—मुनि शुभकरण
2. अपना दर्पण : अपना बिम्ब—आचार्य महाप्रज्ञ
3. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
4. मनोनुशासनम्—आचार्य तुलसी
5. जैन भारती : जनवरी, 2002
6. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—आचार्य महाप्रज्ञ, संपादक—मुनि धर्मेश
7. जीवन विज्ञान : शिक्षा का नया आयाम—आचार्य महाप्रज्ञ
8. अमूर्त्त चिंतन—आचार्य महाप्रज्ञ
9. मैं कुछ होना चाहता हूं—आचार्य महाप्रज्ञ
10. एकला चलो रे—आचार्य महाप्रज्ञ
11. अध्यात्म का प्रथम सोपान : सामायिक—आचार्य महाप्रज्ञ

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4 : अनुप्रेक्षाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक आधार

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 अनुप्रेक्षाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण
  4.2.1 संवेगों का सामान्य सिद्धान्त
  4.2.2 संवेगों के तीन अवयव
  4.2.3 फेथ हिलिंग
  4.2.4 अवचेतन मन को तैयार करें
  4.2.5 भावना का वैज्ञानिक स्वरूप
  4.2.6 आत्म-सुझाव
  4.2.7 आत्म-सुझाव का तरीका
  4.2.8 हंसने हंसाने में बहुत बड़ी शक्ति है
  4.2.9 आत्म-सम्मोहन
  4.2.10 कायोत्सर्ग
4.3 अनुप्रेक्षाओं का आध्यात्मिक दृष्टिकोण
  4.3.1 भावना
  4.3.2 आत्म-संशन के प्रयोग
  4.3.3 हम आदतें कैसे बनाते हैं?
  4.3.4 अच्छी आदतों का निर्माण
  4.3.5 अनुप्रेक्षा का सेवेगों पर प्रभव
  4.3.6 चित्त शुद्धि की प्रक्रिया
4.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.5 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 प्रस्तावना

मनोविज्ञान में यह सिद्धांत निरूपित हुआ है कि जो संवेग बार-बार काम में आते हैं, वे स्थाई भाव में बदल जाते हैं और अनेक स्थाई भाव मिल कर चरित्र का निर्माण करते हैं। जैसे स्थाई भाव होते हैं वैसी ही मनुष्य की इच्छाएं होती हैं। सिग्मण्ड फ्रायड नामक मनोवैज्ञानिक ने यह सिद्धांत निरूपित किया कि इच्छाओं के दमन से मानसिक बीमारियां उत्पन्न होती हैं। जब कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा का दमन करता है तो वह इच्छा उसके मन के एक हिस्से—अवचेतन मन में जाकर शरण ले लेती है। मन के तीन भाग होते हैं— 1. चेतन (conscious) 2. अर्ध चेतन या अवचेतन (subconscious) 3. अचेतन (unconscious)। जो इच्छा अपूर्ण रह जाती है, वह अवचेतन मन में चली जाती है। वह व्यक्ति स्वप्नों के माध्यम से उस इच्छा की पूर्ति करता है। ऐसी अनेक दमित इच्छाएं मनोरोग पैदा करती हैं।

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ को पढ़ कर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे—

1. अनुप्रेक्षाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण समझ सकेंगे।
2. फेथ हीलिंग (Faith-healing) क्या है? परिचित हो सकेंगे।
3. अवचेतन मन को तैयार कर सकेंगे।

4. भावना के वैज्ञानिक स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
5. आत्म सुझाव से प्रभावित हो सकेंगे।
6. आत्म-सुझाव के तरीकों को जान सकेंगे।
7. हंसने हंसाने में स्वस्थ करने की बहुत बड़ी शक्ति है, इस रहस्य को समझ सकेंगे।
8. आत्म-सम्मोहन से भावित हो सकेंगे।
9. कायोत्सर्ग के प्रयोग से तनाव मुक्त हो सकेंगे।
10. अनुप्रेक्षाओं के आध्यात्मिक आधार को जान सकेंगे।
11. भावना से आपका चित्त भावित हो सकेगा।
12. आत्म-संशन के प्रयोगों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
13. हम आदतें कैसे बनाते हैं? इसको जान पाएंगे।
14. अच्छी आदतों का निर्माण कर सकेंगे।
15. अनुप्रेक्षा का संवेगों पर प्रभाव को जान सकेंगे।
16. चित्त शुद्धि की प्रक्रिया को समझ सकेंगे

4.2 अनुप्रेक्षाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

4.2.1 संवेगों का सामान्य सिद्धान्त

इनके अनुसार जब भी कोई बाहरी उद्दीपन हमारी इन्द्रियां ग्रहण करती हैं तो वे उसे न्यूरॉन के माध्यम से मस्तिष्क में पहुंचाती हैं। मस्तिष्क में उस उद्दीपन व स्थिति की जांच कर प्रतिक्रिया के लिए पुन: न्यूरॉन के माध्यम से प्रभावी अंगों तक सूचना पहुंचा दी जाती है। इसमें हमारे मन व शरीर में संवेग के अनुसार परिवर्तन होते हैं और उसका हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

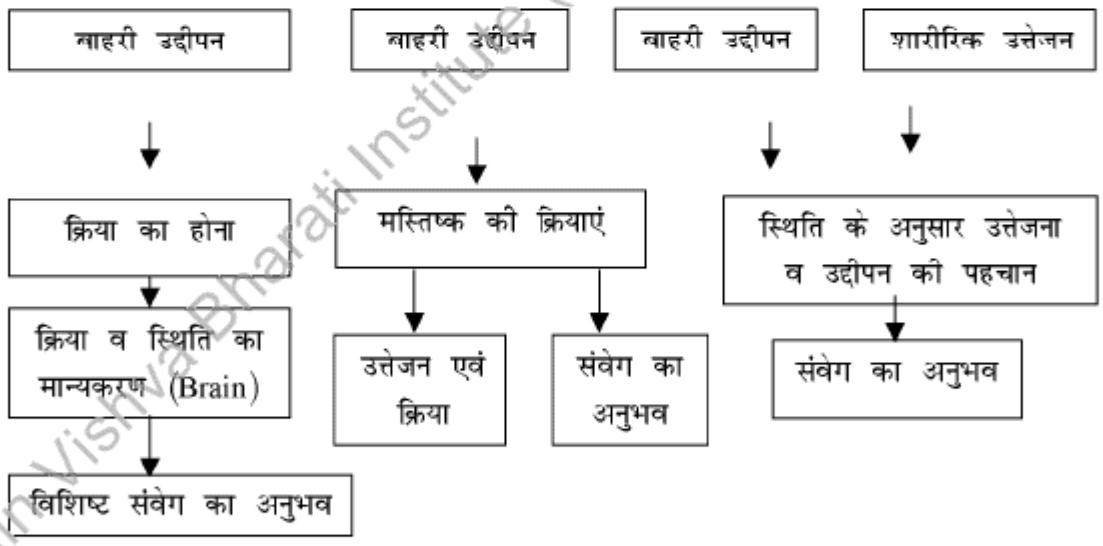

4.2.2 संवेग के तीन अवयव

संवेगों के तीन अवयव हैं—शारीरिक, परिस्थितिजन्य एवं ज्ञानात्मक। शारीरिक अवयवों के अंतर्गत अनुकंपी, परानुकंपी तंत्र तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थि तंत्र अते हैं जिनके प्रभावित होने से भाव की स्थिति पैदा होती है। परिस्थितिजन्य वे बाहरी व आन्तरिक स्थितियां हैं जो संवेग उत्पन्न करती हैं जैसे असफलता, घाटा इत्यादि। ज्ञानात्मक अवयव के अंतर्गत हमारा मस्तिष्कीय अनुभव है जो किसी भी उद्दीपन के कारण होते हैं जैसे खतरे का आभास।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवेग Emotions	शारीरिक Physiological	परिस्थितिजन्य Structural	ज्ञानात्मक Cognitive
भय Fear	अनुकंपी तंत्र की अतिक्रियाशीलता	बाहरी परिस्थितियां	खतरे का आभास, बचने की इच्छा
क्रोध Anger	अनुकंपी व परानुकंपी की अतिक्रियाशीलता	कुण्ठा का दमन	कारण को आघात पहुंचाने की इच्छा
अवसाद Depression	परानुकंपी की अतिक्रियाशीलता	घाटा, असफलता अथवा अक्रियाशीलता	निराशा, कुछ न करने की इच्छा

प्रेक्षा-ध्यान में अनुप्रेक्षाओं के ऐसे अनेक प्रयोग हैं, जिनके द्वारा हम अपने चित्त को भावित करते हैं। जब चित्त भावना से भावित हो जाता है तब वह शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक बीमारियों से उपरत हो जाता है।

4.2.3 फेथ हीलिंग (Faith-healing)

एक चिकित्सा पद्धति का नाम है—फेथ हीलिंग। यह बहुत प्राचीन काल से अब तक लगातार प्रचलित रही है। आधुनिक सभ्यता वाले पश्चिमी देशों में जहां अन्य चिकित्सा पद्धतियां चरम विकास पर पहुंची हैं, वहीं 'फेथ-हीलिंग' यानी 'आस्था के द्वारा रोग-चिकित्सा' की पद्धति प्रचलित है। प्रश्न है—आस्था घनीभूत कैसे हो? हमारा अपने 'ईश्वर' यानी आन्तरिक शक्तियों के साथ संपर्क स्थापित कैसे हो?

जब व्यक्ति में इस आस्था का निर्माण हो जाता है कि शारीरिक या मानसिक बीमारियां मात्र एक संयोग है और जो संयोग है उसका वियोग निश्चित होता है। "मैं दु:ख भोगने के लिए नहीं जन्मा हूं," तब वह बाहरी उपचारों का सहारा लिए बिना ही रोग मुक्त हो जाता है अर्थात् दु:खों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है। वह दु:खों के संवेदनों से उपरत हो जाता है।

अमेरिका में एक संस्था है—'साईंस क्रियश्चियन सोसायटी' उसके हजारों सदस्य हैं। उस सोसायटी के सदस्यों के लिए एक नियम है कि वे दवाई का प्रयोग नहीं कर सकते। चाहे उनके कैंसर हो, हार्ट टबल हो, टी. बी. हो, शुगर हो, ब्लडप्रैशर हो, सर्दी-जुकाम हो, हाथ या पांव की हड्डी टूट गयी हो, फिर भी वे चिकित्सा नहीं करवा सकते। प्रश्न उठता है कि फिर वे बीमारी से मुक्त कैसे होते हैं? इसका समाधान यह है कि वे लोग भावना का प्रयोग करते हैं कि "परमात्मा करुणा की वर्षा करता है और हमारी सारी बीमारियां मिट जाती हैं।" रोगी में ईश्वर के प्रति ऐसी घनीभूत आस्था जगाते हैं कि रोगी की सारी बीमारियां स्वत: समाप्त हो जाती है। वास्तव में जिस व्यक्ति के भीतर आस्था इतनी सघन हो जाती है वह रोगों के भयंकर आक्रमण से भी बच जाता है।

यहां ईश्वर का अर्थ है—हमारे भीतर विद्यमान आध्यात्मिक शक्ति अर्थात् अवचेतन मन की शक्ति। जिसका भीतर की शक्तियों के साथ इतना तादात्म्यभाव जुड़ जाता है वह बाहरी चिकित्सा के लिए व्यग्र नहीं बनता।

यह 'आस्था के द्वारा रोग-चिकित्सा' (Faith-healing) दूसरा कुछ भी नहीं, अपितु 'स्वयं सूचन' (Auto-suggestion) या भावना का प्रयोग है, जिसे हम प्रेक्षा-ध्यान में अनुप्रेक्षा का प्रयोग कहते हैं।

सन् 1915 में प्रो. एच. जे. आयसेंक (H. J. Eysenck) ने एक वैज्ञानिक प्रयोग का विवेचन किया जिसमें 'मस्से' से ग्रस्त बच्चों के एक दल पर भावना का प्रयोग किया गया उसके साथ-साथ उसी बीमारी वाले एक दूसरे दल का 'कन्ट्रोल्ड ग्रुप' के रूप में परम्परागत औषधियों द्वारा उपचार किया गया। परिणाम यह रहा कि औषधियों के उपचार की तुलना में भावना का प्रयोग ज्यादा सफल रहा।

भावना के प्रयोगकर्त्ताओं में फ्रांज मेस्मर (Franz Mesmer) और सिग्मण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 'सम्मोहन' के माध्यम से 'गहरी शिथिलता' की अवस्था में ले जाकर व्यक्ति को भावना के प्रयोग से भावित किया। इस प्रयोग के द्वारा अनेक लोगों की बीमारियों का भी सफल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपचार किया गया। मूलत: यह प्राचीन-कालीन 'फेथ हीलिंग' का ही रूपान्तरित प्रयोग है। सुप्रसिद्ध मनश्चिकित्सक जुंग (Jung) ने सम्मोहन का प्रयोग किया, जिसमें रोगी स्वयं अपनी 'स्वत:-सूचन' के द्वारा ही शिथिल अवस्था को प्राप्त हुए तथा बीमारियों का सफल उपचार हुआ।

'प्रेक्षाध्यान : अनुप्रेक्षा' नामक पुस्तक में आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने भावना के वैज्ञानिक महत्त्व को बताते हुए कहा है कि भावना के प्रयोगों के उपचारात्मक मूल्य को आधुनिक आयुर्विज्ञान के चिकित्सकों द्वारा भी स्वीकृत किया गया है। डॉ. स्टीफन ब्लेक ने 'माइण्ड एण्ड बोडी' नामक पुस्तक में लिखा है कि "गहरी शिथिल अवस्था में रोगियों को लाकर सूचनात्मक भावना द्वारा उनके शारीरिक व्यवहार में उल्लेखनीय परिवर्तन लाया जा सकता है—इस बात को आज प्रचुर प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया है।" दूसरे शब्दों में बीमारियों के उपचार के लिए आवश्यक आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन को व्यापक रूप से भावना के प्रयोगों द्वारा घटित किया जा सकता है।

स्वत: सूचन के रूप में भावना का सफल प्रयोग शताब्दियों से सफलतापूर्वक किये जाने वाले 'फेथ हीलिंग' के रहस्य को स्पष्ट करता है।

पाश्चात्य देशों में एक चिकित्सा-प्रणाली का विकास हो रहा है जिसे 'ऑटोजेनिक चिकित्सा पद्धति' कहते हैं। इस पद्धति में रोगी ओटोसजेशन के माध्यन से स्वयं अपने अन्तरमन को प्रभावित कर सकता है। पहले वह कल्पना करता है और उसी कल्पना को बार-बार दोहरा कर तदनुरूप अनुभव करता है।

आज के चिकित्सक, विशेषकर जर्मनी के चिकित्सक रोगी को दवा की अपेक्षा 'ओटो-सजेशन' से रोग मुक्त करने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं—शरीर को शिथिल कर बैठ जाइये और अपने आप को यह सुझाव दें—"मैं स्वस्थ हूं, मैं स्वस्थ हो रहा हूं।" उनका मानना है कि इस पद्धति से व्यक्ति रोग मुक्त होकर स्वस्थ हो जाता है।

4.2.4 अवचेतन मन को तैयार करें (Prepare the Subconscious)

हम आत्म-सुझावों से बुरी आदतों को परिष्कृत कर अच्छी आदतों के निर्माण में इस्तेमाल कर सकते हैं। आत्म-सुझाव एक ऐसा प्रयोग है जो हमारे अवचेतन मन में पहुंच कर वैसा ही रूपांतरण घटित कर देता है। आत्म-सुझाव में हम बार-बार विधायक चिंतन करते हैं जो वास्तविकता में बदल जाते हैं। बार-बार दोहराना ही पर्याप्त नहीं उसके साथ भावना का संपुट होना भी जरूरी है।

4.2.5 भावना का वैज्ञानिक स्वरूप

भावना का अभ्यास बहुत सूक्ष्म बात है। जब तक भावना का अभ्यास नहीं होगा तब तक मन परम-आत्मा से भावित नहीं होगा, हमारी शक्तियों का विकास नहीं होगा। भाविअप्पा—भावितात्मा जैन आगमों का महत्त्वपूर्ण शब्द है। उसके पीछे रहस्यमय शक्ति छिपी हुई है। जो भावितात्मा होता है वह अपनी भावना के अनुसार काम करने में सक्षम होता है। भावना का अर्थ केवल कुछ सोच लेना मात्र नहीं है। उसका अर्थ—हमारे ज्ञान-तंतुओं को तथा कोशिकाओं को अपने वशवर्ती कर लेना, उन पर अपनी भावना को अंकित कर देना है।

हमारे शरीर में अरबों-खरबों न्यूरॉन्स हैं, जीव-कोशिकाएं हैं। ये न्यूरॉन्स हमारी अनेक प्रवृत्तियों का नियमन करते हैं। न्यूरॉन्स नियामक हैं। जो संकल्प न्यूरॉन्स तक पहुंच जाता है वह सफल हो जाता है। न्यूरॉन्स बड़े-बड़े कार्य संपादित करते हैं। इनकी कार्य प्रणाली को समझना बहुत ही दुरूह कार्य है। अरबों-खरबों की संख्या में ये ज्ञान-तन्तु हमारे मस्तिष्क में बिखरे पड़े हैं। इनका मन की शक्ति के जागरण में बहुत बड़ा उपयोग है। मन की शक्ति के जागरण की यह एक प्रक्रिया है।

भावना का तात्पर्य है—चेतन मन को सुला देना और अवचेतन मन को जागृत कर देना। चेतन मन के विकल्प को अवचेतन मन की धरोहर बना देना, अवचेतन मन में उसे स्थापित कर देना यह है भावना। आचार्य श्री महाप्रज्ञ का चिंतन है कि जब तक अपनी बात अवचेतन मन के पास नहीं पहुंचती है तब तक हजार बार या दस हजार बार शब्द दोहराते रहे, कोई सफलता नहीं मिलेगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.2.6 आत्म-सुझाव (Auto suggestion)

प्रश्न होता है आत्म-सुझाव क्या है? आप कैसा इंसान बनना चाहते हैं—इस सोच को वर्तमान काल में कहे जाने को ही आत्म-सुझाव कहते हैं। आत्म-सुझाव का प्रभाव हमारे चेतन मन और अवचेतन मन दोनों पर पड़ता है। जिसके कारण व्यवहार में रूपांतरण घटित होता है। आत्म-सुझाव मन को प्रशिक्षित करने का तरीका है।

एक व्यक्ति जब अपने विश्वास को बार-बार दोहराता है तो वह बात उसके अवचेतन मन में गहरी पैठ जाती है और वास्तव में वैसा ही घटित हो जाता है।

आज के अनुभवी लोग या वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले लोग सजेशन या ऑटोसजेशन का प्रयोग करते हैं। एक बात को बार-बार दोहराते हैं और अमुक परिस्थिति में दोहराते हैं तो वह बात हमारे अवचेतन मन तक पहुंच जाती है। जैसे श्वास का प्रयोग किया, कायोत्सर्ग का प्रयोग किया, खुमारी जैसी स्थिति हो रही है, नींद आ रही है, इन क्षणों में जो सुझाव दिये जाते हैं, चाहे स्वयं दे या कोई दूसरा व्यक्ति दे, वे सुझाव बहुत गहरे में पहुंच जाते हैं और वे आदत को बदलने में बहुत कारगर बनते हैं। यह अनुप्रेक्षा का प्रयोग, भावना और सम्मोहन का प्रयोग आदत परिवर्तन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण उपाय बनता है।

4.2.7 आत्म-सुझाव का तरीका

आत्म-सुझाव चरित्र निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। आत्म-सुझाव देने के सुझाव हैं—

1. वर्तमान काल में प्रयुक्त आत्म-सुझावों की एक सूची तैयार करना।
2. दिन में कम से कम दो बार आत्म-सुझावों को दोहराएं—एक बार सुबह और एक बार रात को। ऐसा इसलिए करें क्योंकि सुबह मन शांत, धैर्यवान और तरोताजा होता है, इसलिए शीघ्र प्रभावी होता है। रात को आत्म-सुझावों की भावना करने से वह अवचेतन मन में व्याप्त हो जाती है और भावना फलीभूत हो जाती है।
3. इस प्रयोग को लगातार 21 दिन तक दोहराये ताकि भावना एक आदत बन जाए।
4. केवल आत्म-सुझाव ही नहीं, अनुप्रेक्षा को घनीभूत बनाएं।

4.2.8 हंसने हंसाने में स्वस्थ करने की बहुत बड़ी शक्ति है (The healing power of Humor)

'एनोटोमी ऑफ एन इलनेस' (Anatomy of an illness) के लेखक डॉ नॉरमन कजिन (Dr. Norman Cousin) एक जीते-जागते प्रतीक हैं कि व्यक्ति बीमारी से अपने आपको कैसे ठीक कर सकते हैं। कजिन के जीने की आशा नहीं के बराबर थी लेकिन वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि मन में यदि कोई शक्ति है तो मैं उसे साबित करके दिखाऊंगा। उन्होंने सोचा नकारात्मक भाव शरीर में नुकशान पहुंचाने वाले रसायनों को उत्पन्न करते हैं अच्छे भावों अर्थात् विधायक भाव, खुशमिजाज और हंसी शरीर में सकारात्मक रसायनों का निर्माण अवश्य करेंगे। अत: कजिन अस्पताल को छोड़ कर एक होटल में एकांत में चले गए और उन्होंने हंसी-मजाक के दृश्य देखे और स्वयं ने हंसते हंसते अपने आप का इलाज कर लिया।

इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति विधायक चिंतन करता है, खुश रहता है, अनुप्रेक्षा का प्रयोग करता है तो उसके शरीर में रासायनिक परिवर्तन होता है जो कि उसे शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से स्वस्थ बना देता है।

4.2.9 आत्म-सम्मोहन

अनुप्रेक्षा में चिंतन भी है, रंगों का प्रयोग भी है, ध्वनि प्रयोग भी है, भावना का प्रयोग भी है। यह एक प्रकार से आत्म-सम्मोहन का प्रयोग है। कल्पना करें कि किसी आदमी को नशे की आदत है, तम्बाकू का सेवन करता है, शराब पीता है, कोई गाली बकता है, गुस्सा करता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न आदतें होती हैं। अब उन आदतों को बदलना है। कैसे बदलें? बहुत सारे लोग आदतों को बदलने के लिए त्याग लेते हैं, संकल्प लेते हैं और बहुत बार ऐसा होता है कि सुबह त्याग लिया, संकल्प लिया और शाम होते-होते टूट जाता है, बड़ी कठिनाई है। परिस्थिति आती है और त्याग टूट जाता है क्योंकि वृत्तियां तो भीतर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हैं। जिस वृत्ति को छोड़ने के लिए त्याग लिया उसका जब तक दबाब नहीं आया तब तक तो त्याग निभ रहा है जब दबाब आता है तो त्याग समाप्त हो जाता है। एक आदमी संकल्प करता है कि शराब नहीं पीऊंगा। जब देखता है किसी शराबी को पागल की तरह पड़े हुए तो सोचता है शराब नहीं पीऊंगा किन्तु ठीक पीने का समय आया, भीतर से मांग आई, सारी संकल्प की बातें रह जाती हैं और वह शराब पीने लग जाता है। यह संकल्प की विफलता है तब आदतें नहीं बदलती। क्यों नहीं बदलती? क्योंकि आदत काम कर रही है अवचेतन मन के माध्यम से और हम संकल्प कर रहे हैं चेतन मन के माध्यम से। जब तक हमारी बात चेतन मन तक नहीं पहुंच जाएगी तब तक चेतन की जो अर्जित आदत है वह नहीं बदलेगी। इस समस्या से निपटने के लिए अनुप्रेक्षा यानि भावना का सहारा लेना बहुत जरूरी है।

4.2.10 कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग का अर्थ है—शिथिलीकरण। हम आज के इस ऐलोपैथिक और मेडिकल साईंस के जमाने में जी रहे हैं। इन सारी बातों को बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि सारी कठिनाइयां मानसिक तनाव से पैदा होती हैं। बीमारियां, जटिल आदतें और चिंतन की विकृतियां इन सबके लिए जिम्मेवार होता है—मानसिक तनाव। शिथिलीकरण या कायोत्सर्ग एक प्रकिया है तनाव विसर्जन की। जब तनाव कम होता है तो उसके साथ-साथ ये समस्याएं भी सुलझती हैं। अधिकांश साइकोसोमेटिक बीमारियां तनाव के कारण होती हैं। जब तनाव कम होता है तो ये मनोकायिक बीमारियां अपने आप कम हो जाती हैं। अनिद्रा, चिंता, इनसे होने वाली कठिनाइयां, अपने आप मिटती हैं। एक भाई हृदय रोग से बहुत पीड़ित था। डॉक्टरों का इलाज चल रहा था किन्तु बाद में उसने दवाइयों का रास्ता छोड़ा, दीर्घ श्वास का प्रयोग किया। एक घंटा तक आज भी कर रहा है। उस प्रयोग के बाद सारे परीक्षण करवाए तो डॉक्टर ने कहा—तुम्हारा हृदय तो ठीक काम कर रहा है। कोई बीमारी नहीं है। जो थोड़े धब्बे थे वे भी समाप्त हो गए हैं, यह क्या बात है? क्या प्रयोग किया तुमने? हमारे सिद्धान्त से यह तो हो ही नहीं सकता। उसने कहा—मैं दीर्घ श्वास का प्रयोग कर रहा हूं और इससे यह सब ठीक हो गया।

जब श्वास शिथिल होता है, शांत होता है, साथ में शरीर शिथिल और शांत होता है तो अनेक समस्याएं सुलझ जाती है, जटिल आदतों में भी परिवर्तन आना शुरू हो जाता है।

आज हमारे जीवन में जितनी समस्याएं आ रही हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, घृणा, शोक आदि उन सब में मूल उत्पादक स्रोत है हमारा एड्रिनल ग्लैंड का स्राव। मूल प्रश्न है, हम शरीर में विविध प्रकार के होने वाले परिवर्तनों को तथा रासायनिक जैविक परिवर्तनों से चेतना को अप्रभावित कैसे रख सकते हैं? इसके लिए हमें अनुप्रेक्षा का प्रयोग करना होगा।

बोध प्रश्न 1:

---

1. संवेगों के सामान्य सिद्धान्त को समझाएं।

2. स्वतः सूचन से आप क्या समझते है?

3. आत्म-सम्मोहन का प्रयोग क्या है?

4.3 अनुप्रेक्षाओं का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

प्रेक्षाध्यान का एक पक्ष है—देखना, केवल देखना। निर्विचार होकर देखना।

प्रेक्षाध्यान का दूसरा पक्ष है—चिंतन करना। चिंतन भी सत्य की उपलब्धि का बहुत बड़ा साधन है। विचार की व्यर्थता नहीं है। व्यर्थता तब होती है जब वह किसी एक विषय पर केन्द्रित नहीं होता। हम विचार के द्वारा ही सत्य को जान सकते हैं। विचार-ध्यान के द्वारा बहुत बड़े-बड़े तथ्यों का अनुसंधान किया गया। विचार की प्रक्रिया सत्य को जानने की बहुत ही सशक्त प्रक्रिया है। जैन परिभाषा में इसे विचय-ध्यान कहा गया है। इसका तात्पर्य है—विचार प्रधान ध्यान, चिंतन प्रधान ध्यान। बिखरे हुए विचार ध्यान नहीं हो सकते। विचार एक दिशागामी बन जाते हैं, तब ध्यान बन जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निर्विचार भी ध्यान है और विचार भी ध्यान है। ध्यान दोनों ही हैं। दर्शन की भूमिका में निर्विचार ध्यान होता है वहां केवल दर्शन होता है विचार नहीं होता। एक दिशा में प्रवाहित होने वाले विचार विचार-ध्यान होता है।

प्रेक्षा-ध्यान साधना पद्धति में दोनों के लिए अवकाश है। प्रेक्षा का अर्थ है—निर्विचार ध्यान। इसमें केवल देखते हैं, विचार नही करते। शरीर में जो कुछ घटित हो रहा है उसे केवल ज्ञाता-द्रष्टा भाव से देखना।

प्रेक्षा-ध्यान का दूसरा पक्ष है—अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षा का अर्थ है—ध्यान में हमने जो कुछ देखा उस पर विचार करना। हमने देखा कि शरीर के अमुक भाग में स्पन्दन हो रहा है। परमाणुओं का चयापचय हो रहा है। अब सोचना है—जहां परमाणुओं का आना-जाना है, उपचय और अपचय है, वह नित्य नहीं हो सकता। हम समझ लेंगे कि शरीर अनित्य है। जानने का आधार है—प्रेक्षा। जब हमने देखा कि शरीर में परमाणुओं का चयापचय है, इसका अर्थ यह है कि वह अनित्यधर्मा है। इस अनित्यता का विचार करना, चिंतन करना, अनुभव करना—यह है अनुप्रेक्षा। प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा दोनों का प्रयोग साथ-साथ होना चाहिए। निरंतर प्रेक्षा नहीं हो सकती, निरंतर अनुप्रेक्षा भी नहीं हो सकती। पहले देखें, फिर उसके परिणामों पर विचार करें, अनुचिंतन करें। प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन यही है कि सम्यक् प्रकार से देखने और चिंतन करने का अभ्यास कर सत्य का साक्षात्कार कर सकें।

मिथ्या धारणाओं और मिथ्या कल्पनाओं को तोड़ने के लिए प्रेक्षा-ध्यान पद्धति में अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराया जाता है। प्रेक्षा के पीछे अनु का प्रयोग क्यों किया गया है? जो सच्चाई है, उसे देखना अनुप्रेक्षा है। सच्चाई को अपनी धारणा से नहीं देखना है, संस्कार की दृष्टि से नहीं देखना है, काल्पनिक दृष्टि से नहीं देखना है, वास्तविकता को देखना है। अनुप्रेक्षा का अर्थ है—'सत्यं प्रति अनुप्रेक्षा' अर्थात् सत्य के प्रति अनुप्रेक्षा।

स्वाध्याय के पांच प्रकारों में से एक प्रकार है—अनुप्रेक्षा। अध्ययन करना, जिज्ञासा करना, पुनरावर्तन करना, अनुप्रेक्षा करना, धर्मकथा करना—ये पांच स्वाध्याय के प्रकार हैं। मंत्र का जप करना भी स्वाध्याय है और अनुचिंतन करना भी स्वाध्याय है।

1. **अनित्य अनुप्रेक्षा**—यह पहले या पीछे एक दिन अवश्य ही छूटने वाला है। विनाश और विध्वंस इसका स्वभाव है। यह अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत है। इसका उपचय और अपचय होता है। इसकी विविध अवस्थाएं होती हैं। शरीर की भांति अन्य पदार्थों की अनित्यता की भी अनुप्रेक्षा की जाती है।
2. **अशरण अनुप्रेक्षा**—धन, पदार्थ और परिवार—कोई भी त्राण नहीं बन सकता। अपना त्राण अपने में ही खोजा जा सकता है।
3. **संसार अनुप्रेक्षा**—जीव जन्म-मरण के चक्कर में फंसा हुआ है। वह कभी जन्म लेता है और कभी मरता है। कभी पशु होता है और कभी मनुष्य, परिवर्तन का चक्र चलता रहता है।
4. **एकत्व अनुप्रेक्षा**—मनुष्य अकेला जन्मता है और अकेला ही मरता है। विज्ञान और वेदना—ये सब व्यक्तिगत होते हैं।
5. **अन्यत्व अनुप्रेक्षा**—काम-भोग मुझ से भिन्न हैं और मैं उनसे भिन्न हूं। पदार्थ मुझ से भिन्न हैं और मैं उनसे भिन्न हूं।
6. **अशौच अनुप्रेक्षा**—यह शरीर अपवित्र है। इससे निरंतर विकारों का स्राव होता रहता है।

4.3.1 भावना

नदी पार करने के लिए नौका की जरूरत होती है। हम भावना की नौका में बैठ कर दूर दिखने वाले तट पर पहुंच सकते हैं। ऐसा कोई भी तट नहीं है, जहां भावना की नौका में चढ़कर हम न पहुंचें। किसी विचार को बार-बार मन में लाना भावना है। आयुर्वेद से परिचित व्यक्ति जानता है कि 'आठपुटी' अभ्रक और 'सहस्रपुटी' अभ्रक में शक्ति का कितना अंतर है। जितनी पुटें होगी उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ जाएगी। औषधियों के निर्माण में भावना (पुट) का बहुत महत्व होता है। उसी प्रकार मन में भावना की पुट देने से जो कार्य हम करेंगे, उसमें दूसरा विकल्प बाधक नहीं बनेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पातंजल योग में ध्यान के तीन अंग हैं—धारणा, ध्यान और समाधि। प्रेक्षा-ध्यान पद्धति में ध्यान के तीन अंग हैं—भावना, ध्यान और समाधि। धारणा और भावना में कोई अंतर नहीं है। धारणा का विषय है—मन के साथ विषय को जोड़ना, तब वह ध्येय बन जाता है। धारणा पुष्ट होती है, ध्यान बन जाता है। ध्यान पुष्ट होता है, समाधि बन जाती है। एक ही साधना के तीन रूप बन गये। भावना का अर्थ है—सविषय ध्यान। जब हमारे मन में कोई विषय होता है, हम उसके बारे में चिंतन करते हैं तो वह सविषय ध्यान हो जाता है, यही भावना है। भावना का अर्थ है—भाव्य वस्तु के प्रति तन्मय या एकाग्र हो जाना।

हम जो भी घटित करना चाहते हैं वह घटित हो जाता है। तन्मयता और एकाग्रता के साथ जो भावना करते हैं, वैसा ही होना होता है। साधक जिस प्रकार की भावना से अपने आप को भावित करता है, वह उसी रूप में बदल जाता है।

भावना दूसरों तक पहुंचाई जा सकती है। दूसरों पर इसका प्रभाव डाला जा सकता है। दूसरों की कठिनाइयों को शांत करना, रोग मिटाना, दूसरों का हृदय परिवर्तन करना, दूसरों के विचारों को बदलना—ये सारे भावना के प्रयोग से किये जा सकते हैं। भावना के माध्यम से हम स्वयं को बदल सकते हैं, दूसरों को भी बदल सकते हैं। आस-पास के वातावरण एवं परिवेश को बदल सकते हैं।

जब हम साधना की दृष्टि से विचार करें, सहिष्णुता, अभय, मृदुता आदि को प्राप्त कर सकते हैं। दो बातें आवश्यक हैं—विचारों की आवृत्ति और विचारों का स्थिरीकरण। एक ही बात को बार-बार दोहराते रहें, वह भावना बन जाएगी तब हम वैसा ही व्यवहार करने लग जाएंगे। भावना का प्रयोग आत्म-सम्मोहन या आत्म-संशन का प्रयोग है।

4.3.2 आत्म-संशन के प्रयोग

भारतीय साहित्य में आत्म-संशन के प्रयोग का अत्यधिक महत्त्व रहा है। इसके बहुत प्रयोग मिलते हैं। वैदिक साहित्य में इसका एक प्रसंग इस प्रकार है—मेरे मुंह में वाक् सदा स्फूर्त रहे। मेरी नसों में प्राण सदा प्रवाहित रहे। मेरी आंखों में देखने की शक्ति रहे। मेरे कानों में सुनने की शक्ति सदा बनी रहे। इस प्रकार के आत्म-संशन के द्वारा प्राचीन ऋषि अपनी शक्तियों का विकास करते थे। वे अपनी शक्तियों को सुरक्षित रखते थे। इसीलिए वे सौ वर्ष तक जीने में सफल हो जाते थे।

व्यक्ति की अकाल मृत्यु का एक कारण है—हीन भावना। जब आदमी हीन भावना से ग्रस्त होता है तब वह अपनी समस्त शक्तियों को क्षीण कर देता है। अत: आत्म-संशन का प्रयोग बहुत ही प्रभावशाली है। अपनी शक्तियों को सूचित करना, जागृत करना और जीवित रखना—यह आत्म-संशन का एक प्रकार है। अपनी शक्तियों के प्रति मूर्च्छित हो जाना, उदासीन हो जाना, हीन भावना से ग्रस्त हो जाना—यह भी आत्म-संशन का एक प्रकार है। दोनों का अपना अपना प्रभाव होता है।

फ्रांस के एक प्रोफेसर वालदी ने आत्म-संशन के कुछ प्रयोग किए। एक व्यक्ति से कहा—'तुम्हारे हाथ में एक चम्मच दे रहा हूं। वह बहुत गर्म है, उसे कैसे छूओगे? छूओगे तो तुम्हारे हाथ जल जाएंगे। यह चम्मच लो।' उस व्यक्ति ने चम्मच हाथ में लिया और वह जल गया। उसके हाथ में फफोले हो गये। चम्मच में कुछ नहीं था वह केवल ठण्डा चम्मच था। किंतु उस चम्मच से हाथ जल उठा, फफोले हो गये। यह सब कैसे हो गया? वह सारा आत्म-संशन, आत्म-सूचन या आत्म-सम्मोहन के द्वारा घटित हुआ। तैजस् शरीर के स्तर पर जो बात भीतर चली जाती है, हमारे जीवन में फिर वैसा ही घटित होने लग जाता है। विद्युत की शक्ति के बिना इतना बड़ा परिवर्तन नहीं हो सकता। आज का सारा वैज्ञानिक चमत्कार विद्युत पर आधारित है। आज के युग में यदि विद्युत समाप्त हो जाए तो सारी वैज्ञानिक प्रगति भी धराशायी हो जाएगी। विज्ञान का अपना कोई स्वतंत्र जीवन नहीं है। तैजस शरीर में जो क्षमता है, जो विद्युत है, उसके द्वारा ही जीवन-तंत्र में सारा परिवर्तन घटित होता है। लेश्या के पास विद्युत की बहुत बड़ी शक्ति है। तैजस शरीर और लेश्या की चेतना दोनों साथ-साथ मिलकर कार्य करते हैं। उस में सम्मोहन का भी बहुत बड़ा हाथ है। हम जिस चेतना से प्रभावित होते हैं वह चेतना है लेश्या। यहाँ हम प्रभावित होते हैं—दूसरों के द्वारा, बाहरी स्रावों से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और भीतरी स्रावों से। वह लेश्या है जो कि हमारे शरीर में विद्युत चुम्बकीय-क्षेत्र के माध्यम से हमें प्रभावित करती है। इसीलिए भावना का महत्त्व है। भावना, सम्मोहन और मंत्र—ये सारे एक ही कोटि में आ जाते हैं। जप क्या है? एक ही बात को बार-बार दोहराना। बार-बार दोहराते-दोहराते वह बात भीतर तक पहुंच जाती है। मंत्र क्या है? हम मंत्र का जप करते हैं। मंत्र की आराधना करते करते मंत्र से हमारी प्राणधारा, ऊर्जा भीतर की तैजस्-ऊर्जा तक पहुंच जाती है। वही मंत्र फलदायी होता है, जो जागृत होता है, चेतनावान होता है। मंत्र जागरण का अर्थ है—भीतर की तैजस-शक्ति से बाहर की प्राण-ऊर्जा को जोड़ देना, उसका एक संबंध स्थापित कर देना।

अनुप्रेक्षा, भावना, आत्म-संशन, जप और मंत्र—ये सारे परिवर्तन के साधन हैं। अब हमें समझना होगा कि अनुप्रेक्षा का प्रयोग कैसे करें? अनुप्रेक्षा के प्रयोग की विधि को समझे बिना हम परिवर्तन की बात नहीं कर सकते। हमने यह सिद्धांत रूप से स्वीकार कर लिया कि अनुप्रेक्षा के प्रयोग से व्यक्तित्व का परिष्कार होता है, प्रश्न होता है कि वह कैसे होता है? अपने मन की बात, स्थूल-चेतना की बात को सूक्ष्म तक, भीतर तक कैसे पहुंचाएं? इस प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

4.3.3 हम आदतें कैसे बनाते हैं?

किसी काम को जब बार-बार किया जाए तो आदत बन जाती है साहस भरा व्यवहार करने से हम साहसी बन जाते हैं। ईमानदारी, प्रामाणिकता आदि गुणों का अभ्यास करते हैं तो हमारा जीवन नैतिकता से परिपूर्ण बन जाता है। चरित्र का निर्माण करना बहुत जरूरी है। अगर हम चरित्र निर्माण के अनुरूप अच्छे गुणों की बार-बार अनुप्रेक्षा करते हैं तो चरित्र का अच्छा निर्माण अवश्यंभावी है। इसके लिए हम अपने आप से प्रश्न करें—

1. क्या हम अपने कार्य स्तर को गिरने देते हैं?
2. क्या हम इधर-उधर की बातें और दूसरों की चुगली करते हैं?
3. क्या हमारे में ईर्ष्या और अंहकार है?
4. क्या दूसरों के मनोभावों को समझ सकने की क्षमता हम रखते हैं?
5. क्या हम दूसरों का सम्मान करना जानते हैं?

ऐसे कितने ही सवाल हो सकते हैं लेकिन हमें अपनी सोच पर काबू और आत्मानुशासन के अभ्यास के द्वारा अपनी आदतों को नियंत्रित करना है। इसके लिए जरूरी है हम अवचेतन मन की शक्ति का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाएं। यदि बच्चों को बचपन से ही अनुप्रेक्षा के प्रयोग सिखा दिए जाएं तो उनके चरित्र का अच्छा निर्माण हो सकता है। जिंदगी की शुरुआत ही अच्छे विचारों के बीज वपन से होती है तो उनका जीवन भी अच्छा बन जाता है।

4.3.4 अच्छी आदतों का निर्माण

अनुप्रेक्षा हमारी आदतों के निर्माण की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। अनुप्रेक्षा के द्वारा निश्चित बदलाव आता है। इसका उम्र के साथ कोई तालमेल नहीं है। हम विधायक चिंतन के द्वारा अच्छी आदतों का निर्माण करके निषेधात्मक आदतों का परिष्कार कर सकते हैं। जीवन में सफल होने का यह राज है कि हम अपने अवचेतन मन को अनुशासित करें और पूरी निष्ठा के साथ नियमित रूप से अभ्यास करें तो निश्चित सफलता मिलेगी।

सभी आदतें बहुत छोटे रूप में शुरु होती हैं और अंत में इनसे छुटकारा पाना बहुत मुश्किल हो जाता है। नजरिया और सोच का तरीका एक आदत है और इसे बदला जा सकता है। आवश्यकता है पुरानी बुरी आदतों को बदलकर नई अपनाने का। हम तब तक प्रयास करते रहें जब तक अच्छी आदतों का निर्माण न हो जाएं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.3.5 अनुप्रेक्षा का संवेगों पर प्रभाव

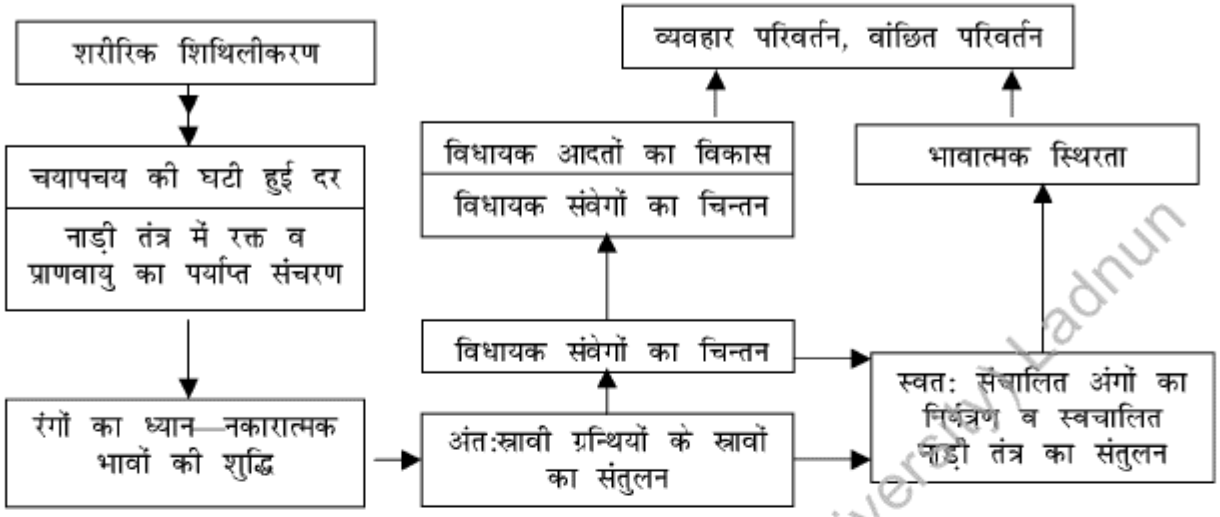

4.3.6 चित्त शुद्धि की प्रक्रिया

जो व्यक्ति प्रेक्षा-ध्यान के साथ-साथ अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास करता है, उसके चित्त पर मैल नहीं जमता तथा उसका चित्त मूर्च्छित नहीं होता। इसलिए चित्त शुद्धि के लिए अनुप्रेक्षाओं का प्रयोग करना जरूरी है। साधना की दृष्टि से जितना प्रेक्षा-ध्यान का महत्त्व है उतना ही अनुप्रेक्षाओं का भी महत्त्व है।

4.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. अनुप्रेक्षा के आध्यात्मिक आधार का विवेचन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अनुप्रेक्षा के वैज्ञानिक स्वरूप का संक्षिप्त में वर्णन करें।
2. क्या भावना और अवचेतन मन का कोई संबंध है? स्पष्ट करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (एक शब्द या वाक्य में उत्तर दें)

1. भावना का तात्पर्य क्या है?
2. हमारी अनेक प्रवृत्तियों का नियमन कौन करते हैं?
3. मंत्र जागरण का अर्थ क्या है?
4. किसके द्वारा बहुत बड़े-बड़े तथ्यों का अनुसंधान किया गया?
5. भावना के प्रयोगकर्त्ताओं में किनके नाम उल्लेखनीय हैं?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. .....मन को प्रशिक्षित करने का तरीका है।
2. आत्म-सुझाव.....का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।
3. एक.....पद्धति का नाम है—फेथ होलिंग।
4. मंत्र का जप करना भी.....है और अनुचिंतन करना भी.....है।
5. भावना का प्रयोग.....या आत्म-संशन का प्रयोग है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. चित्त और मन—आचार्यमहाप्रज्ञ
2. जीत आपकी—शिव खेड़ा
3. जीवन विज्ञान : शिक्षा का नया आयाम—आचार्य महाप्रज्ञ
4. अपना दर्पण : अपना बिम्ब—आचार्य महाप्रज्ञ
5. प्रेक्षा-ध्यान : अनुप्रेक्षा—आचार्य महाप्रज्ञ
6. आभामण्डल—आचार्य महाप्रज्ञ
7. अमूर्त्त चिंतन—आचार्य महाप्रज्ञ

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 2 चित्त और चैतसिक प्रशिक्षण

इकाई–5 : चेतना के स्तर, चित्त और मन

संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 चेतना के स्तर

5.2.1 चेतना के तीन स्तर

5.2.2 चेतना के अनेक स्तर

5.2.3 अनुभव चेतना

5.2.4 द्वंद्व चेतना : द्वंद्वातीत चेतना

5.2.5 ज्ञान और वेदना स्तरीय चेतना

5.2.6 ध्यान और अलौकिक चेतना

5.2.6.1 प्रतिक्रिया मुक्त है अलौकिक चेतना

5.2.6.2 अलौकिक चेतना : संतुलन का सूत्र

5.2.7 चेतन मन

5.2.8 अचेतन मन

5.2.9 अति चेतना और प्रज्ञा चेतना

5.2.10 सुपर ह्यूमन मन

5.3 चित्त और मन

5.3.1 यूंग की अवधारणा

5.3.2 अनेक है चित्त

5.3.2.1 आवरण चित्त

5.3.2.2 अन्तराय चित्त

5.3.2.3 मिथ्यात्व चित्त

5.3.2.4 मोह चित्त

5.3.2.5 अनावरण चित्त

5.3.2.6 निर्विघ्न चित्त

5.3.2.7 सम्यग् दर्शन चित्त

5.3.2.8 वीतराग चित्त

5.3.3 संदर्भ स्वास्थ्य का

5.3.4 स्थायी है चित्त

5.3.5 चित्त, मन और भाव

5.3.6 स्वास्थ्य और चित्त की निर्मलता

5.3.7 चित्त और मन में अन्तर

5.3.7.1 चित्त : संचालक

5.3.7.2 चित्त का अस्तित्व

5.3.7.3 चित्त का क्षेत्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.3.7.4 चित्त का कार्य
5.3.7.5 मनोविज्ञान में चेतना या मन
5.3.7.6 मन एवं इसकी कार्य प्रणाली
5.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.6 संदर्भ ग्रंथ

5.0 प्रस्तावना

साधारणतया चित्त और मन को एकार्थक माना जाता है। वस्तुत: ये एकार्थक नहीं हैं। मनोविज्ञान में चित्त के अर्थ में मुख्यतया मन का ही प्रयोग किया गया है। समस्या यह है कि क्या मन स्वयं संचालित है? या वह किसी दूसरे के द्वारा संचालित है? यदि वह स्वयं संचालित है तो फिर से वश में करने की बात निरर्थक है उसके व्यग्र और एकाग्र होने की बात भी निरर्थक हो जाती है अर्थहीन हो जाती है। उसका नियामक चित्त है। उसकी व्यग्रता और एकाग्रता चित्त पर निर्भर है। इसलिए चित्त और मन— दोनों की भेद रेखा पर ध्यान केन्द्रित होना जरूरी है।

चित्त और मन को व्यवहार में एक मानने से कोई कठिनाई नहीं आती किन्तु ध्यान साधना के क्षणों में यह कठिनाई उभर कर सामने आ जाती है। यह ध्यान मन का ही एक खेल है तो बन्दर की स्थिरता को भी इसकी चंचलता का ही एक प्रदर्शन माना जायेगा।

ध्यान के विकास का पहला चरण है—विकल्प ध्यान और दूसरा चरण है—निर्विकल्प ध्यान। निर्विकल्प ध्यान समाधि की अवस्था है। ध्यान का वास्तविक स्वरूप यही है। यह स्थिति मन की सारी प्रवृत्तियों के समाप्त होने पर ही उपलब्ध होती है। इस अवस्था में मन विलीन हो जाता है, चित्त की वृत्तियां विलीन हो जाती हैं किन्तु चित्त विलीन नहीं होता। इस बिन्दु पर चित्त और मन की पृथकता का अनुभव किया जा सकता है।

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ को पढ़ कर आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

1. चेतना के विभिन्न स्तरों को समझ सकेंगे।
2. लौकिक और अलौकिक चेतना को समझ सकेंगे।
3. चेतन मन क्या है? उसको समझ सकेंगे।
4. अवचेतन मन क्या है? उसके रहस्य को समझ सकेंगे।
5. अचेतन मन क्या है? उसको समझ सकेंगे।
6. अति चेतना और प्रज्ञा चेतना को समझ सकेंगे।
7. चित्त और मन क्या है? दोनों को अलग-अलग समझ सकेंगे।
8. स्वास्थ्य और चित्त की निर्मलता के संबंध को जान सकेंगे।

5.2 चेतना के स्तर

जब तक व्यक्ति का अंत:करण नहीं बदलता है तब तक व्यक्ति के व्यवहार में बदलाव संभव नहीं हो सकता। हमारी चेतना अधिकांश इन्द्रिय के स्तर पर जीती है। मन की भी कोई सीमा नहीं है। हमारा मन क्षण भर में पूरे विश्व की यात्रा करके लौट आता है। बुद्धि हमारी वृत्तियों को और ज्यादा उद्दाम बना देती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.2.1 चेतना के तीन स्तर

हमारी चेतना के अनेक स्तर हैं। उनमें सबसे स्थूल स्तर है इन्द्रिय का, उससे सूक्ष्म है—मन। मन से भी सूक्ष्म है बुद्धि। बुद्धि से सूक्ष्म है अध्यवसाय। इस प्रकार चेतना के असंख्य स्तर हो सकते हैं। व्यक्ति इन तीनों को काम में लेता है, तीनों पर पूरा विश्वास करता है। जब कि ये तीनों चेतनाएं व्यक्ति को उलझाती है। इन्द्रिय चेतना के जागृत होने पर वैराग्य भाव कम हो जाता है और आसक्ति की चेतना का उदय हो जाता है।

मन का इन्द्रियों के साथ संबंध होता है। इन्द्रियों के स्पर्श आदि पांच विषय हैं। इन विषयों में सारी वस्तुएं समाविष्ट हैं। इन्द्रियों के द्वारा हम हर वस्तु को और उसके स्थूल रूप को पकड़ते हैं। शीत और उष्ण के स्पर्श से वस्तु का ज्ञान होता है। आम के रस के स्वाद से हम आम को पहचान लेते हैं। गंध के द्वारा भी बाह्य जगत् के साथ हमारा संपर्क होता है। रूप और संस्थान भी संपर्क के माध्यम हैं।

5.2.2 चेतना के अनेक स्तर

सुख-दु:ख के प्रति हमारा दृष्टिकोण मिथ्या होता है, हमारा मन इन्द्रिय विषयों के प्रति आकर्षित होता है—यह हमारी सुषुप्ति-स्तरीय चेतना है। हमारा मन पदार्थ तथा हाथ की अंगुलियों, आंखों और वाणी के साथ बाहर आने वाली विद्युत् से सम्मोहित होता है—यह हमारी भावना-स्तरीय चेतना है।

हमारा मन पदार्थ और व्यक्ति के साथ चिंतनपूर्वक संबंध स्थापित करता है। हेय को छोड़ने और उपादेय को स्वीकार करने की बात हम जानते हैं पर भावना से प्राप्त सम्मोहन से मुक्त हुए बिना क्या यह संभव हो सकता है? भले न हो फिर भी हम स्वतंत्र चिन्तन का उपक्रम करते हैं—यह हमारी विचार-स्तरीय चेतना है।

हम पदार्थ के बाहरी स्वरूप को देखकर ही संतुष्ट नहीं होते उसके आन्तरिक या सूक्ष्म स्वरूप तक जाने का प्रयत्न करते हैं—यह हमारी दर्शन-स्तरीय चेतना है। प्रेक्षा के द्वारा हम सुषुप्ति को जागरूकता में बदलकर दर्शन शक्ति को अन्तर्दर्शन की भूमिका पर ले जाते हैं।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने 'मनन और मूल्यांकन' नामक पुस्तक में चेतना के स्तरों का उल्लेख करते हुए कहा है कि हमारी चेतना अनेक स्तरों में विभक्त है। सभी दर्शनों ने अपनी अपनी अवधारणा के साथ चेतना के स्तरों को व्याख्यायित किया है। गीता में चेतना के अनेक स्तर उपलब्ध होते हैं—

1. इन्द्रिय चेतना
2. मनश्चेतना
3. बुद्धि चेतना
4. चित्त चेतना
5. प्रज्ञा चेतना
6. द्रष्टा चेतना।

गीता में इन्द्रिय, मन, बुद्धि और द्रष्टा चेतना का उल्लेख मिलता है। इन्द्रियां प्रकृष्ट हैं, उनसे आगे मन, उससे आगे बुद्धि और बुद्धि से परे है आत्मा। मन संकल्प-विकल्पात्मक चेतना है और आत्मा द्रष्टा है। मानसिक चेतना इन्द्रिय सापेक्ष चेतना है। इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध विषयों के आधार पर संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं। बुद्धि चेतना इन्द्रिय निरपेक्ष होती है। आत्यन्तिक सुख को गीता में अतीन्द्रिय और बुद्धि ग्राह्य बताया गया है।

सांख्य-दर्शन में चित्त की संकल्पना नहीं है। पतंजलि के योग-दर्शन में मन की संकल्पना नहीं है। गीता में मन और चित्त दोनों उपलब्ध हैं। जैन-दर्शन में चित्त और मन दोनों उपलब्ध होते हैं।

मन गतिशील है। उसकी गति पदार्थ में हो या चेतन में, बाह्य जगत् में हो या अन्तर्जगत में, उसका नियमन बुद्धि के द्वारा होता है। इन्द्रियों का नियमन मन के द्वारा होता है, ऐसा संकेत मिलता है किंतु भाष्यकार ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि विवेकयुक्त मन के द्वारा ही इन्द्रियों का नियमन होता है। केवल मन में उनका नियमन करने की शक्ति नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मन, चित्त और बुद्धि—ये चेतना के भिन्न स्तर हैं। फिर भी चित्त और बुद्धि के अर्थ में मन का प्रयोग मिलता है और मन के अर्थ में चित्त और बुद्धि का। गीता में मन और बुद्धि का स्वतंत्र अर्थ है। मन का बुद्धि के अर्थ में प्रयोग हुआ है। भाष्यकार ने इसका अर्थ 'विवेक बुद्धि' किया है। गीता में इन्द्रिय, मन और बुद्धि का स्वतंत्र चेतना-स्तर के अर्थ में प्रयोग मिलता है—'यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायण:।'

चेतना का पांचवां स्तर है—प्रज्ञा। शब्दकोष में बुद्धि, धी और प्रज्ञा—ये सब एकार्थक माने जाते हैं। वस्तुत: ये एकार्थक नहीं हैं। गीता में प्रज्ञा का प्रयोग बुद्धि के ही अर्थ में किया गया है। इसलिए स्थितप्रज्ञ, स्थितधी—दोनों प्रयोग साथ साथ मिलते हैं। भाष्यकार ने 'स्थिता—प्रतिष्ठिता आत्मानात्मविवेकजा प्रज्ञा यस्य स: स्थितप्रज्ञ:' अर्थात् आत्मा और अनात्मा के विवेक से होने वाले ज्ञान का अर्थ प्रज्ञा किया है।

जैन-साहित्य में प्रज्ञ, महाप्रज्ञ, आशुप्रज्ञ और भूतिप्रज्ञ का उल्लेख मिलता है। कुमारश्रमण केशी के प्रश्न के उत्तर में गौतम ने कहा—धर्म का दर्शन और तत्त्व का निश्चय प्रज्ञा से होता है। इससे ज्ञात होता है कि प्रज्ञा इन्द्रिय ज्ञान से प्राप्त प्रत्ययों का विवेक करने वाली बुद्धि से परे का ज्ञान है। कुमारश्रमण केशी ने गौतम की प्रज्ञा को बार-बार साधुवाद दिया। आचारचूला में बताया गया है कि समाधिस्थ मुनि की प्रज्ञा बढ़ती है। ध्यान और समाधि के साथ जिस प्रज्ञा का संबंध है वह इन्द्रियातीत है।

उक्त विवरण से दो प्रकार की प्रज्ञा फलित होती है—इन्द्रियसंबंध प्रज्ञा और इन्द्रियातीत प्रज्ञा। धवलाकार ने प्रज्ञा और ज्ञान का भेद बतलाया है। उनके अनुसार गुरु के उपदेश से निरपेक्ष ज्ञान की हेतुभूत चैतन्य-शक्ति का नाम प्रज्ञा है और ज्ञान उसका कार्य है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रज्ञा शास्त्रीय ज्ञान से उपलब्ध नहीं होती, वह चेतना का शास्त्र निरपेक्ष विकास है।

चेतना का छठा स्तर है—द्रष्टाभाव। एक व्यक्ति ने कन्फ्यूशियस से पूछा—"मैं साधना करना चाहता हूं, क्या करूं?" कन्फ्यूशियस ने उत्तर दिया—'केवल सुनो, केवल देखो।' गीता का दर्शन है—योगी का कर्म केवल शरीर, केवल मन, केवल बुद्धि और केवल इन्द्रियों के द्वारा होता है। उसमें ममत्व नहीं होता, प्रिय-अप्रिय का संवेदन नहीं होता। जहां राग-द्वेष की धारा प्रवाहित होती है वहां इन्द्रिय, मन और बुद्धि की चेतना मात्र द्रष्टा नहीं होती, वह फल या बंध की कर्त्ता बन जाती है।

जैन-दर्शन का चिंतन है कि इन्द्रियों के विषयों को रोका नहीं जा सकता। उनके प्रति होने वाले राग-द्वेष या प्रिय-अप्रिय संवेदन को रोका जा सकता है। द्रष्टा चेतना का अर्थ है—स्वाभाविक चेतना या शुद्ध चेतना। चेतना अपने स्वरूप में शुद्ध ही होती है। राग-द्वेष के सम्मोह से समूढ़ होकर वह कर्म-बंध की कर्त्ता या अकेवल बन जाती है।

5.2.3 अनुभव चेतना

अनुभव की चेतना जागती है तब इन्द्रिय, मन और बुद्धि द्वारा जो प्राप्त होता है उसमें कुछ सार नहीं लगता। जब तक अनुभव की चेतना नहीं जागती तब तक आदमी आंख, कान, जीभ द्वारा प्राप्त संवेदनों को ही सारभूत मानता है। मन के द्वारा जो उपलब्ध होता है, वही सार है। जब आदमी इन सब भूमिकाओं को पार कर जाता है तब उसे लगता है कि जिसे वह सार मान रहा था, वह वास्तव में सारहीन है और जो सार है, वह भीतर में पड़ा है।

5.2.4 द्वंद्व चेतना : द्वंद्वातीत चेतना

दो प्रकार की चेतनाएं हैं—द्वंद्व चेतना और द्वंद्वातीत चेतना। अनेक व्यक्तियों में शक्तियां जागृत हो जाती हैं किन्तु यदि शक्ति के बाद द्वंद्वातीत चेतना नहीं जागती, सारी चेतना द्वंद्व में बद्ध होती है, तब उस स्थिति में भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शक्ति के जागने के बाद उसे झेलने के लिए द्वंद्वों से अतीत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चेतना आवश्यक होती है। उसके बिना जागी हुई शक्ति से अनर्थ घटित हो सकता है। यदि शक्ति जागृत करने वाला व्यक्ति द्वंद्व की चेतना में ही है तो वह हर्ष और शोक के झूले में झूलता रहेगा। हर्ष होगा तो भी तीव्र होगा और शोक होगा तो भी तीव्र होगा। द्वंद्व चेतना आवेगों के लिए उर्वर भूमि है जहां सारे आवेग अंकुरित होते हैं।

द्वंद्व-चेतना तनाव उत्पन्न करती है। जब तनाव होता है तब मानसिक रोग और मानसिक विकार उभरते हैं। वे धीरे-धीरे संचित होते जाते हैं और एक बिन्दु ऐसा आता है कि मानसिक विकास मानसिक पागलपन के रूप में बदल जाता है। आज मानसिक विकारों और मानसिक पागलपन को बढ़ाने के लिए बहुत अवकाश है, सुविधाएं हैं। वर्तमान जगत् में मानसिक विकारों और मानसिक उन्मादों की जितनी भयंकर स्थिति है संभवत: अतीत में वैसी नहीं रही होगी। आज उनका समाधान, उनकी चिकित्सा असंभव-सी प्रतीत हो रही है।

5.2.5 ज्ञान और वेदना स्तरीय चेतना

हमारी चेतना के दो स्तर होते हैं—एक होता है ज्ञान का स्तर और एक होता है वेदना (वृत्ति या संज्ञा) का स्तर । अज्ञानी आदमी वेदना के स्तर पर जीता है और ज्ञानी आदमी ज्ञान के स्तर जीता है। दूसरी है वेदन की स्थिति। अज्ञानी आदमी जानता कम है या नहीं जानता किन्तु वेदन करता है। वेदना के स्तर पर जीता है। हम बहुत सारे प्रभावों को ग्रहण करते हैं जब हम वृत्ति के स्तर पर, वेदना की चेतना के स्तर पर जीते हैं। हम एक कसौटी अपने हाथ में रखें। मन पर अगर दूसरी स्थितियों का प्रभाव होता है, सामने जैसा घटित होता है, उसका प्रभाव होता है मानना चाहिए—हम वेदना का जीवन जी रहे हैं। यदि सामने घटित होने वाली घटनाएं हमें प्रभावित नहीं करती हैं तो जानना चाहिए—हम ज्ञान का जीवन जी रहे हैं।

5.2.6 ध्यान और अलौकिक चेतना

जिस व्यक्ति ने अपने भीतर देखना शुरू कर दिया उसमें अलौकिक चेतना का जागरण प्रारम्भ हो जाता है। ध्यान के द्वारा ही अलौकिक चेतना का विकास होता है। क्या है लौकिक चेतना और क्या है अलौकिक चेतना? ध्यान के प्रसंग में उसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि जो प्रतिक्रियात्मक चेतना है, वह है लौकिक चेतना और जो प्रतिक्रिया मुक्त या क्रियात्मक चेतना है, वह है अलौकिक चेतना। प्रतिक्रियात्मक चेतना वाला व्यक्ति प्रवाहपाती होता है। वह प्रवाह के पीछे-पीछे चलता है।

5.2.6.1 प्रतिक्रिया मुक्त है अलौकिक चेतना

अलौकिक चेतना का अर्थ है—प्रतिक्रियामुक्त चेतना। यह लोकोत्तर चेतना है। इसका जागरण होने पर प्रतिक्रिया नहीं होती। जब अलौकिक चेतना जागती है तब सारे मानवीय मूल्य बदल जाते हैं। लौकिक चेतना में राग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राग का तात्पर्य है पदार्थ में सुख की खोज। लौकिक चेतना में भोग सम्मत है। भोग का अर्थ है इन्द्रिय के स्तर पर जीना। अलौकिक चेतना को जीने वाला इन्द्रिय संवेदनों से ऊपर उठकर जीता है। लौकिक चेतना में प्रतिक्रिया भी सम्मत है।

5.2.6.2 अलौकिक चेतना : संतुलन का सूत्र

लौकिक चेतना में प्रवृत्ति की बहुलता है। उससे असंतुलन पैदा हो जाता है। प्रवृत्ति और तनाव—इन दोनों में निकट का संबंध है। अलौकिक चेतना जागती है, प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन बन जाता है। प्रवृत्ति के क्षण में अनुकंपी (सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) नाड़ी-संस्थान सक्रिय हो जाता है। जप के द्वारा परानुकंपी (पेरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम) नाड़ी-संस्थान को सक्रिय बनाकर दोनों में संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न 1

1. *गीता के अनुसार चेतना के स्तरों को बताएं?*
2. *किसके द्वारा अलौकिक चेतना का विकास होता है?*

5.2.7. चेतन मन

चेतन मन मन का वह स्तर है जिसमें व्यक्ति को अपनी क्रियाओं का वर्तमान समय में ज्ञान रहता है। चेतन मन या भाव में विचार धारा के समान निरन्तर बहते रहते हैं। जिन पर हमारा कभी नियंत्रण रहता है और कभी नहीं। यह मन का ऊपरी और प्रथम स्तर है। मन के इस स्तर को अवधान का केन्द्र या चेतना का केन्द्र कहते हैं। मन का यह भाग जागृत अवस्था में शृंखलाबद्ध रहता है। चेतना मन की क्रियाओं का संचालन तथा नियंत्रण वास्तविकता के अनुसार करता है। ये क्रियाएं वातावरण के द्वारा प्रभावित होती हैं अधिकांश समय तक इसका सम्बन्ध क्षणिक उत्तेजनाओं से न रहकर ज्ञान से रहता है। कोई भी कार्य से पूर्व यह मन विचार कर लेता है। इसकी क्रियाएं प्राय: तर्क द्वारा संचालित होती है। चेतन मन के तीन पक्ष होते हैं—1. ज्ञानात्मक 2. भावात्मक 3. क्रियात्मक। मन की ये तीनों मानसिक क्रियाएं मिलकर काम करती हैं। हां यह बात अवश्य है कि कभी कोई मानसिक प्रक्रिया की प्रधानता रहती है, कभी कोई प्रक्रिया की। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति बाजार में सुन्दर वस्तु को देखता है, उसे खरीदकर अपने मित्र को देता है, इसमें वस्तु को देखना उसकी सुन्दरता को समझना ज्ञानात्मक होता है, उसे देखकर विशेष मित्र को देने का ध्यान आना भावात्मक क्रिया है और उसे लाकर भेंट करना क्रियात्मक क्रिया है। इस प्रकार चेतन मन की प्रत्येक क्रिया में तीन प्रक्रियाएं होती हैं।

कहने के लिए ये तीनों पक्ष चेतन मन के तीन रूपों की ओर संकेत करते हैं लेकिन इनमें उसी प्रकार एकत्व है जैसे कि सत्व, रज और तम में। जब जिस गुण की प्रधानता हो जाती है तब उसी का उल्लेख किया जाता है। इसी प्रकार चेतन मन के ज्ञानात्मक पक्ष के साथ-साथ क्रियात्मक और भावात्मक पक्ष भी गौण रूप से उपस्थित रहते हैं। यह तथ्य एक और उदाहरण से स्पष्ट हो सकता है। मान लीजिए कि एक व्यक्ति क्रोध में आकर जोर-जोर से चिल्ला रहा है और मारने के लिए हाथ उठाए हुए है। इस क्रिया में हम भावात्मक एवं क्रियात्मक पहलुओं को देख रहे हैं। लेकिन ज्ञानात्मक पक्ष कुछ मन्द है। यदि ज्ञानात्मक पक्ष प्रबल होता है तो व्यक्ति अपने क्रोध पर नियंत्रण कर सकता है लेकिन ऐसा नहीं। तात्पर्य यह है कि कोई भी मानसिक प्रक्रिया हो उसमें चेतन मन के तीनों पक्षों का पाया जाना स्वाभाविक है। अन्तर केवल मात्रा की दृष्टि से होता है।

5.2.8. अर्द्धचेतन मन या अवचेतन मन

मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने मन के अचेतन, अवचेतन तथा चेतन की जो व्याख्या की है उससे आधुनिक मनोविज्ञान अत्यधिक प्रभावित हुआ। फ्रायड के अनुसार चेतन मन का संबंध व्यक्ति की जागृत अवस्था से है। जब व्यक्ति सचेत होकर कार्य करता है तब उसका चेतन मन सक्रिय होता है। चेतन मन के अतिरिक्त जो कुछ भी है वह अचेतन है। अचेतन और चेतन के बीच अवचेतन की स्थिति मानी गयी है।

अवचेतन मन को सामान्य मनोविज्ञान में स्मृति कहते हैं। जब अचेतन मन की कोई इच्छा अभिव्यक्त होना चाहती है तब वह पहले अपने अवचेतन क्षेत्र में आती है। अवचेतन मन में स्थित बात अथवा इच्छा आवश्यकतानुसार स्मरण की जा सकती है। जब अवचेतन मन के अनुभव चेतन में आते हैं तब व्यक्ति को उनकी चेतना होती है। इस प्रकार फ्रायड ने अचेतन अनुभव के चेतन होने तक की क्षमता को अवचेतन मन से सम्बन्धित माना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

यह भी उल्लेखनीय है कि चेतन के माध्यम से जो अनुभव व्यक्ति प्राप्त करता है उसकी चेतना सदा बनी नहीं रहती। कुछ समय बाद ये अनुभव मन के अवचेतन क्षेत्र में चले जाते हैं। जब इन अनुभवों को स्मरण करने की आवश्यकता होती है तब व्यक्ति प्रयास करके इन्हें अवचेतन मन से चेतन मन में लाता है। मानसिक रोगियों की चिकित्सा करते समय फ्रायड मुक्त साहचर्य विधि से अवचेतन मन के दबे विचारों को चेतन मन में लाने का प्रयास करता था। यहां यह भी स्मरणीय है कि अवचेतन के लिए पूर्वचेतन शब्द का भी प्रयोग किया जाता है और प्राय: वे ही बातें कही जाती हैं जो कि अवचेतन के विषय में ऊपर लिखी गयी हैं।

अर्द्धचेतन या अवचेतन मन का वह स्तर है जिसकी क्रियाएं ध्यान की सीमा से परे होते हुए भी प्रयत्न करने पर ध्यान केन्द्र में लायी जा सकती है।

अर्द्धचेतन मन की क्रियाएं न तो पूर्णरूप से व्यक्त होती हैं न अव्यक्त। प्रयत्न करने पर वे व्यक्त या अव्यक्त दोनों हो सकती है। अर्द्धचेतन मन की क्रियाएं बिना किसी प्रतिबंध के चेतन मन में आ जाती है।

5.2.9. अचेतन मन

यह मन का वह भाग है, जिसके बारे में व्यक्ति प्रयास करे तो भी उसे ज्ञात नहीं होता। इसे चेतना की गहराई (deph) का भी नाम दिया जाता है। फ्रायड का विचार है कि व्यक्ति अपने जीवन काल में जिन-जिन इच्छाओं का दमन कर देता है, वे इच्छाएं चेतन मन से निकलकर अचेतन मन में प्रवेश कर वहीं संरक्षित रहती है और इन्हीं दमित इच्छाओं से चेतन मन का विकास भी होता है।

अचेतन मन एवं अर्द्धचेतन मन के बीच में फ्रायड के अनुसार एक 'सेन्सर' ऐसा द्वारपाल रहता है जो केवल मन में पड़ी दमित इच्छाओं को अर्द्धचेतन अथवा चेतन मन में आने से रोक देता है। हमारा अचेतन मन बहुत प्रबल होता है।

जब सेन्सर के कारण अचेतन मन अव्यक्त इच्छाओं को प्रकट करने में असमर्थ हो जाता है तब वह इन इच्छाओं को ऐसा स्वरूप प्रदान कर देता है जो चेतन मन को स्वीकार हो।

हमारा अचेतन मन दमित आवेगों, भूले हुए अनुभवों, इच्छाओं, आवश्यकताओं, संवेगों एवं लालसाओं का भण्डार है जो कि सेन्सर की क्रिया के कारण अभिव्यक्त होने के लिए मार्ग प्राप्त नहीं कर पाते। फ्रायड ने अधिकांश मनोरोगों का कारण अचेतन मन में बताया है।

फ्रायड ने मनोविश्लेषण में अचेतन को अत्यधिक महत्त्व दिया था। लेकिन अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में फ्रायड ने अचेतन मन को पहले से कम महत्त्व दिया था। बहुधा लोग यह समझते हैं कि अचेतन मन की संकल्पना फ्रायड की अपनी देन है। लेकिन यह पूर्ण सत्य नहीं है। फ्रायड से पहले लाइबनित्स, शोपेनहावर, हार्टमैन तथा एफ. सी. मायर्स ने अचेतन मन के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये थे। मायर्स ने तो अचेतन मन की तुलना हिमशैल से की थी। हिमशैल के बारे में यह प्रचलित है कि उसका एक हिस्सा पानी की तरह सतह के ऊपर रहता है और नौ बटा दस भाग पानी के नीचे। फ्रायड ने भी इस उदाहरण को अपनाकर अचेतन मन के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

फ्रायड के अनुसार अचेतन मन में अनेक असामाजिक इच्छाएं दबी पड़ी रहती हैं और यह स्वप्नों के माध्यम से अवचेतन अथवा पूर्वचेतन मन में आने का प्रयास करती हैं। व्यक्ति अपनी अवांछनीय तथा असामाजिक इच्छाओं, कामनाओं को अचेतन मन में दबाये रखता है। यह सब क्रियाएं किस प्रकार होती है यह मनोविश्लेषण का विषय है जिसकी चर्चा करना यहां अपेक्षित नहीं है।

फ्रायड के शिष्य यूंग ने सामूहिक अचेतन का उल्लेख किया है। यूंग के अनुसार व्यक्ति का अपना अचेतन अलग होता है। लेकिन इसी के साथ-साथ उसे जन्म से सामूहिक अचेतन प्राप्त होता है। इस सामूहिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अचेतन में उसकी संस्कृति, उसके राष्ट्र, उसके समाज एवं उसके पूर्वजों के संस्कारों, आदर्शों, इच्छाओं, वासनाओं आदि का संग्रह पाया जाता है। हमारी जो राष्ट्रीय स्मृतियां हैं, हमारी जो राष्ट्रीय धरोहर है, उन सबका सम्बन्ध सामूहिक अचेतन से है।

इसी आधार पर यूंग ने व्यक्ति के पुरा प्रकारों की चर्चा की है। मानव के विकास का जो इतिहास है उसके आरम्भ में व्यक्ति के पुरा प्रकारों की रचना हुई थी और सामूहिक अचेतन में हमें इन युग प्रकारों की छाप मिलती है। इस प्रकार अचेतन मन ऐसा संग्रहालय है जिसमें अतीत के अनुभव और स्मृतियां संचित रहती हैं और आवश्यकता पड़ने पर अवचेतन मन के माध्यम से उनका कुछ ज्ञान हो पाता है। इसी के साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि अचेतन मन की चेतना व्यक्ति को नहीं रहती लेकिन अचेतन अपने आप में अत्यधिक गतिशील है।

अचेतन मन की सत्ता को व्याख्यायित करने के लिए बाह्य और भीतरी निमित्तों को जानना बहुत जरुरी है। बहुत बार बिना निमित्तों के अकारण ही व्यवहार और आचरण को बदलते हुए देखा गया है। स्थानांगसूत्र में बताए गए क्रोध के चार प्रकार इस तथ्य को प्रकाशित करते हैं।

क्रोध के चार प्रकार हैं—1. आत्मप्रतिष्ठित 2. परप्रतिष्ठित 3. उभयप्रतिष्ठित 4. अप्रतिष्ठित। प्रथम तीन विकल्पों को चेतन स्तर पर समझा जा सकता है। अप्रतिष्ठित क्रोध का रहस्य चेतन स्तर पर आत्मसात् नहीं किया जा सकता। हम कई बार देखते हैं कि न कोई अपना दोष है, न कोई दूसरे का दोष है और न ही दोनों का दोष है, फिर भी व्यक्ति क्रुद्ध हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि अनन्त-अनन्त जन्मों के संस्कारों का खजाना व्यक्ति के पास है। यह अतीत का खजाना हमारे अचेतन मन में सन्निहित रहता है।

बिना निमित्तों के भी व्यक्ति का चरित्र बुरा क्यों होता है? इसका समाधान देते हुए आगम में लिखा है कि क्रोध, मान, माया और लोभ की उत्पत्ति का कारण सिर्फ बाह्य निमित्त ही नहीं होते, इसका कारण तत् तत् वेदनीय कर्म का अहेतुक विपाक होता है।

5.2.10 अति चेतना और प्रज्ञा चेतना

भारतीय चिन्तक इनके अतिरिक्त चेतना के अन्य दो स्तरों पर विशेष बल देते हैं। ये स्तर हैं— 1. अति चेतना तथा 2. प्रज्ञा चेतना।

प्रज्ञा चेतना के सम्बन्ध में थोड़ा-सा भेद छोड़कर अन्य तीनों अर्थात् अर्द्ध चेतना, चेतना एवं अतिचेतना के तत्त्व एवं स्वभाव लगभग समान है। ये तीनों परस्पर व्याप्त करने वाली (overlapping) हैं, अत: जब इनमें से एक कार्य करती है, तब दूसरी छिप जाती है, तभी तो व्यक्ति एक समय पर एक ही चेतनावस्था का अनुभव कर पाता है, यद्यपि उपस्थित तीनों ही रहती हैं। इनका तत्त्व चेतना है जो कि विचारों का एक प्रवाह है। तीनों ही क्षणिक हैं। वास्तव में ये तीनों अपेक्षाकृत निम्न चेतना की अवस्थायें हैं। ये सब भौतिक चेतना के अन्तर्गत है जबकि प्रज्ञा चेतना अतिभौतिक है। स्वप्न चेतना अतिभौतिक चेतना नहीं है। साथ ही प्रज्ञा चेतना भी सुषुप्ति की चेतना नहीं है। स्वप्न और सुषुप्ति की चेतनायें हम पर आरोपित की जाती हैं जबकि अति भौतिक या प्रज्ञा चेतना स्वत: सप्रयास योग-साधना द्वारा अन्तर में प्रकट की जाती है। इसका अनुभव व्यक्ति तब करता है, जब वह भौतिक चेतना एवं मन को इन्द्रियों से दूर करके और अतिभौतिक कारण शरीर पर आधारित करके प्रकाशित करता है। प्रज्ञा चेतना के समय वह अतिभौतिक सत्ताओं से युक्त हो सकता है तथा बहुत-सी आत्मिक शक्तियां प्राप्त कर सकता है। यह चेतना विस्तृत होती है और अति प्राकृतिक चेतना के किनारे को स्पर्श करती है। अविद्या का वह आवरण जिसके कारण हम सुषुप्ति में चेतना का अनुभव नहीं कर पाते हैं, प्रज्ञा चेतना में भेद दिया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.2.11 सुपर ह्यूमन मन

जब तक अति चेतना का जागरण नहीं होगा, सुपर ह्यूमन मन का विकास नहीं होगा तब तक समस्याओं का समाधान नहीं होगा। अति चेतना को जागृत करने के लिए लंबी अवधि से प्रयोग हो रहे हैं। महर्षि अरविन्द ने समूचे संसार में अति चेतना को जागृत करने का प्रयत्न किया और भी अनेक योगियों ने वह प्रयत्न किया भगवान् की स्तुति, तीर्थंकर की आराधना, अध्यात्म की अनुभूति इन सबका अर्थ है चेतना का परिवर्तन। जो चेतना अपने आप अनुशासित नहीं होती उस चेतना को आसनों, मुद्राओं और श्वास के विभिन्न प्रयोगों के द्वारा बदला जा सकता है। प्रतिसंलीनता और मनोविकास के सूत्रों के द्वारा चेतना में परिवर्तन घटित हो सकता है। भगवान् महावीर का एक मूल्यवान् वाक्य है 'अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे'—अग्र और मूल का छेदन करो। उपादान को जगाने का अभ्यास करें। प्रेक्षाध्यान उपादान को जगाने का अभ्यास है।

5.3 चित्त और मन

चित्त और मन एक नहीं है। चित्त चेतना का पर्यायवाची शब्द है और मन उसके द्वारा काम कराने के लिए प्रयुक्त एक तंत्र है। मन पौद्गलिक है। वह पौद्गलिक है इसलिए अचेतन है। चित्त स्थूल शरीर में अभिव्यक्त होने वाली चेतना है इसलिए वह चेतन है।

चित्त और मन का स्वरूप एक नहीं है। चित्त स्थायी तत्त्व है। मन उत्पन्न होता है और विलीन होता है। उसका उत्पन्न होना और विलीन होना ही चंचलता है। इस चंचलता को ध्यान में रख कर ही अर्जुन ने कहा—मन चंचल है उसका निग्रह वायु की तरह सुदुष्कर है। इसके समाधान में योगीराज कृष्ण ने कहा—अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन का निग्रह किया जा सकता है। मन का निग्रह प्रयत्न के द्वारा किया जाता है, मन अपने आप का स्वयं निग्रह नहीं कर सकता।

नट कितना ही सुरक्षित क्यों न हो वह स्वयं अपने कंधे पर नहीं चढ सकता। तलवार की धार कितनी ही तेज क्यों न हो वह स्वयं को कभी नहीं काट सकती। मन का निग्रह करने वाला कोई दूसरा तत्त्व है, वह है—चित्त या बुद्धि।

अभ्यास के द्वारा चित्त की भूमि में उसकी समान प्रत्यय वाली वृत्ति होती है। वैराग्य के द्वारा चित्त में वितृष्णा उत्पन्न होती है। जब चित्त शांत होता है तब मन का निग्रह सहज ही हो जाता है। इसका अर्थ हुआ कि मन उत्पन्न ही नहीं होता। जैन दर्शन के अनुसार मनन से पूर्व और मनन के बाद मन नहीं होता, मनन के क्षण में ही मन होता है—'मन्यमानं मन:।'

यह उलझा हुआ प्रश्न है कि एकाग्र मन होता है या चित्त होता है? निरोध मन का होता है या चित्त का होता है? गीता का दर्शन है—एकाग्रता और निरोध—ये दोनों चित्त की अवस्थाएं हैं। जैन दर्शन के अनुसार मन की गुप्ति और मन का समाहरण होने पर चित्त एकाग्र होता है। एकाग्रता मन की भी हो सकती है। एक ही प्रकार के मन को उत्पन्न करना मानसिक एकाग्रता है। इस मानसिक एकाग्रता से चित्त का निरोध होता है।

चित्त को परिभाषित करते हुए कहा गया है—'आत्मनश्चैतन्यविशेष परिणामो चित्तम्।' स्व-संवेदन करना—उपयोग इसका लक्षण है। यह हेय, उपादेय का विचार करने वाला है। चित्त की सत्ता त्रैकालिक है जब कि मन केवल मनन काल में ही होता है। स्मृति, कल्पना और चिन्तन मन के कार्य हैं। मन चंचल होता है जब कि चित्त स्थिर होता है।

स्वास्थ्य के लिए सबसे पहले आवश्यक है चित्त की स्वस्थता। हमारा चैतन्य एक सूर्य है। चैतन्य की तुलना सूर्य के साथ की गई है। चित्त उस सूर्य की एक रश्मि है। अखण्ड चैतन्य की एक रश्मि का नाम है चित्त। दूसरा तत्त्व है हमारा मन। मन, चित्त के साहचर्य से कार्य करने वाला एक तंत्र है। चित्त है चैतन्यमय और मन है पौद्गलिक।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मन का चैतन्य, जो हमें प्रतीत होता है, चित्त के साहचर्य से होता है, चित्त के प्रभाव से होता है। मन स्वयं चेतन नहीं है अचेतन है। एक प्रश्न है संचालक का। चित्त का संचालक कौन है? मन का संचालक कौन है? चित्त संचालित होता है सूक्ष्म शरीर के द्वारा। मन संचालित होता है चित्त के द्वारा। चित्त मन का संचालक है। चित्त के अपने उत्पाद हैं। चित्त भावों को उत्पन्न करता है, मन को उत्पन्न करता है। भाव और मन—ये दोनों चित्त के उत्पाद हैं। सूक्ष्म शरीर से कुछ स्पंदन आते हैं वे स्पंदन चित्त तक पहुंचते हैं। चित्त हमारे मस्तिष्क के साथ कर्म करने वाली चेतना है। जब ये स्पंदन आते हैं चित्त भावों का निर्माण करता है और उन भावों की क्रिया को संचालित करने के लिए एक तंत्र का निर्माण करता है और वह तंत्र है मन। चित्त के दो उत्पाद हो गए—एक भाव और एक मन। ये दोनों उसके द्वारा निष्पन्न किये हुए तत्त्व हैं।

5.3.1. यूंग की अवधारणा

फ्रायड ने चित्त को माइंड तक सीमित रखा किन्तु यूंग ने माइंड और साइक—ये दो विभाग कर दिए। फ्रायड ने मन के चेतन और अवचेतन—ये दो संविभाग माने। यूंग ने चित्त के दो संभाग माने—चेतन और अचेतन। इन दोनों की जो इकाई है, वह चित्त है। यूंग ने चित्त का बहुत अच्छा विश्लेषण किया है। उदयपुर में एक बहुत अच्छे विद्वान् थे डॉ. भवानीशंकर उपाध्याय। उन्होंने यूंग के विषय में पुस्तक लिखी "कार्ल गुस्ताव यूंग विश्लेषणत्मक मनोविज्ञान।" वस्तुत: यूंग की अवधारणा की मीमांसा और विश्लेषण करते हैं तो लगता है कि वे चित्त के निकट पहुंच गए।

हम चित्त पर विचार करें। पहला प्रश्न है—जानने वाला कौन है? ज्ञाता कौन है? हम मन को जानने वाला भी नहीं कह सकते और अनुभव करने वाला भी नहीं कह सकते। जानना और अनुभव करना, ज्ञान और विज्ञान का जो मूल आधार है, वह मन नहीं हो सकता। मन की प्रकृति अलग है। चित्त स्थाई है, दीर्घजीवी है। हमारी सारी चेतना का प्रवाह वहां से आ रहा है।

5.3.2. अनेक हैं चित्त

भगवान् महावीर ने कहा—यह पुरुष अनेक चित्त वाला है। चित्त भी एक नहीं है, अनेक हैं। आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार अनेक चित्त की व्याख्या करें तो चार प्रकार के चित्त सामने आते हैं—

- आवरण चित्त।
- अन्तराय चित्त
- मिथ्यादर्शन चित्त।
- मोह चित्त।

ये चार प्रकार के चित्त हैं। इनके और भी सैकड़ों प्रकार बनते हैं पर प्रस्तुत प्रसंग में इन चार चित्तों की चर्चा अपेक्षित है। इनके प्रतिपक्ष में ये चार चित्त हैं—

- अनावरण चित्त।
- निर्विघ्न चित्त।
- सम्यग् दर्शन चित्त।
- वीतराग चित्त।

चित्त के अनेक प्रकार और अनेक कोटियां बनती हैं। चित्त के अनेक प्रकार महर्षि पतंजलि ने भी किए हैं। सांख्य दर्शन में भी चित्त की अवधारणा है। जैन दर्शन में चित्त और मन—दोनों की अवधारणा है। इनकी अवधारणा सांख्य दर्शन में नहीं है, ऐसा नहीं है किन्तु इनका जैन दर्शन में बहुत विश्लेषण हुआ है। महर्षि अथवा पातंजल योग दर्शन के भाष्यकार व्यास ने चित्त के तीन रूप बतलाए—मिथ्या-चित्त, प्रवृत्ति-चित्त और स्मृति-चित्त। वह चित्त जिसमें रजो गुण और तमो गुण का असर है, मिथ्या-चित्त है। उसे ऐश्वर्य, सत्ता और अधिकार प्रिय होता है। प्रवृत्ति-चित्त में तमोगुण की प्रधानता होती है। आसक्ति, मूर्च्छा, मोह—ये सारे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रवृत्ति-चित्त में होते हैं। स्मृति-चित्त वह है जहां तमो गुण और रजो गुण समाप्त हो जाते हैं। वैराग्य, अनासक्ति आदि अनेक गुणों का उद्भव और प्रलय होता है।

5.3.2.1 आवरण चित्त

पहला है आवरण चित्त। यह चैतन्य को आवृत करने वाला चित्त है। सूक्ष्म-शरीर का एक ऐसा प्रवाह आ रहा है जो चेतना को अनावृत नहीं होने देता उसको आवृत बनाये रखता है। किन्तु विकार कुछ भी नहीं करता, केवल आवरण बनता है। वह पर्दा लगा देता है तो सीधे नहीं पहुंच सकते।

5.3.2.2 अन्तराय चित्त

दूसरा है अन्तराय चित्त। यह बाधा डालने वाला चित्त है। भीतर का ऐसा प्रवाह है जो बाधा डालता रहता है। व्यक्ति जैसा चाहे, वैसा काम कर नहीं सकता, सोच भी नहीं सकता। हमेशा कार्य में कोई न कोई बाधा आती रहती है। इसका कारण बनता है अन्तराय चित्त।

5.3.2.3 मिथ्यात्व चित्त

तीसरा है मिथ्यात्व चित्त। मिथ्या दृष्टिकोण बना रहता है। हम सत्य तक नहीं पहुंच पाते, दृष्टिकोण गलत बन जाता है। जो विधायक भाव और निषेधात्मक भाव की चर्चा आज है उसका हेतु क्या है? विधायक भाव न होने का मुख्य कारण मिथ्या-दर्शन चित्त बनता है। यह सही दर्शन नहीं होने देता। यथार्थ का ग्रहण नहीं होने देता। यह दृष्टिकोण को बदल देता है। यथार्थ कुछ होता है किन्तु अनुभव या प्रतीति अन्यथा होने लग जाती है। विपर्यय होता है ज्ञान का। जिसे दार्शनिक जगत् में विमोहात्मक ख्याति, अनात्मक-ख्याति अथवा ज्ञान का विपर्यय कहा गया उसके पीछे मिथ्यात्व चित्त अथवा मिथ्या दृष्टिकोण छिपा होता है।

5.3.2.4 मोह चित्त

चौथा है मोह चित्त। यह अच्छा चरित्र नहीं होने देता। संयम की भावना, व्रत की भावना उत्पन्न नहीं होने देता, आध्यात्मिक उन्नयन नहीं होने देता। हमेशा राग-द्वेष पैदा करता रहता है। आदमी का आकर्षण रागात्मक और द्वेषात्मक प्रवृत्ति में ही होता रहता है।

5.3.2.5 अनावरण चित्त

यदि ये चित्त ही हमारे जीवन से जुड़े होते तो हम कभी सफल नहीं हो सकते। इसका दूसरा पक्ष भी है। वह भी सूक्ष्म-शरीर के विशुद्ध प्रकंपनों के द्वारा बनता है। वह पक्ष है अनावरण चित्त। कोरा आवरण नहीं है, अनावरण भी है इसीलिए हम ज्ञान का विकास कर पाते हैं। हमारी चेतना सर्वथा आवृत नहीं होती।

कहा गया—चेतना का अनंतवां भाग सदा उद्घाटित रहता है कभी आवृत नहीं होता। अगर चेतना पूर्ण आवृत हो जाए तो फिर जीव अजीव बन जाए। इस स्थिति में जीव और अजीव में अन्तर ही नहीं रहता। अनावरण चित्त भी सदा सक्रिय रहता है, अपना काम करता रहता है और चैतन्य को सर्वथा आवृत नहीं होने देता।

5.3.2.6 निर्विघ्न चित्त

दूसरा है—निर्विघ्न चित्त। चारों ओर बाधा ही बाधा हो, रुकावट ही रुकावट हो तो मनुष्य कैसे कार्य कर पाएगा? यह बाधा को चीरता है। बाधा को पार करने का प्रतिनिधि चित्त है निर्विघ्न चित्त। यह सक्रिय होता रहता है इसलिए मनुष्य बहुत सारे कार्य कर लेता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3.2.7 सम्यग् दर्शन चित्त

तीसरा है—सम्यग् दर्शन चित्त। यह सम्यग् दृष्टिकोण का निर्माण करता है। तत्त्व को तत्त्व के रूप में स्वीकृत करता है, यथार्थ को यथार्थ की दृष्टि से देखता है। इसी के सहारे विधायक भाव और विधायक चिन्तन की प्रक्रिया चलती है।

2.3.2.8 वीतराग चित्त

चौथा है—वीतराग चित्त। कोई भी व्यक्ति सर्वथा चरित्र-शून्य नहीं है। चरित्र का किंचित् मात्रा में हर व्यक्ति में विकास होता है। वह विकास वीतराग चित्त के द्वारा निष्पन्न होता है।

5.3.3 संदर्भ स्वास्थ्य का

हम स्वास्थ्य की दृष्टि से चिन्तन करें। आवरण चित्त का सीधा सम्बन्ध स्वास्थ्य के साथ नहीं है। उसका सम्बन्ध ज्ञान के साथ है। स्वास्थ्य के साथ भी हो सकता है पर प्रत्यक्षत: सीधा सम्बन्ध नहीं है। किन्तु अन्तराय चित्त, मिथ्यात्व चित्त और सबसे ज्यादा मोह चित्त का सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य के साथ जुड़ता है। हम चित्त को दो भागों में बांट दें—शुद्ध चित्त और अशुद्ध चित्त। एक शुद्ध चित्त है और एक अशुद्ध चित्त है। चित्त की शुद्धि और भावों की शुद्धि से जुड़ी है मन की शुद्धि। वास्तव में मन शुद्ध अथवा अशुद्ध नहीं बनता। यह मन का काम ही नहीं है। मन का काम है स्मृति करना, कल्पना करना, चिन्तन करना। वह शुद्ध और अशुद्ध नहीं होता। वह शुद्ध अथवा अशुद्ध बनता है चित्त के प्रवाह से। चित्त का प्रवाह भाव में बदलता है तो वह शुद्ध अथवा अशुद्ध बन जाता है। जब भाव मन पर उतरता है तब हम कह सकते हैं कि मन शुद्ध है या अशुद्ध, शुभ है या अशुभ है।

वास्तव में शुद्ध अथवा अशुद्ध कुछ भी नहीं है मन में। हवा चल रही है। हवा गर्म है या ठण्डी? यदि गर्मी तेज है तो हवा गर्म हो जायेगी। यदि शीतलहर चल रही है तो हवा ठण्डी हो जायेगी। हवा ठण्डी है या गर्म, यह निरपेक्ष दृष्टि से नहीं कहा जा सकता। सापेक्ष प्रतिपादन ही किया जा सकता है। हिमपात हुआ है, वर्षा हुई है तो हवा ठण्डी है। जेठ का अथवा आषाढ़ का महीना है और गहरी धूप पड़ रही है तो हवा गर्म हो जाएगी। मन का भी यही काम है क्योंकि मन की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। चित्त की स्वतंत्र सत्ता है किन्तु मन की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। अगर मन ही सब कुछ है, मन की स्वतंत्र सत्ता है तो अपने मन को वश में करो, यह निर्देश कौन देता है? यह निर्देश किसकी क्रिया है? वह है चित्त की सत्ता। यह चित्त का काम है कि चाहे वह मन का निग्रह करें और चाहे तो उसे खुला छोड़ दे। यदि चित्त पवित्र है और चित्त में यह बात बैठ गई है कि मुझे मन का निग्रह करना है तो फिर वह ध्यान की साधना करेगा, मन को एकाग्र करेगा, मन को अपने नियंत्रण में रखेगा। मन का मालिक है वह। ध्यान में एक स्थिति आती है निर्विकल्प ध्यान की। यदि मन की स्वतंत्र सत्ता है तो फिर निर्विकल्प और निर्विचार ध्यान का मतलब क्या होगा? क्या चेतना समाप्त होगी? चेतना कभी समाप्त नही होती। विचार नही है फिर भी अपने अस्तित्व की अनुभूति बराबर हो रही है।

आचार्य रामचन्द्र ने एक सुन्दर बात कही—जैन लोग शून्य को ध्यान नहीं मानते। चेतना की शून्यता ध्यान नहीं, मूर्च्छा है। जहां मूर्च्छा है, वहां चेतना का ध्यान नहीं है, वहां मन की सत्ता नहीं है, मन का विकल्प नहीं है, मन का विचार नहीं है। जहां चेतना की अनुभूति का सातत्य है, निरन्तर चेतना की अनुभूति का अनुभव हो रहा है, चित्त की जागरूकता है वहां ध्यान है। अन्यथा मूर्च्छा और ध्यान में कोई अन्तर नहीं रहेगा। वह ध्यान की अवस्था है, जहां अपने अस्तित्व का, अपने चैतन्य का बराबर ध्यान बना रहता है। निर्विचार और निर्विकल्प अवस्था में मन तो नही है किन्तु ध्यान है और इसलिए है कि उसमें अस्तित्व अथवा चैतन्य का बोध प्रखर बना रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.3.4 स्थायी है चित्त

एक महत्त्वपूर्ण शब्द है अमन। मन की अनेक स्थितियां बनती हैं किन्तु एक ऐसी स्थिति भी है जहां मन ही नहीं रहता, समाप्त हो जाता है। यह अमन की स्थिति है। यह अंतर स्पष्ट होना चाहिए—चित्त है स्थायी और मन है उत्पाद। हम मन को पैदा करें तो वह है। यदि न करें तो मन है ही कहां? मन, वचन, काया—तीन तत्त्व हैं। इनमें मन और वचन की स्थिति समान है। काया की स्थिति इन दोनों से भिन्न है। जब तक आदमी जीवित है, शरीर बना रहेगा। वाणी और मन की स्थिति यह है कि जब चाहे इन दोनों को पैदा करें और जब चाहे विराम दे दें। इसीलिए मन कहीं प्रतिष्ठित नहीं है। हम उसको उत्पन्न नहीं करते हैं। यदि मन को उत्पन्न न करें तो अमन की स्थिति बन जाएगी। चित्त की यह स्थिति नहीं है। चित्त को उत्पन्न नहीं किया जा सकता। जैसे शरीर की निरन्तरता है, चित्त की भी हमारे साथ निरन्तरता है। चित्त निरन्तर रहेगा, सोते, जागते निरन्तर बना रहेगा। चित्त अपना काम चालू रखेगा। वह तो हमारी चेतना है जो कभी लुप्त नहीं होती। न्याय-शास्त्र के आचार्यों ने इसलिए कुछ कथन प्रस्तुत किये थे—आज मुझे बहुत अच्छी नींद आई। यह कौन जानता है? मन तो निष्क्रिय बन गया। मुझे बहुत अच्छी नींद आई, यह कौन अनुभव कर रहा है? यह चित्त का काम है। किसी को नींद अच्छी नहीं आई। बार-बार इधर-उधर करवटें बदलता रहा। यह कौन अनुभव करता है? यह मन का काम नहीं है, चित्त का काम है।

चेतना की एक रश्मि है चित्त। यह सारा चित्त का काम है। यह स्पष्ट होना जरूरी है कि चित्त का कार्य अलग है और मन का कार्य अलग है। चित्त का पहला उत्पाद है भाव। मन उसका पहला ऊपाद नहीं है। चित्त भाव को पैदा करता है। भाव का प्रवाह भीतर से आता है। हमारे जितने इमोशंस हैं, सारे चित्त के उत्पाद हैं इसीलिए चित्त के अनेक प्रकार हैं। भाव के आधार पर कहा जाता है—यह क्रोध का चित्त है। इसी प्रकार अहंकार का चित्त, माया का चित्त, लोभ का चित्त, घृणा का चित्त, कलह का चित्त आदि-आदि अनेक चित्त बन जाएंगे। ये जो भाव पैदा होते हैं, उन्हें चित्त पैदा करता है। साहित्य में एक शब्द का प्रयोग चलता है—मनोभाव। मनोभाव का तात्पर्य है—मन में भावों का अवतरण। मन भाव पैदा नहीं करता। भाव पैदा करना मन का काम नहीं है। भाव पैदा करता है चित्त। वे भाव मन के पास जाते हैं और फिर मनोभाव बन जाते हैं। आगम-साहित्य में, सांख्य दर्शन और ऋग्वेद में जहां मन पर विचार किया गया, वहां कहा गया—चिन्तन करो, विचार करो, यह मन का काम है।

कुछ लोग प्रश्न करते हैं—वह दिन दूर नहीं है जब कम्प्यूटर भी चिन्तन करने लग जाएगा। तब चेतना का अस्तित्व कहां रहेगा? यह प्रश्न कोई समस्या नहीं है। कम्प्यूटर की क्रिया यांत्रिक प्रक्रिया है। मन भी चेतना का एक यंत्र है, उपकरण है। कम्प्यूटर चिन्तन करेगा, उससे आत्मा के अस्तित्व पर कोई असर नहीं आएगा। क्योंकि चिन्तन चित्त का मूल काम नहीं है। वह पारिपार्श्विक कार्य है। उसका मूल कार्य है अनुभव करना, संवेदन करना, इच्छा करना। मन की कोई इच्छा नहीं होती। यद्यपि हमारे साहित्यकारों और संत लेखकों ने लिख दिया—मन की तृष्णा अनंत है। वस्तुत: मन में कोई तृष्णा होती ही नहीं है। मन पैदा हुआ है शरीर के साथ फिर अनंत तृष्णा कहां से आई? चित्त और मन का भेद नहीं करते हैं तब उपचार से कह दिया जाता है कि मन की तृष्णा अनंत है। प्राणी का एक लक्षण माना गया है—इच्छा। जिनमें मन का विकास नहीं है, उनमें भी इच्छा होती है। सभी प्राणियों में मन नहीं होता किन्तु इच्छा अवश्य होती है। प्राणी का अकाट्य लक्षण है इच्छा। एक इन्द्रिय वाले जीव, दो इन्द्रिय वाले जीव, तीन इन्द्रिय वाले और चार इन्द्रिय वाले जीव अमनस्क होते हैं। कुछ पांच इन्द्रिय वाले जीव भी अमनस्क होते हैं। उनमें मन का विकास नहीं है किन्तु इच्छा है। इसीलिए मन को जीव का लक्षण नहीं माना गया किन्तु चित्त को माना गया, इच्छा को माना गया। जिसमें इच्छा है वही प्राणी है। इच्छा किसका कार्य है। इच्छा, आकांक्षा, यह सारा चित्त का काम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3.5 चित्त, मन और भाव

चित्त, मन और भाव—तीनों के सम्बन्ध को समझना जरूरी है। ध्यान की दृष्टि से विचार करें तो सूक्ष्म शरीर, अध्यवसाय, लेश्या, चित्त, भाव और मन—यह एक पूरी श्रृंखला है, सूक्ष्म-जगत् से लेकर स्थूल जगत् तक का समग्र क्रम है। भीतर सूक्ष्म जगत् में जो कुछ होता है, वह मन के द्वारा अभिव्यक्त होता है।

अब हम स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार करें। एक नियम बन जाएगा—अशुद्ध चित्त, अशुद्ध भाव और अशुद्ध मन है तो स्वास्थ्य के लिए समस्या है, स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह पाएगा। शुद्ध चित्त, शुद्ध भाव और शुद्ध मन है तो स्वास्थ्य के लिए बहुत ज्यादा अनुकूलता होगी, समस्या नहीं आएगी।

साइकोसोमेटिक—मनोकायिक बीमारी के लिए केवल शरीर का तंत्र जिम्मेवार नहीं है। उसके लिए मन को उत्तरदायी माना गया। यदि चित्त पवित्र है तो मन अशुद्ध नहीं हो सकता। मनोकायिक बीमारियां चित्त की अशुद्धि के कारण ही उपजती हैं। महावीर का यह सूत्र है—शुद्ध चित्त, शुद्ध भाव और शुद्ध मन—स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। अशुद्ध चित्त, अशुद्ध भाव और अशुद्ध मन—इसका अर्थ है बीमारी के लिए खुला निमंत्रण।

5.3.6. स्वास्थ्य और चित्त की निर्मलता

स्वास्थ्य के संदर्भ में चित्त और मन की चर्चा बहुत आवश्यक है। यह कोई दार्शनिक चर्चा नहीं है। जहां दार्शनिक चर्चा करें वहां मन के स्वरूप का प्रतिपादन करें। हम चित्त और मन के स्वरूप को स्वास्थ्य के संदर्भ में भी देखें। जो व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है, वह सोचे—बहुत अच्छा भोजन करूंगा, विटामिन्स, लवण, प्रोटीन सारे मिल जाएंगे। स्वादिष्ट भोजन करूंगा तो मैं स्वस्थ रहूंगा, यह सोचना नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है। उसे साथ में यह भी सोचना पड़ेगा के मेरा चित्त कितना निरवद्य है, निर्मल और पवित्र है। चेतना में पाप के प्रवाह नहीं आ रहे हैं, मलिन विचार नहीं आ रहे हैं तो स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। आदमी बुरी कल्पना, बुरे विचार, बुरी भावना करता रहे और यह सोचता रहे कि मैं स्वस्थ रहूंगा तो इससे बड़ी कोई आत्म भ्रान्ति नहीं हो सकती। चित्त की निर्मलता स्वास्थ्य के लिए वरदान बनती है।

हम महावीर वाणी के दो शब्दों पर ध्यान दें—सावद्य और निरवद्य। इनका स्वास्थ्य के साथ गहरा संबंध है। यदि हमारा चित्त, भाव, आचरण और चिन्तन निरवद्य है तो स्वास्थ्य को खतरा नहीं है, हमारी शक्ति कम नहीं होगी, हमारी रोग-प्रतिरोधात्मक शक्ति मजबूत रहेगी, हम समस्याओं को सहन कर सकेंगे, झेल सकें गे। यदि यह भीतर की शुद्धि नहीं है, भाव, चित्त और मन की शुद्धि नहीं है तो कितना ही प्रयत्न करो, हमारा शरीर खोखला होता चला जाएगा, इम्युनिटी सिस्टम कमजोर होता जाएगा, रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम होती जाएगी। कितनी ही दवाइयां लेते जाओ, न डॉ. बचा पाएगा, न दवाइयां बचा पाएगी। इस मूल सूत्र को पकड़कर चित्त और मन पर विचार करना चाहिए। उन्हें पवित्र, विशुद्ध और निर्मल बनाने का अभ्यास करना चाहिए। जिस दिन चित्त की निर्मलता उपलब्ध होगी, भाव और मन शुद्ध बन पाएंगे। भाव और मन की शुद्धि का अर्थ है स्वास्थ्य के रहस्य-सूत्र का संधान। स्वास्थ्य के लिए इस सचाई का बोध और उपलब्धि दोनों अनिवार्य है।

बोध प्रश्न 2:

---

1. फ्रायड के अनुसार अचेतन मन क्या है?

2. सुपर ह्यूमन मन क्या है?

3. चित्त से आप क्या समझते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.3.7. चित्त और मन में अन्तर

चित्त का अर्थ है स्थूल शरीर के साथ काम करने वाली चेतना और मन का अर्थ है—उस चित्त के द्वारा काम कराने के लिए क्रियातंत्र या प्रवृत्ति तंत्र का अंग। चित्त चैतन्य तंत्र का भाग है। यह क्रियातंत्र का संचालक है। मन भौतिक तत्त्व है। चित्त आत्मिक है। चित्त का अर्थ है—अनुभव करना। चिदि-ज्ञाने अर्थात् ज्ञान करना। मन का अर्थ है—मनन करना। मननात् मनः अर्थात् मनन करना। निम्नलिखित दृष्टियों से चित्त और मन के भेद को समझा जा सकता है—

क्र.	अन्तर बिन्दु	चित्त	मन
1.	संचालन	संचालक, मालिक, चैतन्य का एक भाग है	संचालित, नौकर, क्रियातंत्र का अंश है।
2.	स्वरूप	चैतन्य धर्म है, सचेतन है ज्ञानात्मक है।	चेतना रहित है, जड़ है, पौद्गलिक है, भौतिक है।
3.	स्थिरता	यह स्थिर हो सकता है	स्थिर नहीं हो सकता, एकाग्र हो सकता है।
4.	अस्तित्व	त्रैकालिक अस्तित्व है। सभी प्राणियों में है।	यह स्थायी नहीं है। केवल कुछ प्राणियों में है।
5.	क्षेत्र	चित्त व्यापक है, इसका संबंध चेतना की गहराई तक है।	ऊपर तक सीमित है सम्पूर्ण व्यवहार की व्याख्या मात्र इससे संभव नहीं।
6.	कार्य	अनुभव, "चिंदी ज्ञाने" ज्ञान करना, अनुभव करना।	मननात् मनः। मनन, चिंतन, कल्पना, स्मृति करना।

5.3.7.1 चित्त : संचालक

मानसिक प्रक्रियाएं चित्त के सहयोग से ही सम्पन्न होती है। उसके सहयोग के बिना कुछ भी नहीं कर सकता। हाथ की अंगुलियां चलती हैं और अनेक कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। ये शारीरिक और मानसिक कार्य मस्तिष्क द्वारा चित्त का सहयोग प्राप्त होने पर ही सम्पादित होते हैं। क्रिया करना शरीर का काम है, संचालन करना चित्त का काम है। ठीक इसी प्रकार मानसिक क्रिया करना मस्तिष्क का काम है। संचालन करना चित्त का काम है, हारमोनियम से आवाज निकलती है जब व्यक्ति हारमोनियम को बजाता है वैसे ही चित्त (व्यक्ति) का सहयोग प्राप्त होने पर मस्तिष्क (हारमोनियम) द्वारा मानसिक प्रक्रियाएं (आवाज) निष्पन्न होती हैं।

5.3.7.2 चित्त का अस्तित्व

चित्त हमारे अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। स्थायी तत्त्व है ऐसा नहीं होता कि चित्त अभी पैदा हुआ शरीर अभी समाप्त हो गया। मन स्थायी तत्त्व नहीं है मन उत्पन्न होता है विलीन होता है। हम जब चाहते हैं मन को उत्पन्न कर लेते हैं और जब चाहें उसको विलीन कर देते हैं, अमन हो जाते हैं। चित्त का अस्तित्व सभी प्राणियों में होता है। मन का अस्तित्व केवल विकसित पांच इन्द्रियों वाले प्राणियों में ही होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.3.7..3 चित्त का क्षेत्र

मन के द्वारा सम्पूर्ण जीवन और कार्य कलापों की पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती। मन एक सीमित तत्त्व है उसका संबंध ऊपरी व्यक्तित्व तक ही है। चित्त व्यापक है उसका सम्बन्ध हमारी आन्तरिक चेतना के साथ है। चित्त और मन—दोनों के आधार पर ही समूचे आचार और व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है।

5.3.7.4 चित्त का कार्य

चित्त का कार्य है—अनुभव करना, मात्र जानना, देखना। मन का कार्य है मनन करना, स्मृति, चिन्तन, कल्पना करना। दूसरे शब्दों में अनुभूति करना चेतना का विशिष्ट लक्षण है। यह चित्त का कार्य है। वस्तुतः इन मानसिक प्रक्रियाओं को ही मन कहा जा सकता है।

5.3.7.5 मनोविज्ञान में चेतना या मन (Consciousness in Psychology)

मनोविज्ञान में चेतना और मन की स्पष्ट भेद रेखा नहीं मिलती। इसका भी कारण है चित्त की स्थिरता, एकाग्रता का विकास, उसके उपाय एवं परिणामों का अध्ययन, आन्तरिक आनन्द का जागरण, समाधि की प्राप्ति आदि विषय अभी तक मनोविज्ञान की परिधि में समाविष्ट नहीं है। पिछले कुछ दशकों में इन विषयों पर अनुसंधान मात्र प्रारम्भ हुए हैं अतः चित्त और मन के भेद का प्रश्न ही उनके सामने नहीं रहा। चेतना के सम्बन्ध में अन्य अनेक दृष्टिकोणों से मनोविज्ञान में अध्ययन किया गया है।

डेवर का कथन है कि चेतना क्रियाओं की एक ऐसी विशेषता है जो विलक्षण है परन्तु इसे क्रियाओं से अलग किया जा सकता। चेतना मानसिक क्रियाओं तथा शारीरिक क्रियाओं का परिचय देने वाली एक व्यापक क्रिया है। आन्तरिक दृष्टि से व्यक्ति अपनी आन्तरिक अनुभूतियों से अलग कुछ भी नहीं और अनुभूतियों की व्यापक विशेषता ही चेतना कहलाती है।

विलियम जेम्स ने चेतना की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन किया है—

1. चेतना का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से होता है। (Every conscious state tends to be a part of personal conscious)
2. चेतना में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। (Conscious is always changing)
3. प्रत्येक व्यक्तिगत चेतना में विचार निरन्तर बना रहता है। (Within each personal consciousness thought is sensibly continous)
4. प्रत्येक चेतना चयनात्मक होती है। (Every consciousness is selective)

5.3.7.6 मन एवं इसकी कार्य-प्रणाली

मस्तिष्क एक अवयव है जो कि हमारे सिर के अन्दर के भाग में सुरक्षित एवं स्थित रहता है व पूरे शरीर की गतिविधियों पर नियंत्रण करता है, जबकि उसके क्रियात्मक पहलू को मन कहते हैं। मस्तिष्क एवं मन की तुलना पुष्प व गंध से कर सकते हैं। एक को हम देख सकते हैं व दूसरे को हम सिर्फ महसूस कर सकते हैं। मन का एक प्रमुख आधार है— चेतना, इसी आधार पर मन तीन स्तर पर कार्यरत रहता है—चेतन, अर्द्धचेतन एवं अचेतन।

5.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. चेतना के विभिन स्तरों का संक्षेप में वर्णन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान में चेतना या मन के स्वरूप का विश्लेषण करें।
2. चित्त और मन के अन्तर को संक्षेप में बताएं।

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक वाक्य या एक लाइन में उत्तर दें)

1. अलौकिक चेतना का विकास कैसे होता है?
2. अवचेतन मन को सामान्य मनोविज्ञान में क्या कहते हैं?
3. स्वास्थ्य के लिए सबसे पहले क्या आवश्यक है?
4. चित्त किसको पैदा करता है?
5. चेतना का कौन-सा भाग सदा उद्घाटित रहता है?
6. मस्तिष्क एवं मन की तुलना किससे कर सकते हैं?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. साधारणतया चित्त और मन को.....माना जाता है।
2. चेतन मन के अतिरिक्त जो कुछ भी है वह.....है।
3. वैराग्य के द्वारा चित्त में.....उत्पन्न होती है।
4. चित्त का अस्तित्व.....में होता है।

5.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
2. लेश्या और मनोविज्ञान—मुमुक्षु डॉ. शांता जैन
3. मनन और मूल्यांकन—आचार्य महाप्रज्ञ
4. मन का कायाकल्प—आचार्य महाप्रज्ञ
5. महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र—आचार्य महाप्रज्ञ
6. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—आचार्य महाप्रज्ञ, संपादक—मुनि धर्मेश
7. भारतीय मनोविज्ञान—डॉ. लक्ष्मी शुक्ला
8. भारतीय मनोविज्ञान—डॉ. सीताराम जायसवाल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-6 : चित्त समाधि का स्वरूप एवं महत्त्व

संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 समाधि का स्वरूप
6.2.1 चित्त समाधि का स्वरूप
6.2.2 साधना की तीन भूमिकाएं
6.2.3 समाधि का प्रयोजन
6.2.4 सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि
6.2.5 चित्त परिकर्म के उपाय
6.2.6 चित्त की निर्मलता
6.2.7 शरीर की खोज
6.2.8 श्वास का मूल्य
6.2.9 नियंत्रण का क्रम
6.2.10 समाधि यात्रा के तीन पड़ाव
6.2.11 योगवाहिता
6.2.12 महाप्राण-ध्यान
6.3 समाधि का महत्व
6.3.1 प्रेक्षा की निष्पति : समाधि
6.3.2 समाधि की अवस्था
6.3.3 समाधि है अपने भीतर
6.4. अभ्यास हेतु प्रश्न
6.5 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 प्रस्तावना

मानसिक शांति का सबसे बड़ा उपाय है—चित्त-समाधि। चित्त-समाधि के लिए आवश्यक है—चित्त की शुद्धि। चित्त की शुद्धि का सबसे बड़ा सूत्र है—शरीर की स्थिरता। शरीर जितना स्थिर होता है उतना ही चित्त शुद्ध होता है। चित्त की अशुद्धि का सबसे बड़ा कारण है—चित्त की चंचलता। शरीर स्थिर हुए बिना चित्त की स्थिरता नहीं होती। चित्त की स्थिरता के बिना श्वास शांत नहीं होता। श्वास शांत हुए बिना चित्त की स्थिरता नहीं होती। चित्त की स्थिरता हुए बिना चित-समाधि की प्राप्ति नहीं होती।

6.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ कर आप निम्नलिखित तथ्यों को समझ सकेंगे—

1. समाधि का स्वरूप क्या है? समझ सकेंगे।
2. चित्त-समाधि के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
3. साधना की तीन भूमिकाओं को समझ सकेंगे।
4. समाधि का प्रयोजन समझ सकेंगे।
5. सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि को आप भी प्राप्त कर सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. चित्त परिकर्म के उपायों को समझ सकेंगे।
7. चित्त की निर्मलता को साध सकेंगे।
8. शरीर की खोज कर सकेंगे।
9. श्वास का मूल्य समझ सकेंगे।
10. नियंत्रण का क्रम सीख सकेंगे।
11. समाधियात्रा के चार पड़ावों को समझ सकेंगे।
12. योगवाहिता क्या है? परिचित हो सकेंगे।
13. महाप्राण-ध्यान क्या है? उसके महत्त्व को समझ सकेंगे।
14. समाधि के महत्त्व को समझ सकेंगे।
15. प्रेक्षा की निष्पत्ति : समाधि कैसे हैं? समझ सकेंगे।
16. आप भी समाधि की अवस्था को प्राप्त कर सकेंगे।
17. समाधि है अपने भीतर, इसे समझ सकेंगे।

6.2 समाधि का स्वरूप

समाधि शब्द व्यापक है। यह साधना का वाचक शब्द है। समस्त साधना का सार इसमें समाहित है। समाधि की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है—'सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधि।' समाधि शब्द सम + अधि से बना है। सम का अर्थ है एक रूप करना। पतंजलि ने कहा— 'योगश्चित्तवृत्ति-निरोध:।' इसको परिभाषित करते हुए आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने कहा है कि 'समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोध:।' बौद्ध साधना पद्धति में समाधि का अर्थ है चित्त और चैतसिक का दृढ़ स्थिरीकरण। दृढ़ स्थिरीकरण का अर्थ है—मन का किसी एक वस्तु में स्थिर हो जाना। जैन दर्शन में समाधि का अर्थ है—शुद्ध चैतन्य का अनुभव, चित्त का समाधान या चित्त का संतुलन।

जैन साधना पद्धति में अयोग शब्द प्रचलित है। जैसे जैसे साधना आगे बढ़ती है वैसे वैसे अयोग की अवस्था प्राप्त होती जाती है। पतंजलि का योग और जैन साधना पद्धति का अयोग शब्द—ये दोनों समानार्थक है। साधना की विकसित अवस्था में समाधि, समाहित और समाधान—ये तीनों एकार्थक प्रतीत होते हैं।

6.2.1 चित्त-समाधि का स्वरूप

योग का अन्तिम अंग समाधि है। उसका अर्थ है—आत्मनिष्ठा, बहिर्भाव से सर्वथा विलग होना। यहां परमात्मा और स्वात्मा का पूर्ण सादृश्य का अनुभव होने लगता है। आत्मा की मौन ध्वनि मुखरित होने लगती है। जो परमात्मा है वह मैं हूं और जो मैं हूं वह परमात्मा है—यह सत्य समाधि की प्रारम्भिक अवस्था में भी साधक को अनुभव होने लग जाता है। वस्तुत: परम सत्य की दृष्टि में आत्मा और परमात्मा का स्वरूप अभिन्न है, भिन्नता केवल व्यवहार के धरातल पर महसूस होती है। अभेद का उपासक भिन्नता के घेरे को लांघकर अभेद में चला जाता है। समाधि परमात्मस्थता का सर्वोच्च सोपान है। योगी वहां बहि:स्थता को सर्वथा भूल जाता है। वह क्या है? किसका है? कहां है? कैसा है? इन समस्त विकल्पों से अतीत हो जाता है। उसे अपने शरीर का भी ख्याल नहीं रहता। वह शरीर का भान भूल जाता है। वह आत्मानन्द और आत्मचैतन्य में इतना खो जाता है कि वह बाहर के भान को भूल जाता है।

समाधि अभेद दृष्टि से परमात्मा के साथ एकीकरण है और भेद दृष्टि से आत्मा का स्वयं परमात्मा होना है। अभेद द्रष्टा आत्मा का स्वयं परमात्मा होना है। अभेदद्रष्टा आत्मा परमात्मा के साथ विलीनीकरण में व्यग्र रहता है। आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व प्रकारान्तर से वहां स्वत: प्रस्फुटित हो जाता है। आत्मा के एकत्व और अनेकत्व की दो दृष्टियों का समन्वय ही हमें पूर्णता का अनुभव करा सकता है। कहा भी है—

येनात्मा साधितस्तेन, विश्वमेतत् प्रसाधितम्।
येनात्मा नाशितस्तेन सर्वमेव विनाशितम्।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अर्थात् जिसने आत्मा को साध लिया उसने विश्व को साध लिया। जिसने आत्मा को गंवा दिया, उसने सब कुछ गंवा दिया।

6.2.2 साधना की तीन भूमिकाएं

साधना की तीन भूमिकाएं हैं। प्रथम भूमिका है—अन्त:प्रवेश या अन्तर्बोध। दूसरी भूमिका है—अंत:स्थिति। तीसरी भूमिका है—अंतर् अनुभूति।

अंतर् अनुभूति की स्थिति समाधि की भूमिका है। यह तादात्म्य की स्थिति है। इसमें ध्याता और ध्येय दो नहीं, एक हो जाते हैं। ध्याता, ध्येय और ध्यान—तीनों एक हो जाते हैं। ध्यान और समाधि के बारे में यह कथन बहुत महत्त्व रखता है—

शब्दादीनां च तन्मात्रं, यावद् कर्णादिषु स्थितम्।
तावदेव स्मृतं ध्यानं, समाधिः स्यादतः परम्।।

अर्थात् जब तक शब्द कान में आते रहें और व्यक्ति को यह पता चलता रहे कि शब्द आ रहे हैं तब तक ध्यान की स्थिति है। शब्द सुनना बन्द हो जाए, वह समाधि की स्थिति है।

प्रेक्षाध्यान धारणा से लेकर समाधि तक की साधना है, अन्तर्बोध से लेकर अंतर् अनुभूति तक पहुंचने की साधना है। जो व्यक्ति प्रेक्षा-ध्यान की साधना प्रारम्भ करता है उसे कम-से-कम अपने अस्तित्व का बोध हो जाता है। वस्तुत: यह मात्र देहली प्रवेश है। उससे आगे की स्थिति अन्त:स्थिति की भूमिका में प्रवेश पाने पर ही उपलब्ध होती है। अन्त:स्थिति की भूमिका प्राप्त व्यक्ति में व्रत या चरित्रनिष्ठा स्वत: उद्भूत हो जाती है।

6.2.3 समाधि का प्रयोजन

समस्याओं का निवारण करने के लिए, सुखी एवं निर्भीक जीवन जीने के लिए, पूर्णता का जीवन जीने के लिए इन्द्रियों और मन की समस्याओं के समाधान के लिए समाधि का अभ्यास आवश्यक है। हम चैतन्यकेन्द्रों पर दीर्घकालीन ध्यान करें तो अन्त:स्थिति की भूमिका सहज प्राप्त हो सकती है। हठयोग का सूत्र है—

धारणां द्वादशगुणिता ध्यानं, ध्यानं द्वादशगुणितं समाधिः।

धारणा को बारह से गुणा करो, ध्यान की स्थिति आ जाएगी। ध्यान को बारह से गुणा करो, समाधि की स्थिति आ जाएगी। हमें समाधि की स्थिति को प्राप्त करना है। जिन व्यक्तियों के भीतर विशेष जिज्ञासा है, विशेष योग्यता और क्षमता है, कुछ होने की अभीप्सा और अर्हता है, उनको केवल धारणा पर नहीं अटकना चाहिए। ध्यान और समाधि को प्राप्त करने के लिए उन्हें विशेष प्रयत्न और पुरुषार्थ करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति स्वयं विकास करते हुए दूसरे का भी दिशा बोध कर सकते हैं।

साधना का उद्देश्य है—क्षमता को जगाना। साधना का एक ही उद्देश्य है—सुप्त शक्तियों का जागरण। जो अस्सी प्रतिशत ज्ञान की और कर्म की शक्तियां सोयी पड़ी रहती हैं, उन शक्तियों को जगाना, समाधि का प्रयोजन है। हम अपनी सुप्त शक्तियों को जगाएं। शक्तियां तब जागती हैं जब हम अपने प्रति जागरूक बनते हैं, अपना अनुभव करते हैं। अपने प्रति जागरूक बने बिना शक्तियों का जागरण नहीं होता। समाधि का अर्थ है—चैतन्य का अनुभव। जो व्यक्ति अपने चैतन्य का अनुभव करने लग जाता है उसकी सोयी हुई शक्तियां जागने लग जाती हैं। जितना-जितना चैतन्य का अनुभव होता है, उतना-उतना शक्ति का विकास होता है, शक्तियां जागने लग जाती हैं। धार्मिक लोगों का उद्देश्य है—आत्मदर्शन, आत्म-साक्षात्कार।

6.2.4 सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि

साधना का पहला बिन्दु है—समाधि का अनुभव, समाधि को उपलब्ध होना। प्रश्न उठता है कि समाधि की उपलब्धि कब हो सकती है? प्रतिक्रिया की निवृत्ति से ही समाधि का प्रारम्भ होता है। जितनी वृत्तियां हैं, वे सब प्रतिक्रियाएं हैं। क्रिया है अपना स्वतंत्र अस्तित्व, स्वतंत्र अनुभव। स्वरूपानुभव—यह है क्रिया। वृत्ति संवलित आचरण है—प्रतिक्रिया। प्रतिक्रिया का जीवन असमाधि का जीवन है। वृत्तियों के निरोध से ही समाधि की प्राप्ति होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पतंजलि के अनुसार वृत्तियां पांच हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

जैन परम्परा के अनुसार वृत्ति के स्थान पर संज्ञा शब्द प्रयुक्त किया गया है। संज्ञाएं दस हैं —

1. आहार संज्ञा 2. भय संज्ञा 3. मैथुन संज्ञा
4. परिग्रह संज्ञा 5. क्रोध संज्ञा 6. मान संज्ञा
7. माया संज्ञा 8. लोभ संज्ञा 9. ओघ संज्ञा 10. लोक संज्ञा।

पतंजलि का वृत्ति शब्द और जैनों का संज्ञा शब्द दोनों एकार्थक है। संज्ञा चित्त की विकसित और अविकसित दोनों अवस्था में ही रहती है। मनुष्य वृत्ति निरोध की अवस्था में जा सकता है। संज्ञातीत जीवन जी सकता है, लेकिन पशु में यह क्षमता नहीं है। पशु वृत्ति निरोध या संज्ञातीत जीवन के बारे में चिंतन ही नहीं कर सकता।

आगमकार ने इसके वाचक दो शब्द दिये हैं—एक है—संज्ञोपयुक्त जीवन और दूसरा है—नो संज्ञोपयुक्त जीवन। जो वृत्ति का जीवन है वह संज्ञोपयुक्त जीवन है और जो नो संज्ञोपयुक्त जीवन है वह समाधि का जीवन है। इस अवस्था में संज्ञाएं उपशांत रहती हैं अथवा क्षीण हो जाती हैं। जिस अवस्था में संज्ञाएं उपशांत रहती हैं वहां वीतराग चेतना या समाधि का प्रारम्भ होता है। जब संज्ञाएं पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती हैं तब वीतरागता पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। अतः वीतरागता का प्रारम्भ समाधि का आदि बिन्दु है और वीतरागता की पूर्णता समाधि का चरम बिन्दु है।

वृत्तियों का निरोध दो भागों में बांटा जा सकता है। एक है—सब वृत्तियों का निरोध और दूसरा है किसी एक वृत्ति का आलम्बन लेकर वृत्ति का निरोध करना। भाष्यकार व्यास लिखते हैं—'एकाग्रता निरोधमभिमुखं करोति'—अर्थात् एकाग्रता निरोध को अभिमुख करती है, वह निरोध की ओर ले जाती है। उत्तराध्ययन में उल्लेख है कि गौतम गणधर भगवान महावीर से पूछते हैं कि 'भंते! एगग्गसन्निवेसेणं जीवे किं जणयइ'—भन्ते! एकाग्रसन्निवेषेण से जीव क्या प्राप्त करता है? भगवान ने समाधान देते हुए कहा—'चित्त को किसी एक आलम्बन पर टिकाने से चित्त का निरोध होता है।' एकाग्रता जितनी पुष्ट होती है उतना ही चित्त का निरोध होता चला जाता है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार एकाग्रता का जो प्रारम्भिक बिन्दु है वह वृत्ति निरोध का प्रारम्भिक बिन्दु है। जैसे एकाग्रता पराकाष्ठा पर पहुंचती है, एकाग्रता की भूमिका समाप्त हो जाती है और निरोध की भूमिका प्राप्त हो जाती है। पहले एकाग्रता की समाधि प्राप्त होती है फिर निरोध की समाधि प्राप्त हो जाती है। पहली सम्प्रज्ञात समाधि है और दूसरी असम्प्रज्ञात समाधि है। सम्प्रज्ञात समाधि में वृत्ति का आलम्बन रहता है और असम्प्रज्ञात समाधि में वृत्ति का आलम्बन छूट जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

वृत्ति निरोध के जीवन में 'स्वरूपावस्थान' होता है। अर्थात् आत्मा अपने चैतन्य के अनुभव में स्थित हो जाती है।

आयारो में सूत्र प्राप्त होता है—'जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे'—जो अनन्य आत्मा को देखता है, केवल चैतन्य का अनुभव करता है, वह अनन्य में आरमण करने वाला अनन्यदर्शी होता है। जो अनन्य को देखता है वह अनन्य में आरमण करता है।

पतंजलि की भी यही भाषा है—'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं' उस अवस्था में जो द्रष्टा है वह स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, उसे ही समाधि की अवस्था कहा जाता है। चैतन्य का अनुभव हुए बिना, आत्म-स्वरूप का अनुभव हुए बिना, राग-द्वेष मुक्त क्षण के अनुभव से गुजरे बिना समाधि की अवस्था उपलब्ध नहीं हो सकती। न एकाग्रता की समाधि प्राप्त होती है और न ही निरोध की समाधि प्राप्त होती है। एकाग्रता की समाधि चित्त का परिकर्म हुए बिना भी प्राप्त हो सकती है, किंतु निरोध की समाधि में चित्त की आत्यन्तिक निर्मलता अपेक्षित होती है। एक शिकारी अपने शिकार पर निशाना साधता है, यह भी एकाग्रता की समाधि है, किंतु इसमें चित्त का परिकर्म नहीं है, राग-द्वेष की शून्यता नहीं है। इसलिए यह साधना की समाधि नहीं हो सकती, अपितु मूर्च्छा की समाधि है, नींद की समाधि है। निरोध की समाधि चैतन्य की समाधि है, जागृत समाधि है। यह समाधि उपलब्ध होती है स्वरूप की अवस्थिति में, जब चित्त का पूर्ण परिकर्म हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.2.5 चित्त परिकर्म के उपाय

पतंजलि के योग-दर्शन के साधना-पाद में चित्त परिकर्म के उपाय निर्दिष्ट हैं। चित्त समाधि के योग्य कैसे बन सकता है? चित्त का परिकर्म कैसे हो सकता है? परिकर्म शब्द उस समय का बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द रहा है। जैन, बौद्ध और योग—तीनों ही परम्पराओं में यह शब्द प्रचलित रहा है। इसका अर्थ है—संवारना, मांजना, साफ करना। सोने को तपा-गला कर उसका परिकर्म किया जाता है। उसकी भी एक निश्चित प्रक्रिया है। परिकर्म की प्रक्रिया समाधि की प्रक्रिया है। जब व्यक्ति समाधि के जीवन में नहीं होता, उस समय वृत्ति-सारूप्य होता है। हम बहुत बार देखते हैं व्यक्ति प्रातः स्नेहिल व्यवहार करता है और दिन की गर्मी बढ़ते-बढ़ते दिमाग गर्म हो जाता है तथा सांझ ढलते-ढलते झगड़ालू प्रवृत्ति का हो जाता है, ऐसा क्यों होता है? प्रातः और सायं में यह अन्तर क्यों पाया जाता है? इसका मूल कारण है वृत्तिसारूप्य। व्यक्ति अपने आप में कुछ भी नहीं है, वह एक टेप-रिकार्डर है। वह वृत्तियों का दास है, वृत्तियां जैसा करवाती है वह वैसा ही आचरण करने लग जाता है। व्यक्ति चाहे झूठ बोलता है, चोरी करता है, किसी को धोखा देता है, माया करता है, छलना करता है, घृणा करता है या प्रेम करता है सारा आचरण वृत्तियां करवा रही हैं। हमारा मन भी एक यंत्र है, वचन भी एक यंत्र है और शरीर भी एक यंत्र है। ये तीनों यंत्र वृत्तियों के अधीन हैं। जब तक हमारी वृत्तियां जीवित हैं तब तक ये तीनों यंत्र स्वतंत्र रह कर कार्य नहीं कर सकते। हमारा पूरा जीवन वृत्ति-सारूप्य का जीवन है। यह पूरा असमाधि का जीवन है।

इस प्रकार जीवन की दो धाराएं हो गयी—समाधि और असमाधि। चित्त-वृत्तियों पर नियंत्रण कर असमाधि की अवस्था से समाधि की अवस्था में प्रतिष्ठित हो सकते हैं।

6.2.6 चित्त की निर्मलता

साधना का सारा उपक्रम दर्शन और ज्ञान की शक्ति को विकसित करने के लिए है। समाधि का एक ही उद्देश्य है कि हम अपनी सहज उपलब्ध दर्शन और ज्ञान की शक्ति का उपयोग कर सकें, सत्य को देख सकें, सत्य को जान सकें।

प्रश्न है कि दर्शन और ज्ञान की शक्ति का विकास कैसे हो? इसका उत्तर भी सीधा है। जब चित्त की निर्मलता होती है तब दर्शन और ज्ञान की शक्ति बढ़ती है। चित्त की जितनी निर्मलता उतनी दर्शन और ज्ञान की क्षमता का विकास होता है।

6.2.7 शरीर की खोज

समाधि चाहने वाले व्यक्ति के लिए शरीर की खोज अत्यन्त अपेक्षित है। शरीर की खोज किये बिना चंचलता को समाप्त नहीं किया जा सकता और एकाग्रता के चरम-बिंदु का स्पर्श नहीं किया जा सकता। यद्यपि वस्तु-धर्म की खोज करने वाला व्यक्ति भी एकाग्र होता है, उसका शरीर स्थिर और शान्त होता है किंतु जितना मूल्य शरीर-प्रेक्षा का है, शरीर की सचाइयों को जानने का है उतना मूल्य प्रारम्भ में वस्तु-धर्म की खोज को नहीं दिया जा सकता।

6.2.8 श्वास का मूल्य

समाधि की साधना करने वाला साधक सबसे पहले श्वास का मूल्यांकन करता है। जो श्वास का मूल्य नहीं समझता है, वह समाधि की साधना नहीं कर सकता। जब श्वास शांत होता है तब वाणी अपने आप शांत हो जाती है। जब श्वास शांत होता है तब शरीर स्थिर हो जाता है। जब श्वास शांत होता है तब चित्त स्वयं स्थिर हो जाता है और मन अमन की स्थिति में चला जाता है। जब श्वास शांत होता है तब स्मृतियां, कल्पनाएं और विचार शांत हो जाते हैं। ये सब श्वास के साथ चलते हैं। सब श्वास के अनुगामी हैं। श्वास बहुत ही मूल्यवान् है।

प्राणवायु को समझना और उसे शांत करना समाधि के लिए पहला प्रस्थान है और उस पहले प्रस्थान की यात्रा करने के लिए श्वास को शांत करना दूसरा प्रस्थान है। जैसे-जैसे ये दोनों प्रस्थान स्पष्ट होते जाएंगे, वैसे-वैसे समाधि की यात्रा निर्विघ्न होती जाएगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.2.9 नियंत्रण का क्रम

समाधि की विधि का पहला सूत्र है—श्वास-नियंत्रण। श्वास पर जब नियंत्रण सध जाता है तब इन्द्रियों के संवेदन-केन्द्रों पर सहज नियंत्रण हो जाता है। संवेदन-केन्द्रों पर नियंत्रण करने पर विचार-नियंत्रण अपने आप हो जाता है। विचार की चंचलता को बढ़ाने वाले हैं—संवेदन। जब संवेदन आते हैं तब वैचारिक चंचलता बढ़ती है और तब मन को चंचल होना पड़ता है। जब संवेदन-केन्द्रों पर नियंत्रण हो जाता है तब विचारों पर नियंत्रण हो जाता है और जब विचार नियंत्रित हो जाते हैं तब मन की चंचलता मिट जाती है। जब संवेदन और विचार नियंत्रित होते है तब संवेग-नियंत्रण स्वत: प्राप्त हो जाता है। इन सब नियंत्रणों से भीतरी स्राव बदल जाते हैं। रासायनिक परिवर्तन घटित होता है। कर्मशास्त्रीय भाषा में कहें तो कर्म-विपाक बदलने लग जाता है। कर्म के चार कार्य हैं—1. स्वभाव का निर्माण, 2. काल-मर्यादा का निर्माण, 3. रस-विपाक का निर्माण, 4. योग्य परमाणुओं का संग्रह। जब आंतरिक परिवर्तन होने लगते हैं तब रसायन बदल जाता है। जब संवेदन, विचार और संवेगों पर नियंत्रण हो जाता है तब आदमी भीतर में पूरा जाग जाता है और बाहर का दरवाजा बंद हो जाता है। इस स्थिति में समाधि स्वत: घटित होने लगती है।

6.2.10 समाधियात्रा के चार पड़ाव

आत्मा को जानने की तड़प जागृत हो जाए तो भौतिक अनुकूलता-प्रतिकूलता की बाधा अपने आप दूर हो जाती है। श्रीमज्जयाचार्य ने लिखा है—

अनुकूल प्रतिकूल सम सही, तप विविध तपंदा।
चेतन तन भिन्न लेखवी, ध्यान शुक्ल ध्यावंदा।।

अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को समभाव से सहना, अनेक प्रकार के तप तपना, शरीर और आत्मा की भिन्नता का अनुभव करना और शुक्ल-ध्यान का प्रयोग करना—इन उपक्रमों से व्यक्ति के जीवन में समाधि उतरती है। ये चारों पड़ाव हैं, जो व्यक्ति को उत्तरोत्तर गहरी समाधि में ले जाने वाले हैं। इन पड़ावों को पार करने के बाद ही सम्पूर्ण समाधि या अन्तहीन आनन्द की उपलब्धि संभव हो सकती है।

6.2.11 योगवाहिता

योग वहन करने वाले मुनि की चर्या को योगवाहिता कहा जाता है। योगवहन का शब्दानुपाती अर्थ है—चित्त समाधि की विशिष्ट साधना। आगमश्रुत के अध्ययनकाल में योगवहन किया जाता था। प्रत्येक आगम तपस्यापूर्वक पढ़ा जाता था। आगम के अध्येता मुनि के लिए विशेष प्रकार की चर्या निर्दिष्ट होती थी। जैसे—

1. अल्पनिद्रा लेना।
2. प्रथम दो प्रहरों में श्रुत और अर्थ का बार-बार अभ्यास करना।
3. अध्येतव्य ग्रन्थ को छोड़ कर नया ग्रन्थ नहीं पढ़ना।
4. पहले जो कुछ सीखा हो उसे नहीं भुलाना।
5. हास्य, विकथा, कलह आदि न करना।
6. धीमे-धीमे शब्दों में बोलना, जोर से नहीं बोलना।
7. काम, क्रोध आदि का निग्रह करना। (ठाणं 3 : टिप्पण 36/88)

6.2.12 महाप्राण-ध्यान

प्राचीनकाल में जैन परम्परा में महाप्राण ध्यान की पद्धति प्रचलित थी। यह समाधि की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया थी। आचार्य भद्रबाहु ने बारह वर्ष तक महाप्राण-ध्यान की साधना की थी। जो महाप्राण-ध्यान में जाता है वह संसार से सर्वथा विलग हो जाता है, संसार से उसका कोई संपर्क नहीं रहता है। साधक गहरी समाधि की स्थिति में चला जाता है। यदि परिस्थितिवश साधक को अवधि से पहले सचेत करना होता है तो उसका एकमात्र उपाय है—पैर के अंगूठे को दबाना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

आचार्य पुष्यमित्र महाप्राण-ध्यान की साधना में लगे। एक शिष्य उनकी देख-रेख के लिए नियुक्त था। सब शिष्यों को पता नहीं था कि आचार्य विशिष्ट साधना में संलग्न हैं। शिष्यों के मन में ऊहा-पोह होने लगा, कुछ शिष्यों ने सोचा कि जरूर इस शिष्य ने आचार्य को मार दिया है, इसीलिए हमको भीतर नहीं जाने देता। यह चर्चा राजा तक भी पहुंच गयी। राजा आया और उसने उत्तर साधक से पूछताछ की। उसने कहा—आचार्य विशिष्ट साधना में संलग्न है। अभी उनकी साधना का काल पूरा नहीं हुआ है। राजा ने कहा—'मेरे जरूरी काम है, मैं अभी आचार्य से मिलना चाहता हूं।' उत्तर साधक अन्दर गया। आचार्य के पैर के अंगूठे को दबाया। आचार्य सचेत हो गये। उन्होंने कहा—'असमय में मुझे कैसे उठा दिया?' उत्तर साधक बोला—'कुछ ऐसा ही घटना-चक्र घटित हो गया, इसलिए मुझे आपको समाधि से बीच में ही जगाना पड़ा। ऐसी स्थिति में मैं क्या करूं?' प्रश्न हो सकता है कि अंगूठे का और ध्यान का क्या संबंध है? हमारे में समाधि घटित होती है—दर्शन-केन्द्र और ज्ञान-केन्द्र की गहराई में जाने से। अंगूठे में—ये दोनों केन्द्र हैं। यह सूक्ष्म-शरीर और स्थूल-शरीर का संगम बिंदु है। यह इडा और पिंगला का संगम स्थल है। जो व्यक्ति यहां तक पहुंच जाता है उसके समाधि घटित हो जाती है। साधक महाप्राण की स्थिति में चला जाता है।

हाथ और पैर बहुत ही महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। पांव को हम निकम्मा न मानें। जब हम भूमि पर चलते हैं तब एड़ी विद्युत ग्रहण कर सारे शरीर को पहुंचाती है।

जब हाथ का संयम—हाथ का शिथिलीकरण, पैर का संयम—पैर का शिथिलीकरण, वाणी का संयम—वाणी का शिथिलीकरण घटित होता है तब इन्द्रियों के तनाव कम हो जाते हैं। उनमें उठने वाली आकांक्षाओं की तरंगें कम हो जाती हैं। जब ऐसा घटित होता है तब अध्यात्म-रमण या अध्यात्म की यात्रा शुरू हो जाती है, आत्मा समाधि में चली जाती है।

6.3 समाधि का महत्त्व

अनुप्रेक्षा की एक महत्त्वपूर्ण निष्पत्ति है समाधि। जीवन का सबसे बड़ा विज्ञान है समाधि। जिस व्यक्ति को समाधि उपलब्ध हो जाती है उसकी दूसरी सारी विशेषताएं नीचे रह जाती हैं। समाधि से संपन्न व्यक्ति कभी अत्राण और अशरण की समस्या से संत्रस्त नहीं होता। समाधि की उपलब्धि तब होती है जब व्यक्ति आधि, व्याधि और उपाधि की समस्या से ऊपर उठ जाता है।

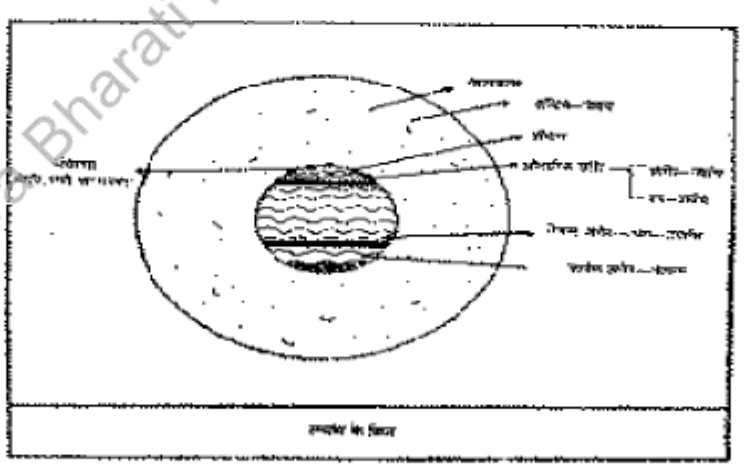

समाधि के लिए तीनों से पार जाना जरूरी होता है। जो व्यक्ति निरंतर बीमार रहता है वह समाधि को कैसे प्राप्त हो सकता है? जिसका मन जटिल उलझनों से भरा रहता है, वह व्यक्ति भी समाधि को कैसे प्राप्त कर सकेगा? जिस व्यक्ति के मन में उपाधि की आकांक्षा भरी रहती है, मन कषाय से मलिन रहता है वह भी समाधि को कैसे प्राप्त कर सकेगा। इन सब समस्याओं से पार पाने पर ही समाधि के बिन्दु को उपलब्ध किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्त होने का चुनाव व्यक्ति स्वयं करता है तभी वह सही दिशा को प्राप्त कर सकता है। समाधि हमारे जीवन की दिशा है। समाधि हमारे जीवन का मार्ग है। यह जीवन जीने की एक पद्धति है। जो इस जीवन पद्धति को समझ लेता है, जीवन की कला को समझ लेता है जो जीवन विज्ञान को समझ लेता है वह शांत और सहज जीवन जीता है। समाधि की साधना समग्र जीवन की साधना है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा द्वारा जैसे-जैसे देखने और जानने का अभ्यास बढ़ता है, चैतन्य-केन्द्रों में होने वाले प्रकम्पनों को जानने का, राग-द्वेष मुक्त जीने का अभ्यास होता है, साधना सधाती है, अनुभव की तीव्रता का विकास होता है तो साधक समाधि को प्राप्त कर लेता है। साधक जीवन यात्रा को चलाते हुए भी व्यवहार की भूमिका पर करणीय कार्य करते हुए भी समाधि को प्राप्त कर अच्छे साधक का जीवन जी सकता है।

इसीलिए समाधि की अभ्यर्थना करने वाला साधक, समाधि को उपलब्ध करने की भावना को रखने वाला साधक, दर्शन और ज्ञान की क्षमता को विकसित करने वाला साधक यदि अनुप्रेक्षा का अवलम्बन लेता है। अनुप्रेक्षा के प्रयोगों के माध्यम से वस्तु-सत्यों को खोजता है, जानता है तो वह समाधि को प्राप्त कर लेता है।

6.3.1 प्रेक्षा की निष्पत्ति : समाधि

व्याधि, आधि और उपाधि—ये तीन अवरोधक हैं। इनको समाप्त करने पर इनकी सीमाओं को पार करने पर समाधि की सीमा प्रारम्भ होती है। समाधि का अनुभव, स्वास्थ्य का अनुभव, परम आनन्द का अनुभव, वीतरागता का अनुभव—यह सब तीनों अवरोधों को तोड़ने पर ही हो सकता है।

प्रेक्षा-ध्यान समाधि तक पहुंचने की प्रक्रिया है। समाधि तक पहुंचने के लिए व्याधि, आधि और उपाधि को देखना, समझना और उन पर नियंत्रण करना होता है। प्रेक्षा-ध्यान यह सब करने के लिए व्यक्ति को सन्नद्ध करता है।

समाधि है आत्म-रमण की अवस्था। जो व्यक्ति आत्मा के जितना निकट रहता है, वह उतना ही अधिक समाधि का अनुभव करता है। इन्द्रिय-संयम, अस्वाद-वृत्ति, अप्रतिबद्धता, अनिदानता, असंचय, अनासक्ति, अनुप्रेक्षा आदि ऐसे निमित्त हैं, जो समाधि में सहयोगी बनते हैं। समाधि की स्थिति में जो सुख या आनन्द मिलता है, वह चक्रवर्ती को भी नहीं मिल पाता।

6.3.2 समाधि की अवस्था

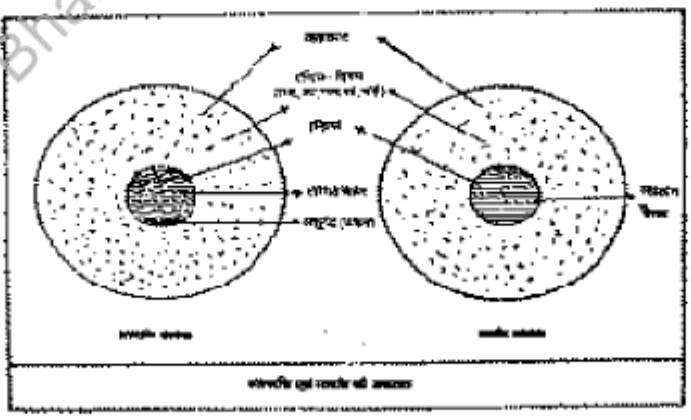

समाधि का अर्थ है केवल चैतन्य का अनुभव जब केवल चैतन्य का अनुभव होने लगता है तब भीतर के सारे शब्द, रूप बंद हो जाते हैं। तब न भीतर का शब्द सताता है और न भीतर का रूप सताता है। न शब्द की तरंग, न रूप की शृंखला, न गंध की लहर, न रस की अनुभूति और न स्पर्श का अनुभव। न संकल्प और न विकल्प। सब कुछ शांत, शांत और शांत। सारी तरंगें शांत, सारा तूफान और बवंडर शांत। भीतर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का सारा समुद्र शांत हो जाता है। उसमें कोई तरंग नहीं उठती। वह अथाह समुद्र शांत और निस्तरंग हो जाता है। यह है समाधि का चरम-बिन्दु। न बाहर का कोई शब्द सुनाई देता है और न भीतर से कोई शब्द की तरंग उठती है। न बाहर का कोई रूप दिखाई देता है और न भीतर से रूप की कोई कल्पना उभरती है। न कोई भाव बाहर से मन को उद्दीप्त करता है और न अंतर में कोई संकल्प-विकल्प जागता है। बाहर से भी ये शब्द समाप्त और भीतर में भी ये शब्द समाप्त हो जाते हैं। केवल चेतना का समुद्र निस्तरंग और शांत-अवस्थित रहता है। यह है समाधि की अवस्था।

बोध प्रश्न 1:

1. वृत्तियों का निरोध किस प्रकार किया जा सकता है?
2. समाधि के लिए श्वास का नियंत्रण क्यों आवश्यक है?
3. महाप्राण ध्यान क्या है

6.3.3 समाधि है अपने भीतर

हम ध्यान की अवस्था में जाएं और पूरक करें। पूरक करते समय यह संकल्प करें—'पवित्र और वीतराग आत्मा जिसका आनन्द अबाधित है, शक्ति पूर्ण जागृत है, शक्ति के स्रोत उद्घाटित हैं, जिसकी चेतना अनावृत हो चुकी है, चित्त को निर्मल करने वाली उस महाशक्ति को मैं श्वास के साथ भीतर ले जा रहा हूं और चेतना के कण-कण में उसे व्याप्त कर रहा हूं।' इस संकल्प के साथ पूरक करें। यह भी समाधि का सशक्त उपाय है। इसका अभ्यास पुष्ट होने पर यह अनुभव होगा कि नयी चेतना, नयी शक्ति और अजस्र आनन्द का प्रवाह प्रवाहित हो रहा है।

हम रेचन और पूरक का अभ्यास भावना के साथ करें। हमारी आवृत शक्तियां अनावृत होंगी और समाधि का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

6.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. चित्त समाधि के स्वरूप का विस्तृत विवेचन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि का वर्णन करें।
2. समाधि के सहत्त्व का विवेचन करें।

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक वाक्य या एक लाइन में उत्तर दें)

1. मानसिक शांति का सबसे बड़ा उपाय है क्या है?
2. चित्त का निरोध कब होता है? 3. साधना का उद्देश्य क्या है?
4. समाधि की विधि का पहला सूत्र क्या है? 5. समाधि का अर्थ क्या है?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. व्यक्ति अपने आप में कुछ भी नहीं है, वह एक.....है।
2. जीवन का सबसे बड़ा विज्ञान है.....।
3. अंतर् अनुभूति की स्थिति समाधि की.....है।
4. योग वहन करने वाले मुनि की चर्या को.....कहा जाता है।
5. समाधि चाहने वाले व्यक्ति के लिए.....की खोज अत्यन्त अपेक्षित है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. अपना दर्पण : अपना बिम्ब—आचार्य महाप्रज्ञ
2. मनन और मूल्यांकन—आचार्य महाप्रज्ञ
3. आभामण्डल—आचार्य महाप्रज्ञ
4. प्रेक्षा-ध्यान : अनुप्रेक्षा—आचार्य महाप्रज्ञ
5. अमूर्त्त चिन्तन—आचार्य महाप्रज्ञ
6. अप्पाणं शरणं गच्छामि—आचार्य महाप्रज्ञ
7. लघुता से प्रभुता मिले—आचार्य तुलसी
8. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—आचार्य महाप्रज्ञ, संपादक—मुनि धर्मेश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–7 : चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा : आध्यात्मिक–वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं प्रक्रिया

संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा : आध्यात्मिक दृष्टिकोण
  7.2.1 हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व
  7.2.2 आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर
  7.2.3 ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र
  7.2.4 लेश्या और चैतन्यकेन्द्र
  7.2.5 विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र
  7.2.6 तीन शक्ति के स्रोत
7.3 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा : वैज्ञानिक दृष्टिकोण
  7.3.1 अन्तस्रावी ग्रन्थि तंत्र
  7.3.2 चैतन्यकेन्द्र और ग्रन्थि तंत्र
  7.3.3 चरित्र का स्रोत क्या है?
    7.3.3.1 चरित्र का सम्बन्ध है ग्रन्थि तंत्र से
    7.3.3.2 भाव और चरित्र
    7.3.3.3 भाव और ग्रन्थि तंत्र
  7.3.4 सौर मण्डल और नमस्कार महामंत्र
7.4 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा की प्रक्रिया
7.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
7.6 संदर्भ ग्रंथ

7.0 प्रस्तावना

चेतना के असंख्य प्रदेश हैं। सबके सब चैतन्य केन्द्र हैं। विज्ञान की भाषा में पूरा शरीर विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र (इलेक्ट्रोमेग्नेटिक फिल्ड) है। किंतु कुछ स्थान ऐसे हैं जहां चेतना अधिक सघन होती है जिन्हें चैतन्य केन्द्र कहते हैं। हमारा चित्त स्वभावत: सिर से पैर तक चक्कर लगाता रहता है। उस यात्रा पथ में चित्त जिस साइकिक सेन्टर, जिस केन्द्र और जिस ग्रन्थि का स्पर्श करता है, जहां चेतना सघन हो जाती है उसी स्थान की स्मृति जाग जाती है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति में कभी अच्छे विचार और कभी बुरे विचार जागते रहते हैं, कभी ईर्ष्या, कभी घृणा, कभी प्रेम, कभी भय, कभी क्रोध, कभी लोभ, कभी अहंकार न जाने कितने भाव बदलते हैं। इस रहस्य का अवबोध जीवन यात्रा को सुगम बना देता है। जो व्यक्ति अपने स्वभाव और आदत को बदलना चाहता है वह यदि चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का प्रयोग करता है तो उसके जीवन में रूपांतरण घटित होना अवश्यम्भावी है। विशुद्धि केन्द्र, दर्शन केन्द्र, ज्योति केन्द्र, शांति केन्द्र, ज्ञान केन्द्र पर ध्यान का प्रयोग करने से हमारा व्यवहार एवं आचरण पवित्र बनता है, अपने आप के ऊपर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास होता है।

7.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ कर आप निम्न तथ्यों से परिचित हो सकेंगे।

1. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा : आध्यात्मिक दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व क्या है? जान सकेंगे।
3. आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर पद्धतियों से परिचित हो सकेंगे।
4. ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र से परिचित हो सकेंगे।
5. लेश्या और चैतन्य केन्द्रों के संबंधों से परिचित हो सकेंगे।
6. विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र क्या हैं? परिचित हो सकेंगे।
7. तीन शक्ति के स्रोतों को जान सकेंगे।
8. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण समझ सकेंगे।
9. अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र को समझ सकेंगे।
10. चैतन्यकेन्द्र और ग्रन्थि-तंत्र के संबंधों को समझ सकेंगे।
11. चरित्र का स्रोत क्या है? खोज सकेंगे।
12. चरित्र का संबंध है ग्रन्थि-तंत्र से, इसे समझ सकेंगे।
13. भाव और चरित्र के संबंधों को समझ सकेंगे।
14. भाव और ग्रन्थितंत्र के संबंधों को समझ सकेंगे।
15. सौर मण्डल और नमस्कार महामंत्र से परिचित हो सकेंगे।
16. चैतन्य-केन्द्रप्रेक्षा की प्रक्रिया से परिचित हो सकेंगे।

7.2 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा : आध्यात्मिक दृष्टिकोण

चैतन्य-केन्द्रप्रेक्षा आत्म-साक्षात्कार का प्रयोग है। इस प्रयोग को समझने के लिए हमारे शरीर एवं आत्मा दोनों को समझने की आवश्यकता है। जब तक दोनें का हमें अच्छी तरह से ज्ञान न हो तब तक हम इस प्रयोग को अच्छी तरह से नहीं कर सकते। आत्मा चेतन है और शरीर जड़ है—दोनों के संबंधों को समझ कर ही हम चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का वास्तविक लाभ उठा सकते हैं।

7.2.1 हमारा द्वैतात्मक अस्तित्व

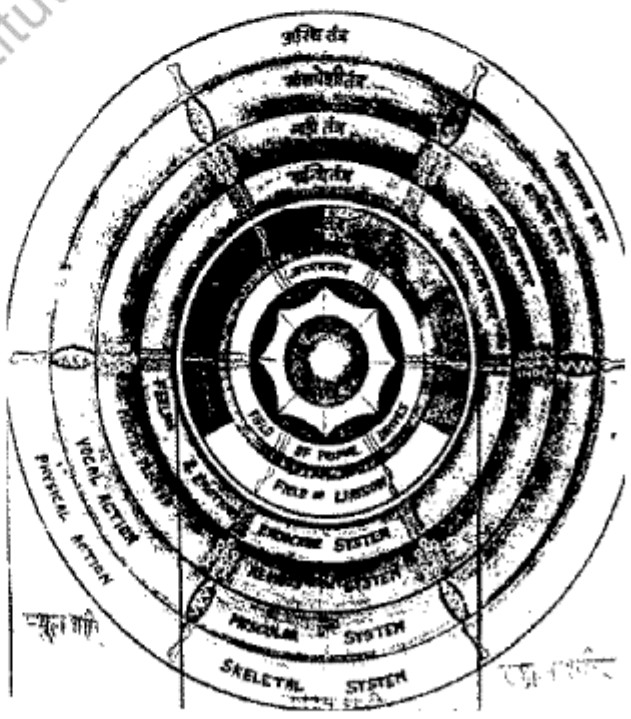

आत्मवादी दर्शन हमें इस सत्य का अनुभूत कराता ह ाक हमारा आस्तत्व द्वतात्मक ह—दा तत्त्वों का संयोग है। एक है चेतन तत्त्व जीव और दूसरा है अचेतन तत्त्व शरीर। यह द्वैत तब तक बना रहता है जब

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तक चेतना विशुद्धतम स्वरूप को उपलब्ध नहीं कर लेती। द्वैतात्मक स्थिति में हमारे अभौतिक चैतन्यमय तत्त्व (आत्मा) को अपने सुख-दु:ख के संवेदन के लिए तथा क्रियात्मक प्रवृत्ति के लिए एक स्थूल शरीर से ही काम नहीं चलता, अपितु सूक्ष्म शरीरों की अपेक्षा भी बनी रहती है। हमारे व्यक्तित्व की व्यूह-रचना बहुत जटिल है। रचनाक्रम इस प्रकार बनता है—सम्पूर्ण व्यक्तित्व के केन्द्र में है—चैतन्य-तत्त्व—द्रव्य आत्मा या मूल आत्मा। उस केन्द्र से बाहर परिधि में अतिसूक्ष्म शरीर यानी कार्मण शरीर है जो कषाय के वलय को पैदा करता है। केन्द्र से चैतन्य तत्त्व के जो स्पन्दन निकलते हैं, वे कषाय-तंत्र को पार कर बाहर आते हैं। वह है—अध्यवसाय का तंत्र। यह स्थूल-शरीर सूक्ष्म-शरीर—तैजस् शरीर के साथ सक्रिय होकर काम करता है।

इस प्रकार हमारे मौलिक मनोवेगों, पाशवी आवेगों एवं कामुकता पर नियंत्रण प्राप्त करने लिए जो हमारे विवेक और प्रज्ञा को जगाता है और हमें उन पर प्रभुत्व प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है वह हमारी सूक्ष्म चैतन्यशील आत्मा ही है।

7.2.2 आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर

भगवती सूत्र में बतलाया गया—'सव्वेणं सव्वे' हमारी आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, वे सब चैतन्य-केन्द्र हैं। कुछ विशेष स्थानों में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की अपेक्षा अनेक गुना अधिक होती हैं। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियां, अन्त:स्रावी ग्रन्थियां ऐसे ही केन्द्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन चैतन्य-केन्द्रों को मर्मस्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने ऐसे 105, 107 मर्मस्थान बतलाए हैं। इन मर्मस्थानों में प्राण का केन्द्रीकरण होता है। ये रहस्य के स्थान हैं। यहां चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। प्रेक्षा-ध्यान के चैतन्य-केन्द्र और आयुर्वेद के मर्मस्थानों में स्थान की दृष्टि से और महत्त्व की दृष्टि से अद्भुत समानता है।

एक्यूपंक्चर के चिकित्सकों ने हमारे शरीर में ऐसे 700 से अधिक केन्द्र खोज निकाले हैं, जिन्हें सूई द्वारा उत्तेजित करने पर अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्सा की जाती है। अनेक असाध्य रोगों का उपचार किया जाता है। एक्यूपंक्चर और एक्यूप्रेशर में माना गया है—जो केन्द्र हमारे मस्तिष्क में हैं, वे हमारे अंगूठे में भी हैं। ये केन्द्र एक-दूसरे से संबद्ध हैं। इस प्रकार मर्मस्थान, एक्यूपंक्चर के पोइंट्स्, अन्त:स्रावी ग्रन्थियां—ये सब चैतन्य-केन्द्र से संबद्ध और प्रभावित हैं।

चैतन्य-केन्द्र सब अवयवों में सक्रियता का संचार करने वाले हैं। ये इन्द्रियों को भी संचालित करते हैं और मन को भी संचालित करते हैं। उनकी क्रियाओं को संतुलित करना साधना का मुख्य अंग है। यह कार्य चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है।

7.2.3 ज्ञानकेन्द्र और कामकेन्द्र

हमारे पूरे शरीर में अनगिनत चैतन्य-केन्द्र हैं उन चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा करने से उनकी अतीन्द्रियज्ञान की क्षमता अभिव्यक्त होने लग जाती है। चैतन्यकेन्द्र निर्मल बनते हैं तब प्रज्ञा का जागरण होता है। चैतन्यकेन्द्रों की निर्मलता को बढ़ाने के लिए ही प्रेक्षा का प्रयोग करवाया जाता है। सारे चैतन्यकेन्द्रों को हम संक्षेप में दो भागों में बांट सकते हैं। वृत्ति या वासना के केन्द्र तथा ज्ञान या विवेक के केन्द्र। जब हमारे चित्त की यात्रा अधोगामी होती है, प्राण की गति नीचे की ओर होती है तब वृत्तियों के केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं और ज्ञानकेन्द्र कमजोर हो जाते हैं। जब हमारे चित्त की यात्रा ऊर्ध्वगामी होती है, प्राण का प्रवाह ऊपर की ओर होता है तो ज्ञान एवं विवेक के केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं और वृत्तियों के केन्द्र कमजोर हो जाते हैं। आवश्यकता है कि हम प्रयोग के द्वारा निरंतर अपने प्राण के प्रवाह को ऊर्ध्वगामी बनाएं।

7.2.4 लेश्या और चैतन्य केन्द्र

हमारे शरीर में अनेक चैतन्य-केन्द्र हैं। आर्त्त, रौद्रध्यान होता है तब अशुद्ध लेश्या होती है। उस स्थिति में चैतन्य-केन्द्र सुप्त रहते हैं। धर्म और शुक्ल ध्यान होता है तब लेश्या शुद्ध होती है। उस स्थिति में चैतन्य-केन्द्र जागृत हो जाते हैं। चैतन्य-केन्द्र हमारी चेतना और शक्ति की अभिव्यक्ति के स्रोत हैं। उन्हें जागृत करने की दो पद्धतियां हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. विशुद्ध लेश्या की भावधारा द्वारा चैतन्य-केन्द्र अपने आप जागृत हो जाते हैं।

2. चैतन्य-केन्द्रों पर अवधान नियोजित करने पर वे भी जागृत हो जाते हैं।

महावीर ने इसीलिए अप्रमाद का सूत्र दिया कि अप्रमत्त रहने वाले व्यक्ति की लेश्या शुद्ध होती है तब चैतन्य-केन्द्र स्वत: ही जागृत हो जाते हैं और ये चैतन्य-केन्द्र अप्रमत्त रहने के आलंबन भी बनते हैं। सुप्त-चैतन्य-केन्द्रों पर मन विचरण करता है तब कृष्ण, नील और कापोत लेश्या की भावधारा उभरती है। चैतन्य-केन्द्रों के जागृत हो जाने पर तेजस्, पद्म और शुक्ल लेश्या की भावधारा बनती है।

अप्रमत्त अवस्था में अध्यवसाय (अचेतन मन) शुद्ध बनता है। उससे लेश्या शुद्ध होती है। उसके शुद्ध होने पर ही मनुष्य का स्वभाव बदल सकता है, अदतों में परिवर्तन आ सकता है, रुचि और आकांक्षा को नया मोड़ दिया जा सकता है। लेश्या की शुद्धि हुए बिना जीवन-परिवर्तन की दिशा में एक पैर भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। व्यक्तित्व के परिष्कार का महत्वपूर्ण सूत्र है—लेश्या का विशुद्धीकरण, लेश्या के विशुद्धीकरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—शुद्ध अध्यवसाय और शुद्ध अध्यवसाय का आधार है—धर्म और शुक्ल ध्यान। ध्यान और लेश्या में गहरा संबंध है। ध्यान अशुद्ध होता है तो लेश्या अशुद्ध हो जाती है, आभामंडल विकृत बन जाता है। ध्यान शुद्ध होता है लेश्या शुद्ध हो जाती है, आभामंडल स्वच्छ और निर्मल बन जाता है।

7.2.5 विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र

हमारे इस स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म शरीर के भीतर एक सूक्ष्मतर शरीर तथा उस सूक्ष्मतर शरीर के भीतर है चेतना। चेतना बाहर नहीं आती जब तक कि उस पर ढक्कन रहता है। ढक्कन को हम यदि जालीदार बना सकते हैं तो वह चेतन बाहर आ सकती है। यह ध्यान की प्रक्रिया दाएं-बाएं, आगे-पीछे, देखने की प्रक्रिया है, इस शरीर को विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र बनाने की प्रक्रिया है। यदि हम अपने शरीर को विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र बना सकें तो वह जे भीतर में प्रकाश है वह छन-छन कर बाहर आ सकता है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक भीतर-ही-भीतर चेतना रह जाएगी, बाहर नहीं आ पाएगी। यह देखने की जो प्रक्रिया है, वह शरीर को विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र बनाने की प्रक्रिया है। हम आगे से देखते हैं, आगे का हिस्सा विद्युत्-चुम्बकीय बन जाता है। पीछे से देखते हैं तो पीछे का बन जाता है। दाएं-बाएं देखते हैं तो दाएं-बाएं बन जाता है। मध्य में देखते हैं तो मध्य का बन जाता है। पूरे शरीर को देखते हैं तो पूरा शरीर विद्युत्-चुम्बकीय बन जाता है। हमारा पूरा शरीर चैतन्यकेन्द्रों का शरीर है। चारों ओर चैतन्यकेन्द्र हैं। (अतीन्द्रियज्ञान एवं चैतन्य-केन्द्रों की विस्तृत जानकारी के लिए देखें एम. ए. उत्तरार्द्ध, पंचम-पत्र—अध्यात्म और विज्ञान, इकाई-5 : परामनोविज्ञान एवं अध्यात्म-II, पाठ-18 : शरीर में विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों का निर्माण—चैतन्य केन्द्र और करण—अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के लिए प्रेक्षा-ध्यान।)

7.2.6 तीन शक्ति के स्रोत

ऊर्जा संवर्धन के लिए चैतन्य-केन्द्रों, शक्ति-संवर्धनों की खोज बहुत जरूरी है। यह खोज जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, सूक्ष्मतर शरीर या कारण की शक्तियों के बारे में हमारी जानकारी बढ़ती जाती है। हम पहले स्थूल शरीर से ही चलें। हमारे स्थूल शरीर में शक्ति के तीन बड़े केन्द्र हैं। एक नीचे का भाग जिसे शक्ति-केन्द्र कहा जाता है—रीढ़ की हड्डी का निचला सिरा या गुदा का भाग। दूसरा नाभि का भाग और तीसरा कंठ का भाग। ये हमारे शरीर में तीन बड़े शक्ति के स्रोत हैं। कंठ तक शक्ति के स्रोत और इनसे ऊपर हैं हमारी चेतना के स्रोत। ये तीनों बहुत बड़े केन्द्र हैं। नाभि का भाग बहुत महत्त्वपूर्ण है और खतरनाक भी है। सारे खतरे नाभि के पास पैदा होते हैं। जिस व्यक्ति की चेतना नाभि के आस-पास घूमती है, वह बहुत खतरों में फंस जाता है। क्रोध, उत्तेजना, भय, वासना—सारे इन पांच, छह अंगुल के क्षेत्र में फैले हुए हैं। जो अपनी चेतना को नाभि के आसपास ही घुमाता है वह व्यक्ति बहुत खतरों में फंस जाता है। किंतु यह नाभि का क्षेत्र बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। कोई भी साधना करने वाला व्यक्ति जब तक नाभि के केन्द्र को, इस प्राण-शक्ति के केन्द्र को जागृत नहीं कर लेता, अच्छी तरह नहीं समझ लेता तब

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तक वह आगे नहीं बढ़ सकता। आगे बढ़ने के लिए शक्ति चाहिए। यह नाभि का केन्द्र बड़ा विस्फोटक पदार्थ है। जो साधक उसका उपयोग करता है विस्फोटक सामग्री के रूप में, उसे बड़ी शक्ति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति इस ऊर्जा को, इस शक्ति को नहीं समझता वह बड़ा काम नहीं कर सकता। चेतना की बड़ी उपलब्धि करने के लिए तैजस्-केन्द्र को जागृत करना जरूरी है। हम तैजस्-केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस बात की सावधानी के साथ कि यह खतरनाक काम है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ का कहना है कि इस पर ध्यान करते हैं—पांच-पांच मिनट और समय आने पर आधा-आधा घंटा कर लेते हैं, किंतु जहां खतरे होते हैं वहां सावधानी भी बरती जाती है। तैजस्-केन्द्र पर ध्यान करने वाला, नाभि पर ध्यान करने वाला खतरों से बच सकता है। जो इस क्षेत्र में चलता है वह बहुत बड़ी कठिनाइयां उठा लेता है। एक व्यक्ति आचार्य श्री के पास आया और बोला, "मैंने योग की कुछ पुस्तकें पढ़ी, मैंने नाभि पर ध्यान केन्द्रित करना शुरु कर दिया, क्योंकि इसका काफी महत्त्व लिखा था। परिणाम यह हुआ कि मेरा गुस्सा बढ़ गया, वासना बढ़ गयी, मैं तो और कठिनाइयों में फंस गया। मैं जो प्रयत्न कर रहा था उनसे छुट्टी पाने के लिए किंतु अधिक कठिनाइयों में फंस गया।" आचार्य श्री ने कहा—"तुमने गलत काम किया, ऐसा नही करना चाहिए था। यह पढ़ा लेकिन जब तक पूरी बात को नहीं जान लो तब तक बात ठीक नहीं होती। पूरी बात जान लेनी चाहिए और पूरी बात जान लेने पर खतरे भी अपने आप कम हो जाते हैं। केवल नाभि पर ध्यान करेंगे, खतरनाक काम होगा। नाभि पर ध्यान किया और दूसरा विशुद्धि-केन्द्र हमारा कण्ठ है उस पर ध्यान केन्द्रित कर लें तो खतरे सारे टल जायेंगे। ध्यानशक्ति का विकास हो जाएगा। किंतु यहां शक्ति के विकास के साथ-साथ जो खतरा पैदा होता है, जो वासनाएं, जो भय, जो प्रवृत्तियां पनपती हैं (एड्रीनल ग्लैण्ड से अधिक एड्रीनेलीन का स्राव होता है, वह प्रवृत्तियों को उभारता है) उनका शमन करने के लिए विशुद्धि-केन्द्र पर (कण्ठ पर) ध्यान किया जाये तो वह दबाव उनका कम हो जाएगा और शक्ति का संवर्धन हो जाएगा।"

हमें नियमों को समझना बहुत जरूरी है। जब तक नियमों को नहीं जान लेते तब तक शरीर के रहस्यों को नहीं जान सकते, केवल एक बात को पकड़ कर हम चलते हैं तो कठिनाई पैदा होती है।

दूसरा केन्द्र है—गुदा का भाग। रीढ़ की हड्डी का निचला सिरा जहां स्पाइनलकॉर्ड पूरा होता है, उसके नीचे बहुत पतले-पतले जैसे चांदी के तार हों, जाल बिछा हुआ है। बहुत बड़ी शक्ति का स्रोत है। वहां बहुत बड़ी शक्ति है। जो प्राण-ऊर्जा नाभि के आसपास पैदा होती है, वही तो शक्ति को जेनेरेट करती है और उसका भण्डार होता है शक्ति-केन्द्र में।

तीसरा भण्डार है—हमारा विशुद्धि-केन्द्र। यह बहुत बड़ा शक्ति का स्रोत है। शरीरशास्त्र को पढ़ने वाला विद्यार्थी यह जानता है कि थायरायड ग्लैण्ड ठीक काम नहीं करती है तो शरीर की सारी क्रियाएं गड़बड़ा जाती हैं। हमारा चयापचय ठीक नहीं होता। पुरानी कोशिकाओं का मिटना और नयी कोशिकाओं का निर्माण होना सारा मिट जाता है तो शरीर की सारी स्थिति गड़बड़ा जाती है।

थायराइड का काम ठीक नहीं होता है तो आदमी या तो नाटा बन जाता है या बड़ा भयंकर बन जाता है। फिर दस फीट से भी ज्यादा आगे बढ़ने लग जाता है। यह बहुत बड़ा शक्ति का केन्द्र है हमारा। इन तीनों शक्ति-केन्द्रों का विकास कर लेने पर फिर चेतना के विशिष्ट केन्द्रों को जागृत करने की हमारी क्षमता बढ़ जाती है, मानसिक क्षमताएं भी बढ़ जाती हैं।

बोध प्रश्न 1:

---

1. चैतन्यकेन्द्र और आयुर्वेद में क्या सम्बन्ध है?

2. क्या लेश्याध्यान के द्वारा चैतन्यकेन्द्रों को जागृत किया जा सकता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

मनुष्य अपनी आदतों-वृत्तियों से परेशान रहता है। अपने आपको बदलना चाहता है पर बदल नहीं पाता। आदतों-वृत्तियों, भावों का परिष्कार करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि अशुद्धि कहां उत्पन्न होती है और कहां प्रकट होती है। इस पूरी प्रक्रिया को जान लेने पर परिष्कार करना आसान हो जाता है। शरीर-विज्ञान के अनुसार मानव शरीर के दो महत्त्वपूर्ण भाग हैं—एक है नाड़ी-तंत्र और दूसरा है ग्रन्थि-तंत्र। ग्रन्थियां भी दो प्रकार की होती हैं। वाहिनी युक्त तथा वाहिनी रहित। वाहिनी रहित ग्रन्थियां हैं—पीनियल, पिच्युटरी, थायराइड, पेराथायराइड, थाइमस, एड्रिनल और गोनाड्स आदि। इन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थियां कहा जाता है। इनके स्रावों के माध्यम से हमारी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक प्रवृत्तियों का संचालन होता है। नाड़ी-तंत्र में वृत्तियां अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव में आती हैं फिर व्यवहार में उतरती हैं। ग्रन्थि-तंत्र में जन्मी आदतें मस्तिष्क में पहुंचती हैं, अभिव्यक्त होती हैं और व्यवहार में उतरती हैं। इसलिए विज्ञान में एक नये शब्द का प्रयोग हुआ—न्यूरो-एण्डोक्राइन सिस्टम—इसका अर्थ है—ग्रन्थि-तंत्र व नाड़ी-तंत्र का संयुक्त कार्य तंत्र। यह संयुक्त तंत्र अर्ध-चेतन मन है, जो मस्तिष्क को भी प्रभावित करता है। यदि चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा के द्वारा इस संयुक्त-तंत्र को परिष्कृत किया जाता है तो अवांछनीय स्वभाव और आदतों की उत्पत्ति व अभिव्यक्ति से छुटकारा मिल सकता है।

थाइराइड ग्रन्थि मूलतः शरीर में ऊर्जा उत्पादन का अवयव है। चयापचय

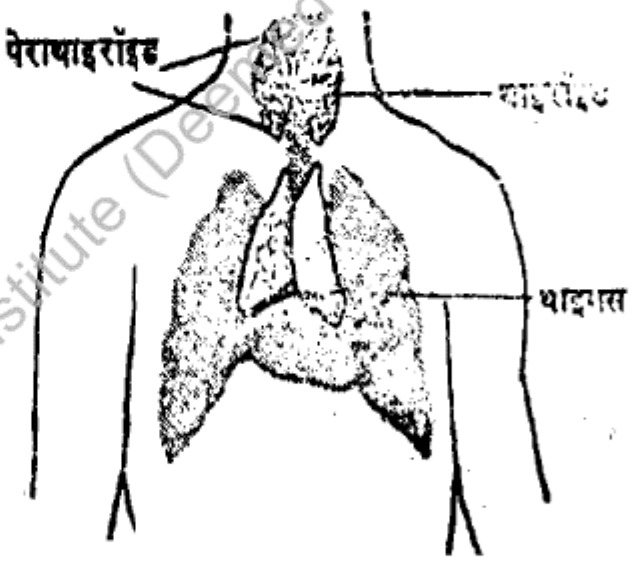

7.3.1 अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र

ज्यों ही हम अस्तित्व के द्वैत को स्वीकार करते हैं, हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भौतिक (स्थूल) शरीर और अभौतिक (सूक्ष्म) आत्मा के बीच में परस्पर संचार व्यवहार के लिए कोई संचार माध्यम की आवश्यकता होगी। अर्थात् शरीर के भीतर ही कोई ऐसी अन्तर्निर्मित व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके माध्यम से हमारा सूक्ष्म चेतन तत्त्व अपनी शक्ति और प्रभुत्व को क्रियान्वित कर स्थूल भौतिक अवयवों—अस्थि, मांस और जैविक रसायनों का नियंत्रण/ नियमन कर सके। इस व्यवस्था में हमारी चेतना की अति सूक्ष्म और अमूर्त्त अभिव्यक्तियों के स्थूलीकरण की तथा अभौतिक आदेशों की भौतिक स्तर पर क्रियान्विति की क्षमता होनी चाहिए। यह आंतरिक संचार माध्यम और कोई नहीं अपितु हमारे शरीर का अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र है, जो हमारे अस्तित्व के दोनों स्तरों—सूक्ष्म चेतना तथा स्थूल भौतिक शरीर के बीच कम्प्यूटर या परिवर्तक (ट्रांसफार्मर) का कार्य करता है। इसके लिए वह हार्मोन नामक रासायनिक पदार्थों का उत्पादन एवं प्रसारण करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

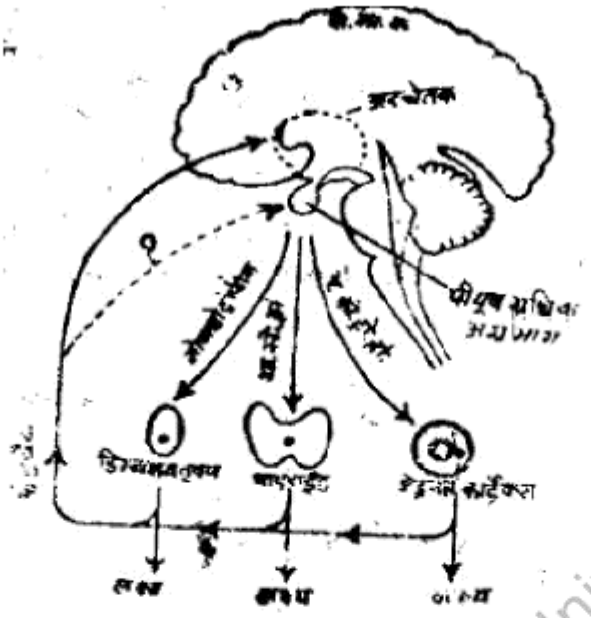

7.3.2 चैतन्यकेन्द्र और ग्रन्थि-तंत्र

दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिकित्सक—सभी एकमत से यह बात स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति की भावधारा और मनोदशाओं के साथ इन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के साथ गहरा संबंध है। हमारी सारी चैतन्य क्रियाओं का संचालन ग्रन्थि-तंत्र द्वारा होता है, अतः उन ग्रन्थियों को चैतन्य-केन्द्र की संज्ञा दी गयी है।

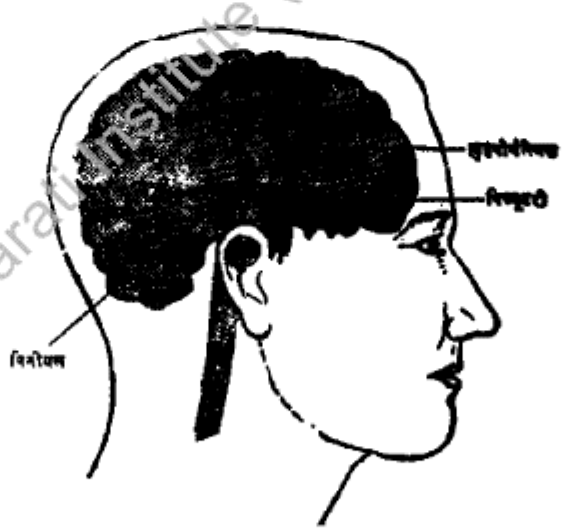

डॉ. एम. डब्ल्यू. काप (**Kapp**) एम. डी. ने अपनी पुस्तक (**Glands our invisible Gnardians**) में लिखा है—'हमारे भीतर जो ग्रन्थियां हैं, वे क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण विकृत बनती हैं।' गोनाड्स और एड्रीनल वृत्तियों का उद्गम स्थल माना जाता है। जहां भय, आवेग, क्रूरता, वैर, मूर्च्छा आदि उत्पन्न होते हैं, प्रेक्षा-ध्यान में जिसे स्वास्थ्य-केन्द्र कहा जाता है। प्रेक्षा-ध्यान के अभ्यास द्वारा चैतन्यकेन्द्रों को परिष्कृत किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

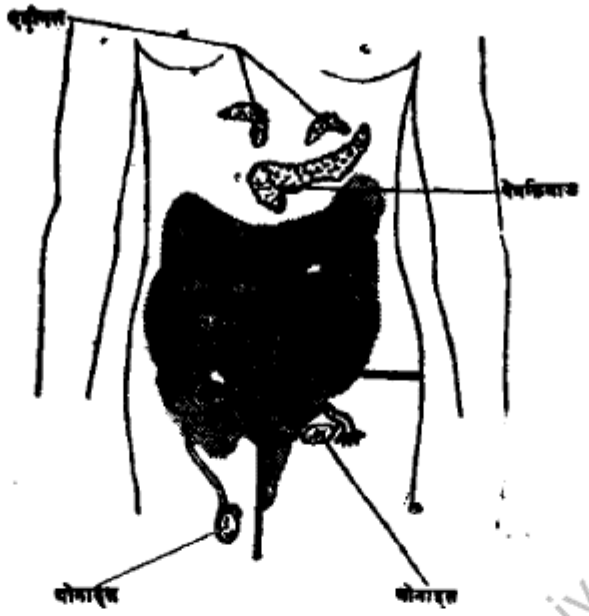

हमारे शरीर में अनेक ग्रन्थियां हैं। योग के प्राचीन आचार्यों ने जिन्हें चक्र कहा है। आज के शरीरशास्त्री उन्हें ग्लैण्ड्स कहते हैं। प्रेक्षा-ध्यान पद्धति में उनका नाम है—चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा। उनका स्थान और वे किन-किन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से संबंधित है, यह निम्न चार्ट से समझा जा सकता है।

चैतन्य केन्द्र नाम	किस ग्रन्थि से संबंधित	स्थान
1. शक्ति केन्द्र	गोनाड्स (काम ग्रन्थि)	पृष्ठरज्जु के नीचे का छोर
2. स्वास्थ्य केन्द्र	गोनाड्स (काम ग्रन्थि)	नाभि से चार अंगुल नीचे
3. तैजस केन्द्र	एड्रिनल	नाभि
4. आनन्द केन्द्र	थाइमस	हृदय के पास जहां गड्ढा है
5. विशुद्धि केन्द्र	थायराइड	कण्ठ के मध्य भाग में
6. ब्रह्म केन्द्र	रसनेन्द्रिय	जिह्वाग्र
7. प्राण केन्द्र	घ्राणेन्द्रिय	नासाग्र
8. चाक्षुष केन्द्र	चक्षुरिन्द्रिय	दोनों आंखों के भीतर
9. अप्रमाद केन्द्र	श्रोत्रेन्द्रिय	दोनों कानों की लोल
10. दर्शन केन्द्र	पिच्यूटरी	दोनों भृकुटियों के मध्य में
11. ज्योति केन्द्र	पीनियल	ललाट के मध्य में
12. शांति केन्द्र	हाइपोथेलेमस	मस्तिष्क का अग्र भाग
13. ज्ञान केन्द्र	बृहत्मस्तिष्क	सिर के ऊपर चोटी का स्थान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3.3 चरित्र का स्रोत क्या है?

शिष्य के मन में जिज्ञासा उभरी। वह समाधान पाने के लिए गुरु की सन्निधि में उपस्थित हुआ। गुरु को नमस्कार कर निवेदन किया—गुरुदेव! मन में एक जिज्ञासा है—

कुतश्चरित्रमायाति, विचारादथवा मतेः।
चरित्रस्रोतसो ज्ञानं, कर्तुमिच्छामि संप्रति।।

चरित्र कहां से आता है? वह विचार से पैदा होता है या बुद्धि से? चरित्र का स्रोत क्या है?

गुरु ने पूछा—वत्स! तुम्हारे मन में यह प्रश्न क्यों आया? क्या कोई उलझन है?

शिष्य ने कहा—गुरुदेव! आज तक मैं यह मानता था, आदमी के चरित्र का संबंध विचार से है। विचार अच्छा है तो चरित्र अच्छा होगा। विचार बुरा है तो चरित्र बुरा हो जाएगा। मेरे मन में यह संदेह पैदा हो गया है—व्यक्ति विचार के स्तर पर सब कुछ समझ लेता है, विचार अच्छा भी बन जाता है किंतु जब भीतर से मांग उठती है, आंतरिक इच्छा प्रबल बनती है तब विचारों का बांध टूट जाता है। मैंने सोचा—चरित्र का स्रोत आखिर क्या है? इसका संबंध हमारी बुद्धि से है अथवा विचार-धारा से है। मैं चरित्र के मूल स्रोत को जानना चाहता हूं?

गुरु ने कहा—तुम्हारा प्रश्न ठीक है। जब तक चरित्र के मूल स्रोत को नहीं समझा जाता तब तक चरित्र में बदलाव संभव नहीं हो पाता। चरित्र का संबंध विचार से नहीं हो सकता क्योंकि विचारों के महल को कांच के महल की तरह एक पत्थर के टुकड़े से एक क्षण में तोड़ा जा सकता है। विचार की स्थिति इतनी नाजुक होती है कि वह कभी चरित्र का स्रोत नहीं बन सकता। चरित्र का स्रोत है आंतरिक वृत्तियां। चरित्र का स्रोत है कर्मशरीर। सारा सच्चरित्र या दुश्चरित्र कर्मशरीर से आ रहा है।

नो मतिर्नो विचारश्च, चरित्रस्रोत इष्यते।
विशुद्धा चेतनान्तःस्था, चरित्रं जनयत्यसौ।।

7.3.3.1 चरित्र का संबंध है ग्रन्थि-तंत्र से

चरित्र का स्रोत बहुत गहरा है। शरीरविज्ञान के क्षेत्र में पहले यह माना जाता था कि मस्तिष्क ही सब कुछ है। हमारी सारी प्रवृत्तियां मस्तिष्क से होती हैं किंतु आज यह तथ्य स्पष्ट हो गया है कि चरित्र का संबंध मस्तिष्क से नहीं ग्रन्थि-तंत्र से है। विचार मस्तिष्क में पैदा होता है किंतु मस्तिष्क उससे प्रभावित नहीं होता है। क्रोध और क्षमा, अहंकार और विनम्रता, कपट और ऋजुता, लोभ और संतोष—इन सबका संबंध मस्तिष्क से नहीं है। चारित्रिक क्षुद्रता और चारित्रिक उदात्तता—दोनों का संबंध ग्रन्थि-तंत्र के साथ है, मस्तिष्क के साथ नहीं है। एक व्यक्ति का मस्तिष्क बहुत तेज चलता है, वह समझदार भी है पर चरित्रनिष्ठ नहीं है। इसका कारण है चरित्र का संबंध मस्तिष्क से नहीं ग्रन्थि-तंत्र से है।

7.3.3.2 भाव और चरित्र

हमारे सारे भाव चरित्र के साथ जुड़े हुए हैं। कर्म शरीर के स्पंदन तैजस शरीर में आते हैं। तैजस शरीर के स्पंदन स्थूल शरीर में आते हैं और वे ग्रन्थि-तंत्र को प्रभावित करते हैं। नाड़ी-तंत्र और ग्रन्थि-तंत्र ये शरीर के दो महत्त्वपूर्ण तंत्र हैं। यद्यपि दोनों तंत्र आपस में जुड़े हुए हैं फिर भी भावों का संचालन ग्रन्थि-तंत्र के द्वारा होता है।

7.3.3.3 भाव और ग्रन्थितंत्र

भावों को प्रभावित करने का उपादान कारण है—अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव। निमित्त कारण हैं परिस्थितियां। यद्यपि जीवन में दोनों का बदलाव जरूरी है फिर भी हमें आन्तरिक उपादानों के परिष्कार को प्राथमिकता देनी होगी। हमारे सूक्ष्म शरीर में जिस प्रकार के रस विपाक हो रहे हैं, उनके आधार पर सारा जीवन चक्र चल रहा है। ग्रन्थियों के जो स्राव होते हैं, उनके जो विपाक होते हैं वे हमारी प्रवृत्तियों का संचालन करते हैं। इस तथ्य का विज्ञाता साधक ध्यान की गहराई में उतरते उतरते उस मूल सूक्ष्म-शरीर तक पहुंच जाता है जो स्राव कर्मों के द्वारा निःसृत हो रहे हैं। साधक फिर और गहराई में उतर कर उन स्रावों तक पहुंच जाता है जो कि आत्म-परिणामों से प्रवाहित होते हैं। साधना की उस उच्च अवस्था में साधक उन प्रशस्त रसायनों को विशुद्ध चैतन्य केन्द्रों की ओर प्रवाहित करके वृत्तियों पर नियंत्रण पा लेता है। अशुभ लेश्याओं से दूर रह कर शुभ लेश्याओं में प्रविष्ट हो सकता है। एक प्राचीन ग्रन्थ के अनुसार नाभि-कमल की एक पंखुड़ी पर जब आत्म-परिणाम (चित्त) जाता है तब क्रोध की वृत्ति जागती है, जब दूसरी-तीसरी-चौथी पर जाता है तब क्रमशः मान, माया और वासना की वृत्ति जागृत होती है। ठीक इसके विपरीत जब आत्म-परिणाम (चित्त)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हृदय-कमल की पंखुड़ियों पर जाता है तब समता की वृत्ति जागती है, ज्ञान विकास में वृद्धि होती है। जब आत्म-परिणाम (चित्त) ज्ञान-केन्द्र पर रमण करता है तब केवल-ज्ञान की क्षमता जागृत हो सकती है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ की 'मनन और मूल्यांकन' नामक कृति में उल्लेख मिलता है कि हठयोग में भी स्रावों का काफी वर्णन प्राप्त होता है। हमारे शरीर में स्राव होते हैं। जैसे चन्द्रमा से अमृत झर रहा है वैसे ही सिर से भी अमृत झर रहा है ऐसा कहा जाता है आज जब ग्रन्थि-तंत्र को पढ़ते हैं कि अमुक अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के हार्मोन्स का स्राव अमुक अमुक स्थितियों को प्रभावित करता है। जैन-दर्शन में औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक—ये पांच भाव माने गए हैं। इन पांच भावों के साथ ग्रन्थियों के स्रावों की चर्चा की जा सकती है।

क्षायिक भाव में सारे परिणाम शांत हो जाते हैं, किंतु क्षायोपशमिक भाव में वे शांत और उदित रहते हैं। एक शांत होता है, दूसरा परिणाम उदय में आ जाता है। दूसरा शांत होता है पहला उदय में आ जाता है। शांत और उदित का क्रम चलता रहता है। कर्म का उदय भी होता रहता है और कर्म का विपाक शांत भी होता रहता है। अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव भी परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। पूरी प्रक्रिया चलती है, एक परिणाम बीतता है, फिर दूसरा परिणाम उदय में आ जाता है। दो विरोधी प्रकृतियां एक साथ उदय में नहीं आती। सातवेदनीय और असातवेदनीय, सुख का संवेदन और दु:ख का संवेदन—दोनों एक साथ नहीं होते। निद्रा और जागरण दोनों एक साथ नहीं होते। जितनी विरोधी प्रकृतियां हैं उनमें से एक उदय में आती है और दूसरी शांत हो जाती हैं। जैसे ही निमित्त बदला वह उदय में आ जाएगी और जो उदय में थी वह शांत अवस्था में चली जाएगी। क्षयोपशम तक यह प्रक्रिया चलती रहती है। हमारे जितने क्षायोपशमिक भाव हैं, उनमें परिणामों की यह धारा चलती रहती है। एक अच्छा विचार आया बुरा विचार दब गया और बुरा विचार आया तो अच्छा विचार दब गया। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। हम ज्ञान का अभ्यास करते हैं, ज्ञान का आवरण दूर होता है। जैसे ही अभ्यास बन्द किया पुन: आवरण आ जाता है। उपर्युक्त भावों के आधार पर हमारी अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव भी बदलते रहते हैं। इस प्रकार चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा के द्वारा हम भावों का परिष्कार कर अपने अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करने में सफल हो सकते हैं।

7.3.4 सौर मण्डल और नमस्कार महामंत्र

हम 'णमो सिद्धाणं' का उच्चारण करते हैं। यह सिद्धाणं सूर्य का सूचक है। हमारे शरीर के भीतर सूरज है, चांद भी है, बुद्ध, गुरु, शुक्र, शनि और राहु-केतु भी हैं। हमारे शरीर के भीतर पूरा सौर मण्डल है। इस सौर मण्डल को पुराने हठयोग के आचार्यों ने चक्र कहा। आज के शरीरशास्त्री इसे प्लेक्षस् कहते हैं। जितने ग्लैण्डस् हैं, अन्त:स्रावी ग्रन्थियां हैं—पीनियल, पिच्युटरी, थायराइड आदि-आदि और एड्रीनल—ये सारे के सारे सौर मण्डल हैं। प्रेक्षा-ध्यान की परिभाषा में इन्हें चैतन्य-केन्द्र कहते हैं। ये चैतन्य-केन्द्र हैं। यह हमारे भीतर का सौरमण्डल है। जिस व्यक्ति का सूरज कमजोर बन गया तो उसकी बुद्धि कमजोर बन जाएगी। जिस व्यक्ति का बुद्ध और बृहस्पति कमजोर बन गया तो उस व्यक्ति की विवेक शक्ति और चिंतन शक्ति कमजोर बन जाएगी। जिस व्यक्ति का चन्द्रमा कमजोर बन गया तो उस व्यक्ति का मन दुर्बल बन जाएगा, स्वास्थ्य भी कमजोर बन जाएगा। भीतर का सौर मण्डल कमजोर बनता है, किसी ज्योतिषी को कुंडली दिखाओ तो कहेगा—इस ग्रह का प्रभाव ठीक नहीं हो रहा है और ये गड़बड़ियां पैदा हो रही हैं।

नमस्कार महामंत्र के द्वारा अपने भीतर के सौर मण्डल को शक्तिशाली बनाया जा सकता है, शारीरिक और मानसिक बल को अधिक विकसित किया जा सकता है। हम जब नमस्कार महामंत्र का भावना के साथ उच्चारण करते हैं तो उस उच्चारण के पांच चैतन्य-केन्द्र होते हैं। णमो अरिहंताणं—इसका ध्यान किया जाता है मस्तिष्क पर। यह ज्ञान-केन्द्र है हमारा। णमो सिद्धाणं—इसका ध्यान किया जाता है दर्शनकेन्द्र पर। दोनों भृकुटि और दोनों आखों के बीच। णमो आयरियाणं—इसका ध्यान किया जाता है विशुद्धिकेन्द्र पर, यानी थायराइड पर, कंठ का मध्य भाग कंठमणि पर। णमो उवज्झायाणं का ध्यान किया जाता है आनन्दकेन्द्र पर। हृदय के पास जो गड्ढा है उसे आनन्दकेन्द्र या अनाहतचक्र कहते हैं। णमो लोए सव्वसाहूणं का ध्यान किया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाता है शक्तिकेन्द्र पर, जो रीढ़ की हड्डी के निचले सिरे में है और ऐसा लगता है कि असंख्य चांदी के चमकते हुए तार विभक्त हो रहे हैं। वहां इसका ध्यान किया जाता है।

बोध प्रश्न 2:

1. चैतन्यकेन्द्र और ग्रन्थियों का क्या सम्बन्ध है?
2. स्रावों का हमारे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है?

7.4 चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा की प्रक्रिया

चैतन्य-केन्द्रप्रेक्षा जागरण की प्रक्रिया है। सुप्त चैतन्य-केन्द्रों को प्रेक्षा के द्वारा जागृत किया जाता है। चैतन्य-केन्द्रप्रेक्षा में प्रत्येक केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता, पूरी जागरूकता बनी रहे। केवल देखें, केवल जानें। अनुभव करें, दृष्टा भाव से प्रेक्षा करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक मस्तिष्क के पीछे की दीवार तक पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। सुप्त चैतन्य केन्द्रों को प्रेक्षा के द्वारा जागृत करें। प्रत्येक केन्द्र पर ध्यान करें और वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। यह सुझाव प्रारम्भ में एक-दो बार दें।

चैतन्य केन्द्र स्थान और नाम

1. शक्ति-केन्द्र

चित्त को शक्ति-केन्द्र—पृष्ठ रज्जु के नीचले सिरे पर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल शक्ति-केन्द्र के प्रति गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ शक्ति-केन्द्र की प्रेक्षा करें। पूरी एकाग्रता बनी रहे।

2. स्वास्थ्य-केन्द्र

चित्त को स्वास्थ्य-केन्द्र—पेडू के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक चित्त के प्रकाश को फैलाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

3. तैजस-केन्द्र

चित्त को तैजस-केन्द्र—नाभि के स्थान पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक चित्त के प्रकाश को फैलाएं। जैसे टार्च का प्रकाश सीधी रेखा में फैलता है, वैसे ही चित्त के प्रकाश को सीधी रेखा में फैलाएं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ प्रेक्षा करें, जिससे स्वत: ही श्वास संयम हो जाए।

4. आनन्द-केन्द्र

चित्त को आनन्द-केन्द्र—हृदय के पास (दोनों फुप्फुस के बीच में) जो गड्ढा है, वहां पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक टॉर्च के प्रकाश की भांति चित्त के प्रकाश को फैलाएं और वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच-बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।

5. विशुद्धि-केन्द्र

चित्त को विशुद्धि-केन्द्र—कण्ठ के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्ना तक चित्त के प्रकाश को पृष्ठ भाग में फैलाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच-बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।

6. ब्रह्म-केन्द्र

चित्त को ब्रह्म-केन्द्र—जीभ के अग्र भाग पर केन्द्रित करें। जीभ अधर में रहे। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

7. प्राण-केन्द्र

चित्त को प्राण-केन्द्र—नासाग्र पर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

8. अप्रमाद-केन्द्र

चित्त को अप्रमाद-केन्द्र—दोनों कानों पर—भीतरी, मध्य और बाहरी भाग पर तथा आस-पास के भाग पर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

9. चाक्षुष-केन्द्र

चित्त को चाक्षुष-केन्द्र—दोनों आंखों के भीतर केन्द्रित करें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

10. दर्शन-केन्द्र

चित्त को दर्शन-केन्द्र—दोनों आंखों और भृकुटियों के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। भीतर गहराई तक ले जाएं। आगे से पीछे—मस्तिष्क के पीछे दीवार तक चित्त के प्रकाश को फैला दें। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ केवल अनुभव करें, प्रेक्षा करें। बीच-बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।

11. ज्योति-केन्द्र

चित्त को ज्योति-केन्द्र—ललाट के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं। आगे से पीछे—मस्तिष्क के पीछे के भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच-बीच मे श्वास संयम का प्रयोग करें।

12. शांति-केन्द्र

चित्त को शांति-केन्द्र—सिर के अग्र भाग पर केन्द्रित करें, जैसे दीये का प्रकाश चारों दिशाओं में फैलता है वैसे ही चित्त के प्रकाश को चारों दिशाओं में फैलाएं। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

13. ज्ञान-केन्द्र

चित्त को ज्ञान-केन्द्र—सिर के ऊपर के भाग, चोटी के स्थान पर केन्द्रित करें। दीये के प्रकाश की भांति पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। गहराई तक चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अब एक साथ सभी चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा करें। जो खड़े-खड़े कर सकते हैं, वे खड़े-खड़े करें।

1. चित्त को शक्ति-केन्द्र पर ले जाएं, फिर क्रमशः स्वास्थ्य-केन्द्र, तैजस-केन्द्र, आनन्द-केन्द्र आदि प्रत्येक चैतन्य-केन्द्र की यात्रा करते हुए पुनः शक्ति-केन्द्र पर ले आएं।
2. वृत्ताकार में सभी चैतन्य-केन्द्रों पर चित्त की यात्रा चलें।
3. तेजी के साथ चित्त को सभी चैतन्य-केन्द्रों पर घुमाएं। वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

7.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विवेचन करें।

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा की प्रक्रिया को लिखें।
2. आयुर्वेद और एक्यूपंक्चर पद्धतियों में चैतन्यकेन्द्रों की अवधारणा का विवेचन करें।
3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक वाक्य या लाइन में उत्तर दें)

1. प्रेक्षा-ध्यान में कितने चैतन्य-केन्द्र माने गये हैं?
2. क्या हमारे शरीर के भीतर पूरा सौर मण्डल है?
3. डॉ. एम. डब्ल्यू. काप (**Kapp**) एम. डी. ने कौन-सी पुस्तक लिखी है?
4. आभामण्डल पुस्तक के रचयिता कौन हैं?
5. हमारा चित्त स्वभावतः कहां तक चक्कर लगाता रहता है?

3. रिक्त स्थान की पूर्ति करें-

1. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा जागरण की.....है।
2. चरित्र का स्रोत है.....।
3. चैतन्य-केन्द्र हमारी.....की अभिव्यक्ति के स्रोत हैं।
4. हमें.....को समझना बहुत जरूरी है।
5. चैतन्य-केन्द्रप्रेक्षा आत्म-साक्षात्कार का.....है।

7.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रेक्षा-ध्यान पत्रिका : नवम्बर, 1997
2. मनन और मूल्यांकन—आचार्य महाप्रज्ञ
3. अपना दर्पण : अपना बिम्ब—आचार्य महाप्रज्ञ
4. आभामण्डल—आचार्य महाप्रज्ञ
5. जैनयोग—आचार्य महाप्रज्ञ
6. एकला चलो रे—आचार्य महाप्रज्ञ
7. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—आचार्य महाप्रज्ञ, संपादक—मुनि धर्मेश
8. प्रेक्षा-ध्यान : प्रयोग-पद्धति—आचार्य महाप्रज्ञ
9. प्रेक्षा-ध्यान : चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा—आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–8 : चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा : प्रयोजन एवं निष्पत्तियां

संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का प्रयोजन
  8.2.1 विवेक चेतना का विकास
  8.2.2 अन्त:स्रावी ग्रन्थि तंत्र का संतुलन
  8.2.3 अवचेतन मन से सम्पर्क
8.3 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा की निष्पत्तियां
  8.3.1 शारीरिक निष्पत्ति
  8.3.2 मानसिक निष्पत्ति
  8.3.3 आध्यात्मिक निष्पत्ति
  8.3.4 आदतों का परिवर्तन
  8.3.5 अन्त:करण का परिवर्तन
  8.3.6 चैतन्यकेन्द्र का प्रभाव
  8.3.7 चैतन्यकेन्द्रों की निर्मलता
  8.3.8 आनन्दकेन्द्र का जागरण
  8.3.9 शक्ति का जागरण
  8.3.10 रसनेन्द्रिय और काम केन्द्र
  8.3.11 रसना संयम : काम संयम
  8.3.12 ऊर्जा की ऊर्ध्व यात्रा
  8.3.13 दर्शन केन्द्र : शक्ति का अजस्र स्रोत
  8.3.14 विद्युत का परिवर्तन
8.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
8.5 संदर्भ ग्रंथ

8.0. प्रस्तावना

चरित्र का संबंध विचार के साथ नहीं, आन्तरिक चेतना के साथ, वृत्तियों के साथ हैं। जब तक वृत्तियों का परिष्कार नहीं होता तब तक चेतना का परिष्कार संभव नहीं हो सकता। इसका हार्द यह है कि जब तक चैतन्य के स्रोतों का परिष्कार नहीं होगा तब तक समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

8.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ कर आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

1. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा के प्रयोजन को समझ सकेंगे।
2. विवेक-चेतना का विकास कर सकेंगे।
3. अन्त:स्रावी ग्रन्थि-तंत्र का संतुलन कर सकेंगे।
4. अवचेतन मन से संपर्क कर सकेंगे।
5. चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा की निष्पत्तियों को जान सकेंगे।
6. शारीरिक निष्पत्तियों को समझ सकेंगे।
7. मानसिक निष्पत्तियों को समझ सकेंगे।
8. आध्यात्मिक निष्पत्तियों को समझ सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. आदतों का परिवर्तन कर सकेंगे।
10. अन्तःकरण का परिवर्तन कर सकेंगे।
11. चैतन्यकेन्द्रों के प्रभाव से प्रभावित हो सकेंगे।
12. चैतन्यकेन्द्रों को निर्मल बना सकेंगे।
13. आनन्दकेन्द्र का जागरण कर सकेंगे।
14. शक्ति को जागृत कर सकेंगे।
15. रसनेन्द्रिय और काम केन्द्र के संबंध को समझ सकेंगे।
16. रसना-संयम : काम-संयम का प्रयोग कर सकेंगे।
17. ऊर्जा की ऊर्ध्वयात्रा कर सकेंगे।
18. दर्शन केन्द्र : शक्ति का अजस्र स्रोत है, उससे परिचित हो सकेंगे।
19. विद्युत् का रासायनिक परिवर्तन कर सकेंगे।

8.2 चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का प्रयोजन

8.2.1 विवेक-चेतना का विकास

प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इसका जागरण नहीं होता तब तक मनुष्य अपने चेतन मन के द्वारा केवल बुद्धि और तर्क के आधार पर ही अपनी वृत्तियों की मांग पर विचार-विमर्श करता है। उसमें विवेक चेतना का उपयोग नहीं करता। वस्तुतः उसकी बौद्धिक और तार्किक शक्ति पर वृत्तियां इतनी हावी हो जाती हैं कि वह उन की मांग के औचित्य और अनौचित्य पर चिंतन नहीं कर पाती, सही निर्णय करने में असमर्थ रहती है। ऐसी स्थिति में उसका चेतन मन वृत्तियों की मांग को उचित ठहराने हेतु कोई-न-कोई तर्क या युक्ति ढूंढ निकालता है। इसलिए मौलिक मनोवृत्तियों के प्रेरक बलों पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने विलक्षण वैशिष्ट्य को उजागर करे, जिसे 'विवेक चेतना' या 'विवेकपूर्ण तर्क' कहा जाता है। यह अपेक्षा है कि समस्त शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक प्रवृत्तियों पर विवेक चेतना का नियंत्रण हो।

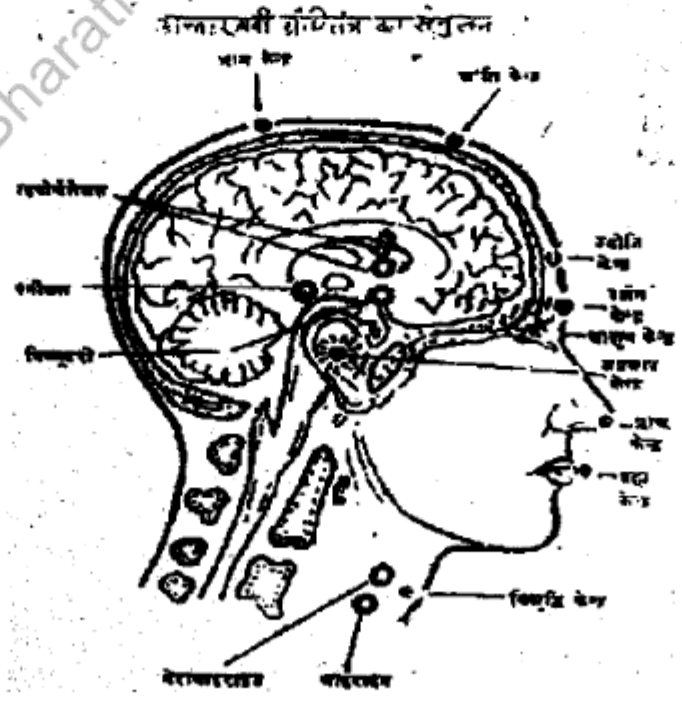

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.2.2 अन्त:स्रावी ग्रन्थि-तंत्र का संतुलन

वृत्तियों के आवेगात्मक बलों के उद्दीपन या शमन करने की मूलभूत चाबी है—अन्त:स्रावी ग्रन्थियां। इसलिए ये ही चैतन्य-केन्द्रों के संवादी केन्द्र हैं। अन्त:स्रावी ग्रन्थि-तंत्र का असंतुलन मस्तिष्क को प्रभावित करता है और चिंतन-धारा को दूषित या विकृत बनाता है। उदाहरणत: गोनाड्स की अधिक सक्रियता मन को विषय-वासना या भय के चिंतन में लगाए रखती है। चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का अभ्यास अन्त:स्रावी ग्रन्थि-तंत्र के संतुलन को पुन: स्थापित कर व्यक्ति की विवेक चेतना के विकास द्वारा चेतन मन की सम्यक् चिंतन शक्ति को प्रबल बना सकता है तथा मौलिक मनोवृत्तियों के आवेगों को क्षीण कर सकता है।

8.2.3 अवचेतन मन से संपर्क

हमारे शरीर में जितनी भी ग्रन्थियां हैं, वे सब अर्ध-चेतन मन हैं। वे मस्तिष्क को भी प्रभावित करती हैं, इसलिए वे मस्तिष्क से भी ज्यादा मूल्यवान हैं। यदि इन्हें सही साधनों के द्वारा जागृत कर लिया जाता है तो हमें भय से मुक्ति मिल सकती है। भय से मुक्त होने का अर्थ है समस्त बाधाओं से मुक्त हो जाना। जब हम चैतन्यकेन्द्रों के ऊपर ध्यान करते हैं तो वे सब संतुलित हो जाते हैं। जब उनका संतुलन सधता है तो आवेश, आवेग की सारी बाधाएं दूर हो जाती हैं। नया उल्लास, नया आनन्द, नयी स्फूर्ति का संचार होता है।

मनोविज्ञान मानता है कि जो बात हमारे स्थूल मन तक पहुंचती है वह कारगर नहीं होती। उससे व्यक्ति के स्वभाव और आदतों में परिवर्तन नही हो सकता तथा व्यक्ति तरंगातीत अवस्था में भी नहीं पहुंच सकता। जब हम दर्शनकेन्द्र पर ध्यान करते हैं तब हमारा विचार, हमारा संकल्प अन्तर्मन तक पहुंच जाता है। वह संकल्प लेश्या-तंत्र और अध्यवसाय-तंत्र तक पहुंच जाता है तब व्यक्ति तरंगातीत अवस्था में पहुंच जाता है और परिवर्तन घटित होने लग जाता है।

8.3 चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा की निष्पत्तियां

8.3.1 शारीरिक निष्पत्ति

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा से शारीरिक रसायन बदलते हैं। रासायनिक संतुलन के दो मुख्य स्रोत हैं—एक पिच्यूटरी, दूसरा एड्रीनल। ध्यान के द्वारा इन ग्रन्थियों के स्रावों में परिवर्तन होता है। पिच्यूटरी और पीनियल पर प्रेक्षा-ध्यान का प्रयोग करने से दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र सक्रिय होते हैं। पीनियल ग्लैंड एड्रीनल तथा गोनाड्स पर नियंत्रण स्थापित करती है, जिससे कामवृत्तियां अनुशासित हो जाती हैं तथा आवेग कम हो जाते हैं। अपूर्व आनन्द की वृत्ति जागती है।

8.3.2 मानसिक निष्पत्ति

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा से मानसिक संतुलन सधता है। अनुकूल प्रतिकूल परिस्थियों में भी मन संतुलित रह सकता है, समता का विकास होता है। वास्तव में सुख-दु:ख, राग-द्वेष, प्रिय-अप्रिय की स्थिति में भी तटस्थ भाव अर्थात् समत्व की प्राप्ति हो जाती है।

8.3.3 आध्यात्मिक निष्पत्ति

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा से आध्यात्मिक विकास होता है। वृत्तियों और आदतों का परिष्कार होने से स्वभाव में परिवर्तन आता है। अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के स्रावों में रासायनिक परिवर्तन होने का अर्थ है कर्म विपाक में परिवर्तन जो कि अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

8.3.4 आदतों का परिवर्तन

आध्यात्मिक निष्पत्ति का प्रथम सूत्र है आदतों में बदलाव। ध्यान करें और जीवन में बदलाव न आए, यह हो नहीं सकता। ध्यान करने से पूर्व—क्रोध, अहंकार, छल, कपट, माया, लालच, ईर्ष्या, द्वेष आदि आदतें जितनी थीं वैसी की वैसी ही हैं तो समझना चाहिए कि ध्यान सही तरीके से नहीं हो रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आदतों को बदलने का कारण है—मन की यात्रा का परिवर्तन और ग्रन्थि-तंत्र का परिष्कार। जब मन की यात्रा नीचे के केन्द्रों से हटकर हृदय, कण्ठ, नासाग्र, भृकुटि और सिर की ओर होती है तो हमारी ग्रन्थियों के स्राव में रासायनिक परिवर्तन होता है, जिससे हमारी आदतों में परिवर्तन घटित हो जाता है। चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा से आदतें बदलती हैं पर इसका अर्थ यह नहीं कि जिस दिन ध्यान शुरू किया, उसी दिन व्यक्ति बिलकुल बदल जाएगा परन्तु परिवर्तन का क्रम शुरू हो जाएगा।

8.3.5 अन्त:करण का परिवर्तन

हमारी साधना परिवर्तन की साधना है। यह अन्त:करण को बदलने की साधना है। चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा की निष्पत्ति है—अन्त:करण का परिवर्तन। हमारे शरीर में अनेक चैतन्यकेन्द्र हैं। हम कभी उनमें से एक-एक की प्रेक्षा करते हैं, कभी एक साथ वर्तुलाकार यात्रा करते हैं। उन पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। जैसे ही हमारी मानसिक आंखें उन केन्द्रों पर टिकती हैं, वे सक्रिय एवं संतुलित हो जाते हैं। उनके स्रावों में परिवर्तन होने लगते हैं, तब अन्त:करण में अपने आप परिवर्तन घटित हो जाता है।

एक चैन-स्मोकर प्रेक्षा-ध्यान शिविर में आया। शिविर में आने से पूर्व उसे कहा गया कि 'सिगरेट पीने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, तुम उसे छोड़ दो।' उसने कहा—'दुनिया में इतने पदार्थ हैं, यदि व्यक्ति उनका उपभोग न करे तो फिर बनाये ही क्यों जाएंगे? यदि हम सिगरेट न पीयें तो क्या समाज आर्थिक दृष्टि से घाटे में नहीं चला जाएगा?' ये तर्क हैं उस व्यक्ति के। स्पष्ट है कि तर्क के द्वारा उसे नहीं समझाया जा सकता। उस व्यक्ति ने प्रेक्षा-ध्यान का प्रयोग सीखा। चैतन्यकेन्द्रों पर चित्त को एकाग्र करना सीखा। जैसे जैसे ध्यान की साधना आगे बढ़ी उसके स्रावों में परिवर्तन शुरू हो गया। इसका प्रभाव उसके नाड़ी-तंत्र पर पड़ा, जिससे उसके स्नायुओं ने जो धूम्रपान करने के लिए उसे बाध्य करते थे, अपनी मांग छोड़ दी। धीरे-धीरे उसका अन्त:करण बदलने लगा। उसको सिगरेट से घृणा हो गयी और यह स्थिति आ गयी कि उसके पास यदि कोई सिगरेट पीता तो उसे वमन जैसा होने लगता। यह है अन्त:करण का रूपांतरण।

8.3.6 चैतन्यकेन्द्र का प्रभाव

एक वैज्ञानिक ने प्रयोग किया—नशे की आदत से ग्रस्त व्यक्तियों के कान पर विद्युत सेंसेशन दिए। सत्तर आदमियों के विद्युत के झटके लगाए। उनमें से पचास व्यक्तियों को शराब से नफरत हो गई, सिगरेट से भी नफरत हो गई। शेष बीस व्यक्तियों की भी शराब एवं सिगरेट पीने की आदत में काफी कमी आ गई। यह चैतन्यकेन्द्र का प्रभाव है। चैतन्यकेन्द्रप्रेक्षा व्यक्ति के भावों को प्रभावित करता है। यदि चैतन्यकेन्द्रों का ध्यान के द्वारा परिष्कार कर दिया जाए तो व्यक्ति के पूरे जीवन का परिष्कार संभव हो सकता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में जीता है इसलिए उसके जीवन में प्रतिदिन कितने ही भावात्मक परिवर्तन होते रहते हैं। कभी हर्ष और कभी शोक, कभी घृणा और कभी भय, कभी प्यार और कभी क्रोध—ये सारे भाव प्रकट होते रहते हैं। अत: इन पर नियंत्रण किए बिना चरित्र की बात करना असंभव है। नियंत्रण आता है भीतर से, उसका बाहरी स्टेशन है चैतन्यकेन्द्र। प्रेक्षा-ध्यान की भाषा में जिसे कह सकते हैं—ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा और दर्शनकेन्द्र प्रेक्षा। ये वे रहस्यमय केन्द्र हैं जहां ध्यान करने से चरित्र परिष्कृत होता है।

एक्यूपंक्चर पद्धति के विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे मस्तिष्क में जो चैतन्य-केन्द्र, जैविक सक्रिय बिन्दु हैं वे सारे के सारे केन्द्र हाथ में हैं। जितने केन्द्र हमारे शरीर में हैं, वे पूरे के पूरे हमारे हाथ में भी विद्यमान हैं। हाथ तो यद्यपि महत्त्वपूर्ण अवयव है परन्तु पैरों के भी संयम की बात कही गयी है। पैर शरीर के निम्नतम अवयव माने गये हैं, लेकिन पैर भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पैरों के अंगूठे और अंगुलियों में चैतन्य-केन्द्र हैं, ग्लैण्ड्स हैं। पैर के अंगूठे में पिच्यूटरी ग्लैण्ड है। पैर के अंगूठे में आंख हैं, कान आदि अवयव हैं। प्राचीन काल में यह मान्यता थी कि आंख की ज्योति कम हो जाए तो पैर की अंगुलियों पर तेल की मालिश करनी चाहिए। यह बात हमें सुनने में विचित्र-सी लगती है परन्तु आज हमें यह ज्ञात हो गया कि पैर की अंगुलियों में आंख, कान आदि के केन्द्र हैं तब विचित्रता की बात समाप्त हो जाती है। आंख और कान का इलाज पैर की अंगुलियों के केन्द्र दबाकर किया जा सकता है तथा पिच्यूटरी और पीनियल ग्लैण्ड का समाधान पैर के अंगूठे के केन्द्र दबाकर किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.3.7 चैतन्यकेन्द्रों की निर्मलता

पुराने जमाने में रत्न-कंबल होते थे। उनकी धुलाई पानी से नहीं, अग्नि से होती थी। आग में डालो और रत्न-कंबल निर्मल बन जाएगा। पानी में डालो कुछ भी परिवर्तन नहीं होगा। हमारे चैतन्य-केन्द्र रत्न-कंबल हैं। इनकी धुलाई पानी से नहीं होती। इनका मैल पानी से साफ नहीं होता। इनकी सफाई होगी आग के द्वारा। जब हम शरीर-प्रेक्षा करते हैं, चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा करते हैं, तब विद्युत् की धारा, प्राण की धारा इतनी तेज वहां जाती है, जमा हुआ मैल साफ हो जाता है और वह विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र बन जाता है। निर्मलता आ जाती है और उस निर्मलता में से चैतन्य अभिव्यक्त हो सकता है, बाहर प्रकट हो सकता है। सामान्य नियम को लोग जानते हैं कि लालटेन का शीशा जब अंधा हो जाता है, बाहर पूरा प्रकाश नहीं आता। बल्ब पर ढक्कन दे दिया जाए, बाहर प्रकाश नहीं आएगा। लाल रंग या लाल प्लास्टिक का टुकड़ा लगाने पर लाल रंग और पीला रंग लगाने पर पीला रंग आएगा। हमारा चैतन्य-केन्द्र जब तक निर्मल नहीं होगा, तब तक भीतर में ज्ञान कितना ही भरा पड़ा है, वह बाहर नहीं फूटेगा, उसकी रश्मियां बाहर को प्रकाशित नहीं कर पाएंगी। इसलिए चैतन्य-केन्द्रों को निर्मल बनाना जरूरी है। शरीर-प्रेक्षा के द्वारा ये निर्मल हो जाते हैं। चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा से और अधिक प्राण-धारा वहां इकट्ठी हो जाती है और वे निर्मल बन जाते हैं। प्रेक्षा का दूसरा परिणाम है—चैतन्य-केन्द्रों की निर्मलता।

- विशुद्धिकेन्द्र पर ध्यान करने से वासना के संस्कार क्षीण होते हैं। चित्त निर्मल एवं पवित्र होता है।
- प्राणकेन्द्र पर ध्यान करने से प्राणशक्ति प्रबल होती है।
- दर्शनकेन्द्र पर ध्यान करने से अन्तर्दृष्टि जागृत होती है, अतीन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। पूर्वाभास एवं प्रातिभज्ञान की प्राप्ति होती है।
- मस्तिष्क के मध्य भाग ज्ञानकेन्द्र पर ध्यान करने से ज्ञान-तंतु सक्रिय होते हैं।
- ललाट के मध्य भाग ज्योतिकेन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान करने से क्रोध आदि कषाय क्षीण होते हैं।
- इस प्रकार विविध चैतन्यकेन्द्रों पर ध्यान करके उन्हें सक्रिय बनाकर वृत्तियों का परिमार्जन किया जा सकता है।

8.3.8 आनन्दकेन्द्र का जागरण

चैतन्यकेन्द्रों की प्रेक्षा का एक परिणाम है—आनन्दकेन्द्र का जागरण। हमारे शरीर में ऐसे केन्द्र हैं जिनके जाग जाने पर व्यक्ति सदा सुख की स्थिति में रहता है। विज्ञान की भाषा में शरीर के पिछले भाग में दो लघु ग्रन्थियां हैं—एक सुख की और एक दु:ख की। दोनों आपस में सटी हुई हैं। एक ग्रन्थि जागृत हो जाए तो आदमी सुख में रहता है और दूसरी जाग जाए तो आदमी दु:खी बन जाता है। आनन्द का केन्द्र भी हमारे भीतर है। यदि विद्युत का, प्राण-धारा का प्रवाह वहां ठीक से पहुंचता है, ध्यान की आंच से उसे जगाने में अगर हम सफल हो जाएं तो फिर आनन्द ही आनन्द से सराबोर हो जाएंगे।

समता साम्य, अनुकूल और प्रतिकूल स्थिति में एक समान भाव रहना संभव हो जाता है, फिर असंभव नहीं रहता। हजारों-हजारों साधकों ने इन स्थितियों को संभव बनाया है। उनके जीवन में परिस्थितियां आयीं लेकिन उनके जीवन में वही सहजता कोई अन्यथा प्रभाव नहीं। इसका हमारे सामने साक्षात् उदाहरण है आचार्य श्री महाप्रज्ञ का। उनका जीवन सहज समता में प्रतिष्ठित है। यह तभी संभव हो सकता है कि आनन्द का केन्द्र, समता का केन्द्र जागृत हो जाए। चैतन्यकेन्द्रों की प्रेक्षा के द्वारा वह केन्द्र जागृत होता है।

8.3.9 शक्ति का जागरण

चैतन्यकेन्द्रों की प्रेक्षा का एक परिणाम है—शक्ति का जागरण। हमारे शरीर में जो चैतन्यकेन्द्र हैं, उन्हें हम चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा के द्वारा जागृत कर सकते हैं। शक्तिकेन्द्र, स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र—ये सारे केन्द्र हमारे तैजस् शरीर की शक्ति से संबंधित हैं। हमारी सुषुम्ना—स्पाइनल कोर्ड में प्राणधारा को प्रवाहित करना, उसे उर्ध्वगामी बनाना, उसे शक्तिकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र की ओर ले जाना, यह सब सुषुम्ना की प्रेक्षा से—अन्तर्यात्रा से संभव हो सकता है। नीचे के केन्द्रों में संगृहीत प्राण-ऊर्जा, तैजस् शक्ति को चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के माध्यम से जागृत किया जा सकता है। उसके सम्यग् नियोजन से उसका उपयोग आध्यात्मिक साधना में किया जा सकता है।

चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा से—देखने और जानने की शक्ति का विकास होता है। क्रोध, अभिमान, वासना, स्वार्थ-चेतना, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और लोभ आदि वृत्तियां तब जागृत होती हैं जब चित्त नाभि के आसपास चक्कर काटता है। मनुष्य जब तक अपनी चेतना का परिष्कार नहीं करता है तब तक उसका चित्त अधिकांशत: नाभि से नीचे की ही यात्रा करता है। व्यक्ति को यह पता ही नहीं है कि चित्त की यात्रा नाभि से नीचे करने पर व्यक्ति की जीवनी शक्ति अनावश्यक ही व्यर्थ चली जाती है। चित्त की यात्रा ऊपर की ओर करने से व्यक्ति को वास्तविक सचाई का बोध होता है। हृदय से लेकर कण्ठ तक चित्त की यात्रा करने से वृत्तियों का परिष्कार हो जाता है। व्यक्ति का स्वभाव एवं व्यवहार बदल जाता है, उसका चरित्र स्फटिक की भांति पवित्र बन जाता है।

इस प्रकार चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा बहुत बड़ा रहस्य है व्यवहार और आचरण को बदलने का, स्वभाव और आदतों को बदलने का। साधना करने से मानवीय संबंधों में भी बदलाव आ जाता है। ध्यान करने वाले व्यक्ति का व्यवहार सबके प्रति मधुर एवं विनम्र होगा।

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा का अभ्यास करने वाला साधक शरीर के कण-कण में चैतन्य का अनुभव करता है और धीरे-धीरे समता की स्थिति में चला जाता है। जब जीवन में समता घटित होती है तब सारा आचरण बदल जाता है, संबंधों के प्रकार बदल जाते हैं। सब आचरणों में परम आचरण है—समता। जिस व्यक्ति के आचरण में समता और व्यवहार में मृदुता आ जाती है, उसके सारे संबंध सुधर जाते हैं।

मानवीय संबंधों में तीन कठिनाइयां मुख्य हैं, वे निम्न हैं—विषमता, कठोरता और प्रतिक्रिया। पहली कठिनाई है विषमता की। परिवार में पिता की दृष्टि पुत्रों के प्रति सम नहीं होती तथा माता की दृष्टि पुत्रियों के प्रति सम नहीं होती तब संबंधों में विकृति आने लग जाती है। सामाजिक व्यवस्था में जहां जहां विषमता है वहां वहां उपद्रवों का होना अनिवार्य है।

आचरण की, व्यवहार की, मानवीय संबंधों की सबसे बड़ी समस्या है विषमता की। यदि परिवार में विषमता हो तो परिवार सुखी नहीं हो सकता। विषमता यदि समाज में हो तो समाज सुखी नहीं रह सकता।

दूसरी कठिनाई है—कठोरता की। व्यक्ति को अपने से बड़ों के साथ मृदु व्यवहार करना पड़ता है, किंतु वह अपने से छोटो के साथ मृदु व्यवहार नहीं करता। छोटे व्यक्ति के साथ मृदु व्यवहार करने पर बड़ों का बड़प्पन सुरक्षित कैसे रह सकता है, यह धारणा बन गई है। एक मालिक अपने नौकर के साथ मृदु व्यवहार करने में कठिनाई का अनुभव करता है। वही अपने बराबर के साथियों के साथ मधुर एवं विनम्र व्यवहार करने में गौरव का अनुभव करता है। इस अवधारणा ने मानवीय संबंधों में बहुत बड़ी दरार पैदा कर दी। आदमी इस बात को भूल जाता है कि मैत्री और प्रेमपूर्ण भावनाओं के द्वारा व्यक्ति को जितना प्रेरित किया जा सकता है, उतना कठोर व्यवहार से नहीं किया जा सकता।

तीसरी कठिनाई है—प्रतिक्रिया की। व्यक्ति मान लेता है कि क्रिया की प्रतिक्रिया होनी चाहिए। कोई आवेशपूर्ण बात कहता है तो प्रत्युत्तर में ईंट का जवाब पत्थर से न दे तो फिर आदमी ही क्या हुआ? आदमी में कुछ होता तो प्रतिक्रिया अवश्य होती और सामने वाला व्यक्ति अपने आप झुक जाता है। प्राय: लोगों की ऐसी मन:स्थिति होती है कि क्रिया की प्रतिक्रिया तो होना ही चाहिए।

चैतन्यकेन्द्रों की प्रेक्षा करने वाला साधक मानवीय संबंधों की कठिनाइयों से बचने का प्रयत्न करता है। वह अधिक से अधिक जागरूक रहता है। मनोवैज्ञानिकों ने यह मान रखा है कि अर्जित आदतों और मौलिक मनोवृत्तियों को नहीं बदला जा सकता। किंतु साधना के क्षेत्र में ऐसा नहीं है। यदि स्वभाव और आदतें न बदले तो फिर साधना व्यर्थ हो जाती है। निरंतर अभ्यास की प्रक्रिया चालू रहे तो चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा के द्वारा स्वभाव एवं आदतों का बदलाव अवश्यम्भावी है तथा मानवीय संबंधों में परिवर्तन घटित हो जाता है। व्यक्ति के भीतर मैत्री का विस्तार हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चैतन्य केन्द्रों को देखने का अर्थ है कुंडलिनी के सारे मार्गों का साफ कर देना। चैतन्य केन्द्रों के सारे अवरोध समाप्त हो जाने पर कुंडलिनी-जागरण सहज हो जाता है।

जो चैतन्य-केन्द्र मस्तिष्क में हैं, वे हाथ में भी हैं। भावना के सभी केन्द्र हाथ में हैं। जिन व्यक्तियों का ध्यान नहीं टिकता उनके लिए बताया गया है कि वे दाहिने पैर के अंगूठे पर ध्यान करें। ध्यान सधने लगेगा। यह है पैर का संयम। यह आचारशास्त्र का बहुत बड़ा अंग है। यह तो नहीं कहा कि पूरे शरीर का संयम करो। हाथ-पैर के संयम की बात कही, इसका हमें आचारशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्त्व आंकना चाहिए। आचारशास्त्रीय दृष्टि से संयम तब होता है, जब हम हाथ-पैर को स्थिर रख सकें, लंबे समय तक रख सकें। जो व्यक्ति उकडू आसन में बैठता है, वह पैरों का संयम साधता है। उसकी आध्यात्मिक शक्तियां जागती हैं। उसमें ब्रह्मचर्य की शक्ति का विकास होता है। यह है आचारशास्त्रीय दृष्टिकोण।

बोध प्रश्न 1:

1. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का प्रयोजन क्या है?
2. अन्त:करण परिवर्तन का क्या अर्थ है?
3. चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा द्वारा शक्ति का जागरण कैसे संभव है?

8.3.10 रसनेन्द्रिय और काम केन्द्र

ध्यान की प्रत्येक प्रक्रिया में यह ध्यान दिया जाता है कि वृत्तियों की चंचलता को समाप्त करने के लिए जीभ को स्थिर करना आवश्यक है। साधक ध्यान करने बैठा है। बहुत विकल्प आ रहे हैं चंचलता है। उस समय यदि वह साधक जीभ को उलटकर तालु की ओर स्थिर कर देता है, तालु पर लगा देता है तो विचित्र प्रकार के स्पंदन प्रारंभ हो जाते हैं और विकल्प शांत हो जाते हैं। विकल्पों को शांत करने का यह सुंदर प्रयोग है। जब जीभ स्थिर होती है तब वृत्तियां शांत होने लग जाती हैं। कामकेन्द्र और रसनेन्द्रिय का बहुत बड़ा संबंध है। साधना के ग्रंथों में रसनेन्द्रिय को जीतने पर बल दिया गया है। यह निरर्थक नहीं है, सार्थक है। कामवासना पर विजय पाना है तो पहले रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करो।

8.3.11 रसना-संयम : काम-संयम

पांच इन्द्रियों में दो इन्द्रियां कठोर और अजेय मानी जाती हैं। एक है स्पर्शन इन्द्रिय और दूसरी है रसन इन्द्रिय। स्पर्शन इन्दिय का सीधा संबंध है कामकेन्द्र से और रसन इन्द्रिय का कुछ टेढ़ा संबंध है कामकेन्द्र से। रसना का संयम और काम का संयम दोनों साथ चलते हैं। जैसे ही रसना का संयम होता है, वहां के स्पंदन जब कम होते हैं, विजित होते हैं तब कामवासना के स्पंदन भी कम होने लग जाते हैं।

जैसे ही जीभ का संयम किया, आध्यात्मिक स्पंदन शुरू हो जाते हैं। ये स्पंदन हमारी पकड़ में भी आते हैं। साधना करने वाले साधक को यह स्पष्ट अनुभव होगा कि ये स्पंदन इतने सुखद होते हैं कि कामकेन्द्र के स्पंदनों को भी पराभूत कर डालते हैं।

8.3.12 ऊर्जा की ऊर्ध्वयात्रा

ऊर्जा की ऊर्ध्वयात्रा में रसनेन्द्रिय बहुत बाधक होती है। जब हम उसकी ऊर्जा को वहां से हटा लेते हैं और उसे स्थिर कर देते हैं तब वह बाधा समाप्त हो जाती है। रसलोलुपता नीललेश्या का परिणाम है। यह परिणाम समाप्त हो जाता है। ऐसा होने पर ही धर्मलेश्याएं पूर्ण जागृत हो जाती हैं। ऊर्जा की ऊर्ध्वयात्रा, प्राण की ऊर्ध्वयात्रा, चित्तवृत्तियों की निर्मलता, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान की स्थिति—ये सब घटित होती हैं। सारी स्थिति ही बदल जाती है—रूपान्तरण घटित होने लगता है। प्रेक्षा-ध्यान की प्रक्रिया से मस्तिष्कीय मज्जा को लचीला बनाए रखा जा सकता है, उसको गीला बनाए रखा जा सकता है। जो व्यक्ति शरीर और चैतन्य-केन्द्रों की प्रेक्षा करता है, गहराई में उतरकर उनके अणु-अणु को देखने का प्रयत्न करता है, तो उसकी इस गहरी प्रेक्षा से रक्त और प्राण-शक्ति का इतना संचार होता है कि मज्जा में कठोरता नहीं आती। वह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वैसी की वैसी तरल और आर्द्र बनी रहती है। यह आर्द्रता आदमी को केवल बूढ़े होने से ही नहीं बचाती, वह उसके चिड़चिड़ेपन, असंतुलन और उत्तेजना को भी समाप्त कर देती है।

जो व्यक्ति पवन-मुक्तासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन आदि रीढ़ को लचीला बनाने वाले आसन करता है, शक्ति-केन्द्र से ज्ञान-केन्द्र तक मन की अन्तर्यात्रा करता है, सुषुम्ना मार्ग से प्राण-धारा को प्रवाहित करता है, वह चाहे 80 वर्ष का हो या 90 वर्ष का हो, कभी बूढ़ा नहीं हो सकता। वह पूरे सौ वर्ष पार कर ले, फिर भी बूढ़ा नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी का लचीलापन बना रहता है। वह युवा ही है।

प्रेक्षा-ध्यान का प्रयोग रीढ़ की हड्डी को स्वस्थ और लचीला रखने का अचूक उपाय है।

8.3.13 दर्शन केन्द्र : शक्ति का अजस्र स्रोत

दर्शन-शक्ति का उपयोग करने वाला व्यक्ति अपनी सत्ता के साथ जुड़ जाता है और जब वह इस सत्ता से जुड़ता है तब अंतर्दृष्टि स्वत: जाग जाती है। यह आज्ञाचक्र या दर्शन-केन्द्र जो दो भृकुटियों के बीच स्थित है, अतीन्द्रिय क्षमताओं और चेतनाओं का स्रोत है। यह एक ऐसा स्रोत है जिसका प्रवाह अविच्छिन्न रहता है। यह कुंड का पड़ा पानी नहीं है। यह कुएं का स्रोत है, जहां प्रतिदिन नया पानी आता है। कुंड का पानी सीमित होता है। उसमें जितना है उतना ही निकाला जा सकता है। फिर भी कुछ शेष बच ही जाता है। कुएं का स्रोत असीम है। उससे पानी निकालते ही चले जाओ।

8.3.14 विद्युत् का परिवर्तन

हमारे चैतन्य का, ज्ञान का केन्द्र है नाड़ी-संस्थान। यह समूचे शरीर में परिव्याप्त है। किंतु पृष्ठरज्जु के निचले सिरे से मस्तिष्क तक का स्थान चैतन्य का मूल केन्द्र है। आत्मा की अभिव्यक्ति का यही स्थान है। संवेदन, प्रतिसंवेदन ज्ञान—सारे यहीं से प्रसारित होते हैं। शक्ति का भी यही स्थान है। ज्ञानवाही और क्रियावाही तंतुओं का यही केन्द्रस्थान है। मनुष्य ऊर्जा को अधोगामी करना ही जानता है, ऊर्ध्वगामी करना नहीं जानता। केवल दिशा का ही परिवर्तन हुआ कि जो शक्ति नीचे की ओर जा रही थी वह ऊपर की ओर जाने लगती है। इतना-सा ही अन्तर पड़ता है। मस्तिष्क की ऊर्जा का नीचे जाना भौतिक जगत् में प्रवेश करना है। ऊर्जा के नीचे जाने से पौद्गलिक सुख की अनुभूति होती है। ऊर्जा के ऊपर जाने से अध्यात्म सुख की अनुभूति होती है। यह केवल विद्युत् का रासायनिक परिवर्तन है। इसे कहा गया—अन्तर्मैथुन, आत्मरति, आत्मरमण। आत्मरमण की बात व्यर्थ नहीं है। प्रश्न ठीक है। उसके समाधान में कहा गया कि आत्म-रमण का केन्द्र हमारे पास विद्यमान है, उसमें हम रमण कर सकते हैं।

8.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. चैतन्यकेन्द्रों की निष्पत्तियों का विवेचन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. विवेक-चेतना का विकास कैसे किया जा सकता है? स्पष्ट करें।
2. क्या अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का संतुलन संभव है? वर्णन करें।

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक वाक्य या एक लाइन में उत्तर दें)

1. रीढ़ को लचीला बनाने वाले आसन कौन-से हैं?
2. आचारशास्त्रीय दृष्टि से संयम कैसे सधता है?
3. क्या प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है?
4. क्या पैर के अंगूठे में पिच्यूटरी ग्लैण्ड है?
5. जीभ को स्थिर करना क्यों आवश्यक है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

1. मस्तिष्क की ऊर्जा का नीचे जाना.....में प्रवेश करना है।
2. जो व्यक्ति उकडू आसन में बैठता है, वह.....का संयम साधता है।
3. चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा से.....रसायन बदलते हैं।
4. चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा से.....संतुलन सधता है।
5. हमारे चैतन्य-केन्द्र.....हैं।

8.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रेक्षा-ध्यान : चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा—आचार्य महाप्रज्ञ
2. अप्पाणं शरणं गच्छामि—आचार्य महाप्रज्ञ
3. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता—आचार्य महाप्रज्ञ
4. मुक्त भोग की समस्या और ब्रह्मचर्य—आचार्य महाप्रज्ञ
5. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—आचार्य महाप्रज्ञ, संपादक—मुनि धर्मेश

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग 3 भाव और भवात्मक प्रशिक्षण

इकाई–9 : लेश्या का सिद्धांत, लेश्या और भाव

संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 लेश्या का सिद्धांत

- 9.2.1 लेश्या : शब्द मीमांसा
- 9.2.2 लेश्या का स्वरूप
- 9.2.3 लेश्या के प्रकार
  - 9.2.3.1 कृष्णलेश्या
  - 9.2.3.2 नीललेश्या
  - 9.2.3.3 कापोतलेश्या
  - 9.2.3.4 तेजोलेश्या
  - 9.2.3.5 पद्मलेश्या
  - 9.2.3.6 शुक्ललेश्या
- 9.2.4 महाभारत में लेश्या
  - 9.2.4.1 वर्ण और सुख का वर्गीकरण
- 9.2.5 महावीर का लेश्या सिद्धांत
- 9.2.6 जैन धर्म की मूल देन
- 9.2.7 नई संभावनाएं
- 9.2.8 लेश्या : तीन प्रकार
  - 9.2.8.1 कर्म लेश्या
  - 9.2.8.2 नोकर्म लेश्या
  - 9.2.8.3 रत्न चिकित्सा एवं लेश्या
    - 9.2.8.3.1 पौद्गलिक लेश्या का अर्थ
  - 9.2.8.4 चैतसिक लेश्या
- 9.2.9 परिवर्तन का कारक तत्व
  - 9.2.9.1 आत्मा और शरीर का मिलन
  - 9.2.9.2 रंग प्रशस्त भी, अप्रशस्त भी
  - 9.2.9.3 जीवन से जुड़ी हुई सच्चाई

9.3 लेश्या और भाव

- 9.3.1 भावों में लेश्या का समावेश
- 9.3.2 लेश्या : एक कारखाना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.3.3 कषाय तंत्र
9.3.4 लेश्या-तंत्र
9.3.5 जीवन तंत्र का आधार
9.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
9.5 संदर्भ ग्रंथ

9.0 प्रस्तावना

लेश्या का सिद्धांत आज वैज्ञानिक सिद्धांत बन चुका है। लेश्या का सिद्धांत ढ़ाई हजार वर्ष की यात्रा पार कर चुका है। यह सिद्धांत भगवान महावीर के समय में था इसका प्रमाण है प्राचीनतम आगम आचारांग सूत्र का वाक्य—'अबहिलेस्से।' अत: महावीर से लेकर आज तक लेश्या का सिद्धांत बराबर चला आ रहा है।

9.1 उद्देश्य

1. लेश्या : शब्द की मीमांसा को समझ सकेंगे
2. लेश्या के स्वरूप को जान पाएंगे।
3. लेश्या के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
4. महाभारत में लेश्या के स्वरूप को समझ सकेंगे।
5. महावीर का लेश्या सिद्धांत क्या है? विस्तार से समझ सकेंगे।
6. जैन धर्म की मूल देन क्या है? उससे परिचित हो सकेंगे।
7. लेश्या की नई संभावनाओं से परिचित हो सकेंगे।
8. लेश्या के तीन प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
9. रत्न चिकित्सा एवं लेश्या को समझ सकेंगे।
10. परिवर्तन के कारक तत्त्वों को समझ सकेंगे।
11. आत्मा और शरीर के मिलन बिन्दु को जान सकेंगे।
12. प्रशस्त, अप्रशस्त रंगों से परिचित हो सकेंगे।
13. लेश्या और भाव को समझ सकेंगे।
14. भावों में लेश्या का समावेश कर सकेंगे।
15. लेश्या : एक कारखाना है, उससे परिचित हो सकेंगे।
16. कषाय-तंत्र से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
17. लेश्या-तंत्र को समझ सकेंगे।
18. जीवन तंत्र का आधार क्या है? उससे परिचित हो सकेंगे।

9.2 लेश्या का सिद्धांत

9.2.1 लेश्या : शब्द मीमांसा

लेश्या जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द है। जिसकी व्याख्या आत्मा व शरीर के सांयोगिक भाव से की जाती है। लेश्या हमारी चेतना की एक रश्मि है, ज्योति है। आगमों में कहीं- कहीं लेश्या का अर्थ किया गया—ज्योति, रश्मि, कांति, तेज, प्रतिच्छाया और संकोच। जैसे सूरज की रश्मियां होती हैं वैसे चेतना की रश्मियां होती हैं। चेतना हमारे भीतर है किन्तु उसकी रश्मियां बाहर तक फैल जाती हैं। नंदी चूर्णि में एक शब्द मिलता है रस्सी। रस्सी से बना लस्सी और उससे बन गया लेस्सा—लेश्या। एक समीकरण बन गया—रस्सी+लस्सी+लेस्सा=लेश्या।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.2.2. लेश्या का स्वरूप

मूलाराधना में छाया पुद्गलों से प्रभावित आत्म-परिणामों को लेश्या कहा गया है—

जह बाहिरलेस्साओ कीन्हादीओ हवंति पुरिसस्स।
अब्भन्तर लेस्साओ तह किण्हादीय पुरिसस्स।। (7/1207)

इसी प्रकार कषाय के उदय से रंजित योगों की प्रवृत्ति को भी लेश्या शब्द से अभिहित किया गया है—

'जोगपउत्ती लेस्सा कसाय उदयाणुरंजिया होइ।'

शाब्दिक दृष्टि से विचार करें तो 'लेशयतिश्लेषयती वात्मनि जननयनीति लेश्या।' तात्त्विक दृष्टिकोण से लेश्या को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं—'योगवर्गणान्तर्गत द्रव्यसाचिव्यादात्मपरिणामो लेश्या।' अर्थात् योगवर्गणा के पुद्गलों के संयोग से उद्भूत आत्म-परिणाम लेश्या है। आत्म-परिणाम शुभ व अशुभ उभयविध होते हैं और उनके निमित्त भी शुभ व अशुभ दोनों होते हैं। निमित्त के प्रभाव से आत्म-परिणाम प्रभावित होते हैं अतः दोनों का परस्पर गहरा संबंध है। जैनदर्शन में दोनों को लेश्या शब्द से अभिहित किया गया है। निमित्तरूप पुद्गलों को द्रव्यलेश्या व आत्मा के परिणामों को भावलेश्या कहा गया है। यद्यपि निमित्तभूत पुद्गलों में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श सभी पाए जाते हैं फिर भी कृष्ण, नील आदि नामों का चयन वर्ण के आधार पर किया गया है। मानसिक विचारों की शुद्धि अशुद्धि की अभिव्यंजना भी कृष्ण-शुक्ल आदि शब्दों से हुई है। इससे प्रतीत होता है कि गंधादि की अपेक्षा वर्ण ही मन को अधिक प्रभावित करता है। इसीलिए लेश्या का समूचा दर्शन रंगों की परिक्रमा करता प्रतीत होता है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में शरीर के वर्ण और आणविक आभा को द्रव्य लेश्या व विचारों को भाव लेश्या कहा है—

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो हु दव्वदोलेस्सा।
सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण।। (गाथा 494)

9.2.3 लेश्या के प्रकार

उत्तराध्ययनसूत्र के चौतीसवें अध्ययन में लेश्या का नाम, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयु—इन ग्यारह बिन्दुओं के आधार पर विस्तृत विवेचन मिलता है। छः लेश्याओं का स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है—

9.2.3.1 कृष्णलेश्या

इसका वर्ण स्निग्ध मेघ की तरह काला, रस नीम से अनन्त गुणा कडुआ होता है। कृष्णलेश्या में परिणत चित्त वाला व्यक्ति क्षुद्र, अजितेन्द्रिय, शंकालु व अकारण हिंसा में प्रवृत्ति करने वाला होता है।

9.2.3.2 नीललेश्या

नीललेश्या का वर्ण स्निग्ध वैडूर्यमणि की तरह तथा रस त्रिकटु से अनन्त गुणा तीखा होता है। जिसमें यह लेश्या पायी जाती है वह मायावी, कदाग्रही, ईर्ष्यालु, अज्ञानी, आसक्त, प्रमादी व सुखान्वेषी होता है।

9.2.3.3 कापोतलेश्या

कापोतलेश्या का वर्ण कबूतर की ग्रीवा के सदृश होता है और रस कच्चे आम से अनन्त गुणा कसैला होता है। जिसका आचरण वक्र होता है, जो छल-कपट करता है, दोषों का गोपन करता है, ऋजुता, मृदुता से रहित होता है, उसमें कापोतलेश्या पायी जाती है।

9.2.3.4 तेजोलेश्या

तैजसलेश्या का वर्ण प्रदीप की लौ के सदृश होता है और इसका रस पक्के आम से अनन्त गुणा मीठा होता है। जो मनुष्य नम्र, माया रहित, अकुतुहली, अचपल, पापभीरु व मोक्ष का गवेषक है उसमें यह लेश्या पायी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.2.3.5 पद्मलेश्या

हरिताल के रंग जैसा इस लेश्या का रंग होता है। मधु व मैरेयक मदिरा के रस से अनन्त गुणा मीठा रस पद्मलेश्या का होता है। जो शांत चित्त, मंद कषायी, अल्पभाषी होता है उसमें पद्मलेश्या पायी जाती है।

9.2.3.6 शुक्ललेश्या

शक्कर से अनन्त गुणा मीठा रस शुक्ललेश्या का होता है। इसका वर्ण चांदी के समान होता है। जो व्यक्ति अनासक्त है, मन, वचन व काया की प्रवृत्ति संयत करता है, शांत व भद्र है उसमें शुक्ललेश्या पायी जाती है। अन्तिम तीनों प्रशस्त लेश्याएं विधेयात्मक भाव प्रधान होने से भावात्मक विकास में सहायक होती हैं।

9.2.4. महाभारत में लेश्या

प्रश्न है लेश्या का सिद्धांत कहां से आया? इसका मूल स्रोत क्या है? वर्तमान में उपलब्ध साहित्य पर चिंतन करें तो लेश्या की बात महाभारत में मिलती है। महाभारत में कहा गया है—जीव के छह वर्ण होते हैं—कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हारिद्र और शुक्ल। इनके आधार पर सुख-दुःख को मापा जा सकता है।

9.2.4.1 वर्ण और सुख का वर्गीकरण

महाभारत में कहा गया है—

षडजीववर्णाः परमं प्रमाणं, कृष्णो धूम्रो नीलमथास्यमध्यम।

रक्तं पुनः सह्यतरं सुखं तु, हारिद्रवर्णं सुसुखं च शुक्लम्॥ (महाभारत शांतिपर्व, 280/83)

कृष्ण वर्ण वाले व्यक्ति क्रूर होते हैं, उनमें सुख नहीं होता। कृष्णवर्ण की नीच गति होती है। वह नरक में ले जाने वाले कर्मों में आसक्त रहता है। नरक से निकलने वाले जीव का वर्ण धूम्र होता है, जो पशु-पक्षी की जाति का रंग है। धूम्र वर्ण वालों में सुख का अभाव-सा रहता है। उन्हें लव मात्र सुख उपलब्ध होता है। नील वर्ण मनुष्य जाति का वर्ण है। नीले वर्ण वालों को थोड़ा सुख अधिक होता है। लाल वर्ण वालों में सुख की मात्रा और अधिक हो जाती है। रक्त वर्ण अनुग्रह करने वाले देवों का तथा हारिद्र वर्ण विशिष्ट देवों का रंग है। शुक्ल वर्ण वाले व्यक्तियों में सुख की प्रबलता होती है। शुक्ल वर्ण शरीरधारी साधकों का रंग है। परम शुक्ल वर्ण में अत्यन्त सुख होता है।

वर्ण और सुख का यह एक वर्गीकरण है। इसमें छह वर्ण बतलाए हैं और छह वर्णों के आधार पर होने वाले सुख-दुःख का विवेचन किया गया है। यद्यपि इसको लेश्या का पूरा सिद्धांत नहीं माना जा सकता, फिर भी महाभारत का यह सिद्धांत लेश्या के सिद्धांत से बहुत निकट है।

गीता में गति के कृष्ण व शुक्ल—ये दो वर्ग किए हैं। कृष्ण गति वाला बार-बार जन्म-मरण करता है और शुक्लगति वाला जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। जैसा कि गीता के आठवें अध्याय में कहा गया है—

शुक्लकृष्णे गति ह्येते जगतः शाश्वते मते।

एकया यात्यनावृत्ति मन्ययाऽवर्तते पुनः ॥ (गीता, 8/26)

धम्मपद में धर्म के दो विभाग करते हुए लिखा है कि 'मनुष्य को कृष्ण धर्म छोड़ कर शुक्लधर्म का आचरण करना चाहिए।'

पातंजलयोगदर्शन में कर्म की चार जातियां बतलायी हैं—1. कृष्ण 2. शुक्लकृष्ण 3. शुक्ल 4. अशुक्ल अकृष्ण। ये क्रमशः अशुद्धतर, अशुद्ध, शुद्ध और शुद्धतर होती हैं। योगीजनों की कर्म जाति अशुक्ल-अकृष्ण होती है, जो सर्वश्रेष्ठ है।

उत्तराध्ययनसूत्र में लेश्या के छः प्रकार बताए गए हैं—

किण्हा नीला काऊ तिन्नि वि एयाओ अहम्म लेसाओ।

एयाहि तिहि वि जीवो दुग्गइं उववज्जइ बहुसो॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तेऊ पम्हा सुक्का तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।

एयाहि तिहि वि जीवो सुग्गइं उववज्जइ बहुसो॥ (उत्तराध्ययनसूत्र, 34/56-57)

अर्थात् कृष्ण, नील व कापोत—इन तीनों को अधर्म लेश्या व दुर्गति का हेतु बताया गया है। तथा तैजस्, पद्म व शुक्ल—इन तीनों को धर्म लेश्या कहा गया है और साथ ही सुगति का हेतु भी बताया गया है।

इस प्रकार दर्शनशास्त्र की सभी शाखाओं में लेश्या के सिद्धांत को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया गया है।

9.2.5. महावीर का लेश्या सिद्धांत

जैनदर्शन में लेश्या सिद्धांत का अपना अलग महत्त्व है। महावीर ने जिस लेश्या सिद्धांत का प्रतिपादन किया, वह दो धाराओं में चलता है। एक धारा है भाव की और दूसरी धारा रंग है की। भाव और रंग इन दोनों का योग है यह है लेश्या का सिद्धांत। यह अध्यात्म का बहुत बड़ा सिद्धांत है। लेश्या को छोड़ कर अध्यात्म की बात नहीं कही जा सकती। अकेला अध्यात्म का सिद्धांत ऐसा है जो कि अध्यात्म की दिशा में विशेष महत्त्व रखता है।

लेश्या का सिद्धांत एक ऐसा सिद्धांत है जिसके बिना अध्यात्म चल ही नहीं सकता। लेश्या के बिना कोई ज्ञान नहीं होता। चाहे जातिस्मरणज्ञान हो, अवधिज्ञान हो या केवलज्ञान हो, लेश्या के बिना किसी भी ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं हो सकती। जो ज्ञान आत्मा से उत्पन्न होता है उसका संबंध लेश्या से है। लेश्या शुद्ध होगी तो ज्ञान होगा और लेश्या अशुद्ध होगी तो ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा। हमारा क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक भाव और औदयिक भाव के साथ लेश्या का संबंध है। आयुष्य और बंध दोनों लेश्या के साथ जुड़े हुए हैं। जैन आगमों में कहा गया है—'जल्लेसे मरई तल्लेसे उववज्जई' अर्थात् व्यक्ति जिस लेश्या में मरता है उसी लेश्या में उत्पन्न होता है। जैन दर्शन में लेश्या का सिद्धांत बहुत व्यापक एवं मूल्यवान रहा है।

9.2.6. जैन धर्म की मूल देन

युगप्रधान आचार्य श्री महाप्रज्ञ का चिंतन है कि ऐतिहासिक दृष्टि से चिंतन करें तो कहा जा सकता है कि महावीर ने लेश्या का सिद्धांत भगवान पार्श्व की परंपरा से अपनाया। वस्तुत: पूर्वों का ज्ञान इतना विशाल था कि उसमें दुनिया का पूरा ज्ञान समाविष्ट था। लेश्या का सिद्धांत पार्श्व की परंपरा से चला आ रहा था और पार्श्व के ज्ञान की सारी विरासत महावीर की परंपरा को मिली, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वैदिक, बौद्ध, आजीवक संप्रदाय में लेश्या का सिद्धांत नहीं मिलता है वहां रंगों का वर्णन मिलता है। प्रत्येक धर्मशास्त्र में रंगों के आधार पर कुछ-न-कुछ कहा गया है। लेश्या के सिद्धांत का जितना विकास जैन परंपरा में हुआ है उतना अन्य परंपरा में नहीं हुआ। लेश्या और कर्म—ये दो सिद्धांत ऐसे हैं जिन पर जैनों का एकाधिकार रहा है और जैनों की मूल देन है।

9.2.7. नई संभावनाएं

आचार्यश्री महाप्रज्ञ के अनुसार लेश्या का सिद्धांत हमारे सामने एक ऐसा दर्पण है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना चेहरा देख सकता है। आचार, विचार और व्यवहार—सबका प्रतिबिंब लेश्या के दर्पण में देखा जा सकता है।

लेश्या का यह सिद्धांत भगवान महावीर की दार्शनिक जगत को बहुत बड़ी देन है। दर्शन और अध्यात्म के जगत् में इसका मूल्य बहुत रहा है। आज लेश्या का सिद्धांत वैज्ञानिक जगत में प्रतिष्ठित होता जा रहा है। वह समय आने वाला है—जहां निदान करने के बहुत सारे यंत्र नाकामयाब हो जाएंगे वहां यह आभामंडल का सिद्धांत और यह निदान का दर्पण अपनी शक्तिशाली भूमिका निभाने के लिए प्रस्तुत रहेगा। तीन महीने या छ: महीने पहले यह घोषणा की जा सकेगी—क्या बीमारी होने वाली है? यह भी बताया जा सकेगा कब मौत होने वाली है? यह विषय आज विकास की दिशा में गतिशील बना हुआ है और इससे कुछ नई संभावनाएं जन्म लेंगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.2.8. लेश्या : तीन प्रकार

लेश्या के तीन प्रकार हैं—कर्म लेश्या, नोकर्म लेश्या और भाव लेश्या दूसरी भाषा में लेश्या के दो प्रकार हैं—पौद्गलिक लेश्या और चैतसिक लेश्या या आत्मिक लेश्या। पौद्गलिक लेश्या के दो प्रकार हैं—कर्म लेश्या और नोकर्म लेश्या। उत्तराध्ययन के लेश्याध्ययन के प्रारंभ में ही छः कर्म लेश्याओं का उल्लेख है—

लेसज्झयणं पवक्खामि आणुपुव्विं जहक्कमं।
छण्हंपि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुहेण मे॥

9.2.8.1 कर्म लेश्या

कर्म बंधन के साथ लेश्या का गहरा संबंध है। लेश्या संक्लिश्यमान होती है तो अशुभ कर्म का बंध होता है। लेश्या विशुद्धमान होती है तो शुभ कर्म का बंध होता है और क्षयोपशम होता है। एक लेश्या हमारे शरीर के साथ निरंतर चल रही है, आभामंडल चल रहा है और कर्म को ग्रहण करते समय लेश्या वर्गणा के पुद्गल हमारे साथ निरंतर काम कर रहे हैं, यह कर्म लेश्या है।

9.2.8.2 नोकर्म लेश्या

एक है नोकर्म लेश्या। यह जो सूरज का प्रकाश है, वह नो कर्म लेश्या है। जीवन के साथ उसका गहरा संबंध है। जहां सूरज का प्रकाश है वहां जीवन है। जहां सूरज का प्रकाश नहीं है, वहां जीवन नहीं है। हमारी दुनिया का जीवन सूर्य के आधार पर चल रहा है। यदि सूर्य का प्रकाश बंद हो जाए जो पाचनतंत्र गड़बड़ा जाएगा। बरसात के दिनों में जब आकाश में घने बादल होते हैं तो हमारा पाचनतंत्र अस्त-व्यस्त हो जाता है, पाचन शक्ति मंद हो जाती है। लंबे समय तक सूरज दिखाई न दे और आदमी खाता ही चला जाए तो उसका परिणाम होगा बीमारी को निमंत्रण देना। जैन दर्शन की दृष्टि से रात्रि भोजन के निषेध का एक कारण है—अहिंसा। उसका दूसरा कारण है—सूर्य के अस्त हो जाने पर पाचन तंत्र का मंद हो जाना। आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र में लिखा है—सूर्य के अस्त हो जाने पर हृदय तंत्र तथा पाचनतंत्र भी संकुचित हो जाता है एवं रक्त संचार की गति धीमी हो जाती है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन करें तो ऐसा लगता है कि अधिकांश बीमारियां या दर्द रात्रि के समय में ही अधिक सताते हैं जिसका कारण है सूर्य के प्रकाश का अभाव।

9.2.8.3 रत्न चिकित्सा एवं लेश्या

सूर्य की एक लेश्या है। चंद्रमा की भी लेश्या है, रत्नों की भी लेश्या है। ये सब नोकर्म लेश्या हैं। रत्नों में सूर्य का प्रकाश बहुत संचित होता है। इसके आधार पर ही जैम्स थैरेपी (रत्न चिकित्सा) का विकास हुआ है। रत्न चिकित्सा पर काफी साहित्य लिखा गया है। रत्न का प्रभाव अचिंत्य होता है, इसका कारण है—सूर्य की रश्मियों का संचय।

बंबई की घटना है एक व्यक्ति बुखार से ग्रस्त रहता था। उसने बहुत दवाइयां लीं पर बुखार नहीं उतरा। उसने रत्न चिकित्सक से परामर्श लिया। अपनी पूरी समस्या उसे बताई। रत्न चिकित्सक ने सारी स्थितियों का अध्ययन किया। उसने देखा, अंगुली में लाल माणक पहना हुआ है। चिकित्सक ने कहा—इस माणक (रत्न) को अंगुली से निकाल दिया जाए। इसे इस कमरे में भी न रखा जाए। चिकित्सक का परामर्श स्वीकार कर लिया गया। इसका इतना चमत्कार हुआ कि जो बुखार बहुत दवाइयां लेने से भी नहीं मिटा, वह उस रत्न को अंगुली से निकालने के बाद दूसरे ही दिन समाप्त हो गया।

9.2.8.3.1 पौद्गलिक लेश्या का अर्थ

यदि रत्न का अनुकूल प्रभाव होता है तो वह व्यक्ति को निहाल कर देता है और यदि उसका प्रतिकूल प्रभाव होता है तो वह व्यक्ति को कंगाल भी बना देता है। यह नोकर्म लेश्या—द्रव्य लेश्या का प्रभाव है।

पौद्गलिक लेश्या का अर्थ है—किरण, रश्मि या ज्योति। ये यदि प्रशस्त होते हैं तो बहुत लाभकारी होते हैं। यदि अप्रशस्त होते हैं तो बहुत हानिकारक होते हैं। हम रंगों के प्रति जागरूक बनें तो हानि से बच सकते हैं, बहुत लाभ उठा सकते हैं। किस रंग का कपड़ा पहनें, किस रंग का खाना खाएं, मकान या कमरे का रंग कैसा हो, इसका विवेक होना जरूरी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.2.8.4 चैतसिक लेश्या

लेश्या का दूसरा पक्ष है—चैतसिक लेश्या। भाव लेश्या चैतसिक लेश्या है। भाव लेश्या में रंग होते हैं। एक व्यक्ति झूठ बोलता है तो उसका वैसा ही रंग बन जाता है, उसका अभामंडल धुंधला बन जाता है। आचरण से परे मन में भी चोरी, हिंसा आदि का भाव जागने पर आभामंडल मलिन बन जाता है। व्यक्ति के भीतर जिस प्रकार की भावना जागती है, उसका आभामंडल भी उसी प्रकार का बन जाता है। जैसा आभामंडल बनता है, वैसी ही भावना पैदा हो जाती है।

पौद्गलिक लेश्या (द्रव्य लेश्या) और चैतसिक लेश्या (भाव लेश्या) का गहरा संबंध होता है। जितने स्थान द्रव्य लेश्या के होते हैं, उतने ही स्थान भाव लेश्या के भी होते हैं। एक लेश्या के संक्लिष्ट या असंक्लिष्ट होने पर दूसरी लेश्या भी संक्लिष्ट या असंकिलष्ट हो जाती है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. *लेश्या कितने प्रकार की होती है? नाम लिखें।*
2. *पातंजलयोगदर्शन के अनुसार कर्म की चार जातियां कौनसी है?*
3. *पौद्गलिक लेश्या क्या है?*

9.2.9. परिवर्तन का कारक तत्त्व

हम भावों को शुद्ध रखने का अभ्यास करें। उसके साथ-साथ द्रव्य लेश्या को बदलने पर भी ध्यान दें। भाव लेश्या और द्रव्य लेश्या—दोनों की शुद्धि परिवर्तन का कारक तत्त्व है। परिवर्तन की प्रक्रिया लेश्या से जुड़ी हुई है। हम प्रयोग शुरु करें द्रव्य लेश्या से, भाव लेश्या में परिवर्तन आना शुरु हो जाएगा। प्रेक्षाध्यान में ज्योति केन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान कराया जाता है। सफेद रंग की साधना से व्यक्ति को यह अनुभव हो जाता है तनाव कम हो रहा है, भाव पवित्र और शुद्ध बनते जा रहे हैं। अनेक लोगों ने यह प्रयोग किया उनका सिर दर्द ठीक हो गया। ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करने से दो परिणाम सामने आते हैं—भाव विशुद्धि और सिर दर्द से मुक्ति।

9.2.9.1 आत्मा और शरीर का मिलन

शरीर में तीन-चार स्थान ऐसे हैं जहां आत्मा और शरीर का मिलन होता है, उनमें एक संगम स्थल है हमारा लिंबिक सिस्टम। हमारे मस्तिष्क का एक हिस्सा है लिम्बिक सिस्टम। यह वह बिन्दु है जहां आत्मा और शरीर का मिलन होता है। इस मिलन का माध्यम है लेश्या। यह स्थान बहुत संवेदनशील है, भावना प्रधान है। इसे जितना शांत रखा जाए, ठंडा रखा जाए उतने ही भाव पवित्र बन जाते हैं। यह शांत होता है, न सिर दर्द होता है, न क्रोध और उत्तेजना सताती है। इस बिन्दु को पकड़ना लेश्या को पकड़ना है।

शरीर और आत्मा का दूसरा संगम स्थल है—नाभि अर्थात् तैजस केन्द्र। नाभि न्यूक्लियस केन्द्र होता है। नाभि का बहुत महत्त्व है। पुराने अनुभवी लोग सबसे पहले यह देखते हैं कि उसकी नाभि टली है या नहीं? नाभि के टलने को धरण कहा जाता है। यदि धरण टली होती है तो सबसे पहले उसे ठीक किया जाता है। यह सबसे महत्त्वपूर्ण संगम स्थल है।

शरीर और आत्मा का तीसरा मिलन बिन्दु है आनंद केन्द्र। यह भी महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। इस पर रंगों का ध्यान करना लेश्या को विशुद्ध और पवित्र बनाना है। इन सब केन्द्रों पर सूर्य का ध्यान, चंद्रमा का ध्यान, चमकते सफेद रंग का ध्यान किया जाता है। इससे चैतन्य केन्द्र निर्मल बनते हैं।

9.2.9.2 रंग प्रशस्त भी, अप्रशस्त भी

ध्यान के सारे प्रयोग पौद्गलिक लेश्या से जुड़े हुए हैं। यदि हम अपनी वृत्तियों और भावनाओं को शुद्ध रखना चाहते हैं, अपनी चैतसिक लेश्या को पवित्र रखना चाहते हैं तो हमें द्रव्य लेश्या की निर्मलता पर भी ध्यान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देना होगा, निर्मल रंगों का ध्यान करना होगा। सब रंग एक जैसे नही होते। सफेद रंग भी एक जैसा नही होता। वह प्रशस्त भी होता है और अप्रशस्त भी होता है। यदि सफेद रंग प्रशस्त नहीं है तो वह अच्छा नहीं है। वही रंग अच्छा होता है, जो प्रशस्त होता है।

9.2.9.3 जीवन से जुड़ी हुई सचाई

इस सारे सिद्धांत को जैन दर्शन की भाषा में लेश्या का सिद्धांत कहा गया। सारे रंग द्रव्य लेश्या हैं। हमारा इनसे काम ज्यादा पड़ता है। भाव लेश्या हमारे भीतर की बात है। वह हमारे सारे आचार और व्यवहार को प्रभावित करती है। परिवर्तन के लिए इन दोनों—द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या को जानना जरूरी है। अनेक लोग इस भाषा में सोचते हैं कि हम इन सबको क्यों जाने? ये सारी तो तत्त्वज्ञान की बातें हैं, इनको जान कर हम क्या करेंगे? परन्तु जिनको अच्छा जीवन जीना है उनको यह सब जानना जरूरी है। जीवन की सफलता के लिए इन सचाइयों को जानना आवश्यक है। लेश्या हमारे जीवन से जुड़ी हुई एक सचाई है, उसको जान लेने पर सफल जीवन की कुंजी हमारे हाथ में होगी।

9.3 लेश्या और भाव

जैन दर्शन के अनुसार शुद्ध चैतन्य आत्मा का मूल स्वरूप है। पर कोई भी संसारी जीव शुद्ध स्वरूप को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह अनादि काल से कर्म परमाणुओं से संयुक्त है। जीव वर्तमान जीवन में अपने पुरुषार्थ से उदय, उपशम, क्षयोपशम आदि विविध रूपों में अपने अस्तित्व को अभिव्यक्त करता है। अस्तित्व की यह अभिव्यक्ति ही जैन दर्शन में भाव कही जाती है।

आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को विकृत करने वाला आठ कर्मों में मुख्य घटक है मोहनीय कर्म। जब यह मोहनीय कर्म क्षीण होता है तभी आत्मा अपने ज्ञान-दर्शनमय वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होती है। जीव के न्यूनतम विकास की स्थिति में मोहनीय कर्म मिथ्यात्व और असंयम से चेतना को आवृत करते रहते हैं। इन दोनों स्थितियों के बीच आत्मा में अच्छे-बुरे भावों का आरोह अवरोह होता रहता है।

भाव चेतना का परिणाम है। जीव का स्वरूप पंच भावात्मक है। कर्मों के उदय से होने वाली आत्मा की अवस्था औदयिक भाव, मोहकर्म के उपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था औपशमिक भाव, कर्मों के क्षय से होने वाली आत्मा की अवस्था क्षायिक भाव, ज्ञानावरणादि घाति कर्मों के क्षयोपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था क्षायोपशमिक भाव तथा परिणमन से होने वाली आत्मा की अवस्था पारिणामिक भाव है।

कर्मों के उदय से होने वाली आत्मा की अवस्थाओं में लेश्या के छः प्रकार भी परिगणित किए गए हैं। लेश्या जीवोदय निष्पन्न भाव है। जीव अपने कर्मों के उदय से ही कृष्णादि द्रव्यों का सान्निध्य प्राप्त करता है। इसी विवक्षा से लेश्या को जीवोदय निष्पन्न भाव कहा गया है। उत्तराध्ययन सूत्र के निर्युक्तिकार भद्रबाहु स्वामी उपर्युक्त मत से सहमत होते हुए भी उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण नये तथ्य से हमें अवगत कराया है—लेश्या उदय निष्पन्न भाव है, पर प्रशस्त लेश्याओं के होने में कर्मों के क्षय, उपशम और क्षयोपशम का बहुत बड़ा योग है।

9.3.1 भावों में लेश्या का समावेश

छहों द्रव्य लेश्याओं का समावेश एक पारिणामिक भाव में हो जाता है। भाव लेश्याएं भिन्न-भिन्न भावों में समाविष्ट होती हैं। प्रथम तीन अशुभ भाव लेश्याएं कृष्ण, नील और कापोत दो भावों—औदयिक और पारिणामिक में समाविष्ट होती हैं। इनका मूल घटक है—मोह कर्म का उदय निष्पन्न, इससे ही पाप कर्म का बंध होता है। शेष सात कर्मों के उदय से पाप का बंध नहीं होता।

तैजस् और पद्म—इन दो शुभ भाव लेश्याओं में तीन भाव प्राप्त होते हैं—औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक। इनका अस्तित्व सातवें गुणस्थान तक है। भाव शुक्ललेश्या औपशमिक भाव के अतिरिक्त शेष चारों भावों में समाविष्ट होती है। इसके दो विकल्प हैं—1. बारहवें गुणस्थानवर्ती भाव शुक्ललेश्या का समावेश औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक—इन तीन भावों में होता है, क्षायिक में नही, क्योंकि यहां मोहनीय कर्म का क्षय हो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाने पर भी अन्तराय कर्म का क्षय नहीं होता। तेरहवें गुणस्थानवर्ती भाव शुक्ललेश्या का समावेश तीन भावों—उदय, क्षायिक और पारिणामिक में होता है।

प्रस्तुत प्रसंग में यह समझना आवश्यक है कि शुभलेश्याएं नामकर्म के उदय से निष्पन्न औदयिक भाव में, अन्तराय कर्म के क्षय से निष्पन्न क्षायिक भाव में तथा अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से निष्पन्न क्षायोपशमिक भाव में समाविष्ट होती हैं।

जिसमें लेश्या होती है वह जीव होता है। जिसमे 'ओरा' होती है, वह जीव होता है। यहां एक प्रश्न उभरता है कि ओरा तो अचेतन में भी होता है, अजीव में भी होता है। जो पदार्थ हैं उनमें से रश्मियां निकलती हैं। पदार्थों का लक्षण है—रश्मियों का विकिरण करना। हर पदार्थ से रश्मियां निकलती हैं। रश्मियां ओरा बन जाती हैं। एक ईंट की रश्मियां भी ओरा बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में हम कैसे मानें कि जिसमें लेश्या होती है, ओरा होती है जीव होता है और जिसमें लेश्या नहीं होती, ओरा नहीं होती वह अजीव होता है? यह लक्षण घटित नहीं होता। इसमें दोष है। ओरा जीव और अजीव दोनों में होती है किन्तु उसकी ओरा निश्चित होती है, वह बदलती नहीं। जीव में ओरा निश्चित होती है, बदलती रहती है। कभी उसमें ओरा अच्छी होती है और कभी बुरी होती है, कभी उसके रंग अच्छे हो जाते हैं और कभी बुरे हो जाते हैं। और यह इसलिए होता है कि उसको बदलने वाला लेश्या तंत्र, भाव तंत्र भीतर विद्यमान है। पदार्थ में कोरा विकिरण होता है किन्तु उस विकिरण को बदलने वाला, परिवर्तन करने वाला कोई तत्त्व भीतर नहीं है। प्राणी की ओरा का नियामक तत्त्व है—लेश्या। वह निरन्तर बदलती रहती है। पदार्थ में यह परिवर्तन नहीं होता। पदार्थ के बारे में एक वैज्ञानिक निश्चित बात कह सकता है, निश्चित नियम बना सकता है। उनके सार्वभौम नियमों की व्याख्या की जा सकती किन्तु प्राणी के बारे में कोई निश्चित नियम या व्याख्या नहीं की जा सकती। यह सामियाना बंधा है। यह इच्छा हो तो छाया करे, इच्छा न हो तो न करे, ऐसा कभी नहीं होता। यदि यह बंधा है तो निश्चित ही छाया करेगा किन्तु प्राणी के लिए यह घटित नहीं होता। वह जब इच्छा होती है तब छाया में बैठ जाता है और जब इच्छा होती है तब धूप में बैठ जाता है। गर्मी लगती है तो छाया में आ जाता है और सर्दी लगती है तो धूप में चला जाता है। प्राणी की यह स्वतंत्रता है। अ-प्राणी की यह स्वतंत्रता नहीं होती। रेलगाड़ी के लिए यह संभव नहीं है कि वह यह सोचे मैं पटरी पर इतने मील चलती हूं, अब सीधे रास्ते से चलूं। किन्तु एक छोटी सी चींटी के लिए यह संभव है। प्राणी की जो विशेषता है वह है उसकी स्वतंत्रता। उसकी विचार की स्वतंत्रता। विचार का संस्थान, भाव का संस्थान इतना बड़ा है कि उसके लिए कोई नियम नहीं बनाया जा सकता, उसकी कोई निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। आज के मनोवैज्ञानिकों ने हजारों-हजारों प्रयोगों और अन्वेषणों के बावजूद सभी प्राणियों के लिए कोई सार्वभौम नियम नहीं बताया जा सका और भविष्य में भी नहीं बताया जा सकेगा।

प्राणी और पदार्थ में यह मौलिक अन्तर है कि पदार्थ की ओरा निश्चित होती है। उसमें परिवर्तन करने वाला नियामक तत्त्व नहीं होता। प्राणी की ओरा बदलती रहती है। उसमें कभी काला, कभी लाल, कभी पीला, कभी नीला और कभी सफेद रंग उभर आता है। आदमी के भावों के अनुरूप रंग बदलते रहते हैं। आदमी गुस्से में होता है तो लाल रंग का ओरा बन जाता है, आदमी शांत होता है तो सफेद रंग का ओरा बन जाता है। ओरा प्राणी का लक्षण है किन्तु इसके साथ इतना और जोड़ देना चाहिए कि परिवर्तनशील ओरा प्राणी का लक्षण है। लेश्या प्राणी का लक्षण है।

9.3.2 लेश्या : एक कारखाना

यह लेश्या बहुत बड़ा कारखाना है। कषाय की तरंगें और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य की तरंगें—इन सब तरंगों को भाव के ढांचे में ढालना, भाव के रूप में इनका निर्माण करना और उन्हें विचार तक, कर्म तक, क्रिया तक पहुंचा देना—यह इनका काम है। यह सबसे बड़ा संस्थान है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच यदि कोई संपर्कसूत्र है तो वह वास्तव में है लेश्या। लेश्या ही संपर्कसूत्र है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति से जो बाहर से आता है वह कच्चा माल होता है। लेश्या उसे लेती है और उसे कषाय तक पहुंचा देती है। वह कच्चा माल कषाय के संस्थान तक पहुंच जाता है। यह लेश्या का काम है। फिर भीतर से वह कच्चा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

माल पक्का बनकर बाहर आता है। जो कर्म बन जाता है वह विपाक होकर बाहर आता है। भीतरी स्राव जो रसायन बनकर आता है उसे लेश्या फिर अध्यवसाय से लेकर हमारे स्थूल तंत्र तक, मस्तिष्क और अन्तःस्रावी ग्रंथियों में पहुंचा देती है। इसलिए यदि हमारे शरीर में स्थूल शरीर में लेश्या के प्रतिनिधि संस्थानों को खोजें, उनके बिक्री संस्थानों को खोजें तो जितनी अन्तःस्रावी ग्रंथियां हैं ये सब लेश्या की प्रतिनिधि संस्थाएं हैं, बिक्री संस्थान हैं। उनके सेल्स मैनेजर वहां बैठे हैं। अच्छे ढंग से उनके माल की सप्लाई कर रहे हैं।

9.3.3 कषाय-तंत्र

अन्तःस्रावी ग्रंथियों के जो स्राव हैं वे कर्मों के स्राव भीतर से आते हैं लेश्या के द्वारा यहां आकर वे सारे बाहरी व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। सारा बाहरी व्यक्तित्व उससे बदल जाता है। जो भी माल आता है वह रंगीन आता है। भीतर जाता है वह भी रंगीन जाता है, बाहर आता है वह भी रंगीन आता है। कषाय शब्द का चुनाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। कषाय का अर्थ होता है—रंगा हुआ। लाल रंग से रंगा हुआ या केवल रंगा हुआ। रंगे हुए कपड़े को काषायिक कपड़ा कहा जाता है।

भीतर में बड़ा रंग का संस्थान है—कषाय का तंत्र। वहां बिना रंग की कोई वस्तु नहीं है। वहां जो कुछ भी है वह सारा रंगा हुआ है। रंग ही रंग का सारा संस्थान है। वहां जो कुछ भी आता है वह रंगकर ही आता है। जितने भी रंग के परमाणु हैं वे सारे के सारे रंग के परमाणु हैं।

9.3.4 लेश्या-तंत्र

एक आदमी हिंसा का विचार करता है तो काले रंग के परमाणुओं को आकर्षित करता है। एक आदमी असत्य बोलता है तो काले रंग के परमाणुओं को आकर्षित करता है। गन्दले काले रंग के परमाणु। एक आदमी क्रोध करता है तो मलिन लाल रंग के परमाणु आकर्षित होते हैं। रंग दो प्रकार के होते हैं। एक है—प्रकाशमान् रंग और एक है—गन्दला रंग। एक आदमी माया का व्यवहार करता है तो गन्दले नीले रंग के परमाणु आकर्षित करता है। जो आदमी बुरे काम करता है, अठारह पाप-स्थानों का सेवन करता है, उनका आचरण करता है तो गन्दा काला, गन्दा नीला, गन्दा लाल, गन्दा पीला, गन्दा सफेद पांचों गन्दे रंग के परमाणु आकर्षित होते हैं और वे भीतर के कषाय तंत्र तक पहुंच जाते हैं। उनको पहुंचाने वाली है—लेश्या। संपर्क-सूत्र का सारा कार्य लेश्या के हाथ में है। फिर वहां से पक-पकाकर विपाक होता है, पूरे रंग कर जब वे बाहर आते हैं तब लेश्या उन्हें संभालती है और उन्हें बाहर तक पहुंचा देती है। वे विपाक हमारे भिन्न-भिन्न अन्तःस्रावी ग्रंथियों में आकर भिन्न-भिन्न प्रकार की वेदनाएं और प्रतिक्रियाएं प्रकट करते हैं। यह रंग का सबसे बड़ा संस्थान है—लेश्या-तंत्र।

बोध प्रश्न 2:

---

1. प्रशस्त और अप्रशस्त रंग से क्या तात्पर्य है?

2. लेश्या और भावों में क्या सम्बन्ध है?

3. कषाय का क्या अर्थ है?

9.3.5 जीवन तंत्र का आधार

हमारा सारा जीवन तंत्र—रगों के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर्-मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रंग। रंग हमारे सारे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यह बहुत बड़ी सचाई है। हम सबसे ज्यादा रंग से प्रभावित होते हैं। रस का भी प्रभाव होता है, गंध और स्पर्श का भी प्रभाव होता है, किन्तु रंग जितना प्रभाव डालता है उतना कोई नहीं डालता। हम सब रंगों से प्रभावित होते हैं। हमारे जीवन का संबंध रंग से है, हमारी मृत्यु का संबंध रंग से है। हमारे पुनर्जन्म का संबंध रंग से है। हमारे भावों, विचारों का संबंध रंग से है। जिस प्रकार के रंग हम ग्रहण करते हैं वैसे ही हमारे भाव बन जाते हैं। जब हम हिंसा का विचार करते हैं तब काले रंग के परमाणु आकर्षित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होते हैं और हमारी आत्मा के परिणाम भी काले रंग के अनुरूप बन जाते हैं। जैसा सान्निध्य मिलता है वैसा ही दीखने लग जाता है। स्फटिक का अपना रंग नही होता। उसके सामने काला रंग आता है तो वह काला, पीला रंग आता है तो वह पीला, लाल रंग आता है तो वह लाल, और नीला रंग आता है तो वह नीला बन जाता है। आत्मा के परिणामों का अपना कोई रंग नही होता। सामने जिस रंग के परमाणु आते हैं आत्मा का परिणाम उस रंग में बदल जाता है। वैसी ही हमारी भाव-लेश्या हो जाती है। यह संस्थान हमारे जीवन की प्रत्येक गतिविधि से संबद्ध संस्थान है। इसलिए इस विषय पर हमें बहुत विस्तार से चर्चा करनी होगी।

एक व्यक्ति मरता है, वह अगले जन्म में पैदा होता है। पूछा गया कि अगले जन्म में क्या होगा? कैसा होगा? उत्तर मिला—जिस लेश्या में मरेगा उसी लेश्या में उत्पन्न होगा। जिस रंग में मरेगा उसी रंग में पैदा होगा।

ज्ञान और ध्यान के साथ, कर्म और जीवन के साथ, मृत्यु और पुनर्जन्म के साथ—सबके साथ रंगों का संबंध है। स्थूल व्यक्तित्व का ऐसा कौन सा विषय है जिसके साथ रंगों का संबंध न हो। यह अंगुली हिलती है, इसका भी अपना रंग है। एक अंगुली का नाम है—तर्जनी। इसका काम है तर्जना देना। इसे ही तर्जनी क्यों कहा गया? इसे तर्जनी इसलिए कहा गया कि इसका रंग तर्जना देने वाला है। हमारी अंगुलियों का, हमारे घुटने का, हमारी एड़ी का, हमारे पैर तक के भाग, हमारे कटि तक के भाग का रंग और शरीर के ऊपरी भाग तक का रंग अलग-अलग है। सारा रंग ही रंग है। जो भी हम खाते हैं वह आहार पर्याप्ति के कोष में जाता है। आहार पर्याप्ति की वे कोशिकाएं सबसे पहले उन परमाणुओं को रंग और रूप में बदलती हैं, उनको रंग देती हैं। हमारा सारा विचार रंग से संबंद्ध है। सारे व्यक्तित्व को लेश्या प्रभावित किए हुए है। इसलिए इस विषय पर विस्तार से चर्चा करना आवश्यक था।

योग भी व्यक्तित्व के पहचान का एक लक्षण है। योग का अर्थ है—चंचलता। प्रश्न हो सकता है कि यह जीवन का लक्षण कैसे बन सकता है, चंचलता परमाणु में भी होती है। इसका उत्तर है जीव में स्वेच्छाकृत चंचलता होती है, परमाणु में स्वेच्छाकृत चंचलता नहीं होती। प्राणी का लक्षण केवल गति नहीं है, किन्तु स्वेच्छाकृत गति है। गति अचेतन में भी होती है। दुनिया का ऐसा कोई पदार्थ नही जिसमें गति न हो। पुद्गल और जीव दोनों में गति है। पुद्गल में स्वेच्छाकृत गति नहीं होती, जीव में स्वेच्छाकृत गति होती है। इसलिए योग में भी जीव का एक लक्षण है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उपयोग और वेद—ये पांचों ही जीवों के लक्षण है। जिसमें ज्ञान होता है वह जीव, जिसमें ज्ञान नही होता वह अजीव। जिसमें देखने की शक्ति होती है वह जीव और जिसमें देखने की शक्ति नहीं होती वह अजीव। जिसमें अनियत आचरण की क्षमता होती है वह जीव, जिसमें क्षमता नही होती वह अजीव। जिसमें उपयोग की शक्ति—चाहे तो जानना और चाहे तो न जानना—होती है वह जीव और बाकी अजीव। जिसमें दूसरे प्राणी को उत्पन्न करने या जन्म देने की क्षमता होती है वह जीव, जिसमें यह क्षमता नहीं होती वह अजीव है।

ये ऐसे संस्थान है जो हमारे सूक्ष्म व्यक्तित्व और स्थूल व्यक्तित्व के बीच बैठे है और सूक्ष्म शरीर से आने वाले अवदान को उपलब्ध कर उसे स्थूल बनाकर स्थूल व्यक्तित्व में संप्रेषित करते हैं और स्थूल व्यक्तित्व को एक जीव होने का गौरव प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि लेश्या और भाव का आपस मे अन्योन्याश्रित संबंध है। हम प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोगों से भावों का परिष्कार कर प्रशस्त लेश्या का वरण कर सकते हैं।

9.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. लेश्या सिद्धांत का सविस्तार वर्णन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. लेश्या और भाव का संक्षेप में विवेचन करें।
2. वर्ण और सुख का वर्गीकरण—पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (रिक्त स्थान की पूर्ति करें)

1. लेश्या का सिद्धान्त कितने वर्ष की यात्रा पार कर चुका है।
2. लेश्या का पारिभाषिक शब्द है।
3. मधु व मैरेयक मदिरा के रस से अनन्त गुणा मीठा रस किसका होता है।
4. शक्कर से अनन्त गुणा मीठा रस किसका होता है।

4. एक लाइन में उत्तर दें

1. नील वर्ण किस जाति का वर्ण है?
2. लेश्या किसका लक्षण है?
3. पातंजलयोगदर्शन में कर्म की कितनी जातियां बतलायी हैं?
4. भाव किसका परिणाम है?
5. हमारा सारा जीवन तंत्र किसके आधार पर चलता है?

9.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. उत्तराध्ययन सूत्र—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक, विवेचक—आचार्य महाप्रज्ञ
2. झीणी चर्चा—श्रीमज्जयाचार्य
3. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
4. अपना दर्पण : अपना बिम्ब आचार्य महाप्रज्ञ
5. आभामण्डल—आचार्य महाप्रज्ञ
6. जैनयोग—आचार्य महाप्रज्ञ
7. लेश्या और मनोविज्ञान—मुमुक्षु डॉ. शान्ता जैन
8. जैनेन्द्र सिद्धांतकोश—जिनेन्द्रवर्णी
9. महाभारत शांतिपर्व—संपादक, पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–10 : लेश्या और आभामण्डल

संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 आभामण्डल क्या है?
10.3 आभामण्डल का स्वरूप
  10.3.1 शरीर और आभामण्डल
  10.3.2 आभामण्डल की संरचना
  10.3.3 शक्ति का क्षेत्र
10.4 आभामण्डल के प्रकार
  10.4.1 ईथरिक आभामण्डल
  10.4.2 आध्यात्मिक आभामण्डल
10.5 लेश्या और आभामण्डल
10.6 ईथरिक रिसाव
10.7 साहसी अवशोषक
10.8 रंग और आभामण्डल
  10.8.1 काला रंग
  10.8.2 नीला रंग
  10.8.3 कापोत रंग
  10.8.4 हरा रंग
  10.8.5 लाल रंग
  10.8.6 गुलाबी रंग
  10.8.7 नारंगी रंग
  10.8.8 पीला एवं सुनहरा रंग
  10.8.9 सफेद रंग
10.9 आभामण्डल : विज्ञान का मत
10.10 आभामण्डल को देखने की विधियां
  10.10.1 आभामण्डल को देखने की दृष्टि का विकास
  10.10.2 छू कर आभामण्डल को पड़ना
  10.10.3 सीधी दृष्टि में आभामण्डल को देखना
  10.10.4 अंगुलियों का प्रयोग
  10.10.5 दूसरे व्यक्तियों के आभामण्डल को देखने की विधि
  10.10.6 स्वयं का आभामण्डल देखने की विधि
10.11 आभामण्डलीय चिकित्सा
10.12 आभामण्डल और भविष्यवाणियां
10.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
10.14 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.0. प्रस्तावना

भगवान महावीर ने लेश्या के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। हमारे अन्तःकरण में, सूक्ष्म-शरीर के भीतर छह लेश्याएं हैं, भाव का मण्डल है और उसका संवादी अंग है आभामण्डल। प्रत्येक व्यक्ति के पास एक आभामण्डल और एक भावमण्डल होता है। भावमण्डल हमारी चेतना है और चेतना के साथ-साथ जो एक पौद्गलिक संस्थान होता है, उसे आभामण्डल कहते हैं। चेतना हमारे तैजस्-शरीर को सक्रिय बनाती है। जब तैजस्-शरीर सक्रिय होता है तब वह किरणों का विकिरण करता है। ये विकिरण व्यक्ति के चारों ओर वलयाकार घेरा बना लेते हैं, वह आभामण्डल होता है। यह हमारे शरीर के चारों ओर गोलाकार रूप में होता है। जैसी लेश्या होती है वैसे आभामण्डल का निर्माण हो जाता है या जैसा भावमण्डल होता है वैसे आभामण्डल का निर्माण हो जाता है। भावधारा की विचित्रता के आधार पर आभामण्डल के वर्ण भी विचित्र बन जाते हैं। वर्ण की विचित्रता भावधारा की विचित्रता का बोध कराने में सक्षम होती है। हम भावधारा को साक्षात् नहीं देख पाते, नहीं जान पाते। वर्णों की विचित्रता के आधार पर भावधारा का अनुमान कर सकते हैं। (लेश्या के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखें पाठ 9, 'लेश्या का सिद्धांत, लेश्या और भाव।'

10.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ कर आप निम्न रहस्यों को जान सकेंगे—

1. आभामण्डल (Aura) क्या है? जान पाएंगे।
2. आभामण्डल के स्वरूप को जान सकेंगे।
3. शरीर और आभामण्डल के संबंध को समझ सकेंगे।
4. आभामण्डल की संरचना को जान सकेंगे।
5. शक्ति का क्षेत्र (The Field of Force) को पहचान सकेंगे।
6. आभामण्डल के प्रकारों को समझ सकेंगे।
7. लेश्या और आभामंडल के परस्पर संबंध को समझ सकेंगे।
8. ईथरिक रिसाव को जान पाएंगे।
9. साहसी अवशोषक को समझ सकेंगे।
10. रंग और आभामण्डल के प्रभावों को जान पाएंगे।
11. आभामण्डल के वैज्ञानिक मतों को समझ सकेंगे।
12. आभामण्डल को देखने के विविध तरीकों से परिचित हो सकेंगे।
13. आभामण्डलीय चिकित्सा से परिचित हो सकेंगे।
14. आभामण्डल को देख कर आप भी भविष्यवाणी कर सकेंगे।

10.2. आभामण्डल (Aura) क्या है?

स्थूलशरीर के चारों ओर एक तेजोवलय यानी प्रकाशवलय रहता है, अंग्रेजी में जिसे ओरा (Aura) कहते हैं। इस तेजोवलय पर ही अपना जीवन निर्भर करता है। वैसे तो हर अस्तित्व के चारों ओर इस प्रकार का प्रकाश वलय रहता है, परन्तु चेतन प्राणियों का तेजोवलय अधिक देदीप्यमान रहता है। उस तेजोवलय का मूल कारण है उसके भीतर विद्यमान आत्मा। आत्मा जिस प्रकार की होती है उसी के अनुरूप उसके शरीर के चारों ओर का आभामण्डल अधिक या कम परिमाण में, लघु या विशाल, मन्द या दिव्य रहेगा। इस विषय में वर्तमान में रूस में अधिक शोधकार्य हो रहा है। जिस व्यक्ति की आत्मा जितनी उच्च एवं पवित्र होती है उसका आभामण्डल उतना ही विशाल एवं प्रकाशशील होता है। आभामण्डल पूरे शरीर की अपेक्षा सिर के चारों ओर अधिक विशाल रहता है। इसीलिए देवताओं के सिर के चारों ओर विशाल एवं दिव्य तेजोवलय दिखाया जाता है। महापुरुषों के सिर के चारों ओर प्रकाश वलय होता है, उसे भामण्डल कहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.3.0 आभामण्डल का स्वरूप

उपनिषदों में लिखा है—'मानव शरीर में एक 'हिता' नाड़ी होती है, जो कि बाल के हजारवें हिस्से से भी सूक्ष्म होती है, इसमें सफेद, नीला, पीला, हरा व लाल रंग भरा होता है।'

मिश्र काल में रंगों की भौतिक प्रकृति पर तथा उनके तत्त्वज्ञान पर विशेष बल दिया गया। प्रारम्भ में, प्राचीन काल में रंगों को वस्तु की आध्यात्मिकता से संबंधित गुण माना गया। उससे निकलने वाला प्रकाश देवत्व से संबंधित माना गया। यह स्वर्ग से चारों ओर गिरता है, पूरे आकाश में फैल जाता है। यह प्रत्येक मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है और पुन: परावर्तित होते हुए मानव आभामण्डल का रूप ले लेता है। इसका तत्त्वज्ञान इसकी व्याख्या से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

आध्यात्मिक गूढ़ रहस्यों के अनुसार प्रत्येक पेड़ व प्राणी आभामण्डल का विकिरण करते हैं। मानव में आभामण्डल उसके शरीर का ही एक आवश्यक भाग है। बेन्वेनूटो सेलिनी (Benvenuto Cellini) ने बताया कि—'जब से मैंने एक अद्‌भुत प्रकाश देखा, जो मेरे सिर के चारों और फैला है, यह आभा अपने आप में बहुत ही सुन्दर, प्रभावक व आनन्ददायी है। यह प्रत्येक आदमी के साथ है और जिसे भी मैंने पहचानने का प्रयास किया उसके चारों ओर इस आभामण्डल को देखा है, लेकिन सभी में अलग-अलग है। यह तंत्र प्रातःकाल अपनी छाया के ऊपर देखा जा सकता है, जब सूर्य उगता है तब से दो घण्टे के समय तक और अच्छा होता है जब घास पर ओस की दो बूंदे फैली हों।'

हर्टमन्न (Hartmann) लिखते हैं कि 'आभामण्डल का प्रकीर्णन व इनका क्रम, शारीरिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक अवस्था पर निर्भर करता है। रंग भी उसी प्रकार भिन्न होते हैं जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। ये रंग, जिस प्रकार विचार व भाव बदलते हैं, बदलते रहते हैं।'

पंचदरी (Panchadari) लिखते हैं—'मानव आभानण्डल एक सुन्दर, स्वच्छ, विकीर्णन या प्रकाश है जो प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों ओर रहता है। यह दो से तीन फुट चौड़ा होता है तथा शरीर की सभी दिशाओं में फैला होता है।'

डब्ल्यू. ई. बटलर ने आभामण्डल की परिभाषा इस प्रकार की है—"A subtle invisible essence or fluid said to emanate from human and animal bodies, & even from things; a psychic electro-vital, electro-mental effluvium, partaking of both mind and body, hence the atmosphere surrounding a person; character, personality. In a pathological sense meaning a premonitory symptom of epilepsy and hysteria."

आभामण्डल एक चमकीले वातावरण (atmosphere) के रूप में जीवित तथा जड़ वस्तुओं के आस-पास देखा जा सकता है। जड़ वस्तुओं के अंदर भी प्राणशक्ति कार्य करती है।

पांच दशक पूर्व किर्लियन फोटोग्राफी के द्वारा आभामण्डल के छाया-चित्र उतारे गये, उनसे यह स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक जड़ एवं चेतन पदार्थ का अपना एक आभामण्डल होता है। किर्लियन फोटोग्राफी ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इसके विभिन्न उपयोग की विधियों को विकसित करते हुए अनेक संभावनाओं के द्वार खोले हैं। ऑस्कर बॉग्नल के अनुसार मृत वस्तु के चारों ओर कोई आभामण्डल नहीं पाया जाता है।

आध्यात्मिक और वैज्ञानिक खोजों ने आज यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक चेतनामय शरीर के इर्द-गिर्द एक प्रकाशपुंज होता है जो शरीर के अन्य अंगों के बजाय चेहरे पर ज्यादा घना होता है। उसको या तो त्रिनेत्र से देखा जा सकता है या फिर किर्लियन फोटोग्राफ पर देखा जा सकता है। यह अलग बात है कि आभामण्डल का घनत्व, तेज और रंग हर चेतना केन्द्र पर भिन्न होता, जो कि उसके गुण, विन्यास और अवस्था पर निर्भर करता।

10.3.1 शरीर और आभामण्डल

मनुष्य के मुख्यत: तीन शरीर माने गये हैं। पहला स्थूल, दूसरा सूक्ष्म और तीसरा कर्म-शरीर है। स्थूल शरीर वह है जिसे हम स्पष्ट देखते हैं, सूक्ष्म शरीर वह है जिस पर स्थूल शरीर का न सिर्फ ढांचा ही अवस्थित होता है, अपितु वह स्थूल शरीर का संचालन भी करता है। कर्म-शरीर वह है जो आत्मा पर अर्जित संस्कारों को लिए आच्छादित है, जो मनुष्य को जन्म-मरण की यात्रा कराता रहता है और उसके द्वारा किये गये कर्मों का फल प्रदान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करता है। सूक्ष्म शरीर में, कर्म शरीर के संस्कारों के प्रस्फुटन का प्रवेश होता है और सूक्ष्म शरीर चित्त के माध्यम से स्थूल शरीर में उन संस्कारों के अनुसार परिवर्तन लाता है। जो घटनाएं स्थूल शरीर में घटित होती हैं वे पहले सूक्ष्म शरीर में घटित होती हैं। सूक्ष्म शरीर का मूलभूत स्वरूप और उसमें नित्य परिवर्तन लाने वाली घटनाएं ऊर्जा किरणों के रूप में स्थूल शरीर के चैतन्य केन्द्रों पर आच्छादित होती हैं जिसे हम आभामण्डल कहते हैं। मनुष्य के चेहरे और मस्तिष्क के चेतना केन्द्र ज्यादा विकसित और शक्तिशाली होने के कारण आभामण्डल की किरणों का घनत्व वहां ज्यादा रहता है। वैसे ये किरणें शरीर के विभिन्न चैतन्य केन्द्रों के आसपास भी उपस्थित रहती हैं यहां तक कि मनुष्य के अंगूठे के नाखून के आभामण्डल के चित्र भी किर्लियन कैमरे द्वारा लिये जा चुके हैं।

10.3.2 आभामण्डल की संरचना (The Structure of the Aura)

आभामण्डल की संरचना में दो भाग होते हैं—

1. आकार—अंडाकार रंगीन क्षेत्र होता है जो भौतिक शरीर से निकलता है।
2. ऊर्जा की धारा—जो इसे अपना आकार बनाए रखने में सहायता करती है। ये धाराएं चुंबकीय अथवा साइकिक (Psychic) क्षेत्र की शक्ति की तरह है जिसके द्वारा आंतरिक स्तर के सूक्ष्म पदार्थ लगातार बहते रहते हैं। ईथरिक, भावात्मक तथा मानसिक उत्पत्तियां मिलकर एक आभामण्डल बनाती है। ईथरिक आभामण्डल, ईथरिक शरीर से निकलने की वजह से भौतिक शरीर के स्वास्थ्य के बारे में बता देते हैं। बीमारी को शुरु होने से पहले ही पहचान लिया जाता है तथा इलाज शुरु किया जा सकता है। स्वास्थ्य के बारे में अग्रिम जानकारी देने की वजह से इसे ''स्वास्थ्य आभामण्डल'' भी कहा जा सकता है।

ईथरिक आभामण्डल के दो हिस्से होते हैं—बाहरी तथा भीतरी। भीतरी आभामण्डल शरीर के आकार का, शरीर के सतह के आसपास 3-4 इंच तक फैला हुआ होता है। बाहरी आभामण्डल शरीर से एक फुट की दूरी पर होता है। यही पूरा आभामण्डल नहीं है। एक और आभामण्डल जो आसानी से पहचाना नहीं जाता है, सामान्य आभामण्डल के बाहर फैला हुआ होता है, इसकी कोई निश्चित परिधि नहीं होती है।

कभी-कभी ईथरिक आभामण्डल में से प्रकाश की किरणें निकलती हैं जो कि भौतिक शरीर से निकलती हैं तथा पास खड़े किसी व्यक्ति अथवा वस्तु तक पहुंचती हैं। अध्ययन करने पर पाया गया कि जिस व्यक्ति का आभामण्डल जिसके पास जा रहा है, वह उस व्यक्ति अथवा उस वस्तु के बारे में बहुत गहराई से सोच रहा था, जिसके पास औरिक (Auric) किरणें गई।

आभामण्डल का एक अन्य रुचिकर बिन्दु है—'Dark space' जोकि 1/16 से 1/4 इंच तक का हो सकता है तथा शरीर की सतह (outline) से एकदम पास होता है। पूरा आभामण्डल इसी से निकलता हुआ दिखायी देता है।

10.3.3 शक्ति का क्षेत्र (The Field oF Force)

परिभाषा का एक भाग है "Psycho electro-vital and electro-mental effluvium" इसका अर्थ है—यह तथ्य पूरी तरह साबित हो चुका है कि हमारे भौतिक शरीर की सारी गतिविधियां विद्युत चुम्बकीय शक्ति (electric current) से संबंधित हैं जो हर तंत्र से प्रवाहित होती हैं और असल में यही हमारे आस-पास एक निश्चित विद्युतीय क्षेत्र बनाती है।

इस प्रकार हमारे आस-पास एक विद्युतीय क्षेत्र होता है जिसे आभामण्डल कहते हैं। इस आभामण्डल से सघनतर एक आभामण्डल और होता है जो अत्यंत सूक्ष्म द्रव्य कणों का बना होता है, जो भौतिक शरीर के द्वारा बाहर निकाले जाते हैं। हम कुछ भी छूते हैं अथवा कहीं भी जाते हैं तो ये हमारे शरीर की 'सेट' बनाते हैं जिसे सूंघकर जानवर (कुत्ता) हमारा पीछा कर सकते हैं।

10.4.0 आभामंडल के प्रकार

आभामण्डल के प्रकार के बारे में भी अलग-अलग विचारकों ने अपने अपने ढ़ंग से चिंतन किया है। डब्ल्यू. ई. बटलर ने आभामण्डल के दो प्रकार बताए हैं—1. ईथरिक आभामण्डल 2. आध्यात्मिक आभामण्डल।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.4.1 ईथरिक आभामण्डल (Etheric Aura)

ईथरिक शरीर सूर्य तथा ऊर्जा के अन्य स्रोतों से प्राण ऊर्जा लेता है। यह ऊर्जा पूरे ईथरिक शरीर में प्रवाहित होती है। यह शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। यह शरीर के बाहर सतह के ऊपर के कुछ क्षेत्र तक हेज (hage) के रूप में विकिरित होती है। यह हेज आभामण्डल का पहला हिस्सा बनाती है और इसे ईथरिक आभामण्डल कहते हैं। क्योंकि ईथरिक शरीर हमारे शरीर की प्राण क्रियाओं से सघनता से संबंध रखता है, अत: ईथरिक आभामण्डल को देखकर हमारे शरीर के स्वास्थ्य के बारे में पता लगाया जा सकता है।

10.4.2 आध्यात्मिक आभामण्डल (Spiritual Aura)

यह सामान्य व्यक्तियों में कुछ फुट का होता है तथा सिद्ध पुरुषों में कई मीलों तक लम्बा होता है। भगवान बुद्ध का आभामण्डल दो सौ मील तक फैला हुआ था। हमारे शरीर में एक नहीं अनेक प्रकार के आभामण्डल निकलते हैं तथा सब मिलकर एकीकृत रूप से कार्य करते हैं। महापुरुषों के आभामण्डल को भामण्डल (Halo) कहते हैं।

हमें जागृत एवं निद्रावस्था में प्राप्त हुए संदेशों को हमारा आभामण्डल ग्रहण करता है तथा ईथरिक आभामण्डल हमारे शरीर की प्राण शक्ति के उतार-चढ़ाव को भी दर्शाता है। आभामण्डल हर समय हमारे चेतना के भावात्मक एवं मानसिक गुणों को ग्रहण करता रहता है, इस वजह से आभामण्डल के अंदर एक विशेष प्रकार का रंग छा जाता है। इस रंग में बदलाव बहुत धीमा होता है। दूरबोधी व्यक्ति आभामण्डल के रंग को पढ़कर उसके मालिक के भावात्मक, मानसिक व आध्यात्मिक गुणों का पता लगा लेता है।

ऑकल्ट साइन्स (Occult Science) के पुरस्कर्ताओं ने आभामण्डल के दो प्रकार बतलाए हैं—1. भावनात्मक आभामंडल (Emotional Aura) और 2. मानसिक आभामंडल (Mental Aura)। ऑस्कर बॉग्नल (Oscar Bognall) ने भी आभामंडल को दो भागों में विभाजित किया है—बाहरी व भीतरी (External and Internal). आंतरिक परत लगभग तीन इंच चौड़ी होती है, जो कि स्वच्छ चमक लिए हुए होती है। किरणे शरीर में सीधी रेखाओं में सभी व्यक्तियों में समान रूप से विकीर्ण होती हैं। बाहरी परत जो अधिक द्रव्यमान होती है, उम्र के साथ बढ़ती है, सामान्यतया महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा अधिक व्यास में पायी जाती है। चमकीले नीले रंग को उत्तम माना गया है। नीला रंग जितना स्वच्छ होता है बुद्धि उतनी ही तीक्ष्ण होती है। स्लेटी रंग जितना ज्यादा होता है बुद्धि उतनी ही मंद होती है। बाहरी परत बीमारी व मन:स्थिति के अनुसार बदलती रहती है।

10.5 लेश्या और आभामंडल

लेश्या के सिद्धांत में भी ये दो शब्द मिलते हैं। लेश्या का संबंध दो आन्तरिक शक्तियों कषाय और योग से है। योग लेश्या मानसिक आभामंडल का निर्माण करती है तथा कषाय लेश्या भावनात्मक आभामंडल का निर्माण करती है। इस प्रकार आभामंडल में दो तत्त्व काम करते हैं—मन और भावना। कषाय का स्रोत जितना तीव्र होता है, हमारी शक्तियां उतनी ही क्षीण होती हैं, तैजस्-शरीर दुर्बल बनता चला जाता है। इसके लिए जरूरी है कि हम प्राण-प्रयोग से तैजस्-शरीर को शक्तिशाली बनाएं और ऊर्जा की खपत को कम करें। इससे हमारी शक्ति का भंडार बढ़ेगा। इस स्थिति में शक्ति का जागरण होगा और हमारा आभामंडल शक्तिशाली बनेगा। हमारा भाव-तंत्र शक्तिशाली बनेगा और हम अपने आस-पास एक ऐसे कवच का निर्माण करने में सफल होंगे, जो सारे बाहरी आक्रमणों और संक्रमणों से हमें बचाता रहेगा।

आज के वैज्ञानिकों ने अनेक गवेषणाओं के बाद यह घोषणा की है कि—शरीर में जो रोग होगा, उसकी पूर्व सूचना तीन महीने पहले मिल जाएगी। तीन महीने पहले वह रोग आभामंडल में उतर आएगा। फिर धीरे-धीरे वह स्थूल शरीर तक पहुंचेगा। उसको वहां अभिव्यक्त होने में तीन महीने लग जाएंगे। तीन महीने पहले जब यह ज्ञात हो जाएगा कि अमुक रोग उभरने वाला है तब व्यक्ति उसकी पूर्व चिकित्सा करा लेगा, जिससे कि वह रोग उभरे ही नहीं। अनेक महीनों पूर्व यह घोषणा की जा सकती है कि यह व्यक्ति अमुक दिन मरेगा, क्योंकि आभामंडल पर मृत्यु पहले ही उतरने लग जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हमारे सूक्ष्म जगत् में घटित होने वाले सारे निर्देशों का संवाहक आभामंडल है। अध्यवसाय में, कर्म शरीर में घटित होने वाली घटनाएं, जो सूक्ष्म-स्पन्दन के रूप में घटित हो रही हैं, उनको भाव जगत् में उतारने वाला है आभामंडल। भाव जगत् में जो घटनाएं उतरती हैं, उनके सारे निर्देश आभामंडल में पहुंचते हैं। इन सारे संदर्भों में कहा जा सकता है कि आभामंडल को समझे बिना, उसे विशुद्ध बनाए बिना श्रेष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती।

अन्त में एक आभामण्डल हमारे शरीर एवं त्वचा में होने वाली जैविक क्रियाओं के फलस्वरूप होता है। इसके परिणाम स्वरूप सूक्ष्म विद्युत्-चुंबकीय क्षेत्र भौतिक शरीर के आसपास उत्पन्न हो सकता है, जिसे संवेदनशील यंत्रों से नापा जा सकता है। यह बढ़ जाता है तब शरीर की सतह पर तेज प्रकाश गिरता है।

10.6 ईथरिक रिसाव

ईथरिक त्वचा पर अक्सर कुछ घाव दिखते हैं जिसकी वजह से ईथरिक रिसाव होता है। इन घावों को 'वर्तुलाकार या गोलाकार घाव' (Orbicular wounds) भी कहते हैं। इस रिसाव की वजह से प्राण शक्ति का तीव्र ह्रास होता है तथा क्षीण अवस्था में प्राण का अंत हो सकता है। अगर ईथरिक प्राण कम होगा तो जीवाणुओं से लड़ने वाली प्रतिरोधात्मक शक्ति का निर्माण कम होगा तथा बीमारी आसानी से आ जाएगी।

10.7 साहसी अवशोषक

'वर्तुलाकार घाव' (Orbicular wounds) होने की वजह से शरीर से प्राण ऊर्जा निकल जाती है। कई बार कुछ लोग आस-पास से निकली हुई प्राण ऊर्जा को अपने अंदर अनजाने में खींचते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों से कुछ देर तक मिलने से व्यक्ति को अपने अंदर प्राण शक्ति की कमी महसूस होती है तथा जो व्यक्ति प्राणशक्ति खींचता है, वह अक्सर कहता है कि उसे Mr. so and so से मिलकर बहुत अच्छा लगा तथा उनके आने से उसे बहुत बेहतर महसूस हुआ।

शरीर से प्राण ऊर्जा निकलने के बाद शरीर अपने आपको प्राण ऊर्जा से 'रीचार्ज' करने का प्रयास करता है। परंतु औरिक त्वचा में घाव होता है अत: शरीर प्राण ऊर्जा सही चैनल से न लेकर, ईथरिक ऊर्जा के रास्ते में आने वाली किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति से ऊर्जा ले लेता है। अगर ऊर्जा का स्रोत ठीक न हुआ तो शरीर प्रदूषित ऊर्जा से रीचार्ज हो जाता है तथा बीमारी का खतरा पैदा हो जाता है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. आभामण्डल की परिभाषा लिखें।
2. आध्यात्मिक आभामण्डल से क्या तात्पर्य है?

10.8.0 रंग और आभामण्डल

आध्यात्मिक लोगों के अनुसार व्यक्ति की वास्तविक प्रकृति उसके आभामण्डल के रंग को जानकर ही जानी जा सकती है।

10.8.1 काला रंग

आभामण्डल में काले रंग की प्रधानता हो तो मानना चाहिए कि व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है, आकांक्षा प्रबल है, प्रमाद प्रचुर है, कषाय का आवेग प्रबल और प्रवृत्ति अशुभ है। मन और काया का संयम नहीं है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं की है। ऐसा व्यक्ति प्रकृति से क्षुद्र होता है। वह बिना विचारे काम करता है। वह विचारों से क्रूर होता है और हिंसा में रस लेता है। इस प्रकार काला या गहरा भूरा रंग के आभामण्डल वाला व्यक्ति आपराधिक प्रवृत्ति में लिप्त होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.8.2 नीला रंग

आभामण्डल में चमकीला नीला रंग हो तो समझना चाहिए व्यक्ति उच्च आदर्शवाला है, विश्वसनीय है। वह धार्मिक कार्यों में रुचि लेता है तथा वह मैत्री का प्रतीक होता है। नीला रंग प्रेम का परिचायक है।

आभामण्डल में गहरे नीले रंग की प्रधानता हो तो माना जा सकता है कि व्यक्ति में ईर्ष्या, कदाग्रह, माया, निर्लज्जता, आसक्ति, प्रद्वेष, शठता, प्रमाद, यशलोलुपता, सुख की गवेषणा, प्रकृति की क्षुद्रता, बिना विचारे काम करना, अतपस्विता, अविद्या, हिंसा में प्रवृत्ति की भावधारा प्रबल होती है।

10.8.3 कापोत रंग

आभामण्डल में कापोत रंग की प्रधानता हो तो माना जा सकता है कि व्यक्ति का दृष्टिकोण मिथ्यादृष्टियुक्त है। ऐसे व्यक्ति में वाणी एवं आचरण की वक्रता, प्रवंचना, अपने दोषों को छिपाने की प्रवृत्ति, मखौल करना, दुष्ट वचन बोलना, चोरी करना, मात्सर्य आदि भावों की प्रबलता से युक्त प्रवृत्ति होती है।

10.8.4 हरा रंग

हरा रंग सद्भाव का परिचायक है। आभामण्डल में चमकता हुआ हरा रंग ऊर्जा एवं शक्ति सम्पन्नता का प्रतीक है। हरा रंग प्रकृति का सूचक होता है, खुशहाली का प्रतीक है तथा सहानुभूति का संकेतक है। अप्रशस्त हरा रंग तथा स्लेटी हरे रंग का आभामण्डल ईर्ष्यालु, षडयंत्रकारी एवं दुश्मनी का संकेतक है।

10.8.5 लाल रंग

आभामण्डल में रक्त वर्ण की प्रधानता हो तो मानना चाहिए कि व्यक्ति स्वस्थ एवं नम्र व्यवहार करने वाला, अचपल, ऋजु, कुतूहल न करने वाला, विनयी, जितेन्द्रिय, मानसिक समाधि वाला, तपस्वी, धर्म में दृढ़ आस्था रखने वाला, पापभीरु और मुक्ति की गवेषणा करने वाला है। लाल रंग सशक्त इच्छाओं का द्योतक है। नीच प्रकृति के लोगों में आभामण्डल का रंग गहरा लाल होता है।

10.8.6 गुलाबी रंग

आभामण्डल में गुलाबी रंग की प्रधानता हो तो समझना चाहिए कि व्यक्ति प्रेममय, करुणामय, खुशमिजाज, सामाजिक तथा सकारात्मक सोच वाला होता है।

10.8.7 नारंगी रंग

आभामण्डल में नारंगी रंग ऊर्जामय व्यक्तित्व का प्रतीक है

10.8.8 पीला एवं सुनहरा रंग

आभामण्डल में पीत एवं सुनहरे वर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है कि वह व्यक्ति अल्प क्रोध, अल्प मान, अल्प माया, अल्प लोभ वाला होता है। वह बुद्धिजीवी व्यक्तित्व का संकेतक है। सुनहरे आभामण्डल वाले व्यक्ति में प्रज्ञा एवं आध्यात्मिकता का योग रहता है। वह प्रशांत चित्त वाला होता है। वह समाधिस्थ, अल्पभाषी, जितेन्द्रिय और आत्म-संयम करने वाला होता है।

10.8.9 सफेद रंग

आभामण्डल में श्वेत वर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है कि वह व्यक्ति प्रशांत चित्त वाला, जितेन्द्रिय, मन, वचन और काया का संयम करने वाला, शुद्ध आचरण से संपन्न, ध्यानलीन और आत्म-संयम करने वाला होता है। आभामण्डल में सफेद रंग बहुत कम मिलता है। जिस व्यक्ति के आभामण्डल में सफेद रंग की प्रधानता होती है वह अत्यधिक आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाला होता है। उच्च प्रकृति के लोगों के आभामण्डल का रंग सफेद या चमकीला नीला होता है। इस प्रकार आभामण्डल के आधार पर व्यक्तित्व की पहचान की जा सकती है।

'मैन, विजिबल एण्ड इनविजिबल' (Man, Visible and Invisible) नामक पुस्तक में आभामण्डल में पाये जाने वाले विभिन्न रंगों के प्रभाव के बारे में विस्तृत विवरण मिलता है—

1. काला रंग घृणा व ईर्ष्या भावों को दर्शाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. काले क्षेत्र में लाल रंग के गहरे धब्बे क्रोध को दर्शाते हैं। चमकीला व रक्त जैसा लाल रंग लोलुपता को दर्शाता है।
3. गहरा भूरा रंग लोभ या धन के लालच का परिचायक है, स्लेटी-भूरे रंग का तात्पर्य है स्वार्थता। हरा-भूरा रंग इर्ष्यालु प्रकृति दर्शाता है।
4. धूसर-भूरा रंग भय व दबाव को दर्शाता है।
5. गहरा लाल रंग प्रेम की प्रकृति दर्शाता है।
6. नारंगी रंग गर्व व महत्त्वाकांक्षा को दर्शाता है।
7. पीला रंग बुद्धिमत्ता को दर्शाता है।
8. स्लेटी-हरा रंग छल-कपट में चतुरता को दर्शाता है। पन्ने जैसा हरा रंग व्यक्ति में समयानुकूल चातुर्यता को दर्शाता है। स्वच्छ हरा रंग दया, करुणा को दर्शाता है।
9. गहरा नीला रंग व्यक्ति में गहरी धार्मिक प्रवृत्ति को दर्शाता है। हल्का नीला रंग समर्पण व विशिष्ट प्रवृत्तियों को दर्शाता है।

10.9. आभामण्डल : विज्ञान का मत

अमेरिकी महिला वैज्ञानिक डॉ. जे. सी. ट्रस्ट ने सूक्ष्म संवेदनशील कैमरे से आभामण्डल के फोटो लिए। उसने बताया—"मैंने देखा कि जो लोग बाहर से साफ-सुथरे रहते हैं किंतु भीतर में मलीनता को संजोए रहते हैं। उनके आभामण्डल अत्यत विकृत और गंदे होते हैं। जो लोग शरीर से साफ-सुथरे नहीं हैं किंतु भीतर से पवित्र हैं, उनके आभामण्डल बहुत स्वच्छ और निर्मल होते हैं।"

हब्सी महिला लिलियन ने कहा—"मैं एस्ट्रल प्रोजेक्शन के द्वारा यथार्थ बात जान लेती हूं। मैं लोगों के आभामण्डल में प्रविष्ट होकर उनके चरित्र का वर्णन कर सकती हूं, किंतु शराबी आदमी के चरित्र को मैं नहीं जान सकती क्योंकि शराबी आदमी का आभामण्डल अस्त-व्यस्त हो जाता है। वह इतना धुंधला होता है कि उसके रंगों का पता ही नहीं चलता।

हमारी भावनाएं, हमारे आचरण आभामंडल के निर्माता हैं। जब भावना और आचरण पवित्र होते हैं तब आभामंडल बहुत सशक्त और निर्मल होता है। जब भावधारा और चरित्र मलिन होता है तब आभामंडल धूमिल, विकृत और दूषित हो जाता है।

जोर्ज स्टर विटे के अनुसार—पशुओं व पेड़-पौधों के चारों ओर एक चुम्बकीय वातावरण रहता है। इसका प्रसर्जन अलग-अलग होता है व बदलता रहता है। इन्हें जान कर किसी व्यक्ति के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं—विचारों के बारे में, प्रसन्नता, अप्रसन्नता के बारे में जान सकते हैं। उन्होंने लिखा है कि स्वस्थता और बीमारी के बारे में आभामंडल से जानकारी मिल सकती है। जब व्यक्ति विभिन्न स्थितियों में रहता है तो उनके आभामंडल के विकिरणों में भी परिवर्तन हो जाता है।

विटे ने बताया कि बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली व दाहिने हाथ के अंगूठे से धनात्मक तथा दाएं हाथ की तर्जनी अंगुली व बाएं हाथ के अंगूठे से ऋणात्मक किरणें निकलती हैं। उनके अनुसार सामान्यतया लोगों का आभामंडल नीला-स्लेटी रंग का पाया जाता है।

वाल्टर जे. किल्नर (Walter J. Kilner) का मत है कि मानव शरीर के चारों ओर एक द्रव्यमान परत होती है जो निश्चित तीन परतों से बनी होती है। प्रथम त्वचा से लगी परत संकरी, गहरे रंग की एक चौथाई इंच चौड़ी पट्टी है। दूसरी परत इससे आगे दो से चार इंच चौड़ी पट्टी होती है। यह सर्वाधिक स्वच्छ होती है। इसके आगे तीसरी परत होती है, जो कि विशिष्ट होती है उसके बाहरी सिरे चिकने होते हैं। यह लगभग छह इंच चौड़ी होती है। विकिरण शरीर में लगभग समकोण में होता है। ये आंतरिक किरणें प्रकृति में घुलनशील होती हैं। भगौड़ा प्रवृत्ति होने के कारण ये बदलती रहती हैं। इनका विकिरण अंगुलियों, कुहनियों, घुटनों, कुल्हों व स्तनों में सर्वाधिक होता है। स्वस्थता का रंग नीला-स्लेटी है, जिसके ऊपर हल्का पीला व लाल रंग चढ़ा होता है। धुंधला व गंधला रंग किसी बीमारी का परिचायक होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.10.0 आभामण्डल को देखने की विधियां

10.10.1 आभामण्डल को देखने की दृष्टि का विकास

आभामंडल को कई तरीकों से देखा जा सकता है। आभामंडल को देखने के लिए सर्वप्रथम आंखों को नीले रंग के फिल्टर से आसमान की ओर त्राटक करके प्रभावित किया जाता है। उसके बाद द्रष्टा खिड़की की तरफ पीठ करके बैठ जाता है। हल्की रोशनी को कमरे में प्रवेश कराया जाता है। प्रयोज्य को एक उदासीन पर्दे के सामने खड़ा कर देते हैं। तब आंखें नीले एवं बैंगनी (Violet) रंग को अच्छी तरह देख सकती है। इस प्रकार आभामंडल का रंग पहचाना जा सकता है। यदि पीले रंग से आंखों को उत्तेजित किया जाता है तो लाल व हरे रंग को पढ़ना संभव हो जाता है।

आभामंडल को देखने का एक और तरीका है—किल्नर (Kilner) स्क्रीन के प्रयोग द्वारा। इस का आविष्कार डॉ. किल्नर (Dr. Kilner) ने किया था। इसमें कांच के कोष्ठक (Cells) होते हैं जिनमें कुछ रंजक (Dyes) का विलयन होता है। मुख्यत: डायसियासिन एवं पिनाकोल रंजक (Dye) प्रकाश के स्रोत को कुछ समय के लिये, इन कोष्ठकों (cells) में भरे रंगीन तरल के द्वारा देखने से, आंखों की कार्यविधि थोड़ी सी बदल जाती है और वह शरीर के द्वारा निकली ईथरिक किरणों को देख सकती है। प्रक्रिया का पूरा विस्तार औरिक चश्मा (Auric Goggles) के निर्माण कर्ता से प्राप्त की जाती है।

10.10.2 छू कर आभामण्डल को पढ़ना

छू कर ओरा को पढ़ा जा सकता है। इसमें बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है क्योंकि इस अवस्था में सब कुछ साफ-साफ समझना मुश्किल होता है। इसका तरीका निम्नलिखित है—

अपने एक मित्र को कुर्सी पर सीधा बिठाइये। फिर अपने हाथ को उसके शरीर से 2-3 इंच दूर रखते हुए उसके शरीर पर अपना हाथ ऊपर से नीचे लेकर जाइये। यह बहुत जरूरी है कि भौतिक शरीर को न छूआ जाए। जैसे-जैसे आप अपना हाथ उसके शरीर पर ऊपर से नीचे ले जाएं, अपना सारा ध्यान अपनी अंगुलियों के पोरों पर लगा लें और कुछ अलग सी अनुभूतियों का अनुभव करें। आरम्भ में हो सकता है कि कुछ अनुभव न हो परन्तु कुछ अभ्यास के बाद आपको उसकी भौतिक शरीर की सतह के पास कुछ गर्म, ठण्डा या प्रकम्पन अनुभव होगा। आप को बस यह पता करना है कि उसके शरीर से कितनी दूर यह अनुभव महसूस होता है ताकि आप उसके ओरा के आकार का पता लगा सकें। ओरा के आकार का चित्र कागज पर उतारें। शुरू में बाहरी आभामण्डल का अनुभव होगा।

10.10.3 सीधी दृष्टि (Direct Vision) में ओरा को देखना

सीधी दृष्टि से भी ओरा को देखा जा सकता है। किसी दृश्य की तरफ लगातार देखने से कई बार सही नतीजे नहीं निकलते। अत: दृश्य की तरफ एक स्थिरता से नहीं देखना चाहिए। सबसे अच्छे नतीजे तब आते हैं जब दृश्य को अंधेरे पर्दे (Dark background) के सामने खड़ा कर दिया जाता है तथा उसे तंग कपड़े पहना दिये जाएं और द्रष्टा बिना किसी तनाव के दृश्य को चुपचाप देखें। शरीर से 6-9 इंच की दूरी पर नजर रखनी चाहिए। लगातार अभ्यास के बाद आभामण्डल दिखाई देने लगता है। धैर्य रखना अत्यावश्यक है। इस तरह विधायक सोच से ओरा देखने में सहायता मिलती है। जो भी दिखे उसका चित्र बना लेना चाहिए। अभ्यास के दौरान अनावश्यक भाव मस्तिष्क में नहीं आने चाहिए।

10.10.4 अंगुलियों का प्रयोग

प्रयोज्य (Subject) को आराम देने के लिये हमें अंगुलियों का प्रयोग करना चाहिए। दोनों हाथों को एक दूसरे से छूते हुए धीरे-धीरे अलग करने चाहिए। अगर चित्त (Faculty) ने काम करना शुरू कर दिया तो स्लेटी रंग के प्रकाश की धारियां (Bands) एक हाथ की अंगुलियों से दूसरे हाथ तक जाती दिखती है। इसी सत्यता की जांच करने के लिये एक हाथ को 6-9 इंच नीचे ले जाना चाहिए। तब से पट्टियां (Bands) तिरछे जाते दिखाई देंगी। ओरा देखने का अभ्यास हो जाए तो पेड़-पौधों के ओरा को देखने का प्रयास करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10.10.5 दूसरे व्यक्तियों के आभामण्डल को देखने की विधि

हेरिएट ए. बॉस्वील (Harriet A. Bosweel) ने अपनी पुस्तक 'मास्टर गाइड टू साइकिज्म' (Master Guide to Psychism) में आभामण्डल को देखने की विधि के निम्न बिंदु बताए हैं—

1. व्यक्ति को साफ-सुथरी, सपाट तथा अपरावर्ती दीवार के सामने खड़ा करें। रोशनी हल्की होनी चाहिए। यह परछाई न दीखने में मदद करता है।
2. आप अपनी दृष्टि को, जिसका आप आभामण्डल देख रहे हैं, उसकी भृकुटि के मध्य भाग अर्थात् दर्शनकेन्द्र पर केन्द्रित करें। अपलक देखते जाएं, जब आपकी आंखें थक जाएं, या धुंधला दीखने लग जाए तब आभामण्डल दीखने लगता है। ध्यान रखना चाहिए कि आपकी नजर उस बिंदु से आभामण्डल की तरफ नहीं जानी चाहिए। अन्यथा आभामण्डल धीरे-धीरे गायब होता दीखेगा। निरंतर अभ्यास से आभामण्डल साफ दिखायी देने लगता है।
3. प्रारम्भ में नतीजों को प्राप्त करना मुश्किल लगता है। आप यदि शीघ्रता से आभामण्डल देखना चाहते हैं तो आप अपनी आंखों को भैंगी (Squint) कर लें, हो सकता है इससे आपको सफलता मिल जाए।

10.10.6 स्वयं का आभामण्डल देखने की विधि

अपने आप का आभामण्डल देखने के लिए निम्न प्रयोगों का अभ्यास करना चाहिए—

1. शीशे में, मद्धिम रोशनी में, अपने दर्शनकेन्द्र को देखें। जब धुंधला दीखने लगे तब आपका आभामण्डल दीखने लगेगा। आभामण्डल व्यक्ति की असलियत को प्रकट कर देता है। आभामण्डल के रंगों को बाहर से प्रभावित नहीं किया जा सकता अत: रंगों से व्यक्ति के व्यक्तित्व की वास्तविक जानकारी प्राप्त होती है।
2. अपने शरीर में अधिक से अधिक प्रकाश का संग्रह कीजिए। ऐसा अनुभव करें आप एक प्रकाशपुंज के बीच में खड़े हैं तथा आभामण्डल आपके शरीर से कई इंच दूर तक फैला हुआ है और वह संगमरमर के समान चिकना है।
3. लम्बा श्वास लें तथा अपने आभामण्डल में प्रकाश को खींचे। श्वास छोड़े तब अपने प्रकाश के घेरे को 12 इंच दूर तक फैलाएं, प्रत्येक दिशा में, अपने सिर के ऊपर और पैर के नीचे भी।
4. लम्बा श्वास लें तथा प्रकाश खींचे। श्वास छोड़े और आभामण्डल को दो फीट की दूरी तक फैलाएं।
5. लम्बा श्वास लें तथा प्रकाश खींचे। श्वास छोड़े और आभामण्डल को तीन फीट की दूरी तक फैलाएं।
6. लम्बा श्वास लें तथा प्रकाश खींचे। श्वास छोड़े और आभामण्डल को चार फीट की दूरी तक फैलाएं।
7. लम्बा श्वास लें तथा प्रकाश खींचे। श्वास छोड़े और आभामण्डल को पांच फीट की दूरी तक फैलाएं।
8. लम्बा श्वास लें तथा प्रकाश खींचे। श्वास छोड़े और आभामण्डल को छह फीट की दूरी तक फैलाएं।
9. लम्बा श्वास लें तथा प्रकाश खींचे। श्वास छोड़े और आभामण्डल को सात फीट की दूरी तक फैलाएं।

अब अनुभव करें कि आप प्रकाश के बहुत बड़े घेरे के बीच में हैं। कमरे में उपस्थित अन्य व्यक्ति के साथ आप अपने आभामण्डल से संबंध स्थापित कर सकते हैं। जो कुछ घटित होता है उसे केवल तटस्थ भाव से देखें। इसमें धैर्य रखने की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न 2:

---

1. रंगो का व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है?

2. आभामण्डल को देखने की विधियों का वर्णन करें।

10.11 आभामण्डलीय चिकित्सा (Auric Healing)

आभामण्डलीय चिकित्सा, मानसिक व आध्यात्मिक चिकित्सा है न कि शारीरिक चिकित्सा। इसमें कोई रंग या रंगीन प्रकाश काम में नहीं लाया जाता है। पूरा प्रयोग एक चैतन्य का प्रयोग है, ऐसा अनुभव करना कि सभी कुछ चैतन्यमय है। यह उनके लिए अधिक उपयोगी नहीं है जिनका मन विकृत तथा विक्षिप्त होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नाड़ी-तन्त्र की आभामण्डलीय चिकित्सा (Auric healing) के लिए मानसिक ध्यान व एकाग्रता के साथ बैंगनी रंग शान्तिकारक प्रभाव डालता है। घास की तरह हरा रंग नाड़ी-तंन्त्र को बलशाली बनाता है तथा अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि पीला या नारंगी रंग नाड़ी-तन्त्र पर उत्साहवर्धक प्रभाव डालता है।

रक्त व शरीर के अन्य अंगों को शान्ति प्रदान करने के लिए नीला रंग प्रभावी है, हरा रंग शक्तिशाली बनाता है और चमकीला लाल रंग उत्तेजना पैदा करता है। नीले रंग का ध्यान बुखार में भी प्रभावी है तथा उच्च रक्तचाप व हिस्टीरिया के रोगों में भी अभूतपूर्व प्रभाव डालता है। आभामण्डल में लाल रंग का ध्यान करने से ठण्ड व शरीर में गर्मी की कमी को पूरा करता है।

पंचदरी (**Panchadari**) ने कहा है—"एक ढ़ीले-ढ़ाले व बैचेन मरीज के इलाज के लिए उसे मानसिक रूप से बैंगनी रंग की बाढ़ में स्नान, या आभामण्डल में बैंगनी रंग का ध्यान कराना चाहिए। कमजोरी की स्थिति में व्यक्ति को मानसिक रूप से चमकीले लाल रंग का स्नान कराया जाता है और उसके बाद चमकीला पीला रंग और अन्त में स्थिर नारंगी रंग के साथ उपचार पूरा किया जाता है।"

सारभूत रूप से श्रेष्ठ रंग, जो कि प्रकीर्णित होता है, सफेद रंग है। यह मरीज को दैवी स्थिति में श्रेष्ठ स्थान दिलाता है, मन व आत्मा को प्रकाश या रोशनी की अवस्था में छोड़ता है, जो उसके लिए श्रेष्ठ एवं लाभदायक है और पुनः बल देने वाला या ताजा करने वाला है, जिसमें चैतन्य शक्ति विकसित होती है और जो चिकित्सा के लिए उपयोगी है।

10.12. आभामण्डल और भविष्यवाणियां

आभामण्डल के रंगों के आधार पर जीवन के बारे में एक अनुभवी व्यक्ति भविष्यवाणियां कर सकता है। चूंकि आभामण्डल अन्तस की स्थिति का पूर्व प्रकाश है, अतएव भविष्य में होने वाली महत्त्वपूर्ण स्थितियों या घटनाओं का मोटे तौर पर विश्लेषण किया जा सकता है। इस मूलभूत आभामण्डल पर बदलते हुए भावों की झांकियां भी आती रहती हैं—जैसे क्रोध, आवेश, आसक्ति, प्रेम, घृणा, भय, मैथुन आदि के भाव जिनके आधार पर भी भविष्यवाणियां की जाती हैं। कुछ रंगों के धब्बे भी आभामण्डल पर पड़ते हैं जो भिन्न-भिन्न बीमारियों को इंगित करते हैं—जैसे लाल रंग का धब्बा, हृदय रोग, पीले रंग का धब्बा, मधुमेह रोग और काले रंग का धब्बा किसी चिरस्थायी प्राणघातक बीमारी को इंगित करता है। आभामंण्डल के रंग का आभास यथार्थ योगी को होता है या फिर उसे किर्लियन कैमरे से पकड़ा जा सकता है।

उपवास, उपशमन और प्रेक्षाध्यान आदि प्रक्रियाओं से मनुष्य अपने आभामण्डल में परिवर्तन ला सकता है और अपनी आध्यात्मिक विकास-यात्रा को कुछ शीघ्र-गति दे सकता है।

10.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. आभामण्डल के स्वरूप को बताते हुए रंग एवं आभामण्डल का विश्लेषण करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. आभामण्डलीय चिकित्सा का वर्णन करें।
2. आभामण्डल को देखने की विधियों का विवेचन करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (एक या दो पंक्तियों में उत्तर दें)

1. आभामण्डल में लाल रंग का धब्बा होना कौन-सी बीमारी को इंगित करता है?
2. क्या आभामण्डल के आधार पर भविष्यवाणियां की जा सकती हैं?
3. महापुरुषों के आभामण्डल को क्या कहते हैं?
4. आभामण्डल का फोटो सबसे पहले किसने लिया?
5. नाड़ी-तन्त्र पर उत्साहवर्धक प्रभाव कौन-सा रंग डालता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

1. आभामण्डलीय चिकित्सा, मानसिक व.....चिकित्सा है न कि शारीरिक चिकित्सा।
2. हरा रंग.....का परिचायक है।
3. भावधारा की विचित्रता के आधार पर.....के वर्ण भी विचित्र बन जाते हैं।
4. भगवान महावीर ने लेश्या के.....का प्रतिपादन किया।
5. मानव में आभामण्डल उसके शरीर का ही एक.....भाग है।

10.14. संदर्भ ग्रन्थ

1. How to read the Aura, practice Psychometry, Telepathy and Clairvoyance— By W. E. Butler
2. जन्म मृत्यु विज्ञान—योगी मनोहर
3. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
4. The Magic of Psychograms : New way to power and prosperity — by Helyn Hitchcock
5. Centering the Power of Meditation—Sanders G. Laurie and Melvin J. Jucker
6. Master Guide to Psychism — Harriet A. Bosweel
7. Mystic India—M. C. Bhandhari
8. Man Visible and Invisible—C. W. Lead Beater
9. The Story of the Human Aura—George Starr White
10. The Human Atmosphere—Walter J. Kilner
11. आभामण्डल—आचार्यमहाप्रज्ञ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–11 : लेश्याध्यान : वैज्ञानिक–आध्यात्मिक दृष्टिकोण, प्रयोजन एवं निष्पत्तियां तथा रंग चिकित्सा

संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 लेश्याध्यान का वैज्ञानिक दृष्टिकोण
11.2.1 विश्व–विज्ञान और रंग
11.2.2 रंग की परिभाषा
11.2.3 प्राथमिक और पूरक रंग
11.2.4 रंगों का कार्य
11.2.4.1 नीला रंग
11.2.4.2 हरा रंग
11.2.4.3 लाल रंग
11.2.4.4 नारंगी रंग
11.2.4.5 पीला रंग
11.2.4.6 नीला रंग
11.2.4.7 बैंगनी रंग
11.2.4.8 सफेद रंग
11.2.5 व्यक्तित्व रूपांतरण के घटक
11.3 रंग और मनोविज्ञान
11.3.1 शांतिदायक गुलाबी रंग
11.3.2 लेश्या और मानसिक चिकित्सा
11.3.3 नीला और पराबैंगनी रंग
11.3.4 मनःकायिक बीमारियों पर रंगों का प्रभाव
11.3.5 नाड़ी-ग्रन्थि तंत्र पर रंगों का प्रभाव
11.4 क्या आभामण्डल दीखता है
11.4.1 आभामण्डल के रंग और रोग
11.4.2 विदेशों में आभामण्डल पर शोध
11.4.3 समस्या सुलझाने का प्रयोग
11.5 लेश्याध्यान का आध्यात्मिक दृष्टिकोण
11.5.1 लेश्या-रंग का संस्थान
11.5.2 वृत्तियों का उद्भव स्थान
11.5.3 रंगों का ध्यान और भाव परिवर्तन
11.5.4 भावधारा, लेश्या और आभामण्डल
11.6 प्रयोजन
11.6.1 सत्य की खोज
11.6.2 चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव
11.6.3 अन्तदृष्टि की जागृति
11.6.4 अनुभव की सचाई

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.6.5 व्यक्तित्व का रूपांतरण
11.6.6 रासायनिक परिवर्तन
11.6.7 लेश्याओं का रूपांतरण
11.6.8 भावधारा का निर्मलीकरण
11.6.9 निस्तरंग की दिशा में प्रस्थान
11.7 निष्पत्तियां
11.7.1 परिवर्तन का प्रारंभ
11.7.2 अनिर्वचनीय एवं अपूर्व आनन्द
11.7.3 जितेन्द्रियता
11.7.4 शुक्ल-लेश्या
11.7.5 आत्म-साक्षात्कार
11.7.6 अव्यथ चेतना
11.7.7 अमूढ चेतना
11.7.8 विवेक चेतना
11.7.9 व्यत्सर्ग-चेतना
11.8 रंग चिकित्सा
11.8.1 रंग चिकित्सा की विशेषताएं
11.9 रंग चिकित्सा के प्रयोग
11.9.1 नारंगी रंग की दवा की प्रकृति, गुण एवं प्रयोग
11.9.2 हरे रंग की दवा की प्रकृति, गुण एवं प्रयोग
11.9.3 नीले रंग की दवा की प्रकृति, गुण एवं प्रयोग
11.10 दवाएं बनाने एवं सेवन करने की विधि तथा मात्रा, पानी की दवा का निर्माण और सेवन विधि
11.10.1 दवा की मात्रा
11.10.2 चीनी की दवा बनाने की विधि और मात्रा
11.10.3 बाह्य प्रयोग के लिए तेल आदि की दवा बनाने की विधि
11.11 तेल और ग्लिसरीन की दवाओं का प्रयोग
11.11.1 नारंगी रंग का तेल
11.11.2 हरे रंग का तेल
11.11.3 नीले रंग का तेल
11.11.4 नीले रंग की ग्लिसरीन
11.12 तीनों रंगों की हवा की दवा
11.13 सफेद बोतल के पानी पर सूर्य किरणों का प्रभाव
11.14 सूर्य किरणों का सीधा प्रभाव : रेडियशन
11.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
11.16 संदर्भ ग्रंथ

11.0 प्रस्तावना

जैन दर्शन की शब्दावली में स्थूल शरीर को औदारिक शरीर, सूक्ष्म शरीर को तैजस शरीर और अति सूक्ष्म शरीर को कार्मण शरीर कहते हैं। हमारे भावों पर नियंत्रण करता है वह तैजस शरीर और तैजस शरीर पर नियंत्रण करता है कर्म शरीर। तैजस शरीर मस्तिष्क के एक भाग 'हाइपोथेलेमस' पर नियंत्रण करता है। हमारे शरीर का तापमान, चयापचय की प्रक्रिया (मेटाबोलिज्म)—यह सब तैजस शरीर द्वारा नियंत्रित होता है। शरीर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में भूख, नींद आदि के जो नियंत्रण-केन्द्र हैं वे सारे मस्तिष्क के हाइपोथेलेमस भाग में हैं। तैजस शरीर का नियंत्रण होता है इस स्वायत्त-तंत्रिका तंत्र पर। इस तंत्र का नियंत्रण होता है ग्रन्थि-संस्थान पर। एक पूरी शृंखला जुड़ी हुई है। आंतरिक स्रावों को बदलने के लिए, भीतरी परिवर्तन के लिए पूरी प्रक्रिया चलती है। जब लेश्या बदलती है तब परिवर्तन घटित होता है। जब मन में तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के भाव आते हैं तब तैजस शरीर से स्राव होता है और वह हमारी ग्रन्थियों में आता है। ग्रन्थियों के दो प्रकार हैं—अंत:स्रावी ग्रन्थियां और बहिर्स्रावी ग्रन्थियां। लीवर बहिर्स्रावी ग्रन्थि है। उसका स्राव है पित्त। चक्र अंत:स्रावी ग्रन्थियां हैं। ध्यान के द्वारा वे सक्रिय होती हैं। उनका स्राव शरीर से बाहर नहीं जाता। वह सीधा रक्त के साथ मिल जाता है और अपना प्रभाव डालता है। इन अंत:स्रावी ग्रन्थियों के रस हमारे समूचे स्वभाव को प्रभावित करते हैं। इसलिए लेश्या-ध्यान का प्रयोग स्वभाव परिवर्तन और लेश्या-ध्यान की दृष्टि से अपना महत्त्वपूर्ण प्रयोजन रखता है।

11.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

1. लेश्या-ध्यान वैज्ञानिक दृष्टिकोण को सम्झ सकेंगे।
2. विश्व-विज्ञान और रंग से परिचित हो सकेंगे।
3. प्राथमिक और पूरक रंगों को जान सकेंगे।
4. रंगों के कार्यों से परिचित हो सकेंगे।
5. व्यक्तित्व रूपान्तरण के घटकों को जान सकेंगे।
6. लेश्या और मानसिक चिकित्सा से परिचित हो सकेंगे।
7. नाड़ी-ग्रन्थि-तंत्र पर रंगों का प्रभाव ज्ञात कर सकेंगे।
8. लेश्या-ध्यान के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।
9. वृत्तियों का उद्भव-स्थान जान सकेंगे।
10. रंगों का ध्यान और भाव परिवर्तन से परिचित हो सकेंगे।
11. लेश्या-ध्यान के प्रयोजन को समझ सकेंगे।
12. लेश्या-ध्यान की निष्पत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
13. रंग-चिकित्सा के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.2 लेश्या-ध्यान वैज्ञानिक दृष्टिकोण

हम जब इस स्थूल शरीर की सीमा से पार जाकर देखते हैं तो हमें विचित्र रंग दिखाई देते हैं। हमारे आस-पास रंगों का वलय बना हुआ है। हमारे भीतर रंगों का वलय बना हुआ है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ अपने अनुभव के आधार पर कहते हैं कि आंखों को बंद करें। दर्शन-केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करें। थोड़े समय में ही रंगों के बिन्दु दीखने लग जाएंगे। आंख को मूंदकर दबाएं और देखें, प्रकाश के बिन्दु और रंगीन बिन्दु आस-पास चक्कर लगाते हुए दीख पड़ेंगे। सर्वेन्द्रिय-संयम मुद्रा करें। आंखों के सामने रंग ही रंग दीख पड़ेंगे। ये रंग हमारे भीतर हैं। तैजस-शरीर रंगों का शरीर है। प्रकाश और रंग दो नहीं हैं, एक ही हैं। प्रकाश का उनंचासवां प्रकंपन ही रंग होता है। एक फ्रिक्वेन्सी में प्रकाश रंग बन जाता है। सूर्य की किरणों में सभी मूल रंग हैं। जहां तैजस है, प्रकाश है, वहां रंग है। प्रकाश और रंग दोनों साथ-साथ होते हैं। हमारा तैजस शरीर प्रकाश का शरीर है, रंगों का शरीर है। उसमें सभी रंग विद्यमान हैं। रंग हमारे सामने आते रहते हैं। यदि द्रष्टा हो, जिसके चक्षु निर्मल हों, जिसे दृष्टि उपलब्ध हो, वह सामने दीखने वाले रंगीन बिन्दुओं के आधार पर जान लेता है कि किस प्रकार का भाव निर्मित हो रहा है और अब कौन-सी वृत्ति अभिव्यक्त होगी। इन रंगों के आधार पर जाना जा सकता है कि हमारे आस-पास में किस प्रकार के परमाणु अधिक मात्रा में आंदोलित हो रहे हैं, चक्कर लगा रहे हैं। समूचा स्वरोदय का सिद्धांत इन बिन्दुओं के आधार पर चलता है। बिन्दुओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को देखकर स्वर-साधक जान लेता है कि अब पृथ्वी तत्त्व चल रहा है, जल तत्त्व चल रहा है या अग्नि तत्त्व चल रहा है।

11.2.1 विश्व-विज्ञान और रंग

प्रकाश "तरंग" के रूप में होता है और प्रकाश का रंग उसके तरंग-दैर्ध्य (Wave-lenght) पर आधारित है। तरंग-दैर्ध्य और कंपन की आवृत्ति (Frequency) परस्पर में व्यस्त प्रमाण (Inverse Proportion) से संबंधित है अर्थात् तरंग-दैर्ध्य के बढ़ने के साथ कम्पन की आवृत्ति कम होती है और उसके घटने के साथ बढ़ती है। सूर्य का प्रकाश त्रिपार्श्व कांच (prism) में गुजरने पर प्रकाश-विक्षेपण के कारण सात रंगों में विभक्त होता दिखाई देता है। उस रंग की पंक्ति को वर्णपट (spectrum) कहते हैं। उनमें से लाल रंग का तरंग-दैर्ध्य सबसे अधिक और बैंगनी (violet) रंग का तरंग दैर्ध्य सबसे कम होता है। दूसरे शब्दों में लाल प्रकाश की कंपन-आवृत्ति सबसे कम और बैंगनी प्रकाश की सबसे अधिक होती है।

दृश्य प्रकाश में जो विभिन्न रंग दृष्टिगोचर होते हैं, वे विभिन्न प्रकम्पनों की आवृत्ति या तरंग-दैर्ध्य के आधार पर होते हैं—

रंग	तरंग दैर्ध्य 1 A° = 1/1000000 सें. मी.	कम्पन-आवृत्ति (प्रति सैकिंड)
लाल	7400—6200 A°	4000—5000 खरब
नारंगी	6200—5852 A°	5000—5400 खरब
पीला	5850—5750 A°	5400—5500 खरब
हरा	5750—5000 A°	5500—6000 खरब
नीला	5000—4450 A°	6000—6600 खरब
जामुनी	4450—4350 A°	6600—6750 खरब
बैंगनी	4350—3900 A°	6750—7600 खरब

11.2.2 रंग की परिभाषा

सूर्य से प्रसारित होने वाले प्रकाश-तरंग जब पदार्थ में होकर गुजरते हैं, तब उस पदार्थ की स्वयं की विशिष्टता के कारण एक विशेष तरंग-दैर्ध्य को छोड़कर शेष सभी उस पदार्थ के द्वारा शोषित हो जाते हैं। इस प्रकार जब दूब में से प्रकाश की तरंगें गुजरती हैं, दूब की विशिष्टता के कारण ही हरे को सूचित करने वाली तरंग-दैर्ध्य को छोड़कर शेष तरंग-दैर्ध्य वाली सभी तरंगें दूब के द्वारा शोषित (absorbed) हो जाती है। हमारी आंख तक केवल वे ही तरंगें पहुंचती हैं, जिन्का तरंग-दैर्ध्य हरे रंग को सूचित करता है और इसीलिए हमें दूब हरी दिखाई देती है।

सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक और नोबल-पुरस्कार-विजेता प्रो. सी. वी. रमन ने रंग की प्रक्रिया पर गहन शोध कार्य किया है। उपरोक्त कथन की पुष्टि प्रो. रमन के इस कथन से होती है कि "सूर्य के प्रकाश में जो पदार्थ का रंग हमें दिखाई देता है, वह पदार्थ के ऊपर पड़ने वाली सूर्य-रश्मियों में विद्यमान समस्त प्रकाश-तरंगों में से जिस द्रव्य का पदार्थ बना हुआ है, उस द्रव्य द्वारा विसरण (diffusion) और छितराव (scattering) के पश्चात् जो तरंगें आंख तक पहुंचती हैं तथा आंख द्वारा उनका संश्लेषण होता है, उनसे उत्पन्न होता है।"

किसी भी पदार्थ का रंग तीन बातों पर निर्भर होता है—आपतित प्रकाश की प्रकृति, पदार्थ द्वारा शोषित प्रकाश और विभिन्न रंगों की अनवशोषित प्रकाश किरणें। इन तीनों के कारण से आंख पर उत्पन्न अनुभूति ही पदार्थ का रंग है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.2.3 प्राथमिक और पूरक रंग

नीला, पीला और लाल ये तीनों प्राथगिक रंग कहलाते हैं। इन रंगों को उचित अनुपात गें मिलाने पर दूसरे रंग प्राप्त किए जा सकते हैं। जबकि अन्य रंगों को मिलाने से ये प्राथमिक रंग प्राप्त नहीं हो सकते। जब दो रंगों को मिलाने से तीसरा रंग प्राप्त होता है, तो उन दो रंगों को एक-दूसरे का "पूरक" रंग कहते हैं।

प्रकृति के रहस्य अधिकांशत: प्रकाश की भाषा में अंकित हैं। उनका उद्‌घाटन प्रकाश की सांकेतिक भाषा को समझने से हो सकता है। अणुसिद्धांत और प्रकाश के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के आधार पर अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि प्रत्येक द्रव्य या प्रत्येक प्रकार का अणु अपनी आण्विक संरचना के आधार पर एक विशेष तरंग-दैर्ध्य को ही ऊर्जा के रूप में उत्सर्जित या गृहीत करता है। इसी के आधार पर प्रत्येक द्रव्य का वर्णपट में एक निश्चित स्थान होता है, जो दूसरे किसी द्रव्य का नहीं होता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक प्रकार का अणु अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को अपने विशिष्ट हस्ताक्षर द्वारा अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है और यह हस्ताक्षर उस द्रव्य विशेष या अणुविशेष की "अंगुलियों की छाप" बन जाती है जो केवल उसके अपने व्यक्तित्व (संरचना-विशेष) को ही व्यक्त करती है।

11.2.4. रंगों का कार्य

रंगों का कार्य है शरीर का संतुलन बनाए रखना। जिस व्यक्ति के शरीर में लाल और नीले—इन दोनों रंगों का संतुलन होता है तो उस व्यक्ति का शरीर संतुलित होता है। उसका शरीर सुन्दर और सुगठित होता है।

11.2.4.1 नीला रंग (Blue)—नीला रंग बहुत शांति दायक होता है। गर्मी, उष्मा या उत्तेजना—इन सबको मिटाता है। गर्मी के मौसम में नीला रंग अत्यन्त उपयोगी होता है। जितने भी पित्त प्रधान रोग हैं, नीला रंग उनका शमन करता है। नीला रंग धर्मोन्माद (tanaticism) को बताता है। यह रंग अवसादक व अपवित्रतानाशक व सड़न रोकने वाला तथा शांतिप्रदान करने वाला है।

11.2.4.2 हरा रंग (Green colour)—यह रक्त व नाड़ियों को शांत करता है। यह विशेष रूप से spleen को प्रभावित करता है जो श्वेत रक्त कणिकाओं (W.B.C.) का निर्माण करता है। आभामण्डल में इस रंग वाले व्यक्ति दुनिया को एक सुर में करने वाले तथा शांति स्थापित करने वाले होते हैं। वे समाज में सामाजिक स्थिरता के लिए लड़ते हैं। हरा रंग हमें स्थिरता व शांति प्रदान करने वाला होता है।

11.2.4.3 लाल रंग (Red colour)—फेबर बिरेन के अनुसार, लाल रंग रक्त चाप, धड़कन, श्वास तथा पसीना बढ़ाते हैं तथा मस्तिष्क में उत्तेजना बढ़ाता है। आंखों की पलकें अधिक झपकती हैं, व मांसपेशीयों में अधिक तनाव पाया जाता है। लाल रंग मंगल ग्रह का परिचायक है। इसके प्रभाव वाला व्यक्ति ताकतवर, फुर्तिला, शक्तिशाली व नेतृत्व करने वाला होता है।

11.2.4.4 नारंगी रंग (Orange colour)—यह सूर्य से सम्बन्धित है व ऊर्जा प्रदान करने वाला है। यह भावों (Motions) को उत्तेजित करता है। यह भावनात्मक कारणों से पक्षाघात (paralysis) में लाभदायक है। आभामण्डल में इस रंग के प्रभाव वाले व्यक्ति जीवन में अमृत्व को प्राप्त करते हैं।

11.2.4.5 पीला (Yellow colour)—फेबर बिरेन के अनुसार, शुद्ध हल्का पीला रंग बुद्धिमत्ता, विवेकपूर्णता व कला-कौशलता का परिचायक है। पीला रंग का प्रकाश मस्तिष्क की नाड़ियों को उत्तेजित करता है व शरीर के अंगों को क्रियाशील व स्फूर्तिवान बनाता है। यह रंग भावुक व उत्तेजना युक्त लोगों के लिए वर्जित है।

11.2.4.6 नील रंग (Indigo colour)—आभामण्डल में इसका प्रभाव व्यक्ति में उच्च लालसा व प्रतिष्ठा का परिचायक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.2.4.7 बैंगनी (Violet colour)—यह रंग व्यक्ति में सर्वोच्च गुणों को दर्शाता है व व्यक्ति आध्यात्मिक लालसा वाला होता है। यह रंग बालों, आंखों, पाचन व मस्तिष्क के लिए लाभकारी है। आभामण्डल में यह रंग व्यक्ति में आध्यात्मिकता, सम्मान व स्व-निरपेक्ष व आत्म-साक्षात्कार कराने वाला होता है। अध्यात्म के विकास में बैंगनी रंग का बहुत महत्त्व है। मनुष्य की हिंसात्मक वृत्तियों को बदलने में यह रंग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

11.2.4.8 सफेद (White colour)—जब व्यक्ति अपने आभामण्डल को परिशुद्ध कर लेता है तब वह सफेद रंग को प्राप्त करता है। यह आध्यात्मिक व श्रेष्ठता तथा परिशुद्धता का परिचायक है। श्वेत रंग का ध्यान करने पर पवित्र संकल्पों को अन्तर्जगत् तक पहुंचाकर हम ऐसी आराधना की पद्धति का विकास कर सकते हैं जो लौकिक पद्धति से भी अधिक शक्तिशाली होती है।

चिकित्सा विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि विभिन्न रंग हमारे तंत्रिका तन्त्र पर एक निश्चित प्रभाव डालते हैं।

जब हम तैजस शरीर में प्रवेश करते हैं तब हमारा चिन्तन बदल जाता है, भावधारा बदल जाती है। भावों का सारा निर्माण इस तैजस शरीर या विद्युत् शरीर की सीमा में होता है। हमारे भाव बनते हैं, अच्छे होते हैं, बुरे होते हैं, वे सब तैजस शरीर की सीमा में होते हैं। तैजस शरीर के आस-पास घटनाएं घटित होती हैं। वे घटनाएं और भाव स्थूल शरीर पर उतरते हैं और हमारे ग्रंथि संस्थान, हमारे स्नायु-मंडल को प्रभावित करते हैं। फिर वे हमारे आचरण में आते हैं। मनुष्य के आचरण और व्यवहार का अध्ययन नाड़ी-मंडल और ग्रंथि-संस्थान के आधार पर नहीं किया जा सकता उसका अध्ययन किया जा सकता है तैजस शरीर के आधार पर, लेश्याओं और भावतंत्र के आधार पर।

11.2.5 व्यक्तित्व रूपान्तरण के घटक

तेजो-लेश्या, पद्म-लेश्या और शुक्ल-लेश्या के प्रयोग, उनसे परिष्कृत होने वाला आभामंडल और उन आभामंडलों में आने वाले वे परमाणु—ये सारे हमारे व्यक्तित्व को नया निखार और नया रूप दे देते हैं।

लेश्या-ध्यान एक कसौटी है। सामाजिक जीवन में ध्यान करने वाले व्यक्ति की कसौटी होती है उसका व्यवहार और उसका चरित्र। ध्यान करता चला जाए और व्यवहार न बदले, चरित्र न बदले तो मानना चाहिए कि उसका ध्यान भी एक नशा मात्र है। कोरा आनन्द मिलना, कोरी शांति मिलनी या तृप्ति मिलनी—यह भी ध्यान की परिपूर्णता नहीं है। ये तो प्रारम्भिक बातें हैं। ध्यान की व्यावहारिक कसौटी होगी कि ध्यान करने वाले का जीवन बदले, उसका व्यवहार और चरित्र बदले। यदि यह होता है तो समझना चाहिए कि व्यक्ति को ध्यान उपलब्ध हो गया है। ध्यान करने वाले व्यक्ति की आंतरिक कसौटी है—आभामंडल का परिष्कार। जिसका आभामंडल निर्मल हो गया, लेश्याएं विशुद्ध हो गई, भावधारा शुद्ध हो गई तो समझा जा सकता है कि व्यक्ति ध्यान करता है। इसीलिए प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति में एक कसौटी के रूप में और आने वाले अवरोधों को समाप्त करने के लिए लेश्या-ध्यान का बहुत बड़ा महत्त्व है।

11.3 रंग और मनोविज्ञान

वैज्ञानिकों के अनुसार हमारा सारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अंतर-मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रंग। रंग हमारे समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है।

सभी प्राणियों के स्वास्थ्य और व्यवहार पर प्रकाश और रंगों का गहरा प्रभाव है। वनस्पति-जगत् के लिए सूर्य का प्रकाश जीवनदाता है। मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दशाओं तथा आचार-व्यवहार पर विभिन्न रंगों का क्या-क्या प्रभाव पड़ता है—इस विषय में प्राचीन एवं आधुनिक दोनों विज्ञानों में काफी गवेषणा की गई है। उन्नीसवीं शताब्दी के रंग-चिकित्सकों का यह दावा था कि विभिन्न रंगों के कांच या बोतलों के माध्यम से तैयार की गई औषधियों द्वारा वे सामान्य कब्जी से लेकर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तंत्रिकाशोध (नाड़ी-तंत्र की कोशिकाओं पर आई हुई सोजिश (Meningitis) जैसी घातक बीमारियों तक को ठीक कर सकते हैं। उस युग में इस प्रकार के दावे चिरकाल तक प्रतिष्ठित नहीं हो सके और अन्त में बदनाम भी हुए किन्तु आधुनिक युग में इन्हें रंग-चिकित्सा या "प्रकाश-जैविकी" (फोटोबायोलोजी) के नाम से पुनरुज्जीवित किया गया है। अमरीका की "मासाच्यूमेट्स इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलोजी" के सुप्रसिद्ध पोषण वैज्ञानिक डॉ. रिचर्ड जे. वुर्ब्मैन के अनुसार—"शारीरिक क्रियाकलापों पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले तत्त्वों में आहार के अतिरिक्त यदि किसी का हाथ है, तो यह है प्रकाश का।"

अनेक प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात किया जा चुका है कि विभिन्न रंगों का व्यक्ति के रक्तचाप, नाड़ी और श्वसन की गति एवं मस्तिष्क के क्रियाकलापों पर तथा अन्य जैविकी क्रियाओं पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इसी परिणामस्वरूप आज अनेक प्रकार की बीमारियों की चिकित्सा में विभिन्न रंगों का उपयोग किया जाने लगा है।

11.3.1 शांति-दायक गुलाबी रंग

केलिफोर्निया (अमरीका) के सान बरमार्डिनो काउण्टी के "प्रोबेशन विभाग" (अपराध-सुधार-विभाग) की स्वास्थ्य सेवा के निर्देशक श्री पौल ई. बोकुनिनी कहते हैं—"हमारे यहां कैद वाले अपराधी जब कभी उन्मत्त होकर हिंसा पर ऊतारू हो जाते थे तब पहले हम यातनाओं द्वारा उन पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। अब हम उन्हें ऐसे कमरे में रखते हैं जिसकी दीवारें एक विशेष गुलाबी रंग से रंगी हुई होती है। हमने पाया कि वे उद्दंड बच्चे चिल्लाना छोड़ कर शिथिल और शांत होकर केवल 10 मिनट में ही निद्राधीन हो जाते हैं।" समूचे अमरीका में लगभग 1500 से अधिक अस्पतालों एवं सुधार-गृहों में कम से कम एक कमरा गुलाबी रंग की दीवारों वाला होता ही है। यह गुलाबी रंग "शांति दायक गुलाबी रंग" के नाम से प्रसिद्ध है। यह मनुष्य की भावनाओं पर होने वाले रंग के प्रभाव का ज्वलंत उदाहरण है।

11.3.2 लेश्या और मानसिक चिकित्सा

लाल रंग का ध्यान करने से शक्ति-केन्द्र (मूलाधार) और दर्शन-केन्द्र (आज्ञाचक्र)—ये चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं। पीले रंग का ध्यान करने से आनन्द-केन्द्र (अनाहत चक्र) जागृत होता है। श्वेत रंग का ध्यान करने से विशुद्धि-केन्द्र (विशुद्धि चक्र), तैजस-केन्द्र (मणिपूर-चक्र) और ज्ञान केन्द्र (सहस्रार-चक्र) जागृत होते हैं।

श्वेत रंग ठंडा होता है। वह सूर्य से प्राप्त होने वाले जीवन-तत्त्व और बल को शरीर तक पहुंचाने में कोई बाधा उपस्थित नहीं करता। लाल रंग गर्मी बढ़ाने वाला है। जिसके शरीर में रक्त की गति मंद हो, उसके लिए यह लाभदायक है किन्तु जिसके ज्ञानतंतु दुर्बल हों, उसके लिए यह लाभदायक नहीं है। जो तुरंत थक जाता है और खिन्न रहता है उसके लिए यह रंग बहुत उपयोगी है। पीला रंग भी गर्मी बढ़ाने वाला होता है। उससे ज्ञानतंतु जागृत होते हैं—स्वस्थ रहते हैं। काला रंग सूर्य की रश्मियों को स्वयं आकर्षित कर लेता है। नीला रंग शीत प्रकृति का होता है। इससे जीवन शक्ति प्राप्त होती है। इसमें विद्युत् शक्ति है। यह पौष्टिक और शांति देने वाला है।

सूर्य का रंग पारे के समान श्वेत, चन्द्रमा का रंग चांदी के समान रुपहला, मंगल का तांबे के समान लाल, बुध का हरा, वृहस्पति का सोने के समान पीला, शुक्र का नील, शनि का आसमानी, राहु का काला, केतु का आसमानी रंग है। इनकी किरणें भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव डालती हैं। सूर्य की किरणें निर्मल होती हैं तो उनका भिन्न प्रकार का प्रभाव होता है। उसकी किरणों के साथ मंगल आदि की किरणें मिल जाती हैं तब उनका प्रभाव दूसरे प्रकार का होता है।

रंगों के गुणों और प्रभावों का यह संकेत मात्र निदर्शन है। प्रत्येक रंग के अनेक पर्याय होते हैं और प्रत्येक पर्याय के गुण और प्रभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। निर्मल भावना, ध्येय और उसके अनुरूप रंगों का चयन कर अनेक मानसिक समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.3.3 नीला और पराबैंगनी रंग

प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में बच्चों का निर्धारित समय से पहले प्रसव हो जाता है। ऐसे बालक प्राय: घातक पीलिया की बीमारी के शिकार हो जाते हैं। ऐसे बालकों का उपचार पहले प्राय: बाहर से रक्त चढ़ाकर किया जाता था। अब उनका उपचार रक्त-आधान के बदले नीले प्रकाश की किरणों के स्नान से किया जाने लगा है।

रूस को प्रकाश-जैविकी के क्षेत्र में अग्रगण्य माना जाता है। वहां के वैज्ञानिकों के अनुसार कोयला की खानों के मजदूर को यदि पराबैंगनी किरणों का स्नान कराया जाता है, तो वे "श्याम फुफ्फुस" (black lungs) नामक बीमारी से बच सकते हैं। श्री फाबेर बिरेन नामक एक रंग-विशेषज्ञ हैं, जिन्होंने रंग के विषय में सैंकडों लेख एवं अनेक पुस्तकें लिखी हैं तथा जो इस विषय के अधिकृत व्यक्ति माने जाते हैं। श्री बिरेन के मतानुसार स्कूल के कमरों में बत्तियों के साथ पराबैंगनी प्रकाश वाली बत्तियों को लगाने पर विद्यार्थियों का विकास तेजी के साथ होता है, उनकी कार्य-क्षमता और प्राप्तांकों में वृद्धि होती है तथा जुकाम, नजले आदि की बीमारियों की घटनाओं में कमी आती है।

11.3.4 मन:कायिक बीमारियों पर रंगों का प्रभाव

रंग व्यक्ति की बीमारियों को कैसे और क्यों प्रभावित करते हैं—इस विषय में सभी चिकित्सक एकमत नहीं हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि रंगों का प्रभाव सीधे शरीर पर न होकर, मानस पर होता है। उसके मतानुसार रंगों द्वारा ऐसी मनोदशाओं का निर्माण होता है जो शरीर को स्वस्थ कर देती है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि आधे से अधिक बीमारियां मन:कायिक ही होती हैं।

इस बात को सभी चिकित्सक और शोधकर्त्ता स्वीकार करते हैं कि विद्युत्-चुम्बकीय तरंग-क्रम का अमुक हिस्सा, जैसे कि "एक्स" किरणें, सूक्ष्म तरंगें एवं परा-बैंगनी किरणें, व्यक्ति के स्वास्थ्य पर उल्लेखनीय प्रभाव डालती हैं किन्तु पूरे दृश्य प्रकाश के प्रभाव के विषय में उनमें मतभेद है। फिर भी अनेक प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि प्रकाश हमारे अन्त:स्रावी ग्रन्थि-तंत्र एवं नाड़ी-तंत्र को निश्चित रूप से प्रभावित करता है।

11.3.5 नाड़ी-ग्रन्थि-तंत्र पर रंगों का प्रभाव

अमरीकन इंस्टीच्यूट आफ बायो-सोसल रीसर्च के निदेशक प्रो. एलेक्झांडर सोस की मान्यता है कि रंग की विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा किसी अज्ञात रूप में हमारी पिच्युटरी और पीनियल ग्रन्थियों एवं मस्तिष्क की गहराई में विद्यमान हाइपोथेलेमस को प्रभावित करती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर के ये अवयव अन्त:स्रावी ग्रन्थि तंत्र का नियमन करते हैं, जो स्वयं शरीर के अनेक मूलभूत क्रियाकलापों और आक्रमण, भय आदि भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण करते हैं।

हेरोल्ड बोह्लफार्थ नामक प्रकाश-जीव विज्ञान-शास्त्री (फोटोबायोलोजिस्ट) और "जर्मन अकादमी ऑफ कलर साइन्स" के अध्यक्ष ने एक विद्यालय के बच्चों पर कुछ प्रयोग करने के पश्चात् यह रिर्पोट दी है कि दो अंधे बच्चों के रक्त-चाप, नाड़ी की गति और श्वास की गति पर प्रकाश का वही प्रभाव देखा गया जो कि अन्य सात सामान्य दृष्टिकोण वाले बच्चों पर देखा गया था। बायो-सोसल रीसर्च की एक पत्रिका में उपर्युक्त प्रयोग की जो रिर्पोट छपी है, उसमें बताया गया है कि जब विद्यालय के कमरों की दीवारों के रंगों का नारंगी और सफेद से बदलकर रोयल ब्लू और हल्का ब्लू कर दिया गया। सामान्य बत्तियों के स्थान पर इन्द्रधनुषी बत्तियों को लगा दिया तो बच्चों का प्रकुंचन (ऊपर का) रक्तचाप 120 से घटकर 100 तक आ गया। उनका व्यवहार पहले से अधिक अच्छा और अनुशासनबद्ध हुआ तथा उनकी एकाग्रता बढ़ गई। आगे भी बोह्लफार्थ कहते हैं—प्रकाश से प्राप्त विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा की अल्पमात्राएं हमारे एक या एक से अधिक तंत्रिका संचारी (neuro-transmitter) को—जो एक तंत्रिका से दूसरी तंत्रिका तक या तंत्रिका से मांसपेशी तक संदेश पहुंचाने वाले रासायनिक संदेशवाहक हैं—प्रभावित करती हैं। प्रयोगों के द्वारा ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं कि जो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रकाश हमारी आंखों के दृष्टिपटल पर टकराता है, वह हमारी पीनियल ग्रन्थि में से निकलने वाले मेलाटोनिन नामक महत्त्वपूर्ण स्राव के संश्लेषण को प्रभावित करता है। यह मेलाटोनिन नामक हार्मोन एक अन्य सेरोटोनिन नामक तंत्रिका-संचार के उत्पादन-मात्रा का निर्णय करने में सहायक होता है।

11.4 क्या आभामंडल दीखता है?

क्या आभामंडल देखा जा सकता है? हां, बहुत अच्छी तरह से देखा जा सकता है; किन्तु आभामंडल का दर्शन हर किसी को नहीं होता। शरीर की स्थिरता की साधना करने वाले व्यक्ति को हो सकता है, कायोत्सर्ग की प्रगाढ़ अवस्था में आभामंडल दिखाई देता है। अचानक गहरी ध्यान की स्थिति में भी आभामंडल का दर्शन होने लगता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि ध्यान करते-करते शरीर तो नहीं है; किन्तु पूरे शरीर के आकार की कोई प्रतिमा सामने आकर बैठ गई है। कभी-कभी गहरे अंधेरे में हाथ को देखें। हाथ दिखाई नहीं देगा, किन्तु हाथ के आकार की एक आभा दीखने लग जाएगी, पूरा-का-पूरा विद्युत्मय हाथ दीखने लग जाएगा, बशर्ते कि अंधकार सघन हो।

पिछली कुछ शताब्दियों के दौरान अनेक लोगों ने आभामंडल के अध्ययन से रोगों के निदान के लिए या स्वास्थ्य और प्राणशक्ति को नापने के लिए नाना प्रकार के उपकरणों को काम में लिया है, जिसमें सीधे-सादे पर चमत्कारी डंडों और केवल हस्त-स्पर्श से लेकर बहुमूल्य मशीनों तक की सामग्री शामिल है। पिछले कुछ वर्षों में मद्रास के गवर्नमेंट जनरल अस्पताल के "इंस्टीच्यूट ऑफ न्यूरोलॉजी" (स्नायु-विज्ञान संस्थान) में डॉक्टरों के एक दल ने जिसके नेता डॉ. पी. नरेन्द्रम् हैं, किर्लियन फोटोग्राफी की तकनीक को विकसित कर आभामंडल के फोटो लेने के उपकरण का विकास किया है और इसके माध्यम से अनेक खोजें की हैं और कर रहे हैं। अन्य देशों में भी इस प्रकार का कार्य चल रहा है।

किर्लियन दम्पति के कार्यों की रिपोर्ट ने डॉ. नरेन्द्रन् को 1934 में ही इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रेरित कर दिया था। डॉ. नरेन्द्रन् और उनके साथी डॉक्टरों व तकनिशियनों ने मिलकर उपरोक्त उपकरण का विकास किया। इससे रुग्ण व्यक्ति की अंगुली के आभामंडल की फोटो अंगुली को एक प्लेट पर रखकर लिया जाता है, जिसे एक विद्युत्-पथ के साथ जोड़ा जाता है और इस माध्यम से आभामंडल को पकड़ा जा सकता है, जिसे कोई भी आदमी आंखों से देख सकता है। उस आभामंडल को प्रकाश-तरंग में बदल कर एक कैमरे सदृश उपकरण के द्वारा फोटोग्राफिक कागज पर उतारा जा सकता है। इसके लिए बीमार को किसी भी प्रकार की पूर्व तैयारी की आवश्यकता नहीं होती और न ही रिकार्डिंग के दौरान किसी प्रकार के विकिरणों का प्रसारण होता है।

11.4.1 आभामंडल के रंग और रोग

डॉ. नरेन्द्रन् कहते हैं कि "जीवित प्राणी में से निकलने वाला आभामंडल न तो उष्मा है, न ध्वनि। वह एक प्रकार की तरंगों के रूप में होता है किन्तु स्वस्थ और अस्वस्थ, मृत और जीवित, जीवन्त और निर्जीव वस्तुओं के आभामंडल में निश्चित ही भिन्नताएं होती हैं।"

आभामंडल में विविध रंग पाए जाते हैं—लाल, हरा, पीला, जामनी और नीला। सफेद और श्याम रंग नहीं पाए गए। वर्तमान में तो केवल अंगुलियों के अग्रभाग के आभामंडलों तक अध्ययन सीमित है। पिछले तीन वर्षों (1981-1984) में डॉ. नरेन्द्रन् के दल ने 932 बीमार व्यक्तियों का अध्ययन किया है जिनमें स्नायविक गड़बड़ी, उदररोग, स्त्रीरोग आदि के रुग्ण थे। स्नायविक (नाड़ीतंत्रीय) गड़बड़ी के भिन्न-भिन्न प्रकार के मरीजों के आभामंडल निश्चित ढांचे के पाए गए। इन रोगों में मिर्गी, सूत्रण रोग, मस्तिष्क की गांठ, चेहरे का पक्षाघात जैसी बीमारियां शामिल हैं। इस मशीन के द्वारा बीमारी होने से पूर्व ही उसकी भविष्यवाणी की जा सकती है। इस दृष्टि से यह उपकरण बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विशेषत: कैंसर जैसे रोगों के बारे में पहले से ही उसका पता लगाया जा सकेगा और उसका उपचार कर लेना संभव हो जाएगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.4.2 विदेशों में आभामंडल पर शोध

डॉ. नरेन्द्रन् ने बताया है कि सोवियत संघ में आभामंडल के ज्ञान का उपयोग कृषि-कार्य में किया जा रहा है वैज्ञानिकों ने पत्तियों की रुग्णता का अध्ययन आभामंडल के आधार पर किया तथा उनके रोगों के विषय में भविष्यवाणियां की।

दूसरी ओर अमरीका में उसका उपयोग अतीन्द्रिय ज्ञान के अध्ययन में किया जा रहा है। आभामंडल में दिखाई देने वाले विभिन्न रंगों की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

1. सुनहला रंग	आध्यात्मिकता
2. हल्का नीला या नील	लोहित रोग हरने की शक्ति
3. गुलाबी	प्रेम, स्नेह
4. लाल	तृष्णा, क्रोध
5. हरा	बोद्धिकता
6. भूरे या गहरे मटियाले रंग	रोगग्रस्तता
7. मुर्झाया या निस्तेज	मृत्यु की सन्निकटता

11.4.3. समस्या सुलझाने का प्रयोग

समस्या को सुलझाने का एक छोटा-सा प्रयोग करें। जब कभी समस्या आए, शान्त होकर कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठें। श्वास शान्त, शरीर शांत, मांसपेशियां शिथिल, पूरा कायोत्सर्ग दस मिनट तक करें। मस्तिष्क में पीले रंग का ध्यान करें, पद्म-लेश्या का ध्यान करें। अथवा दस मिनट तक आंखें बन्द कर आंखों पर पीले रंग का ध्यान करें। अथवा दस मिनट तक आनन्द केन्द्र में अरुण रंग का ध्यान करें। ऐसा लगेगा कि समस्या बिना सुलझाए सुलझ रही है। समाधान स्वतः कहीं से उतर कर सामने आ जाएगा।

बोध प्रश्न 1:

---

1. रंग, तरंग-दैर्ध्य और आवृत्ति में आपस में क्या सम्बन्ध है?
2. प्राथमिक रंग कौन-कौन से है?
3. गुलाबी रंग शांतिदायक कैसे है?

11.5 लेश्या-ध्यान आध्यात्मिक दृष्टिकोण

लेश्या शब्द का अर्थ आणविक आभा कांति, प्रभा या छाया है। छाया-पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव के परिणामों को भी लेश्या कहा गया है। प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक आभा उससे प्रभावित होने वाले आत्म-परिणाम—इन तीनों अर्थों में लेश्या का उल्लेख मिलता है। शरीर, वर्ण और आणविक आभा को 'द्रव्य-लेश्या' और आत्म-परिणाम को 'भाव लेश्या' कहा गया है।

आणविक आभा कर्म-लेश्या का ही नामांतर है और कर्मों में छठा कर्म नाम है। उसका सम्बन्ध शरीर रचना सम्बन्धी पुद्गलों से है। उसकी एक प्रकृति 'शरीर-नामकर्म' है। 'शरीर-नामकर्म' के पुद्गलों का ही एक वर्ग कर्म-लेश्या कहलाता है।

लेश्या की अनेक परिभाषाएं मिलती हैं, जैसे—

1. योग-परिणाम
2. कषायोदय रंजित योग-प्रवृत्ति
3. कर्म-निष्यन्द
4. कार्मण शरीर की भांति कार्मण वर्गणा-निष्पन्न कर्म-द्रव्य।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इन शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुसार लेश्या से जीव और कर्म पुद्गलों का संबंध होता है, कर्म की स्थिति निष्पन्न होती है और कर्म का उदय होता है। इस प्रकार आत्मा की शुद्धि और अशुद्धि के साथ लेश्या जुड़ी हुई है।

प्रभाववाद की दृष्टि से दोनों परम्पराएं प्राप्त होती हैं—

1. पौद्गलिक लेश्या का आत्मिक परिणामों पर प्रभाव।
2. आत्म-परिणाम का लेश्या पर प्रभाव।

कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामोऽयमात्मनः।
स्फटिकस्यैव तत्रायं लेश्या-शब्दः प्रवर्तते।।

इस प्रसिद्ध श्लोक की ध्वनि यही है—कृष्ण आदि लेश्या पुद्गल जैसे होते हैं वैसी ही मानसिक परिणति होती है। आत्मिक परिणति होती है। पांच आस्रवों में प्रवृत्त मनुष्य कृष्ण लेश्या में परिणत होता है। अर्थात् उसकी आणविक आभा (पर्यावरण) कृष्ण होती है। जैसे रंग हम ग्रहण करते हैं वैसे ही हमारे भाव, आचार और व्यवहार बन जाते हैं। स्फटिक के सामने जैसा रंग आता है, वह वैसा ही दीखने लग जाता है। स्फटिक का अपना कोई रंग नहीं होता। आत्मा के परिणामों का भी अपना कोई रंग नहीं होता। सामने जिस रंग के परमाणु आते हैं, परिणाम भी वैसे हो जाते हैं। ये परिणाम ही हमारी भाव-लेश्या है।

मनुस्मृति में सत्त्व रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाए गए हैं, वे लेश्या के लक्षण से तुलनीय हैं।

11.5.1 लेश्या—रंग का संस्थान

भीतर कषाय का तंत्र है। वहां जो कुछ भी जाता है, वह रंगीन हो जाता है। जो भी माल बाहर आता है, वह रंगीन आता है।

हिंसा, असत्य, क्रोध, अहंकार, कपट आदि का आचरण करने वाला व्यक्ति बाहर से काले, नीले आदि मलिन रंगों के परमाणु आकर्षित करता है। लेश्या-तंत्र उन्हें कषाय तक पहुंचाता है। जब विपाक होता है, तब कषाय से रंगीन होकर लेश्या के माध्यम से वे बाहर आते हैं और भिन्न-भिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में आकर भिन्न-भिन्न प्रकार की वृत्तियों और वासनाओं को प्रकट करते हैं। इस प्रकार संपर्क-सूत्र का सारा कार्य लेश्या-तंत्र के हाथ में है।

रंग चित्त को सबसे अधिक प्रभावित करता है। हमारा सारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर्मन को—अवचेतन मन और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है—रंग। हमारे जीवन का ही नहीं, मत्यु का सम्बन्ध भी रंग से है। हमारे पुनर्जन्म का संबंध भी रंग से है।

11.5.2 वृत्तियों का उद्भव-स्थान

हमारी वृत्तियां, भाव या आदतें—इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तंत्र है—लेश्या-तंत्र। जब तक लेश्या-तंत्र शुद्ध नहीं होता, तब तक आदतों में परिवर्तन नहीं हो सकता। लेश्या-तंत्र को शुद्ध करना आवश्यक है। उसके शुद्ध करने की प्रक्रिया को समझने से पहले यह समझना जरूरी है कि अशुद्धि कहां जन्म लेती है और कहां प्रकट होती है यदि हम उस तंत्र को ठीक समझ लेते हैं तो शुद्ध करने की बात को समझने में सुविधा हो जाती है।

हम वर्तमान विज्ञान की दृष्टि, योग-शास्त्र की दृष्टि और लेश्या के सिद्धांत की दृष्टि—इन तीनों दृष्टियों से इन पर विचार करें और इसकी तुलना करें।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि के अनुसार काम-वासना का स्थान है—जनन-ग्रंथियां (गोनाड्स) वहां काम-वासना उत्पन्न होती है। अन्य वृत्तियों का स्थान है—अधिवृक्क ग्रंथियां (एड्रीनल ग्लैण्ड्स) वहां, भय आवेग, बुरे भाव जन्म लेते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

योग-शास्त्र की भाषा में तीन चक्र हैं—स्वधिष्ठान-चक्र, मणिपुर-चक्र और अनाहत-चक्र जहां हमारी वृत्तियां जन्म लेती हैं। "एड्रीनल और गोनाड्स" को योग-शास्त्र की भाषा में स्वाधिष्ठान-चक्र और मणिपुर-चक्र कहा जाता है।

लेश्या-सिद्धान्त की दृष्टि से अविरति, क्षुद्रता, निर्दयता, नृशंसता, माया, निर्लज्जता, विषय-वासना, क्लेश, रस-लोलुपता—ये नील-लेश्या के परिणमन हैं। वक्रता—वक्र आचरण, अपने दोषों को ढांकने की मनोवृत्ति, परिग्रह का भाव, मिथ्या दृष्टिकोण, दूसरे के मर्म को भेदने की वृत्ति, अप्रिय कथन—ये कापोत-लेश्या के परिणमन हैं।

विज्ञान की दृष्टि, योग-शास्त्रीय दृष्टिकोण, लेश्या सिद्धांत की दृष्टि—इन तीनों की तुलनात्मक दृष्टि से लेश्या के सिद्धांत में जो तीन लेश्याएं हैं, योग-शास्त्र की दृष्टि में जो तीन चक्र हैं और विज्ञान की दृष्टि में जो एड्रीनल और गोनाड्स ग्रन्थियां हैं—इन सबका काम समान-सा है। लेश्या का सिद्धांत मानता है कि सारी आदतें तीन लेश्याओं में जन्म लेती हैं। योगशास्त्र मानता है कि सारी आदतें तीन चक्रों में जन्म लेती हैं और विज्ञान के अनुसार ये सारी आदतें दो ग्रन्थियों में जन्म लेती हैं, अद्भुत समानता हैं तीनों प्रतिपादनों में। यह सत्य स्पष्ट हो गया कि सारी बुरी वृत्तियां पेडू के पास वाले स्थान से लेकर नाभि तक का या हृदय के स्थान तक जन्म लेती हैं। इतना ही स्थान है इनका। इस सत्य को समझ लेने पर बदलने की भावना को समझने में बहुत सरलता हो जाती है।

11.5.3 रंगों का ध्यान और भाव परिवर्तन

जो व्यक्ति प्रकाशमय रंगों का ध्यान करता है वह अपने आन्तरिक व्यक्तित्व का ध्यान कर लेता है। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या के रंगों से होने वाली आदतें तेजोलेश्या के प्रकाशमय लाल रंग से समाप्त होने लगती हैं। पद्म लेश्या का रंग पीला है। यह रंग बहुत शक्तिशाली होता है। यह गर्मी पैदा करने वाला रंग है। लाल रंग भी गर्मी पैदा करता है। उत्क्रमण की सारी प्रक्रिया गर्मी बढ़ाने की प्रक्रिया है। तेजोलेश्या में भी गर्मी बढ़ती है, पद्म लेश्या में भी गर्मी बढ़ती है और जब वह गर्मी पूरी मात्रा में बढ़ती है, तब शुक्ल लेश्या के द्वारा गर्मी का उपशमन करते हैं और तब निर्वाण घटित होता है।

पीले रंग की क्षमता है मन को प्रसन्न करना, दर्शन की शक्ति को बढ़ाना, मस्तिष्क और नाड़ी-संस्थान को सुदृढ़ बनाना। यदि हम हृदय केन्द्र, दर्शन केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान करते हैं और मस्तिष्क तथा विशुद्धि केन्द्र पर पीले रंग का ध्यान करते हैं। अंधकार के रंगों द्वारा निर्मित आदतें विघटित होने लगती हैं और नई आदतें बननी प्रारंभ हो जाती हैं। लेश्या ध्यान का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। यह जैन साधना पद्धति का अपूर्व प्रयोग है।

जब पद्म-लेश्या के स्पन्दन जागते हैं, पीले रंग के परमाणुओं के प्रकम्पन पैदा होते हैं, तब व्यक्ति को अनिर्वचनीयता प्राप्त होती है। उसमें प्रज्ञा की निर्मलता, बुद्धि की निर्मलता और ज्ञान-तन्तुओं की निर्मलता इतनी तीव्र होती है कि वह हजारों ग्रन्थों के अध्ययन से भी उपलब्ध नहीं होती। गहराई में जाने की ऐसी दृष्टि मिल जाती है कि आदमी समस्या को तत्काल सुलझाने में सक्षम हो जाता है।

11.5.4 भावधारा, लेश्या और आभामंडल

प्राणी न शुद्ध अर्थ में आत्मा है और न शुद्ध अर्थ में जड़ पदार्थ है। वह एक यौगिक पदार्थ है। चैतन्य और पदार्थ का योग है। आत्मा का लक्षण है चैतन्य। पदार्थ का लक्षण है—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श। प्राणी का आभामंडल दो प्रकार की ऊर्जाओं के संयुक्त विकिरण से बनता है—एक चैतन्य द्वारा प्राण-ऊर्जा का विकिरण और दूसरा भौतिक शरीर द्वारा विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा का विकिरण। प्राण-ऊर्जा के विकिरण का आधार है—व्यक्ति की भावधारा। भाव चैतसिक है और आभामंडल पौद्गलिक (भौतिक) है फिर भी भाव और आभामंडल दोनों परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध रखते हैं। आभामंडल हमारी भावना का प्रतिनिधित्व करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस दृष्टि से भाव के द्वारा आभामंडल की और आभामंडल के द्वारा भाव की व्याख्या की जा सकती है। आभामंडल किसी एक रंग का नहीं होता। उसमें अनेक रंगों का मिश्रण होता है क्योंकि उसका निर्माण लेश्याओं के आधार पर होता है। लेश्या के रंग व्यक्ति के भाव पर निर्भर करते हैं। जिस व्यक्ति में जिन भावों की प्रधानता होती है, वैसे ही लेश्या के रंग हो जाते हैं।

हमारी भावधारा जैसी होती है, उसी के अनुरूप मानसिक चिंतन तथा शारीरिक मुद्राएं और अंग-संचालन होता है। क्रोध की मुद्रा में रहने वाले व्यक्ति में क्रोध के अवतरण की संभावना बढ़ जाती है। क्षमा की मुद्रा में रहने वाले व्यक्ति के लिए क्षमा की चेतना में जाना सहज हो जाता है।

11.6 प्रयोजन

11.6.1 सत्य की खोज

साधक के मन में यह प्रश्न सहज उभर सकता है कि ध्यान क्यों? प्रवृत्ति को छोड़कर निवृत्ति क्यों? प्रश्न स्वाभाविक है। हम यदि प्रवृत्ति और निवृत्ति को ठीक से समझ लें तो प्रश्न समाहित हो सकता है यदि तनिक भी भ्रान्ति हुई तो ध्यान के प्रति भी हम भ्रांत हो जाएंगे।

प्रवृत्ति है जीवन की नैया को खेने के लिए, जीवन की यात्रा को चलाने के लिए और निवृत्ति है जीवन की सचाई और सत्य को पाने के लिए। जो लोग केवल प्रवृत्ति करते हैं; वे जीवन की यात्रा को चला सकते हैं किन्तु जीवन की सचाई को प्राप्त नहीं कर सकते। प्रवृत्ति हमारी जीवन यात्रा का साधन है, साध्य नहीं। यदि जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति का सम्यक् संतुलन नहीं होता है तो व्यक्ति प्रवृत्ति को साध्य मानने लग जाता है और जीवन में एक बहुत बड़ी भ्रांति आ जाती है। इस भ्रांति को मिटाने के लिए सचाई को पाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति ध्यान का अभ्यास करे।

11.6.2 चैतन्य की स्वतंत्र सत्ता का अनुभव

विज्ञान की खोज उपकरणों, यंत्रों और अन्य भौतिक साधनों के माध्यम से हो रही है, इसलिए पदार्थ तक ही पहुंच पाएगी। आत्मा तक उसकी पहुंच नहीं हो सकती। चेतन सत्ता उसका विषय भी नहीं बनता। इसलिए वैज्ञानिक जगत् ने चेतन की स्वतंत्र सत्ता को अब तक स्वीकार नहीं किया है। उस अस्वीकार के कारण आज हमें ध्यान की उपयोगिता इतनी ही लगती है कि उससे तनाव कम होता है, शारीरिक स्वास्थ्य बना रहता है आदि। यह सच है कि ध्यान से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनाव कम होते हैं, स्वास्थ्य सुधरता है, रक्तचाप संतुलित होता है किन्तु ध्यान का उद्देश्य केवल शरीर को पुष्ट और स्वस्थ करने का नहीं है। यद्यपि शारीरिक स्वास्थ्य भी कम मूल्यवान् नहीं है और ध्यान का एक उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य भी है, पर सबसे मूल्यवान् उद्देश्य है अपने अस्तित्व का बोध। जब तक व्यक्ति अपने अस्तित्व का बोध नहीं कर लेता, तब तक दुःख को समाप्त नहीं कर सकता दुःखों को समाप्त करने का एकमात्र साधन है—सत्य की उपलब्धि, अस्तित्व की उपलब्धि।

11.6.3 अन्तर्दृष्टि की जागृति

अन्तर्दृष्टि का अर्थ है प्रियता और अप्रियता की अनुभूति से मुक्ति। अन्तर्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि, सम्यक्त्व, सत्य सब एक ही हैं। ध्यान हम इसलिए कर रहे हैं कि हम अपने अस्तित्व को जानें, ज्ञाता को जानें, द्रष्टा को जानें, ज्ञाता-द्रष्टा, जो पर्दे के पीछे चला गया, हम उसका अनुभव करें। एक वैज्ञानिक उसे नहीं जान सकता, एक ध्यान-साधक उसे जान सकता है। ध्यान के सारे नियम ज्ञाता तक पहुंचाने के लिए हैं। साधक अपने संवेदनों को शुद्ध करता चलता है, भोक्ता-स्वरूप को छोड़ता है और ज्ञाता-स्वरूप को प्राप्त करता है। जहां केवल जानने की बात आती है, वहां संवेदन शुद्ध हो जाता है, दृष्टि शुद्ध हो जाती और ज्ञान शुद्ध हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.6.4 अनुभव की सचाई

डॉ. इर्विन श्रोडिंजर (Erwin Shrodinger) जैसे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कहते हैं कि "आज वैज्ञानिक इस बात में उलझे हुए हैं कि पदार्थ का मूल कण क्या है? किन्तु यह कोई बहुत महत्त्व का प्रश्न नहीं है। विज्ञान के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह होनी चाहिए कि क्या चेतन सत्ता है या नहीं? और पदार्थ का मूल चेतन है या अचेतन?" वर्तमान में पदार्थ के विषय में अनेक दृष्टियां स्पष्ट हुई हैं; किन्तु चैतन्य के विषय में अब भी केवल वैज्ञानिकों को ही नहीं; धार्मिक लोगों में भी अनेक उलझनें हैं। आज धार्मिक लोग आत्मा के प्रश्न को शास्त्रों के माध्यम से हल करना चाहते हैं, तर्क के द्वारा समाहित करना चाहते हैं, आत्मा को वाङ्मय द्वारा जानना चाहते हैं। यह कितना विरोधाभास है कि एक ओर यह कहा जाता है कि आत्मा तर्कातीत, पदातीत और शब्दातीत सत्य है। दूसरी ओर हम उसे तर्क, पद और शब्द के द्वारा पाना चाहते हैं।

चैतन्य को जानने का एक मात्र उपाय है—स्वयं का अनुभव, अपने संवेदनों का निर्मलीकरण और ऊर्ध्वीकरण। ध्यान के साधक के लिए यह इष्ट है कि वह "स्वयं" आत्मा को खोजे। शास्त्रों में लिखा है आत्मा है किन्तु यह एक शाब्दिक सचाई है, मान्यता है। ध्यान का प्रयोग किया, अपनी अन्तश्चेतना को जगाया, साक्षात्कार किया और जाना कि आत्मा है। तब वह साधक की "अपनी" सचाई बन जाती है, अनुभव की सचाई बन जाती है। ध्यान के द्वारा ही हम अनुभव की सचाई तक पहुंच सकते हैं। ध्यान के अतिरिक्त ऐसा कोई माध्यम नहीं है, जो हमें शाब्दिक सचाई से हटाकर अनुभव की सचाई तक पहुंचा दे।

11.6.5 व्यक्तित्व का रूपांतरण

अध्यात्म के आचार्यों ने आत्म-शोधन की प्रक्रिया को इतने सुन्दर ढंग से प्ररूपित किया है कि उसे ठीक समझकर यदि हम उसका प्रयोग करें तो व्यक्तित्व के रूपांतरण में कोई कठिनाई नहीं होगी।

लेश्या के शोधन के द्वारा जीवन में धर्म सिद्ध हो सकता है। जब कृष्ण, नील और कापोत—ये तीन लेश्याएं बदल जाती हैं और तैजस्, पद्म और शुक्ल—ये तीन लेश्याएं अवतरित होती हैं, तब परिवर्तन घटित होता है। लेश्याओं के शोधन के बिना जीवन नहीं बदल सकता।

अध्यात्म का समूचा मार्ग रूपांतरण की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का एक अभ्यास-क्रम है जो व्यक्ति इस अभ्यास-क्रम को स्वीकार कर लेता है, वह निश्चित ही अपनी लेश्याओं को बदल लेता है। वह कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओं का अतिक्रमण कर या उन्हें बदलकर तैजस्, पद्म और शुक्ल लेश्याओं के स्पन्दनों के अनुभवों में चला जाता है। वहां जाने पर स्वभाव में अपने आप परिवर्तन प्रारंभ हो जाता है। यह है हमारे स्वभाव-परिवर्तन की प्रक्रिया और इसका साधन है लेश्या-ध्यान।

11.6.6 रासायनिक परिवर्तन

तप की समूची प्रक्रिया, योग की समूची प्रक्रिया और ध्यान की समूची प्रक्रिया आंतरिक रसायन-परिवर्तन की प्रक्रिया है। शक्तिशाली और गरिष्ठ भोजन के द्वारा शरीर में विषैले (toxic) रसायन पैदा होते हैं, संचित होते हैं और सन में वासना व विकृति पैदा करते हैं। आयम्बिल, उपवास, एकांतर उपवास, पांच दिन का उपवास, आठ दिन का उपवास—ये सारे बाह्य तप के प्रयोग शरीर के भीतरी रसायनों में परिवर्तन लाते हैं। आसन-प्राणायाम और अन्य यौगिक क्रियाओं के द्वारा रासायनिक परिवर्तन घटित होता है। प्रायश्चित्त, विनय, स्वाध्याय और आभ्यन्तर तपश्चर्या के प्रयोग के द्वारा भी रसायनों में परिवर्तन आता है। प्राचीन भाषा के प्रायश्चित्त को आज की भाषा में मनोविश्लेषण या आत्मविश्लेषण कह सकते हैं प्रायश्चित्त की निर्मल भावना पुरानी ग्रंथियों को खोल देती है। विनय, अहंकार-शून्यता की प्रक्रिया सब प्रकार की तपश्चर्या में रासायनिक परिवर्तन अपने आप घटित होता है।

11.6.7 लेश्याओं का रूपांतरण

रासायनिक परिवर्तन का सबसे बड़ा सूत्र है—ध्यान। चैतन्य-केन्द्रों के ध्यान और लेश्या-ध्यान के द्वारा भीतरी रसायनों में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है, भाव-संस्थान में परिवर्तन होता है और लेश्याओं में परिवर्तन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

होता है। भीतर से तीव्र विपाक का जो परिस्राव आता है, उस स्राव को ग्रंथियां बाहर लाती है। लेश्या-ध्यान से ग्रंथियां शुद्ध होने लगती हैं, लेश्याएं शुद्ध होने लगती हैं, तब अध्यवसाय शुद्ध होने लगते हैं। जब अध्यवसाय शुद्ध होते हैं, तब कषाय के तीव्र विपाक नहीं आ सकते—वे मंद हो जाते हैं। मंद विपाक तीव्र वृत्ति, वासना या बुरी आदत का निर्माण नहीं कर सकता।

11.6.8 भावधारा का निर्मलीकरण

लेश्या की परिभाषा करते समय यह बताया गया था कि केन्द्र में मूल आत्मा (चैतन्य) है और उसके चारों ओर अति सूक्ष्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय का वलय है। चैतन्य तो मलिन नहीं है, वह तो शुद्ध है, फिर यह अशुद्धता क्यों? कारण स्पष्ट है। उस चैतन्य महासागर के चारों ओर एक वलय है—कषाय के महासागर का, एक प्रश्न और होता है कि कषाय का महासागर जब चैतन्य के महासागर को घेरे हुए है तो फिर शुद्धि का प्रश्न ही कहां उठता है? जो कुछ बाहर आएगा वह सारा अशुद्ध ही होगा। शुद्ध लेश्या कैसे होगी? शुद्ध भाव कैसे होगा? शुद्ध अध्यवसाय कैसे होगा? कषाय से छनकर और कषाय के रस के साथ मिलकर जो कुछ भी बाहर आएगा वह मलिन, अपवित्र और अशुद्ध ही आएगा। शुद्ध कैसे होगा?

भाव की शुद्धि अध्यवसाय से होती है और अध्यवसाय की शुद्धि भाव के मंदीकरण से होती है। कषाय का मंदीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो केवल ज्ञेय के प्रति जब चैतन्य के स्पन्दन जाते हैं, तब उनके साथ कषाय की मलिनता नहीं जुड़ती, उनसे जो अध्यवसाय निर्मित होंगे, वे शुद्ध बने रहेंगे, उनसे जो लेश्या बनेगी, वह शुद्ध बनेगी। केवल ज्ञेय के प्रति चैतन्य के स्पन्दन तभी जाते हैं, जब रागात्मक या द्वेषात्मक भाव उनके साथ नहीं जुड़ते। यह घटित होता है—केवल ज्ञाता-द्रष्टा भाव के द्वारा जो प्रेक्षा-ध्यान का ही एक रूप है।

कषाय या अतिसूक्ष्म (कार्मण) शरीर में केवल स्पंदन हैं, केवल तरंगें हैं। वहां भाव नहीं है वहां चेतना के स्पंदन भी हैं और कषाय के स्पंदन भी हैं। दोनों में स्पंदन ही स्पंदन हैं, तरंगें ही तरंगें हैं। उदाहरणार्थ, क्रोध कषाय का एक रूप है। अति सूक्ष्म शरीर में क्रोध की केवल तरंगें होती हैं। चैतन्य की तरंगों के साथ जब क्रोध की तरंगें मिलती हैं तो क्रोध के अध्यवसाय बनते हैं। वहां तक कोरी तरंगें हैं, भाव नहीं। बाद में जो तरंगें तैजस् शरीर के साथ सघन होकर भाव का रूप लेती हैं, वे लेश्या बन जाती हैं। लेश्या में पहुंचकर भाव बनता है और तरंगें ठोस रूप ले लेती है। शक्ति या ऊर्जा पदार्थ में बदल जाती हैं। तरंग का सघन रूप है भाव और भाव का सघन रूप है क्रिया। जब भाव सघन होकर क्रिया बन जाती है तब वह स्थूल शरीर में प्रकट होती है।

लेश्या-ध्यान के द्वारा कषाय के मंदीकरण की प्रक्रिया को फिर क्रोध के उदाहरण से समझें। क्रोध स्थूल शरीर में प्रकट होने से पहले तक तरंगावस्था में होता है तब ही उसकी शक्ति को क्षीण करना होगा। रंगों के ध्यान के द्वारा—शुभ लेश्या के द्वारा ऐसी तरंगों को उत्पन्न करना होगा जो क्रोध को तरंगावस्था में ही समाप्त कर सके या उनकी शक्ति, प्रभाव और सक्रियता को क्षीण कर सके। क्रोध की तरंगें भी ऊर्जा के रूप में हैं और उनको समाप्त करने वाली तरंगें भी ऊर्जा के रूप में है।

11.6.9 निस्तरंग की दिशा में प्रस्थान

तीन स्थितियां हैं—1. बुरे विचार 2. अच्छे विचार 3. निर्विचार।

बुरे चिंतन से अच्छे में आने का सबसे सरल उपाय है—लेश्या-ध्यान। इस ध्यान का अभ्यास किए बिना चिंतन को नहीं मोड़ा जा सकता। सामाजिक सम्बन्धों के कारण व्यक्ति में शत्रुता के भाव आते रहते हैं। दूसरे का अनिष्ट करने की भावना उसमें पनपती है। अप्रिय व्यक्ति के सामने आते ही आंखें तमतमा जाती हैं। विरोधी व्यक्ति की स्मृति होते ही सारी चिंतनधारा प्रकंपित हो जाती है। इन प्रतिक्रियाओं को तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक शुद्ध लेश्याओं का ध्यान नहीं किया जाता। प्रशस्त लाल, प्रशस्त पीत और प्रशस्त श्वेत वर्णों का ध्यान कर हम आंतरिक प्रक्रिया को बदल सकते हैं और मन की आंतरिक प्रक्रिया के द्वारा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

फिर उन वर्णों में परिवर्तन शुरू हो जाता है। तब हम बाहर से भीतर को प्रभावित करते हैं और भीतर से बाहर को प्रभावित करते हैं।

अन्तर्वृत्तियों के शोधन के लिए तैजस् और पद्म लेश्या का ध्यान किया जाए। बुरे विचार न उठें, बुरे विचार हमें आक्रांत न करें, हमारे मस्तिष्क को प्रभावित न करें, इसलिए हमें शुक्ल लेश्या का ध्यान करना होगा। हम एक ऐसे कवच का निर्माण करें जिसको भेद कर बुरे विचार न आ पाएं। वे बाहर ही रह जाएं। हमारे मस्तिष्क में न आएं। यदि शुक्ल लेश्या के द्वारा हम एक शक्तिशाली कवच बना लेते हैं तो बाहर के खतरे से बच जाते हैं। यदि हम तैजस् और पद्म लेश्या का कवच बना लेते हैं तो भीतर से उठने वाले बुरे विचारों के आक्रमण से बच जाते हैं। इसके बाद अच्छे विचारों की तरंगें पैदा होने लग जाती हैं और ये तरंगें बहुत सहयोगी बनती हैं। ये हमारी अध्यात्म-यात्रा में आगे बढ़ने में सहयोग करती हैं। यद्यपि लेश्या स्वयं तरंग हैं; किन्तु निस्तरंग की दिशा में प्रस्थान के लिए लेश्या-ध्यान बहुत सहयोग करता है।

11.7 निष्पत्तियां

11.7.1 परिवर्तन का प्रारंभ

तैजस् लेश्या का बाल-सूर्य जैसा लाल रंग है। लाल रंग निर्माण का रंग है। लाल रंग का तत्त्व है—अग्नि। हमारी सक्रियता, शक्ति, तेजस्विता, दीप्ति, प्रवृत्ति सबका स्रोत है—लाल रंग। लाल रंग हमारा स्वास्थ्य है। डॉ. सबसे पहले देखता है कि रक्त में श्वेत कण कितने हैं और लाल कण कितने हैं? लाल कण कम होते हैं तो वह अस्वास्थ्य का द्योतक हैं। लाल रंग में यह क्षमता है कि वह व्यक्ति को बाह्य जगत् से अन्तर्जगत् में ले जा सकता है।

जब हम दर्शन-केन्द्र पर बाल-सूर्य के अरुण रंग का ध्यान करते हैं और जब वह ध्यान सधता है, अरुण रंग प्रगट होता है, दीखने लग जाता है, तब इस लाल रंग के अनुभव से, तैजस् लेश्या के स्पन्दनों की अनुभूति से अन्तर्जगत् की यात्रा प्रारंभ होती है आदतों में परिवर्तन आना प्रारंभ हो जाता है।

11.7.2 अनिर्वचनीय एवं अपूर्व आनन्द

जब तैजस् लेश्या के स्पंदन जागते हैं तब व्यक्ति को अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होती है। उस आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला ही उसे जान सकता है, वह उसे बता नहीं सकता। जिस व्यक्ति ने तेजोलेश्या का कभी प्रयोग नहीं किया, ध्यान नहीं किया, वह व्यक्ति इस स्थूल से परे भी कोई आनन्द होता है, इन विषयों से परे भी कोई सुखानुभूति है, नहीं समझ पता, कल्पना भी नहीं कर पाता। जब तक वह प्रयोग से नहीं गुजरता, तब तक उसे ज्ञात ही नहीं होता कि ऐसा अनिर्वचनीय सुख भी हो सकता है। जो सुख का अनुभव होता है, वह अपूर्व होता है। व्यक्ति सोचता है—मैंने मान रखा था कि सुख तो पदार्थ से मिलता है किन्तु आज यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि जैसा सुख तैजस् लेश्या के स्पन्दनों के जागने पर होता है वैसा सुख जीवन में किसी भी पदार्थ से नहीं मिल सकता। भ्रांति टूट जाती है, धारणाएं बदल जाती हैं।

वास्तविकता यह है कि पदार्थों में सुख है ही नहीं। हमारे भीतर एक विद्युत्धारा है। वह सुख का निमित्त बनती है। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि विद्युत् के प्रकम्पनों के बिना कोई सुख का संवेदन नहीं हो सकता। जो सुख इन्द्रिय-विषयों के उपभोग से उपलब्ध किया जाता है, वही सुख इन्द्रिय-विषयों के बिना कल्पना से भी किया जाता है और वही सुख केवल विद्युत् के प्रकंपन पैदा करके भी किया जा सकता है। कान के बिन्दु पर या स्वाद के बिन्दु पर इलेक्ट्रोड लगाकर प्रकंपन पैदा किए जाएं तो पदार्थ के बिना भी उनके उपभोग की-सी सुख-संवेदन का अनुभव होता है। वस्तु के संयोग से जो प्रतिक्रियाएं पैदा होती हैं, वे प्रतिक्रियाएं वस्तु के बिना भी विद्युत् के प्रकंपनों से पैदा की जा सकती हैं, इसलिए यह तथ्य प्रमाणित हो गया कि सुख का संवेदन विद्युत्-प्रकंपन-सापेक्ष है।

जब तैजस् लेश्या जागती है तब विद्युत् के प्रकंपन बहुत बढ़ जाते हैं, तीव्रतम हो जाते हैं। प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाले को अनुभव होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.7.3 जितेन्द्रियता

जब हम चमकते हुए पीले रंग के परमाणुओं को आकर्षित करते हैं, तो जितेन्द्रिय होने की स्थिति निर्मित हो जाती है। हम जितेन्द्रिय हो सकते हैं। पद्म लेश्या का अभ्यास करने वाला व्यक्ति जितेन्द्रिय हो जाता है।

11.7.4 शुक्ल-लेश्या

शुक्ल-लेश्या का रंग पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा श्वेत है। श्वेत रंग पवित्रता, शांति, शुद्धता और निर्वाण का द्योतक है। तेजोलेश्या और पद्म लेश्या के द्वारा बढ़ी हुई गर्मी को शुक्ल लेश्या उपशांत कर देती है और निर्वाण घटित हो जाता है। शुक्ल लेश्या उत्तेजना, आवेग, आवेश, चिन्ता, तनाव, वासना, कषाय, क्रोध आदि को शांत कर पूर्ण शांति का अनुभव कराती है।

11.7.5 आत्म-साक्षात्कार

साधक ऐसा न माने कि तैजस् लेश्या और पद्म लेश्या के स्पंदन पकड़ में आ गए तो यात्रा सम्पन्न हो गई। इससे आगे की यात्रा अभी शेष है। इन्द्रिय-चेतना, मनःस्थ चेतना और चित्त की चेतना वाले शरीर में एक ऐसा तत्त्व भी है जो इन चेतनाओं से परे है। उसका साक्षात्कार हमें इष्ट है। आत्म-साक्षात्कार ही लेश्या-ध्यान का लक्ष्य है जो शुक्ल लेश्या के ध्यान से प्राप्त होता है। इस बिन्दु पर पहुंचकर ही हम भौतिक और आध्यात्मिक जगत् के अन्तर को समझ सकते हैं।

आत्म-साक्षात्कार की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है—निर्विकल्प चेतना का निर्माण।

11.7.6 अव्यथ चेतना

जिस दुनिया में निर्विकल्प चेतना का महत्त्व है, सचमुच वह कोई दूसरे प्रकार की दुनिया है। यह काल्पनिक बात नहीं है। यह यथार्थ है। जब यह चेतना जागती है तब सारी असमाधियां दूर हो जाती हैं। सबसे पहला सुफल होता है—अव्यथ चेतना की जागृति। निर्विकल्प चेतना में जीने वाला व्यक्ति निर्व्यथ जीवन जीता है। उसकी चेतना में व्यथा नहीं होती। उसके सामने कितना ही प्रतिकूल वातावरण उपस्थित हो, भयंकर परिस्थितियां और समस्याएं हों, वह कभी व्यथित नहीं होता। वह केवल ज्ञाता रहता है, भोक्ता नहीं।

11.7.7 अमूढ़ चेतना

दूसरा सुफल यह होता है कि चेतना असम्मोह की स्थिति में चली जाती है। उसमें फिर मूढ़ता पैदा नहीं होती। इस दुनिया में मूढ़ता पैदा करने वाले अनेक तत्व हैं। निर्विकल्प चेतना के उपलब्ध होने पर चित्त मूढ़ नहीं बनता, सम्मोहन समाप्त हो जाता है।

11.7.8 विवेक-चेतना

तीसरा सुफल यह होता है कि उससे विवेक-चेतना जाग जाती है। विवेक-चेतना के जागने पर साधक में पार्थक्य-शक्ति विकसित हो जाती है। आत्मा और पुद्गल का स्पष्ट भेद उसे साक्षात् हो जाता है।

11.7.9 व्युत्सर्ग-चेतना

चौथा सुफल यह होता है कि जब विवेक-चेतना पुष्ट होती है तब व्युत्सर्ग की क्षमता बढ़ती है, त्याग और विसर्जन की शक्ति का विकास होता है। व्युत्सर्ग चेतना से त्याग की शक्ति प्रबल होती है।

यही हमारा गन्तव्य है, यही हमारी मंजिल है। जैसे-जैसे चेतना का विकास होगा, जैसे-जैसे विकल्पों को कम करते हुए निर्विकल्प चेतना के क्षणों में जीने का अभ्यास होगा, वैसे-वैसे वह चेतना पुष्ट होगी और चेतना का वह अनन्त सागर एक दिन निस्तरंग और ऊर्मि-विहीन बन जाएगा। उस स्थिति में, उस परम सत्य का साक्षात्कार होगा, जिसके लिए हजारों-हजारों लोग सदा उत्सुक रहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बोध प्रश्न 2:

1. *लेश्या रंग का संस्थान कैसे है?*
2. *लेश्याध्यान के क्या प्रयोजन है?*

11.8 रंग-चिकित्सा

समस्त चिकित्सा पद्धतियों में रंग-चिकित्सा सबसे अधिक स्वाभाविक है। इसके मुख्य दो कारण है—प्रथम कारण है—प्राणी का सम्पूर्ण शरीर रंगीन है। शरीर के समस्त अवयवों का रंग अलग-अलग है। मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, यकृत, प्लीहा, गुर्दे, आंत, अस्थि, मांस, मज्जा, रक्त आदि सभी का पृथक् पृथक् रंग हैं। शरीर की करोड़ों कोशिकाएं भी रंगीन हैं। रंग-चिकित्सा के एक विदेशी विख्यात डॉक्टर ने तो यहां तक कहा है कि 'मनुष्य पूरा का पूरा रंगों का पिण्ड है।' शरीर का कोई भी अंग रूग्ण होता है तो उसके रासायनिक द्रव्यों के साथ साथ रंगों का भी असंतुलन हो जाता है। रंग-चिकित्सा उन द्रव्यों एवं रंगों को संतुलित कर देती है, फलतः रोग का निवारण हो जाता है। शरीर में जहां भी विजातीय द्रव्य एकत्रित होकर रोग उत्पन्न करता है, रंग-चिकित्सा उसे दबाती नहीं अपितु शरीर के बाहर निकाल देती है।

दूसरा कारण है—हर प्राणी के जीवन तथा शारीरिक विकास का मुख्यतया सूर्य की शक्ति, किरणों, रोशनी, रंगों और ताप पर निर्भर होना। यह प्राकृतिक विज्ञान का सर्वमान्य तथ्य है। भारत में तो सूर्य 'पूजा का देवता' है। कोई इसे देवता मानता है तो कोई भगवान की उपाधि देते हैं। वैदिक धर्म में सूर्य दर्शन बिना भोजन न करने की प्रथा बहुत प्राचीन है।

जब प्राणी के जीवन और स्वास्थ्य का आधार सूर्य है तो सूर्य किरणों से उत्पन्न रंगों से सही चिकित्सा होने में कोई संदेह नहीं। प्रकृति का यह नियम है कि जो चिकित्सा जितनी स्वाभाविक होगी उतनी ही प्रभावशाली भी होगी और उसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया भी न्यूनतम होगी।

11.8.1 रंग-चिकित्सा की विशेषताएं

रंग-चिकित्सा जितनी स्वाभाविक है उतनी ही सरल है। प्रकृति का विधान है कि जहां रोशनी है वहां शक्ति और रंग है और जहां रंग है वहां रोशनी है। रंगों में उष्णता, शीतलता और भार भी होता है।

डॉ. रीबेन अम्बर ने लिखा है कि रंगों की गर्मी और ठण्डक को मापा जा सकता है। कांच के गिलास में पानी भरकर उसमें थर्मामीटर रख दें, फिर किरणें डालें। लाल किरणें गर्मी प्रकट करेंगी और नीली किरणें शीतलता बता देंगी।

शक्ति का वजन मापना हो तो सूक्ष्म वजन बताने वाली छोटी तुला लेकर उसके पलड़ों पर किरणें डालें। पलड़ा रोशनी की ओर झुक जाएगा। कटिंग किये हुए हीरे तथा अनेक प्रकार के तराशे हुए कांच के टुकड़ों पर भी सूर्य की किरणों की रोशनी डालने से रंगों के दर्शन होते हैं।

जैन आगमों में मूल रंग पांच माने गये हैं—नीला, लाल, काला, पीला और सफेद। अन्य सब रंग इन पांच रंगों के मिश्रण हैं। यह तथ्य सत्य है। सूर्य किरणों के सात रंगों में तीन रंग लाल, पीला और नीला तो मूल उपर्युक्त रंगों में से हैं और शेष उनके मिश्रण हैं। जैसे—

1. नारंगी—यह लाल और पीले रंगों का मिश्रण है।
2. हरा—यह पीले और नीले रंग का मिश्रण है।
3. बैंगनी—यह नीले और लाल रंगों का मिश्रण है।
4. आसमानी—यह नीले और सफेद रंगों का मिश्रण है।

इस प्रकार पांच रंगों के मिश्रण से सैकड़ों भिन्न भिन्न रंग बनाये जा सकते हैं।

सूर्य किरणों के सात रंग सात प्रकार की औषधि के रूप में कार्य करते हैं। इसको अधिक सरल बनाने के लिए सात रंगों को तीन समूहों में बांट दिया जाता है और उनमें से हर रोग के लिए केवल तीन दवाओं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से ही एक का चुनाव करना होता है। अन्य बड़ी बड़ी चिकित्साओं में जैसे आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, होम्योपैथिक तथा यूनानी आदि में हजारों दवाएं होती हैं और उनमें से प्रत्येक रोग के लिए अलग दवा का चुनाव करना होता है। यह बहुत कठिन काम है। बहुधा एक रोग के लिए पांच-सात प्रकार की दवाओं अथवा उनके मिश्रण का उपयोग करना होता है। इससे भी बड़ी कठिनाई यह है कि एक मिश्रण अनेक रोगों पर लागू होता है कभी कभी अनेक औषधियों के मिश्रण एक ही रोग पर समान रूप से लागू होते हैं। औषधियों के गुणों की भिन्नता के कारण ऐसा करना पड़ता है। इतनी औषधियों का अनुसंधान और निर्माण करना भी बहुत जटिल होता है।

यह चिकित्सा जितनी सरल है, उतनी ही कम खर्चीली भी है। संसार में जितनी औषध परक चिकित्साएं हैं, उनमें यह सबसे कम खर्च वाली चिकित्सा है।

इसकी एक विशेषता यह है कि इस चिकित्स का प्रशिक्षण प्राय: एक सप्ताह में पूर्ण हो जाता है जब कि अन्य चिकित्साओं के प्रशिक्षण में पांच-सात वर्ष का समय लग जाना साधारण बात है। अहिंसा की दृष्टि से भी यह चिकित्सा पूर्ण अहिंसक है।

रंग चिकित्सा शरीर के रोग मिटाने में जितनी प्रभावशाली है, उतनी मानसिक और भावात्मक रोगों को शांत करने में लाभकारी है। मानसिक तनाव, मानसिक विक्षिप्ति आदि मन के अनेक रोगों को शांत कर देती है। रंगों के ध्यान से भावनाओं को परिवर्तित करने की क्षमता इस चिकित्सा में है, नशे की लत भी छूट सकती है।

11.9 रंग चिकित्सा के प्रयोग

सूर्य की रश्मियों में सात रंग पाये जाते हैं—

1. लाल (Red) 2. पीला (Yellow) 3. नारंगी (Orange) 4. हरा (Green)
5. नीला (Blue) 6. आसमानी (Indigo) 7. बैंगनी (Violet)

उपर्युक्त सातों रंगों की अपनी अपनी प्रकृति और प्रभाव है। चिकित्सा विशेषज्ञ सातों रंगों का भिन्न भिन्न रोगों में प्रयोग कर सकते हैं परन्तु साधारण चिकित्सक के लिए निम्न तीन समूहों का प्रयोग ही यथेष्ट होता है। क्योंकि प्रत्येक समूह के रंगों के प्रभाव में बहुत सीमित अन्तर है। तीन समूह या रंगों के तीन परिवार किये गये हैं—

1. लाल, पीला और नारंगी। 2. हरा। 3. नीला, आसमानी और बैंगनी।

प्रयोग की सरलता के लिए पहले समूह में से केवल नारंगी रंग का ही प्रयोग होता है, दूसरे में हरे रंग का और तीसरे समूह में से केवल नीले रंग का। इस प्रकार प्रत्येक रोग की चिकित्सा के लिए तीन रंगों अर्थात् नारंगी, हरे और नीले रंग का प्रयोग काफी है।

11.9.1 नारंगी रंग की दवा की प्रकृति, गुण एवं प्रयोग

1. प्रकृति—गर्म, विस्तारक एवं क्रियावर्धक (Heating, Expending and Stimulating)। इसका प्रभाव क्षारीय (Alkaline) होता है।

2. गुण

1. लाल और पीले रंग का मिश्रण होने के कारण अधिक प्रभावशाली।
2. नारंगी दवा मुख्यत: पेट, यकृत, तिल्ली, गुर्दे और आंतों को प्रभावित करती है।
3. रक्त संचार की वृद्धि करती है।
4. मांस-पेशियों को स्वस्थ करती है और सिकुड़न को मिटाती है।

3. नारंगी रंग का मानसिक प्रभाव

क. मानसिक शक्ति और इच्छाशक्ति को बढ़ाता है।
ख. बुद्धि और साहस को विकसित करता है।
ग. आकांक्षाओं और अहम् को विस्तार देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. प्रयोग—कफजनित रोगों में लाभदायक

कफजनित खांसी, बुखार, निमोनिया, इन्फलुएंजा आदि में लाभदायक। श्वास प्रकोप, क्षय रोग, फेफड़े के दोषों, पेट में बनने वाली गैस (वायु) को मिटाती है। स्नायु रोग, स्नायु दुर्बलता एवं हृदय रोग, गठिया, पक्षाघात, बाइंटा में गुणकारी है। पाचन-तंत्र को ठीक करती है, भूख को बढाती है। एनीमिया तथा खून में लाल कणों की कमी पूर्ति करता है। शरीर का मोटापा घटाती है तथा दुर्बलता मिटाती है। स्त्रियों के मासिक स्राव की कमी संबंधी कठिनाइयों को दूर करती है।

मां के स्तनों में दूध की वृद्धि करती है। प्लीहा, गुर्दों के रोगों में लाभदायक है। पेशाब की अधिकता तथा बच्चों के सुप्त अवस्था में पेशाब निकलने के रोग पर इसका प्रयोग काफी लाभप्रद है। मानसिक दुर्बलता को दूर करने में भी यह दवा अत्यधिक प्रभावशाली रही है।

11.9.2 हरे रंग की दवा की प्रकृति, गुण और प्रयोग

1. प्रकृति : मध्यम, संतुलक तथा शोधक (Neutral, Harmonising & Eleminating)

2. गुण

1. यह रंग पीले और नीले का मिश्रण होने के कारण अधिक लाभदायक है।
2. यह प्रकृति का रंग है अतएव शरीर एवं मन को प्रसन्न रखता है।
3. शरीर में रासायनिक आदि द्रव्यों की न्यूनता व अधिकता को संतुलित कर देता है।
4. शरीर की मांस-पेशियों का निर्माण करता है और शक्ति देता है।
5. यह रंग सब प्रकार के नाड़ी-संस्थानों तथा मस्तिष्क को बल देता है।
6. हरे रंग की दवा रक्त का शोधन करती है तथा शरीर में एकत्रित विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालती है।

3. हरे रंग का मानसिक प्रभाव

क. मन को शांति तथा प्रसन्नता प्रदान करता है।
ख. मैत्री की भावना उत्पन्न करता है।
ग. पवित्र कार्यों में उत्साहवर्धक है।
घ. ईर्ष्या, द्वेष और निजी स्वार्थ भाव को कम करता है।

4. प्रयोग—प्रमुखतया वातजनित रोगों, टाइफाइड (मियादी), मलेरिया आदि बुखार, यकृत (लीवर) और गुर्दों की सूजन, चर्म रोगों—चेचक, फोड़ा, फुंसी, दाद, खुजली आदि, आंतों की खराबी, बदहजमी, पेट में दर्द आदि तथा नेत्र रोग पर (हरा पानी आंखों में डालना) मधुमेह (डाइबिटीज), पित्तजनित रोगों, सूखी खांसी, जुकाम, अल्सर आदि भीतरी घाव, मस्सा, कैंसर, सूजाक आदि, सिर-दर्द, स्नायु-दर्द, रक्तचाप आदि में लाभदायक हैं।

11.9.3 नीले रंग की दवा की प्रकृति गुण तथा प्रयोग

1. प्रकृति : शीतल, सुखद और संकोचक (Cooling, Soothing & Contracting) इसका प्रभाव अम्लीय (Acidic) होता है।

2. गुण

1. कीटाणु नाशक (Anticeptic)
2. नीले रंग का अधिकतम प्रभाव मुंह, गला और गले के ऊपरी भाग मस्तिष्क तक होता है।
3. हर प्रकार की वातजनित सूजन को मिटाता है।
4. शरीर में किसी भी प्रकार की जलन को शांत करता है।

3. नीले रंग का मानसिक प्रभाव

क. मानसिक उत्तेजना को मिटाता है। मन को शांत और शिथिल करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ख. आध्यात्मिक विकास और ध्यान में सहायक होता है।

ग. सत्य, श्रद्धा और भक्ति की प्रेरणा देने वाला है।

4. प्रयोग—नीले रंग का प्रयोग विशेषकर पित्तजनित रोगों पर होता है।

तेज बुखार तथा सिर दर्द को कम करता है। शरीर में जलन होने पर, लू लगने पर तथा आंतरिक रक्तस्राव में आराम पहुंचाता है। उच्च रक्तचाप, नींद की कमी, हिस्टीरिया, मानसिक विक्षिप्तता में यह बहुत लाभदायक है।

टॉन्सिल आदि गले की बीमारियां, मसूड़े फूलना, दांत दर्द, पायरिया, मुंह में छाले, घाव आदि तथा चर्म रोगों में अत्यंत प्रभावशाली है।

डायरिया, डीसेन्टरी, वमन, जी मिचलाना, हैजा आदि रोगों में आराम पहुंचाता है। जहरीले जीव-जन्तु के काटने पर तथा शरीर में किसी प्रकार का विष, जैसे फूड पॉयजनिंग आदि में लाभ पहुँचाता है।

स्त्रियों के मासिक धर्म में रक्तस्राव की अधिकता, श्वेत प्रदर आदि रोगों को मिटाता है। शरीर में हर प्रकार की सूजन को मिटाता है। मिर्गी, पीलिया (Jaundice), प्यास की अधिकता आदि में रामबाण औषध का कार्य करती है।

ध्यान करने से शरीर में ऊर्जा एवं गर्मी बढ़ती है उससे अनेक समस्याएं आती हैं उनका समाधान भी नीले रंग में विद्यमान हैं।

शरीर का कोई अंग अग्नि से जल जाये तो तत्काल नीले पानी, नीला तेल और नीली किरणें डालने से जलन शांत हो जाती है और घाव जल्दी भर जाते हैं।

11.10 दवाएं बनाने एवं सेवन करने की विधि तथा मात्रा पानी की दवा का निर्माण और सेवन विधि

जिस रंग की दवा बनानी हो उसी रंग की कांच की बोतल में पीने का शुद्ध पानी भर कर 8 घंटे धूप में रखने से दवा तैयार हो जाती है। बोतल थोड़ी खाली होनी चाहिए और ढक्कन बन्द होना चाहिये। इस प्रकार एक बार बनी हुई दवा को चार या पांच दिन सेवन कर सकते हैं। एक रंग की बोतल पर दूसरे रंग की छाया नहीं पड़नी चाहिए।

पानी की दवा तैयार होने में तेज धूप हो तो जल्दी बन जाती है तथा बरसात के मौसम में 2-3 दिन भी लग जाते हैं।

नारंगी रंग की दवा भोजन करने के बाद 15 मिनट से 30 मिनट के अन्दर दी जानी चाहिए। हरे तथा नीले रंग की दवाएं खाली पेट या भोजन से एक घंटा पहले दी जानी चाहिए। हरे रंग की दवा यदि प्रात:काल खाली पेट देनी हो तो छ: या आठ औंस की मात्रा में भी दी जा सकती है, क्योंकि यह दवा शरीर से विजातीय द्रव्य बाहर निकाल कर शरीर को शुद्ध करने वाली है। इसकी कोई विपरीत प्रतिक्रिया नहीं होती।

11.10.1 दवा की मात्रा

प्रत्येक रंग की दवा की साधारण खुराक 12 वर्ष से ऊपर की उम्र वाले व्यक्ति के लिए 2 औंस यानी पांच तोला होती है। कम आयु वाले बच्चों को उसकी उम्र के हिसाब से मात्रा कम होनी चाहिए। आमतौर पर रोगी को एक दिन में तीन खुराक यथेष्ट हैं। रोग की तीव्र अवस्था में खुराक आधी करके 2-2 घंटे के अन्तर से दी जा सकती है।

रोगी के शरीर में एक से अधिक लक्षण वाले रोग हों तो प्रतिदिन दो तरह की दवा दी जा सकती है या दो प्रकार की दवा को आवश्यकतानुसार मिला कर भी दे सकते हैं। जैसे पेट में गैस हो तथा शरीर पर फोड़े-फुन्सियां, दाद हों तो रक्त-शुद्धि के लिए प्रात:काल हरे पानी की दवा देनी चाहिए और गैस को मिटाने के लिए नारंगी रंग की दवा भोजन के पश्चात् दोनों समय देनी चाहिये। रक्तचाप दोष अधिक हो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तो भोजन के पश्चात् नारंगी दवा में आधा भाग हरी दवा मिलाई जा सकती है अथवा एक भाग एक दवा का, दो भाग दूसरी दवा का भी मिलाया जा सकता है तथा आवश्यकतानुसार मिश्रण किया जा सकता है।

जिस प्रकार तीन प्रकार के पानी की दवाएं बनती हैं उसी प्रकार तीनों रंगों की चीनी की भी दवाएं बनती हैं। जो प्रभाव जिस रंग के पानी की दवा का होता है वही उस रंग की चीनी की दवा का भी होता है। वैसे पानी की दवा का प्रयोग ही उत्तम है। बरसात के दिनों में पानी की दवा के अभाव में चीनी की दवा काम में ली जाती है।

11.10.2 चीनी की दवा बनाने की विधि और मात्रा

जिस रंग की चीनी की दवा बनानी हो उस रंग की कांच की बोतल में आधी बोतल दानेदार सूखी चीनी भरकर एक महीने तक रोजाना धूप में रखना चाहिये। बोतल बन्द हो, उसको प्रतिदिन अच्छी तरह से हिलाना चाहिए और ऊपर से बोतल को साफ रखना चाहिए। चीनी की दवा स्थायी बन जाती है। दो-तीन महीनों के बाद इस दवा की बोतल को चार-पांच दिन धूप में रख देना चाहिए ताकि उसकी शक्ति बराबर बनी रहे। चीनी की दवा की खुराक चाय का छोटा आधा चम्मच या 2 ग्राम होती है। बच्चों के लिए उनकी उम्र के हिसाब से मात्रा देनी चाहिए। चीनी की दवा देने का समय और आवश्यकता, पानी की दवा के मुताबिक ही होता है। यह दवा तीनों रंगों की अलग अलग बनायी जा सकती है।

11.10.3 बाह्य प्रयोग के लिए तेल आदि की दवा बनाने की विधि

उपर्युक्त तीनों रंगों की दवाएं बाह्य प्रयोग यानी शरीर के ऊपरी भागों पर लगाने के लिए तेल और ग्लिसरीन से तैयार की जा सकती है। नारंगी और हरे रंग की बोतल में शुद्ध सरसों या तिल्ली का तेल और नीले रंग की शीशी में नारियल का तेल आधी बोतल भर कर निरन्तर एक महीना धूप में रखनी होती है। ग्लिसरीन तथा घी की दवा केवल नीले रंग की शीशी में तैयार की जाती है। बोतल को रोजाना अच्छी तरह से हिलाना चाहिए और ऊपर से साफ रखना चाहिए। ये दवाएं भी स्थायी होती हैं। दो-तीन महीने बाद फिर चार-पांच दिन धूप में बोतल को रख देना चाहिए।

11.11 तेल और ग्लिसरीन की दवाओं का प्रयोग

11.11.1 नारंगी रंग का तेल—शरीर के जोड़ों के दर्द पर, मांसपेशियों के दर्द पर, वायु के दर्द पर, कफजनित पीड़ा के स्थान पर, पेशाब अधिक आता हो तो पेडू पर, फेफड़ों में कफ अधिक हो, छाती या पसलियों में दर्द हो तो छाती पर, स्त्रियों के मासिक धर्म में रक्तस्राव की कमी हो तथा पीड़ा हो तो पेडू पर हल्की मालिश करनी चाहिए।

11.11.2 हरे रंग का तेल—यकृत, प्लीहा, गुर्दे, आंतों के दर्द पर हल्की मालिश करना चाहिए।

11.11.3 नीले रंग का तेल—शरीर का कोई भी अंग आग से जल जाने पर लगाने से जलन मिटती है व घाव जल्दी ठीक हो जाता है। खाज-खुजली, फोड़े-फुन्सियां, दाद, एक्जिमा पर लगाने से हर शिकायत में लाभदायक है। किसी भी प्रकार की सूजन पर, हाथीपांव की बीमारी में दिन में दो बार हल्की मालिश करें। तेज बुखार और सिर-दर्द में ललाट पर लगाएं। बाल गिरते हों, जल्दी सफेद हो गए हों या नींद न आये तो पूरे सिर पर रोजाना मालिश करें। पेशाब में जलन और कम लगने पर तथा स्त्रियों के मासिक धर्म में रक्त की अधिकता हो तो पेडू पर हल्की मालिश करनी चाहिए। जहरीली मधु-मक्खियां तथा बिच्छू आदि के काटने पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.11.4 नीले रंग की ग्लिसरीन

गले में किसी प्रकार का घाव हो, कागोलिया बढ़ा हुआ हो, मुंह में छाले हों, मसूड़ों व दांतों में दर्द हो, दांतों में पायरिया हो, खून या पीप आती हो, टॉसिल बढे हों या सेप्टिक हो तो उन स्थानों पर रूई के फोहे से दिन में दो-तीन बार लगाना। कान में दर्द हो, कान बहता हो तो गर्म करके दो बूंद दिन में दो बार डालनी चाहिए।

बोध प्रश्न 3:

---

1. *रंग चिकित्सा से आप क्या समझते हैं?*
2. *नीले रंग की दवा का प्रयोग किन रोगों में कर सकते हैं?*
3. *हरे रंग की प्रकृति कैसी है?*
4. *नारंगी रंग के तेल का प्रयोग बताएं।*

11.12 तीनों रंगों की हवा की दवा

जिस रंग की हवा की दवा बनानी हो, उसी रंग की खाली बोतल को ढक्कन लगाकर पांच मिनट धूप में रखने से बोतल की हवा उसी रंग की दवा बन जाती है। नारंगी रंग की दवा खास कर फेफड़ों की तथा श्वास की बीमारी में लाभ देती है तथा किसी रोगी की दांती जुड़ जाए या अन्य किसी कठिनाई से पेट में दवा नहीं ली जा रही हो तो इस दवा की हवा को ढक्कन खोल कर बार-बार रोगी को सुंघाने से लाभ होता है। नीले रंग की दवा नाक में सूजन हो तो उपयोगी होती है।

11.13 सफेद बोतल के पानी पर सूर्य किरणों का प्रभाव

सफेद बोतल में पीने का पानी 4-6 घंटे धूप में रखने से वह पानी कीटाणु मुक्त हो जाता है। तथा वह कैल्शियम युक्त हो जाता है। अगर बच्चों के दांत निकलते समय वही पानी पिलाया जाये तो दांत निकलने में सहायता मिलती है, पीड़ा कम होती है तथा किसी की हड्डी टूटी हो तो उसके जुड़ने में सहायता मिलती है।

यह पानी हल्का टॉनिक यानी साधारण शक्ति वर्धक होता है। गांवों में जहां पीने का पानी शुद्ध नहीं मिलता है वहां उस पानी को सफेद बोतल में 6 घंटे रख कर पीने से पानी से होने वाली संक्रामक बीमारियों से बचा जा सकता है। महामारी की स्थिति में भी इस दवा का सेवन किया जा सकता है।

11.14 सूर्य किरणों का सीधा प्रयोग : रेडियेशन (Radiation)

अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा रंग चिकित्सा में एक विलक्षणता है। इस चिकित्सा में सभी रंगों की कांच या पारदर्शी प्लास्टिक अथवा सिलोफिन कागज द्वारा शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर एवं भीतरी अंगों पर सूर्य की किरणें डाली जाती है। इसे रेडियेशन कहते हैं। अंग विशेष में हुई रंग की कमी व अधिकता अथवा रासायनिक आदि द्रव्यों के संतुलन बिगड़ने पर उसकी पूर्ति सूर्य किरणों द्वारा हो जाती है। जिस प्रकार रंगों की दवा के द्वारा शरीर में आवश्यकतानुसार रासायनिक द्रव्य या रंग पहुंचाए जाते हैं उसी प्रकार रेडियेशन के द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग में आवश्यक द्रव्यों का सीधा प्रवेश कराया जा सकता है। इंजेक्शन की तरह रेडियेशन का सीधा प्रभाव होता है।

सिद्धांतानुसार तीनों रंगों के रेडियेशन का प्रयोग उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार दवाओं का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम यह निर्णय करना होता है कि रोगी किस रंग का है। उसके शरीर में, उसकी बीमारी में किस रंग की प्राथमिक आवश्यकता है। उस दृष्टि से रेडियेशन द्वारा उसी रंग की किरणों का प्रयोग करना लाभदायक होता है। शरीर के जोड़ों के दर्द में नारंगी रंग की दवा और नारंगी रंग के तेल का इस्तेमाल किया जाता है तथा साथ साथ दर्द के स्थानों पर लाल किरणों का प्रयोग होना चाहिए। तेज बुखार को कम करने के लिए नीले रंग की दवा और नीले रंग के तेल का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार सिर पर नीले रंग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की किरणे डालने से बुखार कम हो जाता है और रोगी को शीघ्र आराम मिल जाता है। आंखों की बीमारी में हरे रंग के पानी की दवा काम में आती है, उसी तरह हरे रंग की किरणे आंखों पर डाल सकते हैं।

किरणों को डालने का समय 15 से 30 मिनट तक हो सकता है। ठोस अंगों पर 30 मिनट तक किरणों का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु कोमल अंगों पर 15 मिनट से अधिक नहीं करना चाहिए। किसी व्यक्ति की चमड़ी पतली और कोमल हो तो लाल किरणों का प्रयोग भी एक बार में 15-20 मिनट से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे चमड़ी उधड़ने की आशंका रहती है।

रेडियेशन देते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस अंग पर रेडियेशन दिया जाये वह सूर्य के सामने रहे और सूर्य की किरणे यथा संभव सीधी उस अंग पर पड़ती रहे। टेड़ी या ऊंची-नीची नहीं पड़े।

इस चिकित्सा के सिद्धांतानुसार रोगी का इलाज करने में उसके पहनने, ओढ़ने, बिछाने के कपड़ों तथा रहने के कमरे का अनुकूल रंग बहुत सहयोगी होता है।

11.15. अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. लेश्याध्यान पर एक सारगर्भित निबंध लिखें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. हरे रंग की चिकित्सा कौन-कौन सी बीमारी को ठीक करती है?
2. कौन-कौन सी बीमारी में लाल रंग की दवा का प्रयोग किया जाता है?

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक लाइन में उत्तर दें)

1. हमारे आस-पास किसका वलय बना हुआ है?
2. कौन-से प्रकाश की कंपन-आवृत्ति सबसे अधिक होती है?
3. नोबल-पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक का नाम लिखें, जिन्होंने रंग की प्रक्रिया पर गहन शोध कार्य किया है?
4. किनके अनुसार हमारा सारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है?
5. कौन-कौन से प्राथमिक रंग कहलाते हैं?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. पीले रंग का ध्यान करने से.....जागृत होता है।
2. श्वेत रंग.....होता है।
3. गुलाबी रंग.....के नाम से प्रसिद्ध है।
4. शरीर-नामकर्म के पुद्गलों का ही एक वर्ग.....कहलाता है।
5. हमारे.....का संबंध भी रंग से है।

11.16 संदर्भ ग्रन्थ

1. Colour and Human Response—Faber Birten
2. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
3. जैन योग—आचार्य महाप्रज्ञ
4. आभामंडल—आचार्य महाप्रज्ञ
5. अप्पाणं शरणं गच्छामि—आचार्य महाप्रज्ञ
6. जीवन विज्ञान की रूपरेखा—मुनि धर्मेश
7. सूर्य किरण चिकित्सा अथवा रंग चिकित्सा—मोहनलाल कठोतिया
8. सूरज किरण चिकित्सा—डॉ. अजीत मेहता

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–12 : तेजोलेश्या और कुण्डलिनी जागरण का आध्यात्मिक वैज्ञानिक महत्त्व

संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 तेजोलेश्या का स्वरूप
12.2.1 तेजोलेश्या का स्थान
12.2.2 तेजोलेश्या और प्राण
12.2.3 तेजोलेश्या का विकास
12.2.4 तेजोलेश्या का आध्यात्मिक महत्व
12.2.5 तेजोलेश्या का वैज्ञानिक महत्व
12.2.6 तेजोलेश्या और अतीन्द्रिय ज्ञान
12.3 जैन योग में कुण्डलिनी
12.3.1 कुण्डलिनी का स्वरूप
12.3.2 कुण्डलिनी की अवस्थाएं
12.3.3 कुण्डलिनी के योग्य अधिकारी
12.3.4 कुण्डलिनी जागरण के साधन
12.3.4.1 आसन-प्राणायाम
12.3.4.2 गुरुकृपा
12.3.4.3 पूर्व जन्म की साधना
12.3.4.4 जप-साधना
12.3.4.5 ध्यान
12.4 कुण्डलिनी जागरण का वैज्ञानिक महत्व
12.5 कुण्डलिनी जागरण का आध्यात्मिक महत्व
12.6 अभ्यास हेतु प्रश्न
12.7 संदर्भ ग्रंथ

12.0 प्रस्तावना

मानव में साधारणतया तीन शरीर माने गए हैं—स्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म। अस्थि-मांस, शोणित, चर्ममय शरीर औदारिक स्थूल शरीर होता है। तैजस शरीर सूक्ष्म होता है और कर्म शरीर अतिसूक्ष्म होता है। हमारे पाचनतंत्र की सक्रियता और तेजस्विता का मूल है तैजस शरीर। वह पूरे स्थूल शरीर में व्याप्त रहता है तथा दीप्ति और तेजस्विता उत्पन्न करता है। विद्युत, प्रकाश और ताप—ये तीनों शक्तियां उसमें विद्यमान हैं। शरीर में दो प्रकार की विद्युत हैं—घार्षणिक और धारावाहिक या मानसिक। घार्षणिक विद्युत का उत्पादन शरीर करता है और धारावाही विद्युत का उत्पादन मस्तिष्क करता है। मस्तिष्कीय विद्युतधारा स्नायुमंडल में संचारित रहती है। वह ज्ञान तंतुओं के माध्यम से मस्तिष्क तक सूचना पहुंचाती है और उससे मिले निर्देशों का शारीरिक अवयवों द्वारा क्रियान्वयन कराती है। इसका मूल हेतु तैजस शरीर है। यह शरीर प्राणी मात्र के साथ निरंतर रहता है।

12.1 उद्देश्य

1. तेजोलेश्या के स्वरूप को समझ सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. शरीर में तेजोलेश्या कहां है को जान सकेंगे।
3. तेजोलेश्या के वैज्ञानिक महत्व को जान सकेंगे।
4. तेजोलेश्या के आध्यात्मिक महत्व को जान सकेंगे।
5. कुण्डलिनी के स्वरूप को समझ सकेंगे।
6. कुण्डलिनी जागरण के साधनों को जान सकेंगे।
7. कुण्डलिनी के स्वरूप को जान सकेंगे।
8. कुण्डलिनी के वैज्ञानिक महत्व को जान सकेंगे।
9. कुण्डलिनी के आध्यात्मिक महत्व को जान सकेंगे।

12.2 तेजोलेश्या का स्वरूप

एक प्राणी मृत्यु के उपरांत दूसरे शरीर में जाता है। उस समय अंतराल गति में भी तैजस शरीर और कार्मण शरीर उसके साथ रहते हैं। तैजस शरीर सूक्ष्म पुद्गलों से निर्मित होता है, इसलिए चक्षुओं के द्वारा वह दृश्य नहीं होता। यह स्वाभाविक भी होता है और तपस्या द्वारा उपलब्ध भी होता है। तप द्वारा उपलब्ध तैजस शरीर ही तेजोलेश्या है। इसे तेजोलब्धि भी कहा जाता है। स्वाभाविक तैजस शरीर सब प्राणियों में होता है। तपस्या से उपलब्ध होने वाला तेजस शरीर सबमें नहीं होता। वह तपस्या से उपलब्ध होता है। इसका तात्पर्य यह है कि तपस्या से तैजस शरीर की क्षमता बढ़ जती है। स्वाभाविक तैजस शरीर स्थूल शरीर से बाहर नहीं निकलता। तपोजनित तैजस शरीर शरीर के बाहर निकल सकता है, उसमें अनुग्रह और निग्रह की शक्ति होती है। उसके बाहर निकलने की प्रक्रिया तैजस समुद्घात है। जब वह किसी पर अनुग्रह करने के लिए बाहर निकलता है तब उसका वर्ण हंस की भांति सफेद होता है। वह तपस्वी के बाएं कंधे से निकलता है उसकी आकृति सौम्य होती है। वह लक्ष्य का हित साधन कर (रोगादि का उपशमन कर) फिर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

जब वह किसी का निग्रह करने के लिए बाहर निकलता है तब उसका वर्ण सिंदूर जैसा लाल होता है। वह तपस्वी के दाएं कंधे से निकलता है। उसकी आकृति रौद्र होती है। वह लक्षित व्यक्ति का विनाश, दाह कर फिर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। अनुग्रह करने वाली तेजोलेश्या को "शीत" और निग्रह करने वाली तेजोलेश्या को उष्ण कहा जाता है शीतल तेजोलेश्या उष्ण तेजोलेश्या के प्रहार को निष्फल बना देती है।

तेजोलेश्या अनुप्रयोग काल में संक्षिप्त और उपयोग काल में विपरीत हो जाती है। विपुल अवस्था में वह सूर्य के समान दुर्दर्श होती है। वह इतनी चकाचौंध पैदा करती है कि मनुष्य उसे खुली आंखों से देख नहीं सकता। तेजोलेश्या का प्रयोग करने वाला जब अपनी तैजस शक्ति को बाहर निकालता है तब वह महाज्वाला के रूप में विकराल हो जाती है।

12.2.1 तेजोलेश्या का स्थान

तैजस शरीर हमारे समूचे स्थूल शरीर में रहता है फिर भी उसके दो विशेष केन्द्र हैं—मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठभाग। मन और शरीर के बीच सबसे बड़ा संबंध सेतु है मस्तिष्क। उससे तैजस शक्ति (प्राणशक्ति या विद्युत शक्ति) निकलकर शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन करती है। नाभि के पृष्ठ भाग में खाए हुए आहार का प्राण के रूप में परिवर्तन होता है। अत: शारीरिक दृष्टि से मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठभाग—ये दोनों तेजोलेश्या के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन जाते हैं। यह तेजोलेश्या एक शक्ति है। इसे हम देख नहीं पाते। इसके सहायक परमाणु-पुद्गल सूक्ष्मदृष्टि से देखे जा सकते हैं। ध्यान करने वालों को उनका यत्किंचित् आभास होता रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12.2.2 तेजोलेश्या और प्राण

तेजोलेश्या प्राणधारा है। शरीर में अनेक प्राणधाराएं हैं। इंद्रियों की अपनी प्राणधारा है। मन, शरीर और वाणी की अपनी प्राणधारा है। श्वास-प्रश्वास और जीवनी-शक्ति की भी प्राणधाराएं हैं। हमारे चैतन्य का तैजस शरीर के साथ योग होता है और प्राणशक्ति बन जाती है। सभी प्राणधाराओं का मूल तैजस शरीर है। इन प्राणधाराओं के आधार पर ही क्रियाओं और विद्युत् आकर्षण के संबंध का अध्ययन किया जा सकता है।

प्राण की सक्रियता से मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की वृत्तियां उत्पन्न होती हैं और जब तक तेजोलेश्या के आनन्दात्मक स्वरूप का विकास नहीं होता तब तक उत्पन्न होती रहती हैं। कुछ लोग वायु संयम से उन्हें रोकने का प्रयत्न करते हैं। यह उनके निरोध का एक उपाय अवश्य है किन्तु वायु-संयम या कुंभक करना कठिन साधना है। उसमें बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है। कहीं थोड़ी सी असावधानी हो जाती है अथवा योग्य गुरु का पथ प्रदर्शन नहीं मिलता है तो कठिनाइयां बढ़ जाती हैं। मन-संयम से चित्त-वृत्तियों का निरोध करना निर्विघ्न मार्ग है। इसकी साधना कठिन है किन्तु यह इसका सर्वोत्तम उपाय है। प्रेक्षाध्यान के द्वारा इस कठिनता को मिटाया जा सकता है। चित्त की प्रेक्षा चित्त-वृत्तियों के निरोध का महत्त्वपूर्ण उपाय है।

12.2.3 तेजोलेश्या का विकास

तेजोलेश्या के विकास का कोई एक ही स्रोत नहीं है। उसका विकास अनेक स्रोतों से किया जा सकता है। संयम, ध्यान, वैराग्य, भक्ति, उपासना, तपस्या आदि-आदि उसके विकास के स्रोत हैं। इन विकास स्रोतों की पूरी जानकारी लिखित रूप में कहीं भी उपलब्ध नहीं होती। यह जानकारी मौखिक रूप से आचार्य अपने शिष्यों को देते थे।

गोशालक ने महावीर से पूछा—'भंते! तेजोलेश्या का विकास कैसे हो सकता है?' महावीर ने उसके उत्तर में उसे तेजोलेश्या के एक विकास स्रोत का ज्ञान कराया। उन्होंने कहा—'जो साधक निरंतर दो-दो उपवास करता है, पारणा के दिन मुट्ठी भर उड़द या मूंग खाता है और चुल्लूभर पानी पीता है, भुजाओं को ऊंची कर सूर्य की आतापना लेता है, वह छः महीने के भीतर ही तेजोलेश्या को विकसित कर लेता है।'

तेजोलेश्या के विकास के तीन स्रोत हैं—

1. आतापना—सूर्य के ताप को सहना।
2. क्षांति-क्षमा—समर्थ होते हुए भी क्रोध-निग्रह पूर्वक अप्रिय व्यवहार को सहनंव करना।
3. जलरहित तपस्या करना।

इनमें केवल क्षांति-क्षमा नया है। शेष दो उसी विधि के अंग हैं जो विधि महावीर ने गोशालक को सिखाई थी। तेजोलेश्या के निग्रह-अनुग्रह स्वरूप के विकास के स्रोतों की यह संक्षिप्त जानकारी है। उसका जो आनंदात्मक स्वरूप है उसके विकास स्रोत भावात्मक तेजोलेश्या की अवस्था में होने वाली चित्तवृत्तियां हैं। चित्तवृत्तियों की निर्मलता के बिना तेजोलेश्या के विकास का प्रयत्न खतरों को निमंत्रित करने का प्रयत्न है। वे खतरे शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक—तीनों प्रकार के हो सकते हैं।

12.2.4 तेजोलेश्या का आध्यात्मिक महत्त्व

जो साधना के द्वारा तेजोलेश्या को प्राप्त कर लेता है वह सहज आनन्द की अनुभूति में चला जाता है। इस अवस्था में विषय-वासना और आकांक्षा की सहज निवृत्ति हो जाती है। इसलिए इस अवस्था को 'सुखासिका' (सुख में रहना) कहा जाता है। विशिष्ट ध्यान योग की साधना करने वाला एक वर्ष में इतनी तेजोलेश्या को उपलब्ध होता है जिससे कि उत्कृष्टतम भौतिक सुखों की अनुभूति अतिक्रांत हो जाती है। उस साधक को इसके द्वारा जो सहजसुख प्राप्त होता है, वह किसी भी भौतिक पदार्थ से प्राप्त नहीं हो सकता।

चैतन्य और परमाणु-पुद्गल—दोनों साथ-साथ जी रहे हैं। हमारा जगत् न केवल चैतन्य का जगत् है और न केवल परमाणु-पुद्गल का बल्कि यह दोनों के संयोग का जगत् है। चैतन्य की शक्ति से परमाणु पुद्गल सक्रिय होते रहते हैं और परमाणु पुद्गलों की सक्रियता से चैतन्य की उनके अनुरूप परिणति होती है। इस नियम के आधार पर तेजोलेश्या के दो रूप बनते हैं—भावात्मक और पुद्गलात्मक। भावात्मक तेजोलेश्या चित्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की विशिष्ट परिणति या चित्त शक्ति है। इस तेजोलेश्या वाले व्यक्ति का चित्त नम्र, अचपल और ऋजु हो जाता है। उसके मन में कोई कुतूहल नहीं होता। उसकी इंद्रियां सहज शांत हो जाती हैं। वह योगी (समाधि-संपन्न) और तपस्वी होता है। उसे धर्म प्रिय होता है। वह धर्म का कभी अतिक्रमण नहीं करता है।

12.2.5 तेजोलेश्या का वैज्ञानिक महत्त्व

पुद्गलात्मक तेजोलेश्या के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श विशिष्ट प्रकार के होते हैं। उसका वर्ण हिंगुल, बाल सूर्य या प्रदीप की शिखा की भांति लाल होता है। उसका रस पके हुए आम्रफल के रस से अत्यधिक मधुर होता है। उसकी गंध सुरभित कुसुम से अत्यधिक सुखद होता है। उसका स्पर्श नवनीत या शिरीष कुसुम से भी अत्यधिक मृदु होता है।

आज वैज्ञानिक सौरऊर्जा को संगृहीत कर उसे लोक जीवन के लिए उपयोगी बना रहे हैं। आतापना एक प्रकार से सौरऊर्जा प्राप्ति का ही उपक्रम है। किस आसन और किस स्थिति में बैठने से अधिक सौरऊर्जा संचित हो सकती है, इस बात को ध्यान में रख कर विशिष्ट साधकों के लिए खड़े खड़े आतापना लेने का क्रम है।

12.2.6 तेजोलेश्या और अतीन्द्रिय ज्ञान

तेजोलेश्या और अतीन्द्रिय ज्ञान का परस्पर संबंध है। अतीन्द्रिय ज्ञान का विकास ज्ञानावरण के विलय से होता है। वह तेजोलेश्या से नहीं होता है। उसकी अभिव्यक्ति तेजोलेश्या से होती है। जब तेजस्, पद्म और शुक्ल लेश्या की विचारधारा होती है, अध्यवसाय शुद्ध होता है तब ज्ञान का आवरण क्षीण हो जाता है और अतीन्द्रिय ज्ञान की शक्ति उपलब्ध हो जाती है किन्तु उसका उपयोग चैतन्य-केन्द्र और शक्ति-संस्थानों के माध्यम से होता है। कोई अवधिज्ञानी अपने ज्ञान का प्रयोग शरीर के किसी एक भाग से या समूचे शरीर से—दोनों प्रकार से करता है। तेजोलेश्या की विद्युत्धारा जिस शक्ति-संस्थान या चैतन्य-केन्द्र पर पड़ती है, वह उपलब्ध क्षमताओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाता है। विद्युत् जिस प्रकार अपना चुंबकीय क्षेत्र (Magnetic field) बनाती है वैसे ही तेजोलेश्या का चुंबकीय स्थान का निर्माण करती है। वही क्षेत्र अवधि ज्ञान के प्रस्फुटित होने का माध्यम बनता है। तेजोलेश्या की विद्युत्धारा से शक्ति-संस्थान या चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं, इसका तात्पर्य चुंबकीय क्षेत्र के निर्माण से है, ज्ञान के अनावरण से नहीं।

12.3 जैन योग में कुंडलिनी

योग की उपयोगिता जैसे-जैसे बढ़ती जा रही है वैसे-वैसे उस विषय में जिज्ञासाएं भी बढ़ती जा रही हैं। योग की चर्चा में कुंडलिनी का सर्वोपरि महत्त्व है। बहुत लोग पूछते हैं कि जैन योग में कुंडलिनी सम्मत है या नहीं? आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने इसका समाधान देते हुए कहा है—"यदि वह एक वास्तविकता है तो फिर कोई भी योग-परंपरा उसे अस्वीकृत कैसे कर सकती है? वह कोई सैद्धांतिक मान्यता नहीं है किन्तु एक यथार्थ शक्ति है। उसे अस्वीकृत करने का प्रश्न ही नहीं हो सकता।"

जैन परंपरा के प्राचीन साहित्य में कुंडलिनी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। उत्तरवर्ती साहित्य में इसका प्रयोग मिलता है। वह तंत्र-शास्त्र और हठयोग का प्रभाव है। आगम और उसके व्याख्या साहित्य में कुंडलिनी का नाम तेजोलेश्या है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि हठयोग में कुंडलिनी का जो वर्णन है उसकी तुलना तेजोलेश्या से की जा सकती है। अग्नि-ज्वाला के समान लाल वर्ण वाले पुद्गलों के योग से होने वाली चैतन्य की परिणति का नाम तेजोलेश्या है। यह तप की विभूति से होने वाली तेजस्विता है।

12.3.1 कुण्डलिनी का स्वरूप

तंत्रग्रंथों में कहा गया है कि कुंडलिनी शक्ति मूलाधार रूप में स्थित होकर मनुष्य को सब प्रकार की शक्तियां, विद्या और मुक्ति प्राप्त कराने का साधन है। विश्व के समस्त प्राणियों में यह कुंडलिनी शक्ति विराजमान रहती है। कुंडलिनी शक्ति आत्मशक्ति की प्रकट और प्रखर स्फुरणा है। मोक्ष द्वार को खोलने की कुंजी कुंडलिनी है और यही सभी योगों का आधार भी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शक्ति की अधिष्ठात्री कुंडलिनी मूलाधार चक्र में साढ़े तीन लपेटे लगाए हुए सर्पिणी की तरह शयन करती है। जिनमें तीन कुंडल त्रिगुणों के प्रतीक हैं और आधा कुंडल त्रिगुणातीत अवस्था का प्रतीक है। इस कुंडलिनी के तीन विभाग हैं—

1. अधो कुंडलिनी 2. मध्य कुंडलिनी तथा 3. ऊर्ध्व कुंडलिनी। कुंडलिनी के तीन विभागों में ऊर्ध्व कुंडलिनी में सतोगुण प्रधान होता है। मणिपूर चक्र तथा विज्ञानमय और आनन्दमय कोष इसके स्थल हैं।

जैन साधना पद्धति में कुंडलिनी को 'तेजोलब्धि' कहा है। शाक्त दर्शन में 'शक्ति', शैव में चित्ति, सांख्य में परा प्रकृति, बौद्ध दर्शन में बुद्धि, चार्वाक में 'आशा' के नाम से अभिव्यक्त करते हैं।

यह कुंडलिनी भौतिकी नहीं बल्कि आत्मि की मानी जाती है। जीवन अग्नि के समष्टि इस रूप को अध्यात्म की भाषा में ब्रह्माग्नि, परमात्मा और व्यष्टि रूप से उसे जीवाग्नि आत्मा भी कहा गया है। पुर्यष्टक नाम के जीव की प्राणशक्ति का नाम भी कुंडलिनी है।

12.3.2 कुंडलिनी की अवस्थाएं

कुंडलिनी की दो अवस्थाएं हैं—जाग्रत और स्वप्न। व्यक्ति के परिमित व्यक्तित्व के चारों तरफ घूमता हुआ चंचल मन सांसारिक विषयों तथा विविध प्रकार के भोगों की तरफ झुका हुआ रहता है तब कुंडलिनी बहिर्मुख या सुप्तावस्था में रहती है। और जब मन विषयों की असारता एवं अनित्यता को समझकर उसमें से प्रत्याहारित होकर अपने भीतर की ओर झांकता है तब उसकी कुंडलिनी अंतर्मुखी हो जाती है और जाग्रतावस्था में रहती है।

सर जॉनवुडराफ ने ''दी सर्पेन्ट पावर'' नामक अपने ग्रंथ में लिखा है—'जब कुंडलिनी सोई हुई रहती है तब मनुष्य संसार के प्रति आसक्त होता है और जब कुंडलिनी जागती है तब मनुष्य संसार से विरक्त रहता है। भगवद् गीता में भी कहा गया है—जो दूसरों के लिए रात्रि है वह योगी के लिए दिन है और जो दूसरों के लिए दिन है वह योगी के लिए रात्रि है। सुप्तावस्था में योगी अज्ञ अवस्था में रहता है और जाग्रतावस्था में ब्रह्मरंध्र खुलता है। जब कुंडलिनी कंठ के ऊपर के भाग में सोई हुई होती है तब योगियों को मुक्तकर देने वाली होती है और कंठ के नीचे सोई हुई होती है तो अज्ञानियों के लिए बंधनकर्त्ता होती है। सुप्तावस्था में कुंडलिनी को चक्र और जाग्रतावस्था में 'कमल' की संज्ञा दी जाती है।

जाग्रत कुंडलिनी से साधक में कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है। जैसे संगीतकार की संगीत कला, काव्यकर्त्ताओं की काव्य रचना कई गुणा अधिक तेजस्वी हो जाती है।

12.3.3 कुंडलिनी के योग्य अधिकारी

प्रत्येक प्राणी में कुंडलिनी होती है। उसको जाग्रत करने की सबके मन में उत्कंठा होती है। लेकिन उसे हर व्यक्ति जाग्रत नहीं कर सकता क्योंकि यह योग शक्ति गुह्य समझी जाती है। इसका कारण है कि बिना समर्थ गुरु के मार्ग दर्शन के इसका अभ्यास करने से पीड़ा, शारीरिक विकलता और रोग होने का भय रहता है। गुरु भी उसी को उपदेश देते हैं जो इस योग्य पात्र हो।

गंधर्व तंत्र के दूसरे अध्याय में कुंडलिनी योग के अधिकारी के लिए कुछ गुण होने आवश्यक बताए हैं जो अधोलिखित हैं—1. दक्षता, 2. जितेन्द्रियता, 3. सर्वप्राणी हित रत, 4. शुचि, 5. आस्तिक, ब्रह्म परायण, 6. तन्मयता, 7. साहस, 8. संयम, 9. धैर्य, 10. दृढ़ संकल्प शक्ति 11. सर्व हिंसा भिन्न रूप, 12. द्वैतहीन और 13. प्राणशक्तिवान इत्यादि गुण आवश्यक बताये हैं। सामान्यतः ऐसा समझा जाता है कि कुंडलिनी के जाग्रत होने से कामशक्ति उद्दीप्त हो सकती है किन्तु ऊपर जो अधिकारी के गुण बताए गए हैं उस अधिकारी में इस योग के दुरुपयोग की आशंका नहीं रहती।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.3.4 कुंडलिनी जागरण के साधन

जीव में अनन्त शक्ति है लेकिन अविद्या के कारण उसका जागरण नहीं होता है। शक्ति को जगाने के लिए मुख्य रूप से निम्न साधन सहायक होते हैं—1. आसन-प्राणायाम 2. गुरु कृपा 3. पूर्वजन्म की साधना के संस्कारों से बंधन मुक्ति 4. जप साधना और 5. ध्यान।

12.3.4.1 आसन-प्राणायाम

सभी दर्शनों में आसन-प्राणायाम को योग का प्रथम स्तर कहा है। शैव दर्शन में भी कुंडलिनी जागरण करने के लिए आसन-प्राणायाम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है क्योंकि इनके अभ्यास से नाड़ी-शुद्धि, पाचन शुद्धि, ऊर्जा का संचय होता है। कुंडलिनी जागरण के महत्त्वपूर्ण आसन-प्राणायामों में से कुछ को यहां निर्दिष्ट किया जा रहा है—1. भुजंगासन, 2. मंडूकासन, 3. एक पाद पश्चिमोत्तानासन, 4. शक्ति चालिनी मुद्रा, 5. योनिमुद्रा 6. अश्विनी मुद्रा, 7. सूर्यभेदी प्राणायाम, 8. भस्त्रिका प्राणायाम आदि।

इन आसन-प्राणायामों का अभ्यास करने से जठराग्नि बढ़ती है, प्राणोत्थान होता है। प्राणोत्थान होने से कुंडलिनी शक्ति का जागरण होता है और साधक अप्रमत्त अवस्था में पहुंचता है।

12.3.4.2 गुरुकृपा

तंत्र ग्रंथों में कहा है—श्रीगुरु की कृपा से जब कुंडलिनी जागती है तब षट्चक्र तथा तीनों ग्रंथियां खुल जाती हैं। प्राण की पदवी शून्य हो जाती है। बिना आलंबन के ही चित्त स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार मालिनी विजय में कहा गया है—

.....................स पिपासुः शिवेच्छया।
भुक्तिमुक्तिप्रसिद्ध्यर्थं नीयते सद्गुरुं प्रति।।

अर्थात् सद्गुरु को प्राप्त किए बिना जीव को एक साथ ही भोग और मोक्ष की अभिन्नभाव से प्राप्ति नही हो सकती है अर्थात् पूर्णत्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता। कुंडलिनी का प्रयोजन भी भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त करना है और वह जागरण गुरुकृपा से ही प्राप्त होता है। इसे शक्तिपात भी कहते हैं।

12.3.4.3 पूर्व जन्म की साधना

कभी-कभी व्यक्ति वर्तमान में अत्यधिक साधना नहीं करता। लेकिन पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण कुण्डलिनी अचानक जागृत हो जाती है।

12.3.4.4 जप-साधना

जप सभी के लिए अल्पायाससाध्य है। जप यदि ठीक ढंग से किया जाए तो कर्म, ज्ञान, भक्ति योग आदि सभी साधनाओं का फल सहज में प्राप्त हो जाता है। केवल यही नहीं सविशेष भाव की पूर्णता 'सोहं', अर्हम्' 'हंस', 'हु', ह्रां' की ध्वनियां इत्यादि मंत्र जाप करने से नाद, बिन्दु और बिन्दु में सूर्य-चंद्र, अग्नि आदि दिखाई देते हैं। वस्तुतः मंत्र से उत्पन्न नाद नभो-भाग के शून्य में पहुंचकर व्याप्त हो जाता है और लय को प्राप्त हो जाता है। तब न नाद रहता है, न ध्वनि रहती है, केवल तेजोमय कुंडलिनी रहती है।

12.3.4.5 ध्यान

कुंडलिनी जागरण के उपायों में से एक उपाय ध्यान भी है। ध्यान के तीन प्रकार हैं—1. स्थूलध्यान 2. ज्योतिर्ध्यान 3. सूक्ष्मध्यान। स्थूलध्यान में मूर्त्ति, इष्ट देवता आदि का आलंबन लिया जाता है। ज्योतिर्ध्यान में तेजोमय ब्रह्म का और सूक्ष्मध्यान में बिन्दुमय कुंडलिनी शक्ति का ध्यान होता है। शांभवीमुद्रा के अभ्यास से भी सूक्ष्म ध्यान किया जाता है। यह सर्वोत्कृष्ट ध्यान है जिसमें शिव और शक्ति एकाकार हो जाते हैं और कुंडलिनी राजमार्ग अर्थात् ऊर्ध्व में घूमती रहती है। वायवीय कुंभक प्राणायाम, संयुक्त प्राणायाम इत्यादि आसन और प्राणायामों से भी कुंडलिनी जागृत होती है।

उपर्युक्त उपायों के माध्यम से तो कुंडलिनी का जागरण होता ही है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य उपाय भी कुंडलिनी जागरण में सहायक बनते हैं यथा—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. नाड़ी-शुद्धि के लिए हठयोग, मिताहार और उत्तेजना का वर्जन करना होगा।
2 सत्व-शुद्धि के लिए यम-नियम का पालन।
3. संस्कार शुद्धि के लिए अनासक्ति व द्रष्टाभाव।
4. मानस शुद्धि के लिए संकल्पों को अजपा में लय करना होगा।
5. काम व राग शुद्धि के लिए वैराग्य भाव जगाना होगा।
6. अहंशुद्धि के लिए निद्रा का दिशांतर करना होगा।
7. भावों की शुद्धि रखनी होगी
8. दृष्टि विक्षेप को शुद्ध करना होगा।
9. बुद्धि शुद्धि हेतु निश्चय को शुभ, दृढ़ व सतत् जारी रखना होगा।

इसके अतिरिक्त प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के माध्यम से भी कुंडलिनी जागरण हो सकता है। अंतर्यात्रा का प्रयोग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है जिसमें सभी चक्रों पर ध्यान किया जाता है। अंतर्यात्रा से सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय होती है। नाड़ी शोधन के लिए समवृत्ति श्वासप्रेक्षा का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इसके अभ्यास से साधक में सहनशीलता बढ़ती है और अतीन्द्रिय पदार्थों को जगाने की क्षमता बढ़ती है, वही कुंडलिनी जागरण है। शरीरप्रेक्षा, चैतन्यकेन्द्रप्रेक्षा और लेश्याध्यान से भी कुंडलिनी जागरण संभव है। प्राणशक्ति का विशेष विकास ही कुण्डलिनी का जागरण है। प्राणशक्ति के अतिरिक्त तैजस शरीर के विकिरणों के अतिरिक्त कुण्डलिनी का अस्तित्व वैज्ञानिक ढ़ंग से सिद्ध नहीं हो सकता।

हर प्राणी की कुंडलिनी जागृत होती है। यदि वह जागृत न हो तो वह चेतन प्राणी नहीं हो सकता। जैन आगम ग्रन्थों में कहा गया—चैतन्य (कुंडलिनी) का अनन्तवां भाग सदा जागृत रहता है। यदि यह भाग भी आवृत हो जाए तो जीव अजीव बन जाए। प्रत्येक प्राणी की कुंडलिनी यानी तैजस शक्ति जागृत रहती है। कोई व्यक्ति विशिष्ट साधना के द्वारा अपनी इस तैजस शक्ति को विकसित कर लेता है। किसी को अनायास ही गुरु का आशीर्वाद मिलता है जिससे साधना में तीव्रता आती है और कुंडलिनी जागृत हो जाती है।

बोध प्रश्न

1. तेजोलेश्या क्या है?
2. तेजोलेश्या और प्राण का क्या सम्बन्ध है?
3. कुण्डलिनी के स्वरूप को समझाएं।
4. कुण्डलिनी जागरण के साधन क्या-क्या है?

12.4 कुंडलिनी जागरण का वैज्ञानिक महत्त्व

आयुर्वेद एवं योग के ग्रन्थों में नाभि को उर्जा का केन्द्र बताया गया है। वैज्ञानिकों ने इसे 'एबडोमिनल ब्रेन' की संज्ञा दी है। इसे दूसरा मस्तिष्क कहा है।

योगी और ध्यानी व्यक्तियों ने कुण्डलिनी जागरण में इसे मणिपूर चक्र कहा है। मूलाधार चक्र को उर्जा नाभि के माध्यम से मिलती है। जब हम प्रेक्षाध्यान में तैजसकेन्द्र प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं तब ब्रह्माण्ड के सूर्य और नाभि संस्थान के सूर्य का योग होता है। पतंजलि ने "पातंजलयोगसूत्र" में नाभि में सूर्य की स्थिति बतायी है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एलिजावेथ टोन ने नाभिचक्र को 'सोलर प्लेक्सस' कहा है। इस पर ध्यान करने से नाभि सूर्य की रश्मियां पूरे शरीर में व्याप्त हो जाती है। हमारे भीतर की ऊर्जा एक प्रकार की भयंकर आग है। शरीर में तैजस की इतनी बड़ी और भयंकर आग है कि अन्यत्र वह दुर्लभ है। जिस साधक को तेजोलब्धि प्राप्त हो जाती है, उसमें इतनी क्षमता विकसित हो जाती है कि वह एक क्षण में हजारों मील के भू-भाग को भस्म कर सकता है। एक अणु-विस्फोट से अधिक विनाश करने में वह सक्षम हो जाता है। जब यह शक्ति जागती है और यदि उसे सही रास्ता मिल जाए, एक चूल्हा मिल जाए, नियामक तत्त्व मिल जाए तो वह हमारी अन्यान्य शक्तियों के संवर्धन में हेतुभूत हो सकती है। यदि ऐसा नहीं होता तो वह उसी व्यक्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

को जलाने लग जाती है। जब तैजस-शक्ति का जागरण होता है तब भयंकर ताप पैदा होता है। यदि साधक उस ताप को सहने में सक्षम नहीं होता तो वह पागल हो जाता है। यह शक्ति बहुत खतरनाक होती है। इससे क्रोध बढ़ जाता है। शाप देने की शक्ति हाथ में आ जाती है। ध्यान करने वाले कुछ तपस्वी ऐसे होते हैं, जिनकी शक्ति जाग जाती है, क्रोध बढ़ जाता है पर उन्हें क्रोध के उपशमन का उपाय हाथ नहीं लगता तब उनकी शक्ति दूसरों का अनिष्ट करने में, शाप देने में, खपती है।

कुंडलिनी जब चैतन्यमय हो जाती है अर्थात् विश्व ब्रह्मांड ही चैतन्य रूप धारण करता है उसे कुंडलिनी जागरण कहा जाता है। यह जागरण क्रमशः होता है—कर्म, ज्ञान, भक्ति—इस जागरण की अवस्था मात्र है। पूर्ण जागरण अद्वैत सिद्धि की प्राप्ति कराता है। तंत्र-शास्त्र में इसी को पूर्णाहंता कहते हैं। कुंडलिनी जागरण दो रूपों में प्रकट होता है—प्राणोत्थान और प्रकाशमय रूप। प्राणोत्थान में प्राण मेरुदंड से गमन करता हुआ ब्रह्मरंध्र में जाकर ठोकर सी लगाता है। इस प्राण गमन में चींटियों के रेंगने जैसे सुखद स्पर्श की अनुभूति होती है। उस स्पर्श से साधक को अत्यधिक आनन्द प्राप्त होता है। प्राणोत्थान में मन तथा प्राण की क्रियाओं का इन छः चक्रों (षट् चक्र) में स्पर्श-जन्य अनुभव होता है परंतु दर्शन कुछ नहीं होता। शक्तिपात से भी प्राणोत्थान हो सकता है।

चित्र न. 1

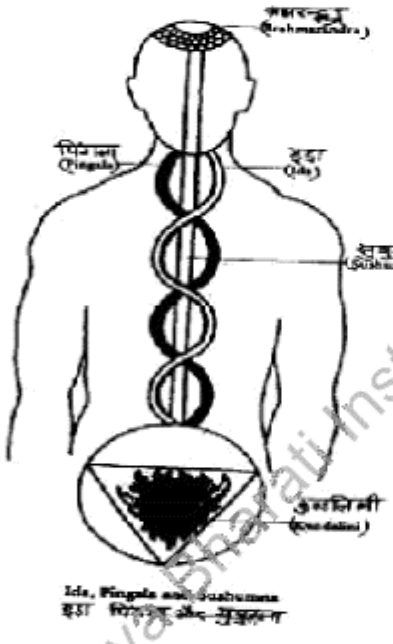

चित्र न. 2

कुंडलिनी शक्ति जब प्रकाश के रूप में संपूर्ण शरीर में फैल जाती है और सुषुम्ना में प्रवेश करके समस्त चक्रों को प्रकाशित कर देती है तब कुंडलिनी पूर्ण रूप से जाग्रत हो जाती है। इस प्रकाशमय रूप से साधक को किसी में कोई भेद नहीं दिखलाई देता है। सब एक रूप में दिखाई देते हैं और सूक्ष्म और स्थूल का बोध कराने में सहायक बनते हैं। इस प्रकार कुंडलिनी का मध्यवर्ती जागरण मनुष्य के शरीर में एक अद्भुत प्रकार की विद्युत् उत्पन्न कर देता है। आरंभिक साधना से भौतिक जीवन प्रखर एवं प्रतिभा संपन्न बनाया जा सकता है। कुण्डलिनी जागरण को प्राणशक्ति के रूप में माना गया है यही इसकी वैज्ञानिकता है।

कुंडलिनी को यौगिक उपलब्धियों में शक्ति के रूप में स्वीकृति मिली हुई है। जैन योग में भी यह एक विशिष्ट उपलब्धियों के रूप में प्रतिष्ठित है। वहां इसका नाम तेजोलेश्या या तेजोलब्धि है। शरीर में मुख्य रूप से प्राण प्रवाह हैं। मध्यवर्ती प्राणप्रवाह पृष्ठरज्जु के भीतर सुषुम्ना में प्रवाहित होता है सुषुम्ना के नीचले भाग में शक्ति केन्द्र तथा सुषुम्ना के ऊपर ज्ञानकेन्द्र है। ये दोनों केन्द्र सुषुम्ना सेतु से जुड़े हुए हैं। शक्ति के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बिना ज्ञान का विकास नहीं होता और ज्ञान के बिना शक्ति का सदुपयोग नहीं होता है। इसलिए ये दोनों केन्द्र तथा इनका मध्यवर्ती स्थान शरीर का महत्त्वपूर्ण भाग है। सभी साधना पद्धतियों में साधना की दृष्टि से इसकी उपयोगिता को स्वीकृत किया गया है। शक्ति केन्द्र के पास एक और ऊर्जा का भंडार है। इसी स्थान को कुंडलिनी का स्थान माना जा सकता है। प्रेक्षाध्यान की पद्धति में तेजोलेश्या, तेजोलब्धि और तैजस शरीर—ये तीन बहुत रहस्यमय शब्द हैं। कुंडलिनी का रहस्य इसी में खोजा जा सकता है।

तेजोलब्धि के दो रूप हैं—सुप्त या निष्क्रिय और जागृत या सक्रिय। जब यह शक्ति सुप्त या निष्क्रिय होती है तब वृत्तियां उदात्त नहीं बन सकती हैं। वृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए भी शक्ति की अपेक्षा रहती है। शक्ति के बिना जब साधारण सा काम भी नहीं हो सकता है तो वृत्तियों के उदात्तीकरण जैसा महान् कार्य कैसे हो सकता है? तैजस शक्ति के जाग्रत या सक्रिय होने पर उसके उपयोग में बहुत बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। विद्युत् जब तक तारों में प्रवाहित रहती है, वह तब गर्मी में ठंडक तथा सर्दी में ताप दे सकती है, अंधकार में प्रकाश कर सकती है और बड़ी-बड़ी मशीनों को गतिमान बना सकती है किन्तु तारों के नियंत्रण से बाहर होकर वह अकल्पित नुकसान भी पहुंचा सकती है। इसी प्रकार उचित दिशा में प्रयुक्त तैजस शक्ति वरदान बनती तो उसका गलत दिशा में प्रयोग अभिशाप भी बन सकता है। इस दृष्टि से शक्ति केन्द्र के साथ ज्ञान केन्द्र को जागृत करना आवश्यक है। ऊपर के केन्द्रों का जागरण न होने पर नीचे के केन्द्रों का जागरण होने से बहुत बड़ा खतरा है। इसलिए इस सारी प्रक्रिया में गुरु का मार्ग-दर्शन आवश्यक है। उचित मार्ग दर्शन के अभाव में कठिनाइयों की उपस्थिति को टाला नहीं जा सकता है।

कुंडलिनी को सर्पिणी के रूप में उपमित किया गया है। सर्पिणी एक रूपक है। जिस प्रकार सांप टेढ़ा-मेढ़ा चलता है, उसी प्रकार हमारी सुषुम्ना का आकार भी टेढ़ा-मेढ़ा है। कुंडलिनी सर्पिणी की अवस्था में शांत रहती है तब तैजस शक्ति भी निष्क्रिय या शांत रहती है सर्पिणी को छेड़ने पर यदि वह क्रुद्ध हो जाए तो वह खतरनाक सिद्ध होती है। इसी प्रकार शक्ति के ऊर्ध्वारोहण पर यदि उसे सही मार्ग न मिले तो वह भी कष्टकर हो जाती है। तैजस शक्ति या प्रवाह यदि बाएं या बाएं चला जाए तो दाह जैसी प्राणघातक बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। इसमें शारीरिक या मानसिक दोनों प्रकार के खतरों से जूझना पड़ता है। कभी इससे पागलपन भी आ जाता है। इसलिए कुंडलिनी को साधते समय अथवा तैजस शक्ति को ऊपर ले जाते समय बहुत सावधानी की अपेक्षा रहती है।

12.5 कुंडलिनी जागरण का आध्यात्मिक महत्त्व

तैजस शक्ति एक प्रकार की ऊर्जा है। वह भोजन करने से उत्पन्न होती है। तैजस केन्द्र भी प्राण-ऊर्जा का उत्पादक है। तैजस शक्ति से जो विकिरण होते हैं, उनसे प्राणधारा सक्रिय होती है। हठयोग में शरीर की जिस शक्ति को कुंडलिनी कहा गया है जैन योग में वही तैजस शक्ति है। कुंडलिनी को जाग्रत करने में अनेक खतरों की संभावना रहती है लेकिन इस भय से किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को रोका भी नहीं जा सकता है। खतरे तो सर्वत्र होते हैं। साहसी व्यक्ति उनके बीच से गुजर कर उन्हें पार कर विशेष उपलब्धि प्राप्त कर लेता है। खतरों के आगे घुटने टेकने से आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। तैजसशक्ति को जगाने की प्रक्रिया भी खतरों से खाली नहीं है पर इसके बिना समाधि या निर्विकल्प अवस्था भी संभव नहीं होती है। इसमें ध्यान केन्द्रित होने पर ही समाधि की स्थिति प्राप्त की जा सकती है अन्यथा विचारों की उखाड़-पछाड़ रुक नहीं सकती है। तैजस शक्ति के जागने पर जीवन में लयबद्धता अपने आप आ जाती है। फिर विचार नहीं आते हैं। अपेक्षा होने पर समाधि तोड़नी पड़ती है किन्तु समाधि जगाने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। तीर्थंकरों की अतिशय-गाथा में ये सब बातें सम्मत हैं। तीर्थंकरों के केश और नख नहीं बढ़ते। यह अतिशयोक्ति न होकर वास्तविकता है। ये आधि, व्याधि और उपाधियों से भी मुक्त रहते हैं। उनके शरीर में इतना तैजस सक्रिय रहता है कि बीमारी के परमाणु भस्मसात् हो जाते हैं।

तैजस शक्ति दो प्रकार की होती है—शीत और उष्ण। शीत तैजस का प्रयोग अनुग्रह के लिए किया जाता है और ऊष्ण तैजस का प्रयोग निग्रह में होता है। वरदान और अभिशाप दोनों रूपों में काम करने वाली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह शक्ति अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि साधक खतरों की संभावनाओं को स्वीकार करने पर भी तैजस शक्ति के विकास और जागरण हेतु प्रयत्नशील रहता है। तैजस शक्ति के दो रूप हैं—विपुल और संक्षिप्त। जाग्रत शक्ति को विपुल तथा सुप्त को संक्षिप्त कहा जाता है।

कुण्डलिनी के चक्र परिवार की स्थिति को निम्न सारणी से समझा जा सकता है

चक्र	स्थिति	पंखुडियों की संख्या	पंखुड़ियों पर बीजाक्षर	प्रधानतत्त्व व गुणशक्ति	रंग	देवतायान	धातु की शक्ति	बीज
मूलाधार	मेरूदण्ड का नीचला छोर, जननांगो के नीचे	4	वं, सं, शं, षं	पृथ्वी, गन्ध	पीला	ब्रह्म, हंस	डाकिनी	लं
स्वाधिष्ठान	जननांगों व नाभि के मध्य	6	बं, भं, मं, यं, रं, लं	अप, स्वाद	सफेद	विष्णु, गरुड़	राकिनी	वं
मणिपूर	नाभि का क्षेत्र	10	दं, धं, नं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं	तेजस, रूप	लाल	रुद्र, बैल	लाकिनी	रं
अनाहत	हृदय का क्षेत्र	12	कं, खं, गं, घं, नं, कं, छं, जं, सं, ज्ञं, तं, थं	वायु, स्पर्श	धूम्र	ईसा	काकिनी	यं
विशुद्ध	गले का क्षेत्र	16	अं, आं, इं, ईं, ऊं, उं, रं, रूं, लं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः ऋं	आकाश, शब्द	सफेद	सदाशिव	शाकिनी	हं
आज्ञा	भृकुटियों के बीच	2	हं, क्षं	मन (मानसिक क्षेत्र)	अरुण	शंभु	हाकिनी	ऊँ

प्राचीन ग्रंथों में तैजस शक्ति या कुंडलिनी जागरण के और भी परिणाम बताए गए हैं। सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति के केश और नख बढ़ते हैं। तैजस शक्ति का विकास होने पर इनकी वृद्धि रुक जाती हैं शरीर और मन की बीमारियां समाप्त हो जाती हैं। शरीर के रासायनिक परिवर्तनों के साथ ये परिवर्तन असंभव भी नहीं हैं।

12.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. कुंडलिनी जागरण के आध्यात्मिक वैज्ञानिक महत्त्व पर प्रकाश डालें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. तेजोलेश्या के स्वरूप का विवेचन करें।
2. तेजोलेश्या प्राप्ति के साधनों का वर्णन करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (एक पंक्ति में उत्तर दें)

1. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता—इस पुस्तक के लेखक कौन हैं?
2. तैजस शक्ति के कितने रूप हैं?
3. सर्पिणी के रूप में किसको उपमित किया गया है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. कुंडलिनी जागरण कितने रूपों में प्रकट होता है?
5. अनुग्रह करने वाली तेजोलेश्या को क्या कहते हैं?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. तैजस शक्ति एक प्रकार की.....है।
2. तप द्वारा उपलब्ध तैजस शरीर ही.....है।
3. वृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए भी.....की अपेक्षा रहती है।
4. हमारे पाचनतंत्र की सक्रियता और तेजस्विता का मूल है.....।
5. मस्तिष्कीय.....स्नायुमंडल में संचरित रहती है।

12.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. हठयोग प्रदीपिका—आत्माराम योगी
2. प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा—आचार्य तुलसी
3. जागो मा कुल-कुंड-कुंडलिनी—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
4. कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसिद्धि—श्रीराम शर्मा आचार्य
5. जैन योग—आचार्य महाप्रज्ञ
6. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता—आचार्य महाप्रज्ञ
7. प्रेक्षा-ध्यान, जनवरी, 2001
8. Serpent power—Shri John wooderffe
9. Kularnava Tantra—M.P. Pandit

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–4 परामनोविज्ञान एवं अध्यात्म–I

इकाई–13 : आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व–विकास की अवधारणा– गणाधिपति श्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ का दृष्टिकोण

संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी
13.2.1 अहम् प्रश्न
13.2.2 इन्द्रियजयी
13.2.3 दमित वासनाओं का परिष्कार
13.2.4 वृत्ति के संदर्भ में अर्थ का बोध
13.2.5 मूल है वृत्ति
13.2.6 वृत्ति का निरोध : संयम
13.2.7 अनासक्ति
13.2.8 अपना अपना : पराया पराया
13.2.9 अध्यवसाय और लेश्या
13.2.10 भाव धारा
13.2.11 संचालक है प्राण शक्ति
13.3 वैज्ञानिक व्यक्तित्व
13.3.1 सत्य की खोज
13.3.2 चेतना की खोज
13.3.3 आर. एन. ए. की खोज
13.3.4 सिल्वा मस्तिष्क नियंत्रण पद्धति
13.4 आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व
13.4.1 धर्म और विज्ञान
13.4.2 शिक्षा की समस्या
13.4.3 पूरक पद्धति : जीवन विज्ञान
13.4.4 स्वास्थ्य का मूल आधार
13.4.5 मस्तिष्कीय क्रियाशीलता और श्वसनक्रिया
13.4.6 तनाव विसर्जन
13.4.7 जैविक रासायनिक परिवर्तन
13.4.8 बायोफीडबेक पद्धति
13.4.9 प्रक्रिया के तीन आयाम
13.4.10 तरंगातीत अवस्था : विज्ञान से परे
13.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
13.6 संदर्भ ग्रंथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.0. प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में आप गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ के आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। दोनों महापुरुषों के साहित्य का गहन अध्ययन करने पर ऐसा महसूस होता है कि आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के बारे में जो विचार गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के थे, वे ही विचार आचार्य श्री महाप्रज्ञ के हैं या ऐसा भी कह सकते हैं कि जो विचार इस विषय पर आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने प्रस्तुत किये हैं, वे ही विचार गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी को मान्य थे। ऐसा लगता है दोनों ही महापुरुषों के विचार आपस में एक दूसरे के विचारों से अन्योन्याश्रित हैं। इसका कारण है आचार्य श्री महाप्रज्ञ का अपने गुरु गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के प्रति सर्वात्मना समर्पण एवं अगाध श्रद्धा। इसलिए इस पाठ में आप दोनों ही महापुरुषों के विचारों को एक ही मानकर पढ़ेंगे, दोनों महापुरुषों के विचारों को अलग अलग व्याख्यायित करना मेरे लिए असंभव है।

कर्मशास्त्र की भाषा में प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार के व्यक्तित्व हैं। एक औदयिक व्यक्तित्व और दूसरा क्षायोपशमिक व्यक्तित्व। औदयिक व्यक्तित्व वह है जिसको हमने स्वयं अर्जित किया है। जो संस्कार हमारे भीतर पड़े हैं वे संस्कार, वासनाएं और कर्म परमाणु अपना कार्य निरंतर कर रहे हैं, उदय में आ रहे हैं, रस विपाक दे रहे हैं। दूसरी ओर हर व्यक्ति अच्छाई भी करता है, अच्छी प्रवृत्ति करता है, वे भी अर्जित हैं, संचित हैं। यह हमारा दूसरा व्यक्तित्व है। इस कर्मशास्त्रीय भाषा में क्षायोपशमिक व्यक्तित्व कहा जाता है। ये दोनों व्यक्तित्व निरंतर हमारे भीतर सक्रिय हैं।

मनोविज्ञान ने भी दुहरे व्यक्तित्व की बात को स्वीकृति दी किन्तु वह यह समाधान नहीं दे सका कि ये दो व्यक्तित्व क्यों हैं? यह कारण कर्मशास्त्र के द्वारा ही जाना जा सकता है। कर्मशास्त्र कहता है कि हमारे ही भावों के कारण, हमारे ही आचरणों और व्यवहारों के कारण हमने अपने भीतर दो व्यक्तित्वों का निर्माण किया है।

हमें समाधान खोजना होगा बाहर से भी और भीतर से भी। एक पक्षीय समाधान कारगर नहीं होता। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय हो। ये दोनों सर्वथा विरोधी नहीं हैं। इनका सामंजस्य होने से हमारी दृष्टि में नया उन्मेष और विकास हो सकता है। विज्ञान ने भी बहुत गहराई में जाकर खोजें की हैं और अध्यात्म ने भी बहुत गहराई में जाकर खोजें की हैं। आचारांग सूत्र का एक सूक्त है—जे एगं जाणई से सव्वं जाणई। जे सव्वं जाणई से एगं जाणई। अध्यात्म की खोज भौतिक पदार्थ की खोज किये बिना अधूरी रहेगी। इसी प्रकार भौतिक पदार्थ की खोज अध्यात्म की खोज के बिना अधूरी रहेगी। एक भौतिक विज्ञानी को यदि परमाणु का सर्वथा ज्ञान करना है तो वह आत्मा या चेतना को जाने बिना उसे सर्वथा नहीं जान सकता। ठीक इसी प्रकार आत्म-विज्ञानी भौतिक पदार्थ को जाने बिना आत्मा को सर्वथा नहीं जान सकता।

केवल अध्यात्म-विज्ञान और केवल भौतिक-विज्ञान के आधार पर जीवन की व्याख्या नहीं की जा सकती। महावीर ने कहा—अप्पणा सच्चमेसेज्जा—स्वयं सत्य खोजो। यह महामंत्र है सत्य की खोज का। यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। आज का वैज्ञानिक खोज करता है यंत्रों के आधार पर, सूक्ष्मदर्शी माइक्रोस्कोप, टेलीस्कोप के आधार पर। महावीर ने कहा—जिन उपकरणों का तुम निर्माण करते हो और जिन उपकरणों के माध्यम से तुम सत्य की खोज करते हो वे उपकरण स्वयं तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं। तुम्हारी चेतना में विकास की असीम संभावनाएं हैं। यदि वह चेतना विकसित हो जाए तो सूक्ष्मदर्शी यंत्रों का सहारा लिये बिना हम सूक्ष्म, विप्रकृष्ट और व्यवहित सत्य को जान सकते हैं। ऐसे सत्य की अनुभूति हो सकती है, ऐसी चेतना का जागरण हो सकता है, जो देशातीत और कालातीत है, जहां देश और काल की सीमाएं समाप्त हो जाती हैं।

13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे।

1. आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी क्या है? जान पाएंगे।
2. अपना अपना : पराया पराया होता है, इसे समझ सकेंगे।
3. अध्यवसाय और लेश्या का व्यक्तित्व निर्माण में क्या योगदान है? उससे परिचित हो सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. भावधारा को समझ सकेंगे।
5. व्यक्तित्व की संचालक है प्राणशक्ति, उसे समझ सकेंगे।
6. वैज्ञानिक व्यक्तित्व क्या है? जान सकेंगे।
7. सत्य की खोज कर सकेंगे।
8. चेतना की खोज कर सकेंगे।
9. आर. एन. ए. रसायन को जान सकेंगे।
10. सिल्वा मस्तिष्क नियंत्रण पद्धति को समझ सकेंगे।
11. आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व को समझ सकेंगे।
12. धर्म और विज्ञान की तुलना कर सकेंगे।
13. शिक्षा की समस्याओं को जान सकेंगे।
14. पूरक पद्धति : जीवन विज्ञान से परिचित हो सकेंगे।
15. स्वास्थ्य के मूल आधार को समझ सकेंगे।
16. मस्तिष्कीय क्रियाशीलता और श्वसनक्रिया का अनुभव कर सकेंगे।
17. तनाव विसर्जन की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
18. जैविक रासायनिक परिवर्तन को समझ सकेंगे।
19. बायोफीडबेक पद्धति से परिचित हो सकेंगे।
20. प्रक्रिया के तीन आयामों को समझ सकेंगे।
21. तरंगातीत अवस्था : विज्ञान से परे है, उसका अनुभव कर सकेंगे।

13.2 आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी

आध्यात्मिक वह होता है, जिसमें आत्मौपम्य की भावना का विकास होता है। यह चेतना जाग जाती है कि जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही आत्मा सब में विद्यमान है। प्रत्येक प्राणी में वैसी ही आत्मा है जैसी मेरी है और मुझ में वैसी ही आत्मा है जैसी दूसरों में है। यह आत्मतुला का तराजू सबके लिए एक है। जिसमें यह चेतना जाग जाती है वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व है।

13.2.1 अहम प्रश्न

आईंस्टीन से अन्तिम समय में पूछा गया—'अगले जन्म में आप क्या करना चाहेंगे?' उन्होंने उत्तर दिया—'इस जन्म में मैंने ज्ञेय को खोजा, मेरा सारा विषय आब्जेक्ट रहा। अब मैं चाहता हूं कि अगले जन्म में मैं ज्ञाता को जानने का प्रयत्न करूं। आत्मा को जानूं, चैतन्य को जानूं, चैतन्य के रहस्य को जानूं—यह मेरे अगले जन्म की इच्छा है।' इस उत्तर से ऐसा लगता है कि आईंस्टीन को भी केवल वैज्ञानिक खोज से तसल्ली नहीं मिली, वह भी अध्यात्म की खोज करना चाहता है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ का कहना है—'मैं नहीं मानता कि अध्यात्म और विज्ञान दो हैं। सत्य की खोज चाहे हम अतीन्द्रिय चेतना के माध्यम से करें, चाहे वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से करें, सूक्ष्म की खोज विज्ञान के लिए भी अभीष्ट है और अध्यात्म को भी यह इष्ट है।' अध्यात्म के जो महान आचार्य हुए हैं, उन्होंने चेतना के साथ-साथ अचेतन और जड़ पदार्थ की भी खोज की है। दोनों के बिना हमारा समन्वित व्यवहार नहीं चल सकता। आज विज्ञान का व्यवसायीकरण हुआ है तो आज योग का भी व्यवसायीकरण हुआ है। सत्य की खोज के लिए ये दोनों ही बातें वांछनीय नही हैं। आज के युग में आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण के लिए जीवनशैली में बदलाव की आवश्यकता है।

13.2.2 इन्द्रियजयी

जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों और मन पर संयम करने का मूल्य समझ लेता है, वह आध्यात्मिक व्यक्तित्व है। इन्द्रियों की अतृप्ति, उनकी वासनाएं, लालसाएं असीम हैं। जो व्यक्ति इनका संयम नहीं करता वह समाज के लिए वरद एवं सुखद नहीं बन सकता। आज की सबसे बड़ी समस्या है—शासक है किंतु इन्द्रियजयी नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। समाज का मुखिया है, बहुत बड़ा उद्योगपति है किंतु इन्द्रियजयी नहीं है। चाणक्य ने कहा था कि जो समाज का नेतृत्व करता है, उसे सबसे पहले इन्द्रियजयी होना चाहिए। वह इन्द्रियजयी नहीं होगा तो पूरी प्रजा को दु:खी बना देगा। अत: नेतृत्व की पहली शर्त है इन्द्रियजयी होना। आध्यात्मिक व्यक्तित्व की भी यही शर्त है—व्यक्ति इन्द्रिय के वश में न रहे किंतु इन्द्रियों को अपने वश में रखें। मन बहुत चंचल है। वह मन के अधीन न रहे, अपितु मन को अपने अधीन बनाए।

13.2.3 दमित वासनाओं का परिष्कार

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की तीसरी कसौटी है—दमित वासनाओं का परिष्कार। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होता जिसमें वासना न हो। न जाने कितने जन्मों की वासनाएं, कितने जन्मों के संस्कार हमारे जीवन के साथ जुड़े रहते हैं। व्यक्ति उन दमित वासनाओं का परिष्कार करता रहता है तो उसका जीवन अच्छा बन जाता है। यदि उनका परिष्कार नहीं होता है तो व्यक्ति उनके अधीन होता जाता है और उसका जीवन विकृतियों का शिकार हो जाता है। ऐसा विकृत व्यक्तित्व अपने आस-पास एवं समाज में भी विकृतियों को फैलाता है। आध्यात्मिक व्यक्ति वह होता है जो परिष्कार करना जानता है तथा परिष्कार करने का प्रयत्न करता है।

13.2.4 वृत्ति के संदर्भ में अर्थ का बोध

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की चौथी कसौटी है—वृत्ति के संदर्भ में सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति का बोध। आज का समाज सबसे ज्यादा आर्थिक परिस्थिति से दबा हुआ है। आर्थिक प्रभाव इतना ज्यादा है कि अर्थ को ही सब कुछ माना जा रहा है। अर्थशास्त्र की कुछ ऐसी अवधारणाएं सामने आयी हैं जिनसे मनुष्यता प्रभावित हुई है। मार्क्स के साथी एंजिल्स ने कहा—'हमारे सिद्धांतों को तोड़-मरोड़ कर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आर्थिक पहलू ही जीवन का निर्णायक पहलू है। जबकि मैंने ऐसा नहीं कहा।' आज के इस अर्थ प्रधान युग में, प्रतिस्पर्द्धा के युग में हर आदमी में यह धारणा बन गयी—अर्थ ही सब कुछ है। जो मात्र प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन था, उसे जीवन का साध्य मान लिया गया, उसे सर्वोच्च पद पर बिठा दिया गया। इस भ्रांत धारणा ने आदमी को दु:खी बना दिया। आज व्यक्ति के दु:ख का सबसे बड़ा कारण है—अर्थ संपन्न ही संपन्न है इस मनोवृत्ति का निर्माण। अर्थ के सामने सब कुछ गौण है—इस मनोवृत्ति ने समाज में अनगिनत समस्याओं को उत्पन्न कर दिया।

13.2.4. मूल है वृत्ति

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी है वृत्ति के संदर्भ में अर्थ को देखना। आध्यात्मिक व्यक्ति अर्थ को स्थान देगा, किंतु आंतरिक वृत्तियों की अवहेलना कर अर्थ को स्वीकार नहीं करेगा। अर्थ का प्रभाव है, समाज का प्रभाव है, इस सचाई को स्वीकार करना ही होगा किंतु वृत्ति के प्रभाव को अस्वीकार कर अर्थ और समाज के प्रभाव को स्वीकार करना अपने आप में बड़ी भ्रांति है। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियां तब बाधक बनती जब हम वृत्ति पर ध्यान नहीं देते। मनुष्य की वृत्ति मूल है और वह प्रभावक तत्त्व है पर उसकी उपेक्षा हो रही है। आज की शिक्षा में भी यही हो रहा है। शिक्षा में अर्थाभिमुखता है, समाजाभिमुखता है किंतु स्वाभिमुखता नहीं है, अपनी वृत्ति की ओर उन्मुखता नहीं है। एक विद्यार्थी को यह नहीं बताया जाता कि तुम्हारे भीतर वृत्तियां हैं और वे ही आर्थिक स्पर्द्धा पैदा करती हैं। वे वृत्तियां ही समाज में समस्या पैदा करती हैं। वे दमित वासनाएं ही समाज में संघर्ष का वातावरण निर्मित करती हैं। विद्यार्थियों को यह नहीं बताया जाता कि तुम्हें इन वृत्तियों का परिष्कार करना है, संयम की साधना करनी है, इन्द्रिय और मन पर नियंत्रण करना है।

13.2.4. वृत्ति का निरोध : संयम

हम वृत्ति को छोड़ कर केवल परिस्थितिवाद पर चलेंगे तो इस चक्र का कभी अन्त नहीं होगा। पलायन नहीं करके, मुकाबला करेंगे तो परिस्थिति का सामना हो सकेगा। शिक्षा में परिस्थिति से दबाने की बात सिखायी जाती है, परिस्थिति से सामना करने की बात नहीं सिखायी जाती। वृत्तियों का मुकाबला करके ही परिस्थितियों का सामना किया जा सकता है। इस सत्य को अध्यात्म के आचार्यों ने खोजा था। महावीर ने कहा था—'संयम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करो।' पतंजलि ने कहा—'चित्त वृत्तियों का निरोध करो।' अणुव्रत का घोष बना—'संयम ही जीवन है।' आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी है—वृत्ति पर ध्यान केन्द्रित रहे और वृत्ति के संदर्भ में आर्थिक या सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन तथा परिष्कार होता रहे।

13.2.5 अनासक्ति

आध्यात्मिक व्यक्तित्व की पांचवीं कसौटी है अनासक्ति। यह सच है कि पदार्थ के बिना जीवन यात्रा नहीं चल सकती। खाना-पीना, मकान, कपड़ा, दवा, शिक्षा के साधन—ये पदार्थ अर्थ पर निर्भर हैं। अत: अर्थ के बिना काम नहीं चल सकता। आध्यात्मिक व्यक्तित्व वह है, जो पदार्थ को पदार्थ मानता है, अर्थ को उपयोगी और आवश्यक मानता है किंतु आत्मीय नहीं मानता। आध्यात्मिक व्यक्तित्व उसे 'मेरा' कभी नहीं मान सकता। जहां केन्द्र में मैं और मेरा है वह समाज व्यवस्था अच्छी तरह कभी नहीं चल सकती। जहां केन्द्र में आत्मा है वहां सब कुछ ठीक चलेगा। मनोविज्ञान ने 'ईगो' और 'सुपर ईगो' पर बहुत विचार किया। अध्यात्म के आचार्यों ने 'मेरा' पर बहुत विचार किया। यह मम की बुद्धि एक भ्रांति है। सचाई यह है—शरीर भी मेरा नहीं है। यदि यह शरीर मेरा होता तो यह कभी नहीं छूटता। शरीर मेरा है यह केवल भ्रांति है, यथार्थ सत्य नहीं है। वास्तव में मेरा कुछ नहीं है, यदि मेरा होता तो वह मुझ से विलग कभी नहीं होता।

13.2.6 अपना अपना : पराया पराया

हम कैसे कहें कि यह मेरा है? अपना तो केवल चैतन्य है, जो कभी अलग नहीं होता। यह चेतना जब जागृत हो जाती है तब व्यक्ति पदार्थ को पदार्थ समझने लगता है। चेतना के जागरण में अवस्था का कोई तालमेल नहीं है। एक वृद्ध व्यक्ति मोह के व्यामोह के कारण सुप्त रह सकता है और एक छोटे बच्चे की चेतना जागृत हो सकती है। एक छोटा बच्चा मिट्टी के साथ खेल रहा था। उधर से राजा की सवारी निकली। बच्चा राजा को बहुत सुहावना लगा। राजा उसके पास गया और कहा—'तुम बहुत अच्छे बच्चे हो फिर भी मिट्टी से खेल रहे हो?' बच्चे ने कहा—'आप इतना भी नहीं जानते? यह मिट्टी का पुतला मिट्टी के साथ नहीं खेलेगा तो किसके साथ खेलेगा?'

राजा यह सुन कर अवाक् रह गया। उसने कहा—'तुम बहुत अच्छे बच्चे हो। मैं तुम्हें अपने महल में ले जाना चाहता हूं। क्या तुम मेरे साथ चलोगे?'

बच्चे ने बहुत गम्भीरता से कहा—'चल सकता हूं किंतु मेरी दो शर्तें हैं।'

राजा ने पूछा—'कौन-सी शर्तें हैं?'

बच्चे ने कहा—'पहली शर्त—जब मैं सोऊं तो तुम जागते रहो, दूसरी शर्त—तुम निरंतर मेरे साथ रहो, एक क्षण भी मुझे छोड़ कर कहीं मत जाओ।'

राजा ने कहा—'यह कैसे संभव है? मैं सोता हूं तो प्रहरी जागते हैं। मैं कैसे जागूंगा? राज्य के संचालन में मुझे कई जगह जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी दूसरी शर्त भी कैसे मान सकता हूं?'

बच्चे ने कहा—'मुझे भी आपकी बात मान्य नहीं है। मैं अपने प्रभु के साथ रहता हूं। मेरा प्रभु हमेशा मेरे साथ रहता है। मैं सोता हूं तो वह जागता रहता है। उसे छोड़ कर मैं तुम्हारा साथ क्यों स्वीकार करूं?'

यह है अध्यात्म की चेतना। मेरा कुछ भी नहीं है, मेरा है सिर्फ मेरी आत्मा, उसे चाहे ईश्वर कहें, प्रभु या परमात्मा कहें। तब हम अपनी आत्मा के साथ रहते हैं तो पदार्थ में आसक्ति नहीं जागती। अनासक्ति का विकास चेतना की अनुभूति के बिना कभी संभव नहीं होता। यह सचाई है कि वास्तव में हमारा कुछ नहीं है। आध्यात्मिक व्यक्तित्व का निर्माण होगा तभी हम अपना अपना और पराया पराया की अनुभूति कर सकेंगे।

13.2.7 अध्यवसाय और लेश्या

अध्यात्म का एक शब्द है—अध्यवसाय। अध्यवसाय हमारा स्वस्थ नहीं होता है तो हमारे शरीर के सारे अवयव गड़बड़ा जाते हैं। विज्ञान की भाषा में उसे हम डिसऑर्डर ऑफ प्राइमल ड्राइव्स कह सकते हैं। जब प्राइमल ड्राइव्स का डिसऑर्डर होता है तब आगे की सारी शृंखला गड़बड़ा जाती है। अध्यवसाय के बाद का स्तर है लेश्या। प्रेक्षाध्यान के प्रयोग में लेश्याध्यान का प्रयोग कराया जाता है। उसे विज्ञान की भाषा में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डिसऑर्डर ऑफ साइकिक कलर कहा जा सकता है। जब साइकिक कलर या आभामण्डल का डिसऑर्डर होता है तब अनेक समस्याएं पैदा होती हैं। आज आभामण्डल डायग्नोसिस का भी एक प्रमुख साधन बन गया है। आभामण्डल का फोटो लिया जाता है और उस फोटो के आधार पर सही निदान होता है।

13.2.8 भावधारा

एक अवस्था है—डिसऑर्डर ऑफ इमोशन। जब इमोशन का रूप अव्यवस्थित बनता है तब अव्यवस्थाएं उत्पन्न होती हैं। भावधारा की अव्यवस्था से प्राणधारा की अव्यवस्था होती है। प्राणधारा की अव्यवस्था से नाड़ी-तंत्र और ग्रन्थि-तंत्र प्रभावित होते हैं। इनके प्रभावित होने से शरीर का पूरा ढांचा ही गड़बड़ा जाता है। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर समस्त समस्याओं की जन्मदात्री रासायनिक तंत्र की अव्यवस्था ही होती है।

अध्यात्म ने इस समस्या का समाधान खोजा कि हमारी जो भावधारा है, चित्तवृत्तियां हैं, उनमें परिवर्तन कैसे लाया जाएं? महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र लिखा, जिसका प्रथम सूत्र है—चित्तवृत्तिनिरोधो योगः। योग का अर्थ है चित्तवृत्तियों का निरोध करना। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने एक ग्रन्थ लिखा था—मनोनुशासनम्। उसका एक सूत्र है—पूर्वं शोधनं ततो निरोधः। अतः निरोध से पहले शोधन जरूरी है। चित्तवृत्ति का परिष्कार करना योग है। वृत्तियों का परिष्कार करने के लिए उसकी प्रक्रिया को समझना जरूरी है।

13.2.9 संचालक है प्राणशक्ति

आज शरीर विज्ञान के द्वारा शरीर के बहुत सारे रहस्यों को समझने का अवसर मिला है। आज के मेडिकल साइंस ने मस्तिष्कीय खोजों द्वारा यह प्रस्थापित किया है कि आदमी के मस्तिष्क का बायां हिस्सा स्कूलीय अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी है। तर्क, गणित और भाषा का जितना कार्य है यह सारा बांए हिस्से का कार्य है। आज मस्तिष्क पर उसकी कार्य-प्रणाली पर प्रतिवर्ष कई ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं। उनमें अनेक रहस्योद्घाटन हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मस्तिष्क की रचना और उसकी कार्य प्रणाली की पूरी जानकारी हो गयी है। बहुत अल्प जानकारी हुई है। उसके आधार पर कहा जा सकता है कि मस्तिष्क का बायां हिस्सा बौद्धिक विकास के लिए उत्तरदायी है, प्रज्ञा के विकास के लिए उत्तरदायी है। अध्यात्म, अंतश्चेतना का विकास, आंतरिक वृत्तियों का विकास यह सब दाएं मस्तिष्क का काम है। यह इनके विकास और ह्रास के लिए उत्तरदायी है।

13.3 वैज्ञानिक व्यक्तित्व

आचार्य श्री महाप्रज्ञ का चिंतन है कि आज का वैज्ञानिक भी सत्य खोज रहा है। उसने बहुत सूक्ष्म नियमों की खोज की है और इतनी सूक्ष्मता से खोज-बीन की है कि परमाणु तक पहुंच गया है। सत्य की खोज की वैज्ञानिक दृष्टि बन गयी किंतु आध्यात्मिक दृष्टि नहीं बनी, मैत्री का विकास नहीं हुआ। विकास हुआ अणु-अस्त्रों का, जैविक-रासायनिक अस्त्रों का, रश्मि अस्त्रों का, जिनसे कुछ ही मिनटों में इस सम्पूर्ण विश्व को समाप्त किया जा सकता है। यह आज के मनुष्य की भौतिक दृष्टि है।

सत्य की खोज से जो सूक्ष्म रहस्य ज्ञात हो जाए, उसके साथ मैत्रीभाव बढ़ाना चाहिए। प्राणीमात्र के साथ, जीव-जगत् के साथ मैत्री स्थापित करना चाहिए। जीवन विज्ञान के रूप में शिक्षा की कल्पना इन्हीं दो सत्यों पर आधारित है।

13.3.1 सत्य की खोज

हम वैज्ञानिक व्यक्तित्व की कसौटी पर विचार करें। वैज्ञानिक व्यक्तित्व की पहली कसौटी है सत्य की खोज। वैज्ञानिक व्यक्तित्व वह है, जिसमें मिथ्या आग्रह नहीं है, अनेकांत का दृष्टिकोण है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई पकड़ नहीं होती, कोई आग्रह नहीं होता। उसमें कुछ जानने का प्रयत्न होता है और निरंतर नये नये तथ्यों को उद्घाटित करने का प्रयत्न होता है। भगवान महावीर ने कहा—'सत्य अनन्त हैं। पर्याय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनन्त हैं। नियम अनन्त हैं।' सत्य का अर्थ है सानयिक पर्याय। सत्य का अर्थ है अस्तित्व और सत्य का अर्थ है नियम। हम कुछेक नियमों को जानकर सब कुछ जान लेने का दावा नहीं कर सकते।

न्यूटन से कहा गया—'आपने बहुत से नियम खोजे हैं।' उन्होंने बहुत मार्मिक उत्तर दिया—तुम लोग कुछ भी कहो, लेकिन मेरी स्थिति तो समुद्र के तट पर खड़े उस बालक जैसी है, जो समुद्र के किनारे पड़ी सीपियों को बटोर रहा है किंतु विशाल समुद्र के गर्भ में छिपे रत्न उससे बहुत दूर हैं।

जिसमें नये सत्यों को ग्रहण करने का इतना विनम्र दृष्टिकोण होता है वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संपन्न होता है। वह सत्य को स्वीकार कर सकता है, दरवाजा और खिड़कियां बन्द नहीं करता। कुछ लोग यह सोचते हैं कि मैंने जान लिया उतना ही सत्य है दूसरा नया कुछ नहीं जान सकता। ऐसा चिंतन करना ऐकान्तिक आग्रह है, इसी से विवाद एवं संघर्ष होते हैं। अत: वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण होना जरूरी है।

13.3.2 चेतना की खोज

वैज्ञानिक व्यक्तित्व की दूसरी कसौटी है—चेतना की खोज, मानव की खोज। आज इसकी सर्वाधिक अपेक्षा है। मानव की खोज बहुत कम हुई है। वैज्ञानिकों ने जितने परीक्षण किये हैं, वे चूहों, मेंढकों और बन्दरों पर किये हैं। सारे प्रयोग पशुओं पर हुए हैं, मनुष्य को उसने अपनी प्रयोग भूमि नहीं बनाया है। मनुष्य को समझने का बहुत कम प्रयत्न हुआ है। अब आवश्यकता है कि मानव का भलिभांति अध्ययन हो। मानवीय मस्तिष्क का अध्ययन उसमें प्रमुख बने। हमारी सारी शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, सारे जीवन मूल्य—इनका अधिष्ठाता प्रतिष्ठाता तो मनुष्य का मस्तिष्क है, नाड़ी-तंत्र एवं ग्रन्थि-तंत्र है। इतना होने के बावजूद भी आज शोधकार्य पदार्थ के बारे में ही हो रही है। यह मूल में ही भूल है फिर समस्या का समाधान कैसे हो सकता है? आज यह बहुत जरूरी है कि मानव और मानवीय चेतना का गहन अध्ययन हो। जिस दिन हमारी यह वृत्ति बन जाएगी उस दिन अध्यात्म और विज्ञान, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व की युति बनेगी, दोनों का योग होगा, दोनों एक बन जाएंगे।

13.3.3 आर. एन. ए. रसायन

ध्यान रूपांतरण की प्रक्रिया है। उससे आदतें बदलती हैं, स्वभाव बदलता है और पूरा व्यक्तित्व बदल जाता है। इस रूपांतरण की वैज्ञानिक व्याख्या की जा सकती है। आज का विज्ञान भी इस बात को समर्थित करने लगा है कि आदमी का रूपांतरण हो सकता है। विज्ञान के अनुसार हमारे मस्तिष्क में आर. एन. ए. नामक रसायन होता है जो हमारी चेतना के परतों पर छाया रहता है। विज्ञान ने यह खोज निकाला है कि यह रसायन व्यक्तित्व के रूपांतरण का घटक है।

13.3.4 सिल्वा मस्तिष्क नियंत्रण पद्धति

जैन साधना-पद्धति का प्रसिद्ध सूत्र है—'णो हीणे अइरित्ते'—कोई आत्मा न हीन होती और न कोई आत्मा उच्च होती है। सब आत्माएं समान हैं। जैन दर्शन का यह सूत्र आज विज्ञान का सूत्र बन गया है। सिल्वा मस्तिष्क नियंत्रण पद्धति चली। इसका मूल आधार है—समता। सब समान हैं। कोई व्यक्ति न अतिरिक्त है और न हीन है। इस पद्धति के आधार पर चिकित्सा की जा सकती है। विषमता और असमानता की भावना, हीनता और अहंकार की भावना से अनेक प्रकार की विकृतियां पैदा होती हैं और वे मानसिक विकृतियां अनेक प्रकार की बीमारियों को उत्पन्न करती हैं। जब व्यक्ति में समता की भावना प्रतिष्ठित हो जाती है तब अनेक रोगों की चिकित्सा स्वत: हो जाती है।

13.4 आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व

वैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन करें तो आज पूरे विश्व के सामने यह समस्या है कि परमाणु की शक्ति के स्रोत को मनुष्य ने उपलब्ध कर लिया पर उसका उपयोग किस दिशा में होना चाहिए? दिशाएं दो हैं—निर्माणात्मक और विध्वंसात्मक।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आज सबसे विकट समस्या है मानवता की सुरक्षा की। इस संकट के दो बड़े कारण हैं—शस्त्रास्त्रों का अन्धाधुंध निर्माण और हिंसा का वातावरण। किसी को पता नहीं कि कब क्या घटित हो जाए? अत: प्रत्येक व्यक्ति को यह चिंतन करना चाहिए कि मानवता को सुरक्षित कैसे रखा जा सकता है? आज सबसे बड़ी समस्या है—स्वार्थ। यदि हम स्वार्थ को परमार्थ में बदल सकें तो यह मानवता की बहुत बड़ी सेवा होगी। ध्यान करने वाले व्यक्ति में स्वार्थ नहीं होता, उसमें परमार्थ चेतना का भी विकास हो जाता है।

भगवान महावीर का एक सूत्र है कि मुनि आत्मभरी भी हो और परंभरी भी हो। वह अपने आपको भी भरे और दूसरों को भी भरे। वह स्वयं भी कल्याण के मार्ग पर चलता है और दूसरों को भी कल्याण का मार्ग उपलब्ध कराता है। यही अध्यात्म का सूत्र है। आध्यात्मिक व्यक्ति स्वार्थी नहीं होता। वह 'तिन्नाणं तारयाणं' के सूत्र को अपने जीवन में अपनाता है।

13.4.1 धर्म और विज्ञान

वैज्ञानिक खोजों ने बहुत सारी सचाइयों को उजागर किया है। गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी का यह घोष था कि विज्ञान को पढ़े बिना कोरा अध्यात्म अधूरा है। उनका चिंतन था कि विज्ञान ने धर्म का बहुत बड़ा उपकार किया है। गहराई से देखा जाए तो धर्म और विज्ञान के उद्देश्यों में कोई बड़ा अन्तर नहीं है। धर्म का उद्देश्य है—अतीन्द्रिय चेतना का विकास और विज्ञान का उद्देश्य है—अतीन्द्रिय तत्त्वों की खोज। अतीन्द्रिय चेतना का विकास या अतीन्द्रिय तत्त्वों की खोज का फलित है—स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रस्थान। स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश की निष्पत्ति है नई संस्कृति का अवतरण। उस संस्कृति में जन्मे और पले-पुसे लोगों की दृष्टि, सोच और क्रिया में स्वभाविक रूप से विलक्षणता के प्रतिबिम्ब उभरने लगते हैं।

विज्ञान ने मानव जाति को जो देन दी है, उससे समूचा विश्व आश्चर्य चकित है, उपकृत है, पर परितृप्त नहीं हो पाया है। 'ज्यों ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया'—इस जनश्रुति के अनुसार जितने नये आविष्कार हुए, आवश्यकताएं उतनी ही बढ़ती गयी और आकांक्षाओं का अन्तहीन विस्तार हो गया।

भगवान महावीर ने भी एक विज्ञान संसार को दिया। वह है परितृप्ति का विज्ञान। उनके अनुसार सबसे बड़ा विज्ञान है अहिंसा या समता का सिद्धांत। इक्कीसवीं सदी का आदमी इस विज्ञान को सही रूप में समझ ले और अपने जीवन में इस विज्ञान को शुरू कर दे तो वह विशेष आह्लाद का अनुभव कर सकता है।

अहिंसा का विज्ञान रूस, अमेरिका या भारत के लिए ही नहीं, समूचे विश्व के लिए है। इसका सार्वभौम उपयोग है। विश्व के किसी भी कोने में रहने वाले मनुष्य क्या, प्राणीमात्र के हितों की सुरक्षा है इस विज्ञान में। इसकी पृष्ठभूमि में भगवान महावीर ने कहा—'सव्वे अकंत दुक्खा य अओ सव्वे अहिंसया'—दु:ख किसी भी प्राणी को प्रिय नहीं है इसलिए संसार का कोई भी प्राणी वध्य नहीं है। इस सिद्धांत ने अहिंसा की प्रासंगिकता को त्रैकालिक प्रमाणित कर दिया है।

13.4.2 शिक्षा की समस्या

मस्तिष्क का दायां पटल चरित्र निर्माण के लिए उत्तरदायी है, आत्मानुशासन के लिए उत्तरदायी है। इसका कार्य हमारे चरित्र के साथ जुड़ा हुआ है। लौकिक विद्या के लिए मस्तिष्क का बायां पटल उत्तरदायी है। आज की शिक्षा की समस्या है—केवल बायें पटल को जागृत करने का प्रयत्न हो रहा है जो कि लौकिक विद्याओं का भण्डार है और उनके विकास का मूल आधार है। अब उसके साथ नया आयाम जुड़ना चाहिए—दायें पटल को भी जागृत करने का प्रयास करें। मस्तिष्क का दायां हिस्सा आध्यात्मिक विद्याओं का मूल भण्डार है और उनके विकास का मूल स्रोत है। बायें को सुलाने से भी कार्य अधूरा रहेगा अत: दोनों में संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है। जीवन विज्ञान के मंच से बहुत बार कहा जाता है कि शिक्षा में परिष्कार करते समय कुछ छोड़ने की और कुछ नया जोड़ने की आवश्यकता है। जोड़ना यह चाहिये कि विद्यार्थी को तनाव मुक्त कैसे रखा जा सके? उसके दायें मस्तिष्कीय पटल को जागृत कैसे किया जाए? उसमें नाड़ी-तन्त्रीय संतुलन कैसे पैदा किया जाए? कैसे अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित और नियोजित किया जा सके?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.4.3 पूरक पद्धति : जीवन विज्ञान

जीवन विज्ञान में इन सारी प्रायोगिक विधियों पर चिंतन हुआ है, विचार-विमर्श हुआ है, प्रयोगों का निर्धारण हुआ है और यह प्रयत्न हो रहा है कि कैसे विद्यार्थी के मस्तिष्क का संतुलित विकास किया जाये? मस्तिष्क के वे सारे प्रकोष्ठ जागृत हों, जो जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। नाड़ी-तंत्रीय संतुलन को कैसे संतुलित किया जाए? इन सारी आध्यात्मिक, यौगिक और वैज्ञानिक प्रविधियों का सम्मिश्रण कर एक पद्धति का निर्धारण हुआ है और उसको शिक्षा की पूरक पद्धति के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

13.4.4 स्वास्थ्य का मूल आधार

शरीर विज्ञान की दृष्टि से स्वास्थ्य का मौलिक आधार है प्राणऊर्जा का संतुलन। प्राण के मुख्य तीन प्रवाह हैं—चन्द्रस्वर, सूर्यस्वर और मध्यस्वर।

योग की भाषा में इन्हें क्रमशः इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता है। चन्द्रस्वर का संबंध मानसिक क्रियाकलाप के साथ है। सूर्यस्वर का संबंध शारीरिक क्रिया-कलाप के साथ है। मध्यस्वर का संबंध आंतरिक ऊर्जा के साथ है। चन्द्रस्वर और सूर्यस्वर का संबंध मस्तिष्क के दोनों पटलों के साथ हैं।

समवृत्ति श्वासप्रेक्षा में जब हम दाएं नथुने से श्वास लेते हैं तो बायां मस्तिष्क सक्रिय होता है और बाएं नथुने से श्वास लेते हैं तो दायां मस्तिष्क सक्रिय होता है। समवृत्ति श्वासप्रेक्षा ध्यान की बहुत छोटी प्रक्रिया प्रतीत होती है, पर इसका प्रयोजन बहुत उच्च है। इसका प्रयोजन है हमारे दाएं-बाएं मस्तिष्क में संतुलन स्थापित कर देना। वैज्ञानिक दृष्टि से प्राण के दोनों प्रवाह—अनुकंपी और परानुकंपी में संतुलन करना। इसी प्रकार शरीर-प्रेक्षा और चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा भी संतुलन के महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं। जीवन विज्ञान में आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण की क्षमता है।

13.4.5 मस्तिष्कीय क्रियाशीलता और श्वसनक्रिया

हेलीफेक्स विश्वविद्यालय (कनाडा) के डलहौजी मनोविज्ञान विभाग में गोलार्द्धों की क्रियाशीलता के अध्ययन के साथ अनुसंधानकर्ताओं ने नाक के दोनों नथुनों से चलने वाले नेशन साइकिल जैसे कि बायीं या दायीं नाड़ी से चलने वाली श्वास-प्रश्वास का भी अध्ययन किया। दायें-बायें नक्षत्रों के क्रम से चलने वाली श्वसन क्रिया और मस्तिष्कीय गोलार्द्धों में बारी बारी वाली क्रियाशीलता का घनिष्ट संबंध पाया गया। जो दाहिने नथुने से श्वसन होता रहता है तो बायें गोलार्द्ध में इ. ई. जी. द्वारा अधिक क्रियाशीलता देखी जा सकती है। इसका उल्टा भी सही है अर्थात् बायीं नाड़ी से श्वसन क्रिया होते समय दाहिने गोलार्द्ध में अधिक क्रियाशीलता परिलक्षित हुई। (अखण्ड ज्योति : मई, 1986)

हमारा सारा क्रिया-कलाप मस्तिष्क के द्वारा संचालित है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव एवं चेतना उसके प्रभावी सहायक हैं। चेतना, ग्रन्थि-तंत्र, और मस्तिष्क एवं पृष्ठरज्जु का समन्वित अध्ययन और प्रयोग न करें तो स्वास्थ्य की समस्या का समाधान नहीं कर सकते।

13.4.6 तनाव विसर्जन

हमारे जीवन का एक बड़ा सत्य है—तनाव का विसर्जन। तनाव बीमारी का बहुत बड़ा कारण है। व्यक्ति में अनेक प्रकार के तनाव होते हैं—क्रोध का तनाव, अहंकार का तनाव, ईर्ष्या का तनाव, आकांक्षा का तनाव, कामना का तनाव, कषाय का तनाव आदि आदि। ये सब बीमारियां उत्पन्न करते हैं। इस भीतरी तनाव को बाहर कैसे निकालें—यह रहस्य समझ में आ जाएं तो समस्या की सारी गुत्थियों का समाधान पाया जा सकता है।

तनाव का विसर्जन करने के लिए अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय जरूरी है। समस्या का समाधान खोजने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति का बिंदु विज्ञान और अध्यात्म का मिलन-बिन्दु बन जाता है।

विज्ञान का सारा विकास विद्युत के आधार पर हुआ है। यदि विद्युत समाप्त हो जाये तो विज्ञान की अकाल मृत्यु हो जाएगी। विद्युत के बिना विज्ञान का विकास असंभव है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अध्यात्म का सारा विकास भी विद्युत के अधार पर चल रहा है। यदि प्राण विद्युत को अध्यात्म से हटा दे तो अध्यात्म का सारा विकास असंभव हो जाएगा।

सिद्धांत की भाषा में कहा जा सकता है कि विश्व का पूरा विकास शक्ति के आधार पर होता है। पूरे विकास के पीछे शक्ति का बहुत बड़ा योगदान है।

बिजली भी शक्ति है और प्राण भी शक्ति है। इतना सा अन्तर किया जा सकता है कि एक है पदार्थ की प्राण विद्युत और एक है मनुष्य की प्राण विद्युत। दोनों प्राण शक्तियां हैं। अन्तर इतना-सा है कि पदार्थ का प्राण दूसरे कार्य में व्यापृत रहता है और मनुष्य का प्राण चेतना के साथ व्यापृत रहता है। चेतना और प्राण मिलकर कुछ नया निष्पादन कर सकते हैं।

प्राचीन समय में मस्तिष्क के बारे में जो कुछ कहा गया उसे बहुत महत्त्व दिया गया। आज मस्तिष्क विद्या का बहुत विकास हुआ है। उसको जानने की अनेक पद्धतियां विकसित हुई हैं। आज तरंगों के द्वारा मस्तिष्क का अध्ययन किया जाता है। मस्तिष्कीय तरंगों के बारे में बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त किये गये हैं। तरंगें मुख्यत: चार प्रकार की मानी जाती हैं—अल्फा, बीटा, डेटा और थेटा। इन सूक्ष्म विद्युतीय तरंगों के आधार पर अनेक गूढ़ रहस्यों को खोजा जा सकता है। व्यक्ति की चेतना के स्तर को इन्हीं के आधार पर जाना जा सकता है। अल्फा तनाव का विसर्जन करने वाली मानसिक क्रियाओं से जुड़ी हुई तरंग है। बीटा बाह्य चेतना से जुड़ी हुई तरंग है। सारी प्रवृत्तियां इन विद्युतीय तरंगों के आधार पर होती हैं। इनके बिना एक अंगुलि भी नहीं हिल सकती। श्वास भी नहीं लिया जा सकता।

जो लिया जाता है वह श्वास है और जिस शक्ति के माध्यम से लिया जाता है वह श्वास प्राण है। जो बोला जाता है वह वचन है और जिस शक्ति से बोला जाता है वह वचन प्राण है। जो सोचा जाता है वह चिंतन है और जिस शक्ति से सोचा जाता है व्ह मन प्राण है। मन, वचन, क्रिया, उच्छ्वास, नि:श्वास—ये सब प्राण-शक्ति के माध्यम से हैं। विद्युत का जितना विज्ञान के विकास में महत्त्व है उतना ही अध्यात्म के क्षेत्र में प्राण का है।

हम प्राण-शक्ति के बारे में जानते हैं पर उसकी बचत कैसे करें—यह नहीं जानते। प्राण-शक्ति का विकास किस दिशा में करने से चेतना का विकास होता है? हम यह भी नहीं जानते। अध्यात्म के क्षेत्र में समस्या के समाधान के लिए हमारे सामने दो तथ्य हैं कि एक तो हम प्राण-शक्ति को बचाना सीखें और दूसरा है चेतना के विकास में उसका उपयोग करना सीखें।

प्राणशक्ति या प्राणऊर्जा में व्यय का सबसे बड़ा कारण है, भावनात्मक असंतुलन यानी कषाय की प्रबलता। यह शक्ति के व्यय का सबसे बड़ा स्रोत है। ध्यान के द्वारा इस अपव्यय को रोका जा सकता है, भावनात्मक संतुलन साधा जा सकता है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अपने अनुभव के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की है कि ध्यान के द्वारा कषाय, वासनाएं, उत्तेजनाएं शांत होती हैं। कषाय का इतना मोटापा है कि वह ध्यान से ही कम हो सकता है। ऐसा होने पर शक्ति या ऊर्जा का व्यय अपने आप रुक जाता है।

13.4.7 जैविक रासायनिक परिवर्तन

ध्यान का प्रयोग व्यक्ति को और जीवन की दिशा को बदलने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। यह जीवन का दर्शन है। इससे जीवन की पूरी प्रक्रिया बदल जाती है। यह सारा घटित होता है जैविक रासायनिक परिवर्तनों के माध्यम से। जब तक जैविक रासायनिक नहीं बदलते तब तक जीवन का रूपांतरण असंभव है। ध्यान रूपांतरण का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है जो कि आंतरिक रसायनों में भी परिवर्तन घटित कर देता है। जिन लोगों ने इस रहस्य को समझा है, उन्होंने ध्यान का सही मूल्यांकन किया है। उन्होंने चेतना की गहराइयों में पहुंच कर आंतरिक रसायनों को बदलने का प्रयास किया है और उन्होंने अपनी भाव-धारा को भी बदलने का प्रयास किया है।

शरीरशास्त्र की दृष्टि से हम इसकी व्याख्या करें कि हमारा जो पीनियल ग्लैण्ड है उससे दो प्रकार के स्राव होते हैं—सेराटोनिन और मेलाटोनिन। ये दो हार्मोन्स बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जो मेलाटोनिन है वह काम पर नियंत्रण करने वाला है। काम वासना को जगाने वाले हार्मोन्स बाहर से आते हैं, पीनियल से आते हैं और उन पर नियंत्रण करने वाला है—मेलाटोनिन। वह तीन या चार बजे तक वृत्ति पर नियंत्रण रखने का काम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

करता है। चार बजे के बाद प्राण के प्रवाह को भरने लगता है। हम बाहर से, आकाशमण्डल से बहुत प्राण लेते हैं। जब तक मेलाटोनिन अपना काम नहीं करता, प्राण के प्रवाह को हम अपने भीतर ले नहीं सकते। चार बजे का समय है कि उस समय प्राण का प्रवाह मेलाटोनिन के द्वारा पूरे शरीर में भरता है, नई स्फूर्ति और नई चेतना जागती है। बहुत सारे आकाश मण्डल से आने वाले विकिरणों के अनुदान का समय होता है तीन और चार बजे का। इसलिए बतलाया गया कि ध्यान के लिए सबसे अच्छा समय है दो बजे के बाद चार बजे तक का। यों पांच बजे तक यानी पूर्वरात और अपररात। जो पूर्वरात और अपर रात में आत्मा के द्वारा अपने आप को देखता है, यह समय साधना की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण समय होता है। रात्रि के बारह बजे बाद चार बजे तक या पांच बजे तक का, इस समय जो व्यक्ति उठता है वह प्राण से भरा हुआ अनुभव करता है, स्फूर्ति से अपने आप को भरा हुआ अनुभव करता है।

13.4.8 बायोफीडबेक पद्धति

व्याधि और आधि से निपटने के लिए हम नियंत्रण शक्ति का विकास करें। उन शक्तियों को जागृत करें। प्रेक्षा इसका माध्यम है। विज्ञान के क्षेत्र में कुछ ऐसी खोजें हुई हैं जिनके आलोक में प्रेक्षा-ध्यान को सहज रूप में समझा जा सकता है। आज वैज्ञानिक जगत् में 'बायोफीडबेक पद्धति' चलती है। इसका सहज सरल अनुवाद किया जा सकता है—प्रेक्षा-पद्धति। अन्तर इतना ही है कि हम प्रेक्षा का अभ्यास अपनी चेतना के द्वारा करते हैं और 'बायोफीडबेक पद्धति' में अभ्यास होता है उपकरणों के द्वारा, यंत्रों के द्वारा किंतु वास्तव में यह भी एक प्रेक्षा की ही पद्धति है। हम प्रेक्षा के समय देखते हैं कि हमारे शरीर में क्या परिवर्तन हो रहे हैं? क्या क्रियाएं और क्या प्रतिक्रियाएं हो रही हैं? क्या रासायनिक परिवर्तन घटित हो रहे हैं? मस्तिष्क में क्या-क्या घटित हो रहा है? 'बायोफीडबेक पद्धति' में भी यंत्रों के द्वारा यही सब कुछ देखा जाता है, जाना जाता है।

देखना, प्रेक्षा करना बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है। पर देखना ही पर्याप्त नहीं है। दर्शन के साथ संकल्प-शक्ति का भी प्रयोग होना चाहिए।

बोध प्रश्न:

1. आध्यात्मिक व्यक्तित्व की क्या कसौटियां है?
2. सिल्वा मस्तिष्क नियंत्रण पद्धति क्या है?
3. आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व को विस्तार से समझाएं।

13.4.9 प्रक्रिया के तीन आयाम

देखना हमारी चेतना का उपयोग है किंतु आत्मा का स्वभाव केवल चेतना ही नहीं है। आत्मा में तीन तत्त्व हैं—चेतना, शक्ति और आनन्द। हम चेतना का उपयोग करें, देखें और जानें। हम आत्मा के दूसरे तत्त्व 'शक्ति' का उपयोग करें और परिवर्तनों को घटित करें, स्वभाव को बदलें, आदतों को बदलें, दु:ख देने वाले तत्त्वों को बदलें, प्रतिक्रियाओं को बदलें। इस शक्ति के अनेक आयाम हैं। हम संकल्प-शक्ति, इच्छा-शक्ति और एकाग्रता की शक्ति का उपयोग करें। हम चेतना के द्वारा जानते हैं, शक्ति के द्वारा दु:खों के निमित्तों को बदलते हैं तब आनन्द का अनुभव होता है। इस प्रकार तीन आयामों में हमारी प्रक्रिया पूरी होती है। यह समग्र प्रक्रिया है।

एक बार वैज्ञानिकों ने कुछेक हृदय रोगियों को परीक्षण के लिए चुना। 'फीडबेक' के द्वारा उन्हें सूचना दी—'तुम्हारे हृदय की धड़कन बहुत बढ़ गई है। उसे मंद करो, नहीं तो मर जाओगे। मंद करो, मंद करो, मंद करो।' यंत्र की सूई घूमती है और यह बताती है कि हृदय की गति बहुत तेज है। वैज्ञानिक ने रोगी को सावधान कर दिया। अब रोगी ने सोचा कि कुछ अभ्यास किया जाए जिससे कि हृदय की गति मंद हो सके। तब उसे संकल्प-शक्ति या भावना का प्रयोग बताया जाता है। उसे कहा जाता है—'तुम अपने आपको बहुत हल्का अनुभव करो। रुई के फाहे जैसा हल्का अनुभव करो।' इस भावना के प्रयोग से हृदय की धड़कन मंद हो गई। एक महीने तक यह अभ्यास चला। फिर यंत्र का प्रयोग समाप्त और अपना अभ्यास चालू हो गया। हृदय की गति बदल गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

डॉक्टरों ने यंत्रों के अधार पर सूचना दी—'तुम्हारे हृदय की गति बहुत मंद है। उसे तेज करो, अन्यथा मर जाओगे।' रोगी ने संकल्प-शक्ति का प्रयोग किया। उसने दौड़ने का प्रयोग किया और सोचा—मैं तेज गति से दौड़ रहा हूं। कुछ ही समय के बाद हृदय की गति बढ़ गई, तेज हो गई। दूसरे एक रोगी ने विवाद करने का संकल्प किया और उसके हृदय की धड़कन भी तेज हो गई।

प्रेक्षा और संकल्प—दो प्रक्रियाएं चली। प्रेक्षा से पता चल गया कि स्थिति क्या है? संकल्प किया और परिवर्तन घटित हो गया। तीसरे क्रम में आनन्द का अनुभव होने लगाा। तीनों बातें साथ हों तो प्रक्रिया पूरी होती है। एक से काम नही चलता। त्रिपुटी साथ-साथ चले। कोरी चेतना काम नहीं देगी। कोरी शक्ति काम नहीं देगी। कोरा आनन्द काम नहीं देगा। चेतना, शक्ति और आनन्द—तीनों का समन्वय होना चाहिए। चेतना के जागने पर संकल्प की शक्ति का जागरण होता है और फिर परम आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति विज्ञान से पूर्ण समर्थित है। 'बायोफीडबेक' की पद्धति इसका स्वयंभू प्रमाण है। प्रत्येक रोग के लिए इस पद्धति के यंत्र है। हृदय का 'फीडबेक' चाहिए या रक्तचाप को नियंत्रित करने का 'फीडबेक' चाहिए—सब प्रकार के यंत्र प्राप्त हैं। इनका उपयोग कर रोगी नियंत्रण की दिशा में बढ़ता है। यह भी अभ्यास की एक पद्धति है। इससे सारा चित्र व्यक्ति के सामने आता है और वह अपने को बदल देता है। यह भी नियंत्रण का ही एक अभ्यास है। किसी भी वस्तु या प्रवृत्ति का त्याग कर देना ही पूरा नियंत्रण नहीं है। त्याग नियंत्रण का एक अंश है। नियंत्रण की पूर्णता तब होगी जब तीनों प्रक्रियाएं—चेतना को जगाने की प्रक्रिया, शक्ति को जगाने की प्रक्रिया और आनन्द को प्राप्त करने की प्रक्रिया साथ-साथ चलेगी। प्रेक्षा का अभ्यास करने पर यदि आनन्द की अनुभूति नहीं होती तो समझना चाहिए कि कहीं-न-कहीं त्रुटि रह गई है। संकल्प-शक्ति का प्रयोग किया और आनन्द की अनुभूति नहीं हुई तो समझना चाहिए कि कहीं त्रुटि अवश्य है। संकल्प-शक्ति का प्रयोग ठीक से नहीं हुआ है। आनन्द है निष्पत्ति और आनन्द है कसौटी। आप अपने अभ्यास को इस कसौटी पर कसते जाइए कि मैं जो कर रहा हूं उससे मुझे आनन्द आ रहा है या नहीं। यदि आनन्द उपलब्ध हो रहा है तो प्रक्रिया ठीक है, अन्यथा कहीं-न-कहीं गड़बड़ी है। यह उसका थर्मामीटर है।

13.4.10 तरंगातीत अवस्था : विज्ञान से परे

वैज्ञानिक उपचार केवल सामयिक होता है किन्तु समस्या का स्थायी समाधान या अंतिम समाधान नहीं है। उसका अंतिम समाधान है व्यक्ति तरंगातीत अवस्था में चला जाए। क्रोध या किसी भी वृत्ति की तरंगें पुष्ट होती हैं पुनरावृत्ति के द्वारा। क्रोध को क्रोध का सिंचन मिलता है तो वह पुष्ट हो जाता है। क्रोध को क्रोध का सिंचन न मिले तो क्रोध का पौधा अपने आप मुरझा जाता है। अध्यात्म का सिद्धांत है अपने आप को देखने का सिद्धांत। यही तरंगातीत चेतना की भूमिका है। जब व्यक्ति तरंगातीत अवस्था में पहुंच जाता है तब न राग की तरंग रहती है और न द्वेष की तरंग रहती है। तब न प्रियता होती है और न अप्रियता होती है। उस स्थिति में क्रोध की तरंग जहां से उठती है, उस पर ही प्रहार नहीं होता किन्तु जो उस तरंग को उठाने का उत्तरदायी है उस पर प्रहार होता है। वैज्ञानिक उपकरणों का, उनके द्वारा उत्पादित औषधियों का प्रभाव मस्तिष्कीय स्तरों पर, स्नायु-संस्थान या नाड़ी-मंडल पर होता है किन्तु इस तरंगातीत ध्यान का, इस चैतन्य की अनुभूति का और समता का प्रभाव इस शरीर पर नहीं होता किन्तु वृत्तियों की तरंगों को पैदा करने वाले पर भी होता है। यह मूल पर प्रहार करने की प्रक्रिया है। इसलिए यह स्थायी समाधान है। विज्ञान से आगे की प्रक्रिया है। तरंगातीत अवस्था तक पहुंचने की यही एकमात्र प्रक्रिया है। इसका अवलंबन लिए बिना उसकी प्राप्ति असंभव है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने लिखा है कि गणाधिपति पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री तुलसी के 75 वें वर्ष के संदर्भ में आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व की परिकल्पना प्रसूत हुई। उस समय इस संदर्भ में सोचने-समझने का अवसर मिला। आध्यात्मिक गुफा में मौन बैठा रहेगा और वैज्ञानिक अणुबम बनाता रहेगा तो उस अणुबम की अणुधूलि उस गुफा तक भी पहुंचेगी। इसलिए आज की अपेक्षा है कि हर व्यक्ति वैज्ञानिक बने किंतु कोरा वैज्ञानिक न बने, आध्यात्मिक वैज्ञानिक बने। आज हर धर्म संस्थान में जाने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह केवल आध्यात्मिक न बने। उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक बने। इन दोनों का योग ही वर्तमान की समस्या का समाधान है और यही जीवन विज्ञान का पहला प्रयत्न या पहला प्रस्थान है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कसौटी क्या? विस्तृत वर्णन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैज्ञानिक व्यक्तित्व की कसौटी क्या? संक्षेप में वर्णन करें।
2. धर्म और विज्ञान का क्या संबंध है? स्पष्ट करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (एक वाक्य या एक लाइन में उत्तर दें)

1. त्याग किसका एक अंश है?
2. प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति किससे पूर्ण समर्थित है?
3. प्राणधारा की अव्यवस्था से कौन-कौन से तंत्र प्रभावित होते हैं?
4. शरीरविज्ञान की दृष्टि से स्वास्थ्य का मौलिक आधार क्या है?
5. आध्यात्मिक व्यक्तित्व की पांचवीं कसौटी क्या है?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. यही.....चेतना की भूमिका है।
2. आध्यात्मिक वह होता है, जिसमें.....की भावना का विकास होता है।
3. मध्यस्वर का संबंध आंतरिक.....के साथ है।
4. आज का विज्ञान भी इस बात को समर्थित करने लगा है कि आदमी का.....हो सकता है।
5. भगवान महावीर का एक सूत्र है कि मुनि आत्मभरी भी हो और.....भी हो।

13.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. नया मानव : नया विश्व—आचार्य महाप्रज्ञ
2. अपने घर में—आचार्य महाप्रज्ञ
3. विचार को बदलना सीखें—आचार्य महाप्रज्ञ
4. अखण्ड ज्योति : मई, 1986
5. जीवन विज्ञान : शिक्षा का नया आयाम—आचार्य महाप्रज्ञ
6. अप्पाणं शरणं गच्छामि—आचार्य महाप्रज्ञ
7. एकला चलो रे—आचार्य महाप्रज्ञ
8. चेतना का ऊर्ध्वारोहण—आचार्य महाप्रज्ञ
9. मेरा धर्म केन्द्र और परिधि—आचार्य तुलसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–14 परामनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास, संभावनाएं और शोध के क्षेत्र–आध्यात्मिक मान्यताओं के साथ उसका सह–संबंध, सामान्य विधि–वैज्ञानिक दृष्टि

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 परामनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास
14.2.1 विकास के तीन चरण
14.2.2.1 प्रथम चरण
14.2.2.2 द्वितीय चरण
14.2.2.3 तृतीय चरण
14.3 परामनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र-आध्यात्मिक मान्यताओं के साथ उसका सह-संबंध
14.3.1 दूरदर्शन और दूरश्रवण
14.3.2 परिचित्तज्ञान या मन:पर्यवज्ञान
14.3.3 प्राण-शक्ति और आभामण्डल
14.3.4 एस्ट्रलप्रोजेक्सन और समुद्घात
14.3.5 संभिन्नस्रोतोलब्धि और अतीन्द्रियज्ञान
14.3.6 परलोक और पुनर्जन्म
14.4 वैज्ञानिक जांच की नई पद्धतियां
14.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
14.6 संदर्भ ग्रंथ

14.0 प्रस्तावना

जब से मानव का लिखित इतिहास प्राप्त है, तभी से हमें ऐसी घटनाओं के विवरण मिलते हैं, जिनकी समुचित व्याख्या आज हजारों वर्ष बाद भी संभव नहीं हो पाई है। प्राचीन भारत, यूनान, मिश्र या चीन की संस्कृति हो अथवा आधुनिकतम यूरोप, ब्रिटेन या अमेरिका की, सभी में हमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण, मन:शक्ति, मृत-आत्माओं के अस्तित्व व उनके आह्वान, भूतावेश, अलौकिक उपचार तथा पुनर्जन्म आदि का समावेश मिलता है।

14.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे—

1. परामनोविज्ञान के संक्षिप्त इतिहास को जान सकेंगे।
2. परामनोविज्ञान के विकास के तीन चरणों से परिचित हो सकेंगे।
3. परामनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र-आध्यात्मिक मान्यताओं के साथ उसका सह-संबंध कैसे हो सकता है? इसको जान सकेंगे।
4. दूरदर्शन और दूरश्रवण से परिचित हो सकेंगे।
5. परचित्तज्ञान या मन:पर्यवज्ञान क्या है? इसको जान सकेंगे।
6. प्राण-शक्ति और आभामंडल के संबंधों को समझ सकेंगे।
7. एस्टलप्रोजेक्शन और समुद्घात क्या है? इसको जान सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8. संभिन्नस्रोतोलब्धि और अतीन्द्रियज्ञान के प्रयोग आप भी कर सकेंगे।

9. परलोक और पुनर्जन्म को समझ सकेंगे।

10. वैज्ञानिक जांच की नई पद्धतियों से परिचित हो सकेंगे।

14.2 परामनोविज्ञान का संक्षिप्त इतिहास

विश्व के प्रथम इतिहासकार हिरोडोटस से हमें लीडिया के राजा क्रोशस से संबंधित एक विवरण मिलता है जिसमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण का विवरण है—

560-546ई. पू. में अपने शासनकाल के दौरान जब राजा अपने शत्रुओं की बढ़ती हुई ताकत से आतंकित होने लगा, तो उसने चाहा कि किसी भविष्य वक्ता से यह ज्ञात करे कि इस स्थिति में उसे क्या करना चाहिए? उसने सात व्यक्तियों को सात अलग-अलग जगह भेजा और पूछा कि अभी राजा क्या कर रहा है? सात में से डल्फी की भविष्यवाणी ही सही निकली, जिसका विवरण उल्लेखनीय है—"मुझे गंध आ रही है किसी ढ़के हुए कछुए की, अब वह एक कढ़ाही में भेड़ के मांस के साथ भूना जा रहा है। आग पर पीतल का बर्तन है ऊपर और नीचे ढ़क्कन भी पीतल का ही है। वास्तव में राजा ऐसा ही कर रहा था। कितना विचित्र था एक राजा द्वारा ऐसा कार्य किया जाना!

इसी प्रकार प्लूटार्क ने अपनी पुस्तक, 'द जोनियो सोक्रेटिस' में सुकरात के जीवन से संबंधित पूर्वाभास की घटना का वर्णन किया है—

एक दिन सुकरात साथियों के साथ रास्ते में बात करते हुए जा रहे थे। अचानक सुकरात रुक गए और साथियों से कहा कि 'डेमन' ने सूचना दी है कि आगे खतरा है रास्ता बदलना चाहिए। सुकरात के कुछ साथियों ने तो सुकरात के साथ रास्ता बदल लिया और अधिकांश साथी जिनको सुकरात की बात पर विश्वास नहीं हुआ वे उसी रास्ते से गए। जो उसी रास्ते से गए उनको पागल सूअरों के आतंक का सामना करना पड़ा, कुछ घायल हो गए और कुछ के कपड़े खराब हो गए।

प्लेटो की थिसिस में भी सुकरात के 'डेमन' संबंधी रोचक प्रसंग हैं—एक शाम सुकरात 'तिमार्कस' नामक व्यक्ति और साथियों के साथ भोजन कर रहा था। भोजन करने के बाद 'तिमार्कस' जाने लगा तो सुकरात ने यह कह कर उसे बिठा लिया कि अभी जाना तुम्हारे लिए खतरा है। सुकरात के बार-बार रोकने पर भी वह रुक न सका और चला गया। सचमुच में 'तिमार्कस' रास्ते में षड्यंत्रकारियों के द्वारा मारा गया।

प्रेत-आत्माओं के विचित्र कारनामों संबंधी भी अनेक विवरण उपलब्ध हैं। इनकी सत्यता-असत्यता सैकड़ों वर्ष पूर्व भी अनिर्णीत थी और आज भी स्थिति कमोबेश वही है।

1762 में कॉकलेन, लन्दन में घटित एक चर्च क्लर्क पारसस की पुत्री से संबंधित एक कथित प्रेतात्मा के उत्पातों व उसके द्वारा दी गई सूचनाओं की काफी समय तक पूरे लन्दन में घर-घर चर्चा रही।

विश्वभर में आदिमकाल से इस तरह से असंख्य घटनाएं घटित होती रही हैं। अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जॉन डेविड कॉक्स की दो पुत्रियों ने मृत-आत्माओं से संदेश प्राप्ति के अत्यंत रोचक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

वैसे तो मृत-आत्माओं के आह्वान व उनसे संदेश प्राप्ति की अनेक घटनाएं पहले भी घटित होती रही हैं, लेकिन कॉक्स बहिनों के माध्यम से जो चर्चाएं फैली उनसे प्रचार-प्रसार का तंत्र अत्यंत विस्तृत व गहरा रहा। प्रेतों के अस्तित्व व उनसे वार्तालाप करने की संभावनाओं पर अब अनेक पढ़े-लिखे लोगों, इतना ही नहीं अनेक कटु आलोचकों व वैज्ञानिकों को भी विश्वास होने लगा। फ्रांस व जर्मनी में तो 'माध्यमों' की संख्या हजारों तक पहुंच गई और घर-घर में 'बैठकें' होने लगी। कोई टेबल के माध्यम से, कोई कुर्सी तो कोई टोप के द्वारा वार्तालाप करने लगा। धीरे-धीरे वार्तालाप के सरल साधन भी विकसित होने लग गए।

प्रेत-आत्माओं के अस्तित्व, उनसे वार्तालाप करने की संभावना आदि आस्थाओं के आधार पर अनेक नैतिक मान्यताओं व आचारों का प्रतिपादन करते हुए एक नये आन्दोलन प्रैतिकवाद का प्रादुर्भाव हुआ और शनैः-शनैः इसके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रेतत्व संबंधी प्रघटनाओं के विस्तार, प्रभाव व उनके प्रति जागृत अभिरुचियों ने अनेक दार्शनिकों, विद्वानों व वैज्ञानिकों को झकझोर डाला। लगभग उसी समय विद्वानों, विचारकों व वैज्ञानिकों को कुछ अन्य मिलती-जुलती-सी प्रघटनाओं की अव्याख्येयता की चुनौती का सामना करना पड़ रहा था। इन प्रघटनाओं का संबंध मूलत: मन की एक विशिष्ट अवस्था से था जिसे आज 'सम्मोहन' (Hypnotism) कहा जाता है।

'सम्मोहन' अध्येता व विशेषज्ञ डॉ. एफ. एल. मारक्यूस ने अपनी पुस्तक 'हिप्नोसिस फैक्ट एण्ड फिकान' में लिखा है कि यूनान में ईसा से चार शताब्दी पूर्व प्रचलित उपचार क्रियाओं में किसी-न-किसी रूप में सुझाव का सहारा भी लिया जाता था।

'सम्मोहन' का आधुनिक इतिहास एक आस्टियन डॉ. मैस्मर 1733-1815 से प्रारम्भ होता है। 1779 में मैस्मर ने अपनी पुस्तक में एक नयी विचारधारा प्रतिपादित की। उसके अनुसार 'ब्रह्माण्डीय मण्डल, पृथ्वी व जीवित प्राणी परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।' उस समय मैस्मर के उपचार की धूम मची हुई थी। पेरिस में सरकारी तौर पर वैज्ञानिकों की दो जांच समितियां नियुक्त की गई। एक समिति की रिपोर्ट नकारात्मक रही तथा दूसरी रिपोर्ट में मतैक्य नहीं रहा। 1874 के करीब मैस्मर का एक शिष्य मारक्विस डी प्यूसेगर एक बार कुछ किसानों का उपचार कर रहा था, जिसे 'सोमनाम्ब्यूलिज्म' की संज्ञा दी गयी। एक व्यक्ति ने इस अवस्था में पेट से सुनने व अंगुलियों के पोरों से देखने की शक्ति प्रदर्शित की। जागृत 'सोमनाम्ब्यूलिज्म' की खोज बहुत ही आकर्षक रही। शीघ्र ही स्थान-स्थान पर इस प्रकार के प्रयोग किए जाने लगे। कुछ चिकित्सकों ने 'चुम्बकीय निद्रा' के दौरान रोगियों पर वेदना रहित शल्य-चिकित्सा भी की। आज तो यह आम बात है किंतु उस समय इन बातों से वैज्ञानिक क्षेत्रों में बड़ी उथल-पुथल हुई।

सरकार की ओर से कई जांच समितियां नियुक्त हुई। इन समितियों ने जब अनुकूल रिपोर्ट दी तो उन्हें अस्वीकार किया गया और प्रतिकूल रिपोर्ट को तुरंत मान लिया गया। फ्रांस के वैज्ञानिकों ने परासामान्य घटनाओं को धोखाधड़ी घोषित किया। इंगलैण्ड में भी इसे गम्भीरता से नहीं लिया गया। जर्मनी में कांट अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण को मानता था। 1766 में कांट ने अपनी पुस्तक में 'डीम ऑव ए विलीवर' में सुविख्यात गणितज्ञ विद्वान वैज्ञानिक स्वीडनबोर्ग के एक अनुभव का विवरण दिया था। कांट, गेटे, शेलिंग व हीगल आदि विद्वानों के प्रभाव से जर्मनी परासामान्य घटनाओं के प्रति पूर्वाग्रही नहीं था। 1861 में डॉ. वलगू व डॉ. वॉलफार्ट ने पेट से पढ़ने व दूरस्थ वस्तुओं को मन द्वारा प्रभावित करने के कुछ वृत्तान्तों का अपनी पुस्तक में वर्णन किया। 1829 में डॉ. करनर ने एक लेख 'टू सीअर ऑव प्रीवोर्स्ट' में फ्रेडरिका हॉफे नामक एक महिला की परासामान्य क्षमताओं का वर्णन किया है।

1841 के लगभग मैनचेस्टर के एक डॉ. जेम्प ब्रेड ने बहुत से प्रयोग करके यह विचार रखा कि मैगनेटिज्म, सोमनाम्ब्यूलिज्म व सुझाव ग्रहणशीलता—तीनों में मन की एक समान विशिष्ट अवस्था विद्यमान रहती है। ब्रेड ने ही सर्वप्रथम 'हिप्नोटिज्म' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ किया।

14.2.1 विकास के तीन चरण

परामनोविज्ञान के इतिहास एवं शोध के क्षेत्र तथा संभावनाओं को विस्तृत रूप से जानने के लिए हमें इसको अलग-अलग टुकड़ों में विभाजित करना होगा तभी उसको हम व्यवस्थित तरीके से समझ सकेंगे। तथा परामनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाली वैज्ञानिक विधियों को समझ सकेंगे। अत: हम परामनोविज्ञान के विकास को प्रमुख तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं।

14.2.1.1 प्रथम चरण

प्रथम चरण के पचास वर्षों (ईस्वी सन् 1882-1930) तक साईकिकल रिसर्च अथवा परामनोविज्ञान का केन्द्र ग्रेटब्रिटेन रहा है। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी तथा कुछ अन्य योरोपीय देशों में शोध, अन्वेषण और प्रयोगों का उल्लेखनीय कार्य हुआ है। एस. पी. आर. के संस्थापकों, अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं में, उस काल के अनेक भौतिक शास्त्रविधों, वैज्ञानिकों, नोबल पुरस्कार सम्मानित महामनीषियों, राज सम्मान प्राप्त अन्तर्राष्टीय ख्याति के राजनैयिक, विद्याचारियों और विश्वविद्यालयों के सम्मानित प्राध्यापकों के नाम जुड़े हुए हैं। यह काल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परासामान्य प्रकार की घटनाओं के अधिकृत संग्रह और प्रकाशन तथा इस प्रकार की घटनाओं का तटस्थ विश्लेषण कर परामनोविज्ञान के सैद्धांतिक एवं शास्त्रीय पक्ष को उजागर करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। इस काल में हुई परासामान्य घटनाओं से सम्पन्न, अनेक व्यक्तियों के विचार-संक्रमण एवं अतीन्द्रिय दृष्टि जैसी विशिष्ट शक्तियों की तटस्थ एवं निष्पक्ष जांच के लम्बे प्रकरण परामनोविज्ञान के इतिहास की स्थायी संपत्ति है। उन पचास वर्षों में हुए कार्य का विवरण एस. पी. आर के छपे हुए 41 बड़े-बड़े कार्य विवरण पोथों और हजारों पृष्ठों के छपे हुए जनरलों में सुरक्षित है।

उसी समय जब कि कैम्ब्रिज के कुछ श्रेष्ठतम विद्वान् परासामान्य की जांच 'घोस्ट सोसायटी' के तत्त्वावधान में अपने तरीकों से कर रहे थे, ऑक्सफोर्ड में भी इसी तरह का प्रयास प्रारम्भ हुआ। वहां एक संस्था ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया—'फैन्टाज्मोलोजिकल सोसायटी'। लन्दन में 'लन्दन डायलेक्टिकल सोसायटी' की स्थापना हुई।

इस तरह हम देखते हैं कि परासामान्य के गंभीर, पूर्वाग्रह मुक्त व वैज्ञानिक विधियों से अध्ययन की संभावना से प्रेरित, अनेक विद्वानों के कई पृथक्-पृथक् समूह उभरे। अब स्वाभाविक ही था कि इस बात की महत्ता को अनुभव किया जाता कि सभी विद्वान एक जुट होकर सम्मिलित रूप से प्रयास करें ताकि बिखरे हुए सभी स्रोत भी एकत्रित होकर अधिक प्रभावशाली अन्वेषण को संभव बना सकें।

इसी उद्देश्य से प्रेरित सर विलियम बैरेट ने 1882 के जनवरी माह में विद्वानों की एक कॉन्फ्रेंस आयोजित की और अन्ततः परासामान्य जिसे अभी तक एक अद्भुत, अतिप्राकृतिक और वैज्ञानिकों की भाषा में 'अस्तित्व हीन' समझा जाता रहा, उसके अध्ययन हेतु एक व्यवस्थित सुसंबद्ध व गंभीर वैज्ञानिक शोध ा का विधिवत श्रीगणेश हुआ।

कॉन्फ्रेंस के निर्णयानुसार नये शोध संस्थान की स्थापना जिसका नाम 'सोसायटी फोर साइकिकल रिसर्च' जिसके अध्यक्ष सिजविक थे। मायर्स व गर्नी दो विद्वानों, जो इस प्रकार के शोध में बहुत अधिक रुचि रखते थे, ने सिजविक से कहा कि यदि वे अध्यक्ष पद संभालने के लिए प्रस्तुत हों तभी वे दोनों सोसायटी के सदस्य बनेंगे। सौभाग्य से सिजविक मान गए।

क्या यह संभव नहीं है कि 'परासामान्य' यथार्थ प्राकृतिक प्रघटनाएं हों? उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते आते अनेक बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क को यह प्रश्न उद्वेलित करने लगा। कैम्ब्रिज के कुछ साहसिक बुद्धिजीवियों के एक समूह ने इस प्रश्न के सुनिश्चित उत्तर खोज निकालने की दिशा में जो पहला कदम उठाया, वह था एक संस्था की स्थापना, जिसका नाम रखा गया 'घोस्ट सोसायटी।' इसके संस्थापक सदस्यों में एक ई. डब्ल्यू. बेनसन थे। कुछ समय बाद हेनरी सिजविक भी इस संस्था के सदस्य बने। सिजविक एक महान विद्वान् ही नहीं थे, वे एक सत्यनिष्ठ आदर्श पुरुष के रूप में भी सुविख्यात थे।

प्रारम्भिक शोध मुख्यतः स्वतःस्फूर्त घटनाओं से संबंधित रहा। अन्वेषकों ने अधिक से अधिक विवरण संकलित करके उनकी जांच-पड़ताल करना प्रारम्भ किया। गर्नी व मायर्स अपने साथ एक तीसरे सहयोगी फ्रेंक पोडमोर को लेकर इस कार्य में जी जान से जुट गए।

केवल एक वर्ष (1883) में ही इन लोगों ने कोई दस हजार पत्र लिख डाले व प्राप्त विवरणों की सत्यता की खोज हेतु अगणित साक्षात्कार लिए। इन घटनाओं का संकलन 'पैन्टाज्मस् ऑव द लिविंग' 1886 नामक ग्रन्थ में प्रकाशित किया गया।

1889 में सोसायटी ने 'विभ्रमों की संगणना' (सेंसेज ऑव हैल्युसिनेशन) करने की योजना तैयार की। यह कार्य प्रोफेसर व श्रीमती सिजविक मिस एलिस जोन्सन, फ्रेंक पोडमोर, एफ. डब्ल्यू. एच. मायर्स व उनके भाई डॉ. ए. टी. मायर्स सम्मिलित थे। 1900 में सिजविक व 1901 में मायर्स का देहावसान हो गया। मायर्स की मृत्यु के बाद 1903 में उसकी एक महान कृति 'ह्यूमन परसनेलिटी एण्ड इट्स सरवाइवल ऑव बोडिली डेथ' दो भागों में प्रकाशित हुई। यह ग्रन्थ आज भी इस पर प्रकाशित ग्रन्थों में अपना अत्यन्त सम्मानित स्थान रखता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'ब्रिटिश सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च' की स्थापना के लगभग तीन वर्ष पश्चात् अमेरिका में भी 'अमेरिकन सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च' की स्थापना हुई। इस सोसायटी ने भी अनेक सर्वेक्षण व अनुसंधान किए। 1927 में ड्यूकविश्वविद्यालय जिसके संस्थापक 'डॉ. विलियम प्रेसट्न फ्यू' स्वयं भी परामनोविज्ञान में रुचि रखते थे और विभाग के अध्यक्ष मैकडूगल भी। साथ ही परामनोविज्ञान के क्षेत्र में भी सर्वाधिक ध्यान मृत-आत्माओं के आह्वान, उनसे प्राप्त संदेश व अतिजीवन आदि की समस्याओं पर केन्द्रित था।

14.2.1.2 द्वितीय चरण (1930-1960)

द्वितीय चरण में पहुंच कर परामनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र का काफी विस्तार हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण यूरोप की समस्त व्यवस्थाएं छिन्न-भिन्न हो गई थी। फलत: परामनोविज्ञान का केन्द्र योरोप से हट कर अमेरिका बन गया।

इन प्रयोगों के परिणाम द्वारा लिखित एक मोनोग्राफ 'एक्स्ट्रा सेंसरी परसैप्शन' 1934 में प्रकाशित किये गए। 1935 में डॉ. राइन ने बचाव हेतु एक पृथक् 'पैरासाइकोलॉजीकल लेबोरेटरी' बना ली और उसमें कार्य करने लगे। 1937 में डॉ. राइन ने एक और पुस्तक लिखी 'द न्यू फ्रन्टीयर्स ऑव द माइण्ड।' यह पुस्तक शीघ्र ही 'बैस्ट सेलर' हो गयी।

1940 में डॉ. राइन व उनके सहयोगियों द्वारा लिखित पुस्तक 'एक्स्ट्रा सैंसरी परसैप्शन आफ्टर सिक्स्टी ईयर्स' प्रकाशित हुई। इसमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के प्रमाणों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया। 1941 में इंगलैण्ड में डॉ. एस. जी. सोल ने भी अपने प्रयोगों में डॉ. राइन से मिलते जुलते परिणाम प्राप्त किए।

डॉ. गरटड श्मीडलर ने न्यूयॉर्क में 1945-1950 तक अनेक ऐसे प्रयोग किए। 1948 में डॉ. राइन ने 'रिच ऑफ द माइण्ड' नामक पुस्तक प्रकाशित की। तब तक परामनोविज्ञान स्पष्टत: एक विज्ञान के रूप में उभर कर आने लगा था।

14.2.1.3 तृतीय चरण (1960-2001)

तीसरे चरण में पहुंच कर परामनोविज्ञान के विकास की गति तीव्र हो गई। अध्ययन के क्षेत्र का विस्तार हो गया और उसमें अनेक नये विषय जुड़ गए। अनेक नयी जांच प्रणालियों का अवतरण हुआ। कतिपय पुराने विषयों का नयी जांच पद्धतियों के परिप्रेक्ष्य में पुनर्निरीक्षण किया गया।

उत्तरजीविता एवं पुनर्जन्म विषयक वैज्ञानिक अनुसंधान के प्रति गहरी रुचि का पुनर्जागरण इस चरण की विशेष उपलब्धि है। अमेरिका के वर्जीनिया विश्वविद्यालय में मानसिक चिकित्सा एवं तंत्रिका विज्ञान के विभागाध्यक्ष डॉ. इयान स्टीवेन्सन ने इस क्षेत्र में युगान्तरकारी कार्य किया है। उन्होंने पिछले पैंतालीस वर्षों में अनेक दूरस्थ देशों की श्रमसाध्य यात्राएं कर सैंकड़ों जातिस्मार्त्त (पूर्व जन्म का कथन करने वाले) बालकों का प्रत्यक्ष अध्ययन किया है और कष्ट साध्य गहरी जांच-पड़ताल की है। उनकी पूर्वाग्रहहीन निष्पक्ष दृष्टि और तटस्थ विश्लेषण बुद्धि के कारण आज उत्तरजीविता और पुनर्जन्म का प्रश्न शोध का विज्ञान सम्मत विषय बन गया है। कुछ समय पूर्व उन्होंने लिखा था कि पुनर्जन्म विषयक तीन हजार से भी अधिक संग्रहीत घटनाओं में मेरे पास अभी तक ऐसी एक भी घटना नहीं है जिसे मैं पूरे विश्वास के साथ निर्विवाद रूप से प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत कर सकूं। फिर भी पूरी संभावना के साथ मैं आश्वस्त भाव से इस कार्य में जुटा हुआ हूं।

भारतीय संदर्भों में इस विषय के अनुसंधान का अभाव खटकने वाली दु:खपूर्ण स्थिति है। इस देश में ऐसा कोई स्वतंत्र संस्थान नहीं है जो परासामान्य प्रघटनों की शुद्ध वैज्ञानिक जांच के लिए समर्पित हो। न जाने क्यों भारतीय मनीषा अब तक वैज्ञानिक अनुसंधान परम्परा से उदासीन रही है और परामनोविज्ञान जैसा महत्त्वपूर्ण विषय उपेक्षित बना हुआ है।

1962 में डॉ. राइन ने ड्यूकविश्वविद्यालय से अलग एक प्रतिष्ठान की स्थापना करके उसके तत्त्वावधान में कार्य करना प्रारम्भ किया। इस प्रतिष्ठान को नाम दिया गया—'फाउण्डेशन फॉर रिसर्च इन्टू द नेचर ऑव मैन'।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस शताब्दी के छठे दशक में अमेरिका में व्यावसायिक परामनोवैज्ञानिक शोधकर्त्ताओं के एक संगठन 'पैरासाइकोलॉजीकल एसोसियशन' की भी स्थापना की गई। इस संगठन ने तीन बार यह प्रयत्न किया कि अमेरिका में विज्ञान की सबसे बड़ी संस्था 'अमेरिकन एसोसियशन फॉर द एडवान्समेण्ट ऑव साइंस' द्वारा परामनोविज्ञान को एक विज्ञान के रूप में मान्यता प्रदान की जाए, लेकिन इस दावे को सदा अस्वीकार किया गया।

1967 में 'पैरासाइकोलॉजीकल एसोसियशन' ने मान्यता प्राप्ति हेतु पुनः प्रयत्न किया। 'अमेरिकन एसोसियशन फॉर द एडवान्समेण्ट ऑव साइंस' की 30 दिसम्बर को बोस्टन में मीटिंग हुई, लेकिन कुछ अस्वीकृति की ध्वनियां उभरी। अन्त में सुविख्यात मानवशास्त्री डॉ. मार्गरिट मीड ने अपने भाषण में कहा—"पिछले 10 वर्षों से हम इस बात पर बहस करते चले आ रहे हैं कि विज्ञान व वैज्ञानिक विधि किसे कहा जा सकता है? और कौन-सी संस्थाएं इनका उपयोग करती हैं? समाधान करते हुए कहा कि 'पैरासाइकोलॉजीकल एसोसियशन' सांख्यिकी व 'ब्लाइण्डस्' 'प्लेसबोज' 'डबल ब्लाइण्डस्' तथा अन्य मानक वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करती है।" अन्त में उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा—"विज्ञान के विकास का सम्पूर्ण इतिहास ऐसे वैज्ञानिकों से भरा पड़ा है जो कि ऐसी प्रघटनाओं का अध्ययन करते रहे हैं जिन्हें कि 'एस्टेब्लिशमेण्ट' यह मानता था कि वे होती ही नहीं हैं। मैं तो यही कहूंगी कि हमें इस एसोसियशन के कार्यों के पक्ष में मत देना चाहिए।"

मतदान हेतु अध्यक्ष ने हाथ खड़े करने को कहा तो करीब 170 हाथ पक्ष में और 30 हाथ विपक्ष में उठे।

अध्यक्ष ने कहा—"लगता है कि प्रस्ताव स्वीकृत हो गया है।"

इस तरह अन्ततः परामनोविज्ञान को अमेरिका के सर्वोच्च वैज्ञानिक प्रतिष्ठान द्वारा मान्यता मिल ही गई।

आज विश्व के लगभग सभी देशों में सरकारी व गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा परामनोवैज्ञानिक शोध कार्य किया जा रहा है।

14.3 परामनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र—आध्यात्मिक मान्यताओं के साथ उसका सह-संबंध

पाश्चात्य देशों में अलौकिक क्षमताओं के अनुसंधान-अन्वेषण हेतु विज्ञान की एक नवीनतम शाखा पैरासाइकोलॉजी—परामनोविज्ञान प्रकाश में आया। सन् 1930 में परामनोवैज्ञानी जे. बी. राइन ने मनुष्य के भीतर अतीन्द्रिय क्षमता का पता लगाया और सात वर्ष बाद 'जनरल ऑफ पैरासाइकोलॉजी' के नाम से नयी शाखा की स्थापना की। इन अतीन्द्रिय क्षमताओं को उन्होंने 'साइकोकीनेसिस' और 'साई' के नाम से संबोधित किया। ई. एस. पी. अर्थात् एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्सन उन्हीं की खोज है। यों तो 'साइकी' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द सोल से हुई है। परामनोविज्ञानी जे. बी. राइन ने उक्त अतीन्द्रिय क्षमताओं को मनःचेतना का खेल बताते हुए उसे पराजागतिक और पराभौतिक की संज्ञा दी है। वे चेतना का स्वरूप विद्युतीय और चुम्बकीय स्तर पर एक ऐसी स्वतंत्र इकाई के रूप में मानते हैं, जिसका मरने के बाद भी विनाश नहीं होता।

कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के डा. आर. एच. थालेस ने अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण को सिक्स्थ सेन्स—छठी इन्द्रिय की संज्ञा प्रदान की, जिसे मुख्यरूप से आठ भागों में विभक्त किया गया। वे भाग निम्न हैं—1. क्लेयरवॉएंस—दूरदर्शन (Clairvoyance) 2. क्लेअर ऑडिएंस—दूर श्रवण 3. टैलीपैथी—मानसिक संप्रेषण (Telepathy). 4. प्रीकॉग्नीसन—पूर्वज्ञान (Precognition) 5. रेटोकॉग्नीसन—पीछे का ज्ञान (Retrocognition), 6. साइकोमैटी—मानसिक शक्ति का प्रमापन (Psychometry) 7. रेडेस्थेसिया (डाउजिंग) जमीन एवं पानी के भीतर की वस्तुओं का पता लगाना 8. साइकोकीनेसिस—मनःगतिशास्त्र (Psychokinesis)।

14.3.1 दूरदर्शन और दूरश्रवण

अतीन्द्रिय क्षमताओं में वर्तमान में ज्यादा प्रचलित है दूरदर्शन और दूरश्रवण। इनके बारे में कैलीफोर्निया युनिवर्सिटी के स्टैनफोर्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट के प्रमुख शोधकर्त्ताओं में आर. टेग और एच. पुथाप ने गम्भीरता पूर्वक अनुसंधान किए हैं। अनेक प्रयोग परीक्षणों के बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि दूरदर्शन और दूरश्रवण जैसी क्षमताओं के प्रकट होने में मानवीय मस्तिष्क की अल्फा तरंगें एक साथ सक्रिय हो जाती हैं। इन वैज्ञानिकों ने भारतीय योग विद्या के महत्त्व को ही उजागर किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पराविद्या के क्षेत्र में प्राण-ऊर्जा और अतीन्द्रिय चेतना का अध्ययन किया गया है किन्तु अमूर्च्छा या वीतरागता उसके अध्ययन का विषय अभी नहीं बना है। यह परामनोविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। अभी तक परामनोविज्ञान का अध्ययन चार विषयों तक सीमित है, जैसे—अतीन्द्रियज्ञान (Clairvoyance), विचार-संप्रेषण (Telepathy), पूर्वाभास (Pre-Cognition) और मस्तिष्कीय आन्दोलन द्वारा प्राणी जगत् और पदार्थ का प्रभावित होना साइकोकीनेसिस—मनःगतिशास्त्र (Psycho-Kinesis)।

अमूर्च्छा का विधायक अर्थ है—समता। उसका विकास होने पर अतीन्द्रिय चेतना अपने आप विकसित होती है। परमनोविज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले लोग केवल अतीन्द्रिय चेतना के विकास की खोज में लगे हुए हैं। यह खोज बहुत लंबी हो सकती है और अनास्था भी उत्पन्न कर सकती है।

अग्रमस्तिष्क (फ्रन्टल लॉब), कषाय या विषमता का केन्द्र है। अतीन्द्रिय चेतना का केन्द्र भी वही है। जैसे-जैसे विषमता, समता में रूपान्तरित होती है, वैसे-वैसे अतीन्द्रिय चेतना विकसित होती चली जाती है। उसका सामान्य बिन्दु प्रत्येक प्राणी में विकसित होता है। उसका विशिष्ट विकास समता के विकास के साथ ही होता है। मनुष्य के आवेगों और आवेशों पर हाइपोथेलेमस का नियंत्रण है। उससे पीनियल और पिच्यूटरी ग्लैण्ड्स प्रभावित होते हैं। उनका स्राव, एड्रीनल ग्लैण्ड को प्रभावित करता है। वहां आवेश प्रकट होते हैं। ये आवेश अतीन्द्रिय चेतना को निष्क्रिय बना देते हैं। उसकी सक्रियता के लिए हाइपोथेलेमस और पूरे ग्रन्थितंत्र को प्रभावित करना आवश्यक होता है। ग्रन्थितंत्र का संबंध मनुष्य के भावपक्ष से है। भावपक्ष का सृजन इस स्थूल-शरीर से नहीं होता। उसका सृजन सूक्ष्म और सूक्ष्मतर शरीर से होता है। सूक्ष्म शरीर से आने वाले प्रतिबिम्ब और प्रकंपन हाइपोथेलेमस के द्वारा ग्रन्थितंत्र में उतरते हैं। जैसा भाव होता है, वैसा ही ग्रन्थियों का स्राव होता है और स्राव के अनुरूप ही मनुष्य का व्यवहार और आचरण बनता है। यह कहने में कोई जटिलता नहीं लगती कि मनुष्य के व्यवहार और आचरण का नियंत्रण ग्रन्थितंत्र करता है और ग्रन्थितंत्र का नियंत्रण हाइपोथेलेमस के माध्यम से भाव-तंत्र करता है और भाव-तंत्र सूक्ष्म-शरीर के स्तर पर सूक्ष्म-चेतना के साथ जन्म लेता है। स्मृति, कल्पना और चिन्तन की पवित्रता से भाव-तंत्र प्रभावित होता है और उससे ग्रन्थितंत्र का स्राव बदल जाता है। इस रासायनिक परिवर्तन के साथ मनुष्य का व्यवहार और आचरण भी बदल जाता है। यह परिवर्तन मनुष्य की अतीन्द्रिय चेतना को सक्रिय बनाने में बहुत सहयोग करता है।

14.3.2 परचित्तज्ञान या मनःपर्यवज्ञान

इस चर्चा से अतीन्द्रिय चेतना की प्रारंभिक अवस्था—पूर्वाभास, अतीतबोध और उसकी विकसित अवस्था की सीमा को समझा जा सकता है। मनःपर्यवज्ञान या परिचित्तज्ञान भी अतीन्द्रियज्ञान है। विचार-संप्रेषण विकसित इन्द्रिय-चेतना का ही एक स्तर है। उसे अतीन्द्रियज्ञान कहना सहज-सरल नहीं है। विचार-संप्रेषण की प्रक्रिया में अपने मस्तिष्क में उभरने वाले विचार-प्रतिबिम्बों के आधार पर दूसरे के विचार जाने जाते हैं। मनःपर्यवज्ञान में विचार- प्रतिबिम्बों का साक्षात्कार होता है। प्रत्येक विचार अपनी आकृति का निर्माण करता है। विचार का सिलसिला चलता है तब नयी-नयी आकृतियां निर्मित होती जाती हैं और प्राचीन आकृतियां विसर्जित हो, आकाशिक रेकार्ड में जमा होती जाती हैं। मनःपर्यवज्ञानी उन आकृतियों का साक्षात्कार कर संबद्ध व्यक्ति की विचारधारा को जान लेता है। उसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य के विचारों को जानने की क्षमता भी होती है। मानसिक चिन्तन के लिए उपर्युक्त परमाणुओं की एक राशि होती है। वह परमाणु-राशि हमारे चिन्तन में सहयोग करती है। उसको ग्रहण किए बिना हम कोई भी चिन्तन नहीं कर सकते। उस राशि के परमाणुओं के भावी परिवर्तन के आधार पर मनःपर्यवज्ञानी भविष्य में होने वाले विचार को भी जान सकता है। अतीन्द्रियज्ञान प्रत्यक्षज्ञान है। जिस ज्ञान के क्षण में इन्द्रिय और मन को माध्यम बनाना आवश्यक नहीं होता, वह ज्ञान प्रत्यक्ष कहलता है। इन्द्रिय और मन के माध्यम से होने वाला ज्ञान विशिष्ट कोटि का होने पर भी परोक्ष ही होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14.3.3 प्राण-शक्ति और आभामंडल

प्राण-शक्ति के बारे में आज के परामनोवैज्ञानिक भी बहुत आगे बढ़ गए हैं। बहुत खोजें हो रही हैं 'वाइटल फोर्स' और 'वाइटल एनर्जी' विषय में। वाइटल एनर्जी जब कम हो जाती है तो व्यक्ति का सारा जीवन बीमार होने लगता है। एक डॉक्टर कितनी ही दवाइयां दें, अगर प्राण-शक्ति कमजोर हो गई तो दवाई कोई काम नहीं करेगी। अगर प्राण-शक्ति के कमजोर होने पर दवाई काम करे तो कोई आदमी मरेगा ही नहीं। हर आदमी को अमर बना दिया जाएगा। हमारे इस शरीर के भीतर दूसरा सूक्ष्म शरीर है—प्राणशक्ति का। वह है तैजस् शरीर यानी बिजली का शरीर, प्रकाश का शरीर। मंत्र का संबंध इस स्थूल शरीर से शुरु होता है और मंत्र की शक्ति पहुंचती है तैजस् शरीर तक। तैजस् शक्ति को सक्रिय बनाना, प्राणशक्ति को सक्रिय बनाना, बिजली को शक्तिशाली बनाना, यह मंत्र का मुख्य काम होता है।

परामनोविज्ञान की खोज करने वाले वैज्ञानिकों ने आज ऐसे कैमरे बना लिये हैं जिनके द्वारा आभामंडल के फोटो लिये जा सकते हैं। अमेरिका में कई संस्थान हैं, रूस में कई संस्थान हैं जिन्होंने आभामंडल के फोटो लिये हैं, प्रकाशित किये हैं, आभामंडल तैजस-शरीर का विकिरण है, सूक्ष्म-शरीर का विकिरण है। दुनिया का हर पदार्थ चेतन और अचेतन अपने आकार में रश्मियों का विकिरण करता है। कोई भी पदार्थ, कोई भी अस्तित्व दुनिया का ऐसा नहीं है जिससे रश्मियों का विकिरण न होता हो। प्रत्येक पदार्थ से अपने आकार की रश्मियों का विकिरण होता है। इसीलिए वस्तु या व्यक्ति के चले जाने के घंटे बाद भी उसका फोटो लिया जा सकता है। व्यक्ति चले गए, उनके आभामंडल से विकिरण होने वाले, फैलने वाले परमाणु उसी आकार में विद्यमान हैं। यदि उतना सेन्सिटिव, संवेदनशील कैमरा हो तो दो घंटे बाद भी उन सबका फोटो लिया जा सकता है।

हमारे शरीर से भी विकिरण होते हैं और फैलते हैं, दूसरों को प्रभावित करते हैं। कायोत्सर्ग की प्रगाढ़ अवस्था में आभामंडल का दर्शन होने लगता है। प्रश्न होता है क्या आभामंडल देखा जा सकता है? बहुत अच्छी तरह से देखा जा सकता है। ध्यान की स्थिति में दिखाई देता है। अचानक कभी-कभी ऐसा होता है कि ध्यान करते-करते शरीर तो नहीं किन्तु पूरे शरीर के आकार का एक विद्युत् का मंडल सामने दीखने लगता है। ऐसा लगता है कि जैसे सामने कोई प्रतिमा आकर बैठ गयी है। तदाकार—उसी आकार की, अपने शरीर के आकार की। कभी-कभी गहरे अंधेरे में हाथ को देखें। हाथ दिखाई नहीं देगा किन्तु हाथ के आकार की एक आभा दीखने लग जाएगी। पूरा का पूरा विद्युत्मय हाथ दीखने लग जाएगा। अंधकार सघन चाहिए।

14.3.4 एस्ट्रलप्रोजेक्शन और समुद्घात

एक हब्शी महिला है। उसका नाम है—लिलियन। वह अतीन्द्रिय प्रयोगों में दक्ष है। उससे पूछा गया—तुम अतीन्द्रिय घटनाएं कैसे बतलाती हो? उसने कहा, 'मैं एस्ट्रलप्रोजेक्शन' के द्वारा उन घटनाओं को जान जाती हूं। प्रत्येक प्राणी में प्राणधारा होती है। उसे एस्ट्रल बॉडी भी कहा जाता है। एस्ट्रलप्रोजेक्शन के द्वारा मैं प्राण-शरीर से बाहर निकलकर, जहां घटना घटित होती है, वहां जाती हूं और सारी बातें जानकर दूसरों को बता देती हूं।

विज्ञान द्वारा सम्मत यह एस्ट्रलप्रोजेक्शन की प्रक्रिया जैन परंपरा की समुद्घात प्रक्रिया है। समुद्घात का यही तात्पर्य है कि जब विशिष्ट घटना घटित होती है तब व्यक्ति स्थूल शरीर से प्राण-शरीर को बाहर निकालकर घटने वाली घटना तक पहुंचाता है और घटना का ज्ञान कर लेता है। यह प्राण-शरीर बहुत दूर तक जा सकता है। इसमें अपूर्व क्षमताएं हैं।

14.3.5 संभिन्नस्रोतोलब्धि और अतीन्द्रियज्ञान

हमारा यह शरीर चैतन्यकेन्द्रों से भरा पड़ा है। जहां से भी भेदो, वहीं से प्रकाश निकलना शुरु हो जाएगा। आज स्नायु तंत्र के विशेषज्ञ बतलाते हैं—आंख से हमने देखना शुरु किया, इसका तात्पर्य है—इस स्थान का हमने क्रिस्टेलाइजेशन कर दिया। अगर यह क्रिस्टेलाइजेशन अंगुली का कर दें तो अंगुली से देखने लग जाएंगे।

Jain Vishva Bharati (Institute) (Deemed University), Ladnun

एक लब्धि है संभिन्नस्रोतोलब्धि। उसका अर्थ ही यही है—शरीर के हर किसी भाग से देख सकते हैं, सुन सकते हैं, चख सकते हैं। सब इन्द्रियों का काम किसी एक अंगुली से कर सकते हैं, पैर के अंगूठे से कर सकते हैं, जहां से चाहें वहां से कर सकते हैं, यदि उसका क्रिस्टेलाइजेशन हो जाए। चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का अर्थ है—शरीर के किसी भी भाग को हम सक्रिय कर सकते हैं, इलेक्ट्रोमेग्नेटिक फील्ड बना सकते हैं, उसमें से झांक सकते हैं।

14.3.6 परलोक और पुनर्जन्म

अध्यात्म प्रधान परामनोविज्ञान मनोविज्ञान की नवीन शाखा के रूप में जानी जाती है। उसके अनुसंधान के मुख्य निष्कर्ष हैं—

मनुष्य भौतिक शरीर के अतिरिक्त और इसके द्वारा कार्य करने वाला एक आध्यात्मिक प्राणी है। जिसमें अनेक अद्‌भुत मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियां—जैसे दिव्य दृष्टि, अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष, मन:प्रत्यय ज्ञान, दूरक्रिया, प्रच्छन्न संवेदन, दूरबोध आदि हैं। मृत्यु केवल स्थूल शरीर को समाप्त कर सकती है। मरने के बाद भी मृत व्यक्ति की आत्मा इस संसार के व्यक्तियों पर प्रभाव डालती रहती है। उसका अस्तित्व किसी अन्य सूक्ष्मलोक में सूक्ष्म रूप से रहता है जहां रहते हुए वह इस लोक में रहने वाले प्राणियों के संपर्क में आ सकती है। स्थूल शरीर को ही व्यक्तित्व मानना तथा यह कहना कि स्थूल शरीर के नष्ट होने पर व्यक्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यह कथन ठीक उसी प्रकार से है जैसे बिजली के बल्ब के फूट जाने पर या फ्यूज हो जाने पर बिजली ही नहीं रह जाती तथा उस बल्ब के स्थल पर कोई बल्ब भी नहीं जल सकता। व्यक्तित्व के बारे में ऐसी धारणा अज्ञानतापूर्ण धारणा है। सारांश यह है कि व्यक्तित्व में भौतिक तत्त्वों से परे की शक्ति विद्यमान है जो मृत्यु द्वारा समाप्त नहीं होती किंतु वह उस रूप में या रूपांतरित होकर अपना प्रदर्शन कर सकती है।

मनोवैज्ञानिक डॉ. क्रूकाल ने हजारों घटनाओं का निरीक्षण करके इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि प्रत्येक प्राणी के अन्दर सूक्ष्म शरीर होता है जो कुछ अवसरों पर विशेषत: मृत्यु के अवसर पर इस भौतिक शरीर को छोड़ कर बाहर निकलता है। परलोक में प्राणी इस सूक्ष्म शरीर के द्वारा ही वहां के जीवन और भोगों को भोगता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'सुप्रीम एडवेन्चर्स' में जो मृत्यु, परलोक और पुनर्जन्म का वर्णन किया है, वह भारतीय दर्शनों के ग्रन्थों में किये गये मृत्यु व परलोक के वर्णन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

इस प्रकार परामनोविज्ञान के अनुसंधान के अध्ययन से यह निश्चित होता जा रहा है कि परलोक और पुनर्जन्म के सिद्धांत वैज्ञानिक एवं सर्वथा सत्य पर आधारित हैं।

बोध प्रश्न :

---

1. परामनोविज्ञान के इतिहास के कौन-कौन से चरण है?

2. दूरश्रवण क्या है?

14.4 वैज्ञानिक जांच की नई पद्धतियां

परामनोविज्ञान का अपना ही एक विशिष्ट अध्ययन क्षेत्र उभरा जिस पर अन्य किसी विज्ञान का दावा नहीं था। इस क्षेत्र की स्पष्ट सीमाएं भी थीं और इसकी अध्ययन वस्तु को वर्गीकृत भी किया जा सकता था। विभिन्न प्रकार की वर्गीकृत श्रेणियों के अध्ययन हेतु उपर्युक्त पद्धति-विज्ञान (मेथोडोलॉजी) भी विकसित कर लिया गया।

जांच विधियों को वैज्ञानिक स्वरूप देने का दुरुह कार्य डॉ. जोजेफ बैक्स रायन ने उठाया। परामनोविज्ञान के क्षेत्र में नये-नये वैज्ञानिक शब्दों को गढ़ना और नयी-नयी जांच प्रणालियों का प्रवर्तन करना तो मानो रायन की विशेष रूचि के काम थे। अत: परामनोविज्ञान की शोध में नये-नये आयाम जुड़ते चले गए और यह विषय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक नये विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित होने की ओर अग्रसर हुआ। डॉ. रायन के कार्य के विषय में प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. आर्थर कॉइस्लर ने लिखा है—डॉ. रायन ने परामनोविज्ञान की नयी धारा का सूत्रपात किया और इस विद्या में सांख्यिकीय प्रणाली, गणितीय विश्लेषण और यांत्रिकी नियंत्रणों के प्रति उनका आग्रह अति तक पहुंच गया। अतीन्द्रिय जांच कार्डों और पासों के हजारों व्यक्तियों पर उन्होंने दसों लाख प्रयोग किए। कभी-कभी तो पाठशाला की कक्षाओं के पूरे के पूरे उन छात्रों पर ये प्रयोग दोहराए गए जिनकों इन प्रयोगों के संबंध में पहले कोई भनक नहीं पड़ने दी।

'सोसायटी—सी. डी. बोर्ड' रिलीजन, फिलोसोफी एण्ड साइकिकल रिसर्च, राउटलेज एण्ड कीगनपॉल, 1953 "बिना किसी पक्षपात या पूर्वाग्रह के मनुष्य की उन सभी कथित अथवा यथार्थ शक्तियों की वैज्ञानिक दृष्टि से जांच करना, जो कि किसी भी सामान्यत: स्वीकृत व्याख्या द्वारा समझाई नहीं जा सकतीं।" मायर्स ने बाद के वर्षों में लिखा—"अपनी विधियां, अपने नियम सभी बनाने थे। उन प्रारम्भिक दिनों में पहले से चली आ रही कार्य-पद्धति, पथ प्रदर्शन का बड़ा अभाव था, यहां तक कि अब सुगमता से जो प्राप्त हो जाती है, उस आलोचना के नाम पर भी मात्र घृणा अभिव्यक्ति के अतिरिक्त मुश्किल से ही कुछ होता था।"

सोसायटी का उद्देश्य सभी प्रकार की परासामान्य प्रघटनाओं का अध्ययन करना था। शोध का पहला कार्य यह जानना रहा कि क्या वास्तव में कोई परासामान्य प्रघटनाएं होती भी हैं। कैसे और क्यों के प्रश्न तो बाद में उठते हैं।

किसी भी नई प्रघटना के अध्ययन करने का विज्ञान का स्पष्ट तरीका यह है कि पहले तो उसका जहां और जितना अधिक अवलोकन किया जा सके, किया जावे। कोई प्रघटना कहां कहां व किन-किन रूपों में घटित होती है, इसके बारे में अधिक से अधिक सूचनाएं एकत्रित की जाएं। यह निश्चय होने पर कि प्रघटना यथार्थात्मक है—उसके कारणों के बारे में विचार करके संभावित कारणों की एक-एक करके जांच की जाए। इसके बाद प्रघटना को नियंत्रित स्थितियों में बार-बार उत्पन्न करके उसके संबंध में विविध नियमों-सिद्धांतों का निर्माण किया जाएं। भौतिक विज्ञानों में ऐसा करना बहुत आसान रहा है, जैविक शास्त्रों में कुछ कठिन, मनोविज्ञान में और भी अधिक कठिन और परामनोविज्ञान में तो यह कार्य अत्यन्त दुरुह सिद्ध हो रहा है।

परासामान्य की यथार्थता की जांच हेतु प्राय: चार प्रकार से साक्ष्य उपलब्ध किए गए हैं—स्वत:चालित लेखन, अतिसंवेदनशील व्यक्तियों या माध्यमों के क्रिया-कलाप, जन साधारण द्वारा सूचित स्वत:स्फूर्त अनुभवों व घटनाओं के विवरण तथा नियंत्रित प्रयोग। नि:संदेह चौथे स्रोत से प्राप्त सामग्री सर्वाधिक विश्वसनीय होती है, लेकिन परासामान्य पर नियंत्रण की दुरुहता के कारण सोसायटी को सर्वाधिक सामग्री प्रथम तीन प्रकार के स्रोतों से प्राप्त करनी पड़ी, फिर भी प्रयोगों की ओर भी सोसायटी ने निरंतर प्रयास किये हैं।

चेतना को केन्द्रित करने के लिए योग और ध्यान के विशेष प्रयोग, सम्मोहन का उपयोग और आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से अतीन्द्रियज्ञान के अनेक नये आयामों का विश्लेषण किया गया। चेतना का विस्तार करने वाली नवनिर्मित औषधियों के उपयोग द्वारा मन:शक्तियों के जागरण की संभावनाओं पर भी परामनोविज्ञानविदों ने विशेष प्रयोग किए। कुछ परामनोविज्ञानवेत्ताओं का मत बना कि स्वप्नावस्था परासामान्य शक्तियों के प्रस्फुटन में विशेषरूप से अनुकूल होती है। इसलिए नींद एवं स्वप्न विषयक वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से अमेरिका में सुनियोजित और सुनियंत्रित प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई। उन प्रयोगशालाओं में हुए अन्वेषणों के परिणामों को संतोषजनक पाया गया।

14.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. परामनोविज्ञान के इतिहास का संक्षेप में विवेचन करें।

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राण-शक्ति और आभामंडल का क्या संबंध है? वर्णन करें।
2. वैज्ञानिक जांच की नई पद्धतियों का संक्षेप में विवेचन करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न (एक वाक्य या एक लाइन में उत्तर दें)

1. नींद एवं स्वप्न विषयक वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से सुनियोजित और सुनियंत्रित प्रयोगशालाओं की स्थापना कहां हुई?
2. 'ह्यूमन परसनेलिटी एण्ड इट्स सरवाइवल ऑव बोडिली डेथ' नामक कृति के कर्त्ता कौन हैं?
3. 'फैन्टाज्मोलोजिकल सोसायटी' की स्थापना कहां हुई?
4. ई. डब्ल्यू. बेनसन कौन-सी संस्था के संस्थापक सदस्य थे?
5. मारक्विस डी प्यूसेगर कौन था?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. सोसायटी का उद्देश्य सभी प्रकार की.....प्रघटनाओं का अध्ययन करना था।
2. परामनोविज्ञान को.....के सर्वोच्च वैज्ञानिक प्रतिष्ठान द्वारा मान्यता मिल ही गई।
3. जागृत 'सोमनाम्ब्यूलिज्म' की खोज बहुत ही.....रही।
4. कितना विचित्र था एक.....द्वारा ऐसा कार्य किया जाना!
5. परलोक में प्राणी इस.....के द्वारा ही वहां के जीवन और भोगों को भोगता है।

14.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. अखण्ड ज्योति : जुलाई, 1998
2. परामनोविज्ञान—कीर्ति स्वरूप रावत
3. जैन परामनोविज्ञान—मुनि डॉ. राजेन्द्र, साध्वी डॉ. प्रभाश्री
4. How to Read the Aura, Practice Psychometry, Telepathy and Clairvoyance—By W. E. Butler
5. मनन और मूल्यांकन—आचार्य महाप्रज्ञ
6. श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ—प्रधान संपादक—श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री, डॉ. ए. डी. बतरा
7. अप्पाणं शरणं गच्छामि—आचार्य महाप्रज्ञ
8. नया मानव : नया विश्व—आचार्य महाप्रज्ञ

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–15 : पुनर्जन्म एवं पूर्वजन्म–स्मृति–भारत एवं पश्चिम में अध्ययन एवं शोधकार्य–डॉ. स्टीवेन्सन के प्रयत्नों का मूल्यांकन

संरचना

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 पुनर्जन्म की अवधारणा
15.2.1 पुनर्जन्म के प्रमाण
15.3 भारत में पुनर्जन्म एवं पूर्वजन्म पर शोध
15.4 पाश्चात्य देशों में पूर्वजन्म–स्मृति पर शोध
15.4.1 विज्ञान के संदर्भ में पुनर्जन्म
15.5 डॉ. इयान स्टीवेंसन के शोध प्रयत्नों का मूल्यांकन
15.5.1 पुनर्जन्म और कर्मवाद
15.5.2 कर्म स्वातंत्र्य का सिद्धान्त
15.6 अभ्यास हेतु प्रश्न
15.7 संदर्भ ग्रंथ

15.0 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन की एक प्रमुख मान्यता पुनर्जन्म का सिद्धांत है। इस मान्यता के मूल में भारतीय चिंतन का कर्म–सिद्धांत है। इस प्रकार पुनर्जन्म और कर्म–सिद्धांत एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति जो कर्म करता है, उसका फल उसे अवश्य प्राप्त होता है। इसीलिए उसका जन्म बार–बार होता है। इस जन्म–मरण के चक्कर से मुक्ति पाने के लिए भारतीय जीवन–दर्शन मोक्ष की प्राप्ति को पुरुषार्थ चतुष्टय का चरम बिंदु मानता है।

15.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप निम्न तथ्यों को जान सकेंगे—

1. पुनर्जन्म संबंधी अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
2. पुनर्जन्म के प्रमाणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. भारत में पुनर्जन्म एवं पूर्वजन्म पर शोधकार्य की समीक्षा कर सकेंगे।
4. पाश्चात्य देशों में पूर्वजन्म–स्मृति पर हुए शोधकार्य से परिचित हो सकेंगे।
5. विज्ञान के संदर्भ में पुनर्जन्म की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
6. डॉ. इयान स्टीवेंसन के शोध प्रयत्नों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
7. पुनर्जन्म और कर्मवाद के रहस्यों को समझ सकेंगे।
8. विश्व की पुनर्जन्म संबंधी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
9. कर्म स्वातान्त्र्य के सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

15.2 पुनर्जन्म की अवधारणा

ऋग्वेद में कहा गया है कि जीव अनेक विद्या योनियों को कर्म विपाक के अनुसार धारण करती है। अथर्ववेद के ग्यारहवें सूक्त के एक मंत्र में बताया गया है कि मृत्यु के पश्चात् तीन गतियों को कर्मानुसार प्राप्त करता है। पुण्य करने पर स्वर्ग, पाप करने पर नरक तथा पुण्य और पाप दोनों के अंश से पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करता है। अथर्ववेद की तरह यजुर्वेद में भी पुनर्जन्म का सिद्धांत माना गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पुनर्जन्म के संदर्भ में गीता का निम्न श्लोक उल्लेखनीय है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग करके दूसरे नवीन वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही आत्मा पुराने शरीर का परित्याग करके दूसरे नवीन शरीरों को धारण करती है।

ईसामसीह ने भी कहा है—Varily verily I say upto you, unless you be born again you can not enter the Kingdom of God.

अर्थात् मैं सत्य सर्वथा सत्य चाहता हूं कि जब तक तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होगा, तुम स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं पा सकते।

15.2.1 पुनर्जन्म के प्रमाण

विनोबाजी ने पुनर्जन्म के अनेक प्रमाणों का उल्लेख किया है। पहला प्रमाण तो यह है कि जिस सृष्टि में हम रहते हैं वह अनादि और अनन्त है। इस अनादि और अनन्त की संकल्पना के बिना जगत् को नहीं समझा जा सकता। इस प्रसंग में अपने जीवन का उदाहरण देते हुए विनोबाजी ने लिखा है—"सत्तर साल पहले बाबा जन्मा, सत्तर साल पहले नहीं था। 80 साल में मर गया तो, मरने के बाद उसका स्वरूप कुछ नहीं था और जन्म से पहले भी कुछ नहीं था, यह हो नहीं सकता। जीव का इस सृष्टि में कब प्रवेश हुआ मालूम नहीं। वह कब तक इस सृष्टि में रहेगा, यह भी मालूम नहीं। यदि हम यह मानें कि हम पहले नहीं थे और मरने के बाद नहीं रहेंगे तो कई समस्याएं खड़ी होंगी। लेकिन सब समस्याओं का उत्तर मिलेगा, यदि हम यह जान जाएं कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त है।"

पुनर्जन्म का दूसरा प्रमाण कर्म-सिद्धांत पर आधारित है। इसे विनोबाजी ने कर्म विपाक प्रमाण कहा है। इस प्रसंग में उनका कथन है—यदि हम मानें कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त नहीं, तो फिर कर्म विपाक भी कुण्ठित हो जाएगा। अतः वर्तमान में हम जो भी सुख-दुःख भोग रहे हैं उसके जिम्मेवार हम स्वयं हैं क्योंकि वह हमारे स्वयं के कर्मों का विपाक है।

पुनर्जन्म संबंधी तीसरा प्रमाण स्वात्मानुभव पर आधारित है। इस संदर्भ में विनोबाजी का कथन है कि स्वात्मानुभव के बिना जीवन को ठीक से नहीं समझा जा सकता। उनके अनुसार पुरानी बातों का स्मरण अथवा पुनर्जन्म की बातों का स्मरण चित्त की निर्मलता पर निर्भर है। कुछ महापुरुषों ने अपने पूर्वजन्म के विषय में लिखा है। उदाहरण के लिए सन्त ज्ञानदेव ने लिखा है कि वे पूर्वजन्म में राजा थे। इसी प्रकार की अनेक कथाएं भगवान बुद्ध के बारे में प्रचलित हैं। विनोबाजी का विचार है कि 'अनुमान, अनुभव और शास्त्र वचन से यह निश्चित है कि पुनर्जन्म है।'

अन्त में विनोबाजी ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही कि पुनर्जन्म नहीं मानेंगे तो जीवन का स्वाद ही समाप्त हो जाएगा। उन्होंने उदाहरण देकर समझाया कि मानलो अभी मुझे सर्प काट देता है, मैं मर जाता हूं और पुनर्जन्म नहीं तो क्या मेरा सारा ज्ञान एक क्षण में ही नष्ट हो जाएगा। लेकिन मेरी इच्छा है मैं और भी ज्ञान प्राप्त करुं क्योंकि मैं पुनर्जन्म में विश्वास करता हूं। इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति अपने पुराने जन्मों के अनुभवों की पूंजी साथ लेकर नया जन्म ग्रहण करता है।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक शोध का बहुत महत्त्व है। कुछ मनोवैज्ञानिक इसीलिए पुनर्जन्म संबंधी आंकड़ों के प्रमाण एकत्र करने में संलग्न हैं।

महायोगी श्री अरविन्द ने पुनर्जन्म के विषय में गहराई से चिंतन किया है और इस विषय पर उनका ग्रन्थ भी है। उनका विचार है कि 'पुनर्जन्म का मत लगभग उतना ही पुरातन है जितना कि स्वयं विचार-चिन्तन और उसकी उत्पत्ति अज्ञात है। अपनी अपनी पूर्व मान्यताओं के अनुसार हम उसे या तो प्राचीन मनोवैज्ञानिक अनुभव का फल मान सकते हैं जिसका सदैव पुनर्नवीनीकरण किया जा सकता है और फलतः वह सत्य रहता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है या हम उसे दार्शनिक मत वाद और विलक्षण कल्पना कहकर विदा कर सकते हैं परन्तु इन दोनों ही दशाओं में यह संभावना रहती है कि जैसे यह सिद्धांत हम जहां तक देख सकते हैं लगभग मानवीय विचार चिन्तन के जितना पुरातन है, वैसे ही वह तब तक टिका भी रहेगा जब तक मानव प्राणियों की विचार क्रिया चलती रहेगी।

कुछ लोगों का कथन है कि पुनर्जन्म एक कल्पना मात्र है, क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों से इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इस तर्क का प्रतिकार करते हुए श्री अरविन्द ने लिखा है कि किसी वैज्ञानिक अध्ययन ने यह भी तो सिद्ध नहीं किया कि पुनर्जन्म होता ही नहीं है। दूसरे शब्दों में, पुनर्जन्म संबंधी अवधारणा आधुनिक विज्ञान के लिए एक चुनौती के समान है। लेकिन मनोविज्ञान की दृष्टि से पुनर्जन्म का महत्त्व है। इस संदर्भ में श्री अरविन्द का कथन है—"आधुनिक आलोचक के पास कोई ऐसा साधन भी नहीं जिससे पुनर्जन्म की सत्यता या असत्यता स्थापित की जा सके। वस्तुत: आधुनिक आलोचना, सूक्ष्म अनुसंधान और सावधानी भरी सुनिश्चितता का सारा आडम्बर करके भी, बहुत निपुण सत्यान्वेषी नहीं तो वह इस पुनर्जन्म जैसे विषय पर कैसे विचार कर सकती है जो कि मनोविज्ञान की वस्तु है और जिसका निर्णय भौतिक की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक प्रमाण से ही करना होगा।"

15.3 भारत में पुनर्जन्म एवं पूर्वजन्म पर शोध

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में श्री फील्डिंग हाल ने बर्मा में अध्ययन के 6 पुनर्जन्म वृत्तान्तों को प्रकाशित किया था किंतु गम्भीर एवं व्यवस्थित ढ़ंग से पुनर्जन्म की साक्षियों की जांच प्रारम्भ करने का श्रेय भारत के रायबहादुर श्यामसुन्दरलाल को है, जो कि किशनगढ़ के दीवान रहे हैं को दिया जा सकता है। सन् 1922-23 में आपने अपने एक साथी श्री रामगोपाल मिश्र के सहयोग से पुनर्जन्म के वृत्तान्तों की खोजबीन हेतु एक 'फार्मर लाइफ रिसर्च एसोसियेशन' का गठन किया। इस समिति द्वारा प्रभु नाम के एक बालक की पुनर्जन्म स्मृतियों की जांच ने उस समय बहुत ख्याति अर्जित की थी। इस वृत्तान्त का विवरण 26 सितम्बर, 1926 के न्यूयार्क टाइम्स में भी प्रकाशित हुआ था। अगले वर्ष इसी अध्ययन का विवरण रिव्यू मेटाफिजिक में फ्रांस से प्रकाशित हुआ। वह वृत्तान्त संक्षेप में निम्न है—'हे राम पता नहीं मेरे बच्चे किस दशा में होंगे?'

राजस्थान के भरतपुर जिले के सलीमपुर गांव में एक चार वर्षीय बालक एक रात को अचानक बड़बड़ाने लगा। पास में सो रही माता ने कहा—"क्या बकता है? कौन-से बच्चे? चुपचाप सो जाओ।" उस रात को तो बच्चा सो गया, लेकिन अधिक दिन चुप नहीं रह सका। उसने बार-बार बताया कि पिछले जन्म में उसका नाम हरबक्स था और वह हथरोई में रहता था। उसके घरु व श्यामलाल नामक दो पुत्र तथा कांसी एवं मोती नाम की दो पुत्रियां थीं। इन पुत्रियों का विवाह क्रमश: खेडली के रामहेव व निवाई के गोकुल के साथ हुआ था। उसने यह भी बताया कि उसने मकान के अस्तबल में कुछ रुपये गाड़े थे।

धीरे-धीरे यह खबर हथरोई पहुंच गयी। एक दिन हरबक्स का बड़ा लड़का किसी को सूचना दिये बिना ही अचानक सलीमपुर आया। बालक ने ज्योंहि उसे देखा, तत्काल पहचान लिया कि यह मेरा पुत्र है। हथरोई का एक चौधरी भगवन्तसिंह भरतपुर के महाराजा के वहां काम करता था उसने जब यह बात सुनी तो उसने भरतपुर के महाराजा को भी यह वृत्तान्त सुनाया। महाराजा ने बालक को बुलाया और पूछा—अरे लड़का! तेरा नाम क्या है? तू कहां का रहने वाला है? लड़के ने तत्काल प्रश्न किया कि महाराज किस जन्म का पूछ रहे हैं? इस जन्म का या पिछले जन्म का? महाराज ने कहा कि दोनों ही जन्मों का बताओ। उसने विनम्रता पूर्वक उत्तर दिया—"महाराज पिछले जन्म में मेरा नाम हरबक्स था, मैं हथरोई में रहता था। इस जन्म में मेरा नाम प्रभु है और मैं सलीमपुर में रहता हूं।" महाराज ने पूछा—क्या तू हथरोई के बारे में और कुछ बातें बता सकता है? लड़के ने जवाब दिया—हां महाराज! वहां एक छोटा-सा किला और एक तालाब है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मेरे मकान का दरवाजा पूरब दिशा की ओर है। महाराज ने हथरोई के ही निवासी व हरबक्स के भतीजे नत्थीलाल को बुलवाया। वह महाराज का प्रमुख कोचवान था। लड़के ने उसे देखते ही कहा—"यह तो मेरे भाई का लड़का है।" यह सुनकर महाराज अचम्भित हो गए।

इस सारी घटना का अध्ययन डॉ. रायबहादुर श्यामसुन्दरलाल को सौंपा गया। उन्होंने इस अध्ययन को दो भागों में बांटा। पहले बालक द्वारा बतायी गई सभी बातों को उसके पिता के घर ही लिपिबद्ध कर लिया गया फिर बालक को हथरोई ले जाकर वहां प्रमुख व्यक्तियों के बीच उसके द्वारा बतलायी गई सभी बातों की सत्यता की जांच की गई।

उपर्युक्त विवरण का पुनः विस्तृत अध्ययन राजस्थान विश्वविद्यालय के भूतपूर्व परामनोविज्ञान विभाग द्वारा किया गया। श्री हेमेन्द्रनाथ बनर्जी के निर्देशन में इस विभाग द्वारा इस तरह के और भी अनेकों वृत्तान्तों का अध्ययन किया जा चुका। 1972 में श्री बनर्जी द्वारा लिखित एक पुस्तक 'जन्मान्तरवाद' (बंगाल में) प्रकाशित हुई।

भारत में केकयी नन्दन सहाय, एस. सी. बोस, हेमेन्द्रनाथ बनर्जी, कीर्तिस्वरूप रावत आदि द्वारा इस दिशा में विशेष प्रयत्न किए गए।

पुनर्जन्म पर इस समय भारत में कतिपय अन्य विद्वान भी अध्ययनरत हैं। 17 सितम्बर, 1970 को दौसा, राजस्थान में स्थापित 'सम्यक (परा) मनोविज्ञान शोध' विभाग का उद्घाटन पुरी के जगद्गुरु आचार्य निरंजनदेव तीर्थ द्वारा किया गया। इस विभाग में पुनर्जन्म के साथ-साथ अन्य परामनोवैज्ञानिक प्रघटनाओं पर शोध करने का प्रयास किया जा रहा है।

नागपुर के एक होमियोपैथी डॉ. आर. के. सिन्हा को परामनोविज्ञान में रुचि है, उन्होंने अपने शोध वृत्तान्तों में पुनर्जन्म के अन्तराल के बारे में बताया है कि हमें कुछ पलों से लेकर हजारों वर्षों तक का अन्तराल मिला है। लगभग 46 प्रतिशत वृत्तान्तों में पूर्वजन्म की मृत्यु और इस जन्म के बीच एक वर्ष से भी कम समय पाया गया। लगभग 85 प्रतिशत का पुनर्जन्म 10 वर्ष पूर्व हो गया था। ऐसे वृत्तान्त भी हैं, जिनमें यह अन्तराल 100 वर्ष से भी अधिक का वर्णित किया गया है, कुछ वृत्तान्तों में यह अन्तराल 1000 वर्ष से भी अधिक का मिला है।

वस्तुतः पुनर्जन्म का सिद्धांत इतना जटिल है कि सहज ही किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता। भारतीय और पाश्चात्य विचारकों ने इसके पक्ष और प्रतिपक्ष में अनेक तर्क दिए हैं। डॉ. सिद्धांतालंकारजी ने उन तर्कों की बहुत गहराई से छानबीन की और उनका निष्कर्ष निकाला है। पहले उन्होंने युक्तियों की परीक्षा की जो पुनर्जन्म को मानने के संबंध में दी गई हैं। उनमें से प्रमुख युक्तियां निम्न हैं—

1. पुनर्जन्म का विचार सार्वत्रिक है।
2. मनुष्य में अमरता का विचार पाया जाता है।
3. कारण-कार्य के नियम के आधार पर पुनर्जन्म मानना पड़ता है।
4. कई ऐसे मेधावी बालक पाये जाते हैं जो जन्म से ही अद्भुत बुद्धि से संपन्न होते हैं।
5. भौतिक जगत् में शक्ति की अक्षयता या उसके रूपांतरण का नियम आध्यात्मिक जगत् में भी लागू होता है।
6. विकासवाद की साक्षी भी पुनर्जन्म मानने के लिए बाध्य करती है।
7. कभी-कभी ऐसे लोग भी मिल जाते हैं जिन्हें पूर्वजन्म की स्मृतियां याद रहती हैं।

ऋग्वेद का एक मंत्र स्वर्ग के आनन्दमय जीवन की ओर संकेत करता है जहां प्राणियों की सभी इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं। एक अन्य स्थल पर कहा गया है—तपस्वी और दानी मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। इस धारणा की पुष्टि अथर्ववेद के मंत्र करते हैं जिनके अनुसार आप्त लोग दिव्य मार्ग से स्वर्ग को जाते हैं और प्रकाशमय आभा को प्राप्त करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भौतिकवादी आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते इसलिए वे पुनर्जन्म को नहीं मानते। पर भारतीय मनोविज्ञान की विचार-धारा पुनर्जन्म में विश्वास करती है। वह मानती है कि इस शरीर से अलग आत्मा की स्वतंत्र सत्ता है, जो न जन्म लेती है और न मरती है। वह मात्र एक शरीर को छोड़ कर दूसरे में प्रवेश करती है। आत्मा का यह शरीर तरण ही 'पुनर्जन्म' है। आत्मा सत् वस्तु है। सत् वस्तु का कभी अभाव नहीं होता बल्कि उसका रूपान्तरण होता है। आज का विज्ञानवादी भी यही मानता है। जिस प्रकार सृष्टि का प्रवाह अनादि-अनन्त है, उसी तरह आत्मा भी अनादि और अनन्त है।

15.4 पाश्चात्य देशों में पूर्वजन्म-स्मृति पर शोध

पाश्चात्य देशों में भी यदा-कदा उभर आने वाली पूर्वजन्म की स्मृतियों के वृत्तांतों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट होने लगा। श्री गेब्रियल डिलेनी ने 1924 में अपने परिचित व स्वयं के अध्ययन किए हुए कुछ पुनर्जन्म की स्मृतियों के वृत्तान्तों को एक पुस्तक में प्रकाशित किये। कुछ वर्ष पश्चात् एक अन्य विद्वान् श्री रॉल्फ शिर्ले ने कुछ डिलेनी द्वारा वर्णित व कुछ स्वयं अध्ययन किए हुए पूर्वजन्म की स्मृतियों के विवरण 'द प्रोब्लम ऑफ रिबर्थ' नामक पुस्तक में प्रकाशित किये।

पिछले लगभग तीस वर्षों से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है। विश्व के वैज्ञानिकों का ध्यान काफी अर्से से इन घटनाओं की ओर खिंच चुका था। विश्व में अनेक स्थानों पर परामनोविज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धति से शोध कार्य करने के लिए जो शोध-संस्थान स्थापित हुए हैं, उनमें इन पूर्वजन्म स्मृति घटनाओं का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जा रहा है। पैंसिलवेनिया विश्वविद्यालय, क्लार्क विश्वविद्यालय, स्टेण्डफोर्ड विश्वविद्यालय, हारवर्ड विश्वविद्यालय, ड्यूक विश्वविद्यालय, लिंडन विश्वविद्यालय, उट्रेस्ट विश्वविद्यालय (होलेण्ड), केम्ब्रीज विश्वविद्यालय, फ्राईबर्ग विश्वविद्यालय (पश्चिम जर्मनी), पिट्सवर्ग विश्वविद्यालय, सेंट लोसेफ्ज कॉलेज (फिलाडेलफिया), वेलेण्ड कॉलेज (प्लेनव्यू, टैक्सास), नेशनल लिटोरल विश्वविद्यालय (रोजारियो आर्जेन्टीना), लेनिनग्राड स्टेट विश्वविद्यालय (यू. एस. एस. आर.), किंग्स कॉलेज विश्वविद्यालय (हेलिफैक्स) तथा वर्जिनिया विश्वविद्यालय के अन्तर्गत विश्व के बीसों उच्च कोटि के वैज्ञानिक, मनश्चिकित्सक एवं मनोविज्ञानविद, परामनोविज्ञान के क्षेत्र में शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से कार्य कर रहे हैं।

15.4.1 विज्ञान के संदर्भ में पुनर्जन्म

जैनदर्शन के अनुसार सूक्ष्मशरीर तैजस और कर्मण जिसे सांख्य लिंगशरीर कहते हैं, संसारावस्था में सदा साथ रहते हैं। इसे वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है। विज्ञान पदार्थ की पांच अवस्थाएं मानता है—ठोस, द्रव, गैस और प्लाज्मा। एक पांचवी अवस्था और जिसे जैवप्लाज्मा या प्रोटोप्लाज्मा कहते हैं। जिसकी खोज 1944 में रूस के भौतिकशास्त्र के वेत्ता श्री वी. एस. ग्रिस्वेको ने की है। जैवप्लाज्मा में 'आयंस' स्वतंत्र इलेक्ट्रोन और प्रोटोन होते हैं, जिनका अस्तित्व स्वतंत्र होता है। नाभिक के साथ कोई संबंध नहीं होता, इनकी गति बहुत तीव्र होती है। दूसरे जीवधारियों में शक्ति संवहन करने में यह सक्षम होता है। अध्यात्म-योग की भाषा में यह हमारी प्राणशक्ति है जो प्रोटोप्लाज्मा है और हमारे अस्तित्व का सटीक प्रमाण है। वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रोटोप्लाज्मा अमर तत्त्व है जो हमारी कोशिकाओं में रहता है। मृत्यु के समय शरीर से अलग होकर वायुमण्डल में बिखर जाता है। वही प्रोटोप्लाज्मा निषेचन की क्रिया के समय जीन्स में शिशु के साथ पुनः जन्म ले लेता है।

वैज्ञानिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्ति का पुनर्जन्म संभव है। प्रयोगशाला में किए गये अनेक प्रयोगों के पश्चात् वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मरणोपरान्त कोई ऐसा तत्त्व रह जाता है जो इच्छानुसार पुनः किसी भी शरीर में प्रवेश कर एक नये शरीर को जन्म दे सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लन्दन के प्रसिद्ध डॉ. डब्ल्यू. जे. कीलर ने अपनी पुस्तक 'दी ह्यूमन एटमास्फियर' में ऐसे अनेक प्रयोगों का उल्लेख किया है जो मरणासन्न मरीजों की जांच करते समय अनुभव में आएं। उनका कहना है कि मानव देह में एक प्रकाशपुंज का अस्तित्व अवश्य रहता है। सोवियत वैज्ञानिकों के पुनर्जन्म संबंधी विचार भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जीवधारियों में कोई प्रकाशपुंज, कोई सूक्ष्म शक्ति, अदृश्य शरीर भौतिक शरीर को आवृत किए रहता है। इस प्रकाशपुंज को इलेक्टॉन माइक्रोस्कोप के द्वारा देखा गया। वह मृत्यु के समय शरीर से अलग हो जाता है। इसकी विशेष शारीरिक संरचना है।

परामनोविज्ञान के अनुसार पूर्वजन्म की स्मृति से पुनर्जन्म की सिद्धि होती है। डॉ. स्टीवेंसन ने पिछले 30 वर्षों से पूर्वजन्म की स्मृति से पुनर्जन्म की सिद्धि के लगभग 25000 घटनाओं का सर्वेक्षण विश्लेषण किया है, जिससे पुनर्जन्म स्वत: सिद्ध हो जाता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार प्रोटोप्लाज्मा ही आत्मा है क्योंकि वह मृत्यु के बाद नष्ट नहीं होता। नया शरीर धारण करने में योगभूत बनता है। उन्होंने प्रोटोप्लाज्मा के जो लक्षण बतलाए हैं उसके आधार पर उसे जैन दर्शन का सूक्ष्म शरीर कहा जा सकता है जो पुनर्जन्म का कारणभूत बनता है। सूक्ष्म शरीर पुन: जन्म लेता है। प्रोटोप्लाज्मा भी पुन: जीन्स में परिवर्तित होकर शरीर धारण कर लेता है। सूक्ष्म शरीर ठोस, द्रव व गैस रहित है। प्रोटोप्लाज्मा भी इनसे भिन्न है। सूक्ष्म शरीर चतुस्पर्शी होता है। प्रोटोप्लाज्मा के कण भी बहुत सूक्ष्म होते हैं। विशेष ज्ञान शक्ति को जागृत कर अवधिज्ञानी, मन:पर्यवज्ञानी व केवलज्ञानी सूक्ष्म शरीर को देख सकते हैं। वैज्ञानिक सूक्ष्म यंत्रों द्वारा प्रोटोप्लाज्मा को देखते हैं।

15.5 डॉ. इयान स्टीवेंसन के शोध प्रयत्नों का मूल्यांकन

पूर्वजन्म स्मृति या ऐसी अन्य परासामान्य घटनाओं का सर्वेक्षण, सत्यता की जांच, तथ्यों का विश्लेषण, संबंधित साक्षियों का परीक्षण आदि का निष्पक्ष एवं वस्तु सापेक्ष अध्ययन किया जा रहा है।

उदाहरण स्वरूप हम वर्जिनिया विश्वविद्यालय के अन्तर्गत चल रहे कार्य की चर्चा यहां कर रहे हैं। वर्जिनिया विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'स्कूल ऑफ मेडिसिन' में सायक्याटी विभाग का 'परामनोविज्ञान संभाग' व्यवस्थित रूप से इस शोध कार्य में लगा हुआ है। डॉ. इयान स्टीवेंसन, एम. डी. स्वयं एक सुप्रसिद्ध मनश्चिकित्सक हैं तथा 'कार्लसन प्रोफेसर ऑफ सायक्याटी' के रूप में इस विभाग का निदेशन कर रहे हैं। डॉ. इयान स्टीवेंसन एवं उनके निदेशन में शोधरत दल विश्व के विभिन्न देशों में घटित पूर्वजन्म स्मृति की घटनाओं के सर्वांगीण अध्ययन एवं शोध में संलग्न हैं। भारत के अतिरिक्त सिलोन, बर्मा, थाईलैण्ड, लेबनान, ब्राजील, अलास्का आदि देशों से उक्त प्रकार की घटनाओं की जानकारी उन्हें प्राप्त हुई हैं तथा इस सिलसिले में अनेक बार इन देशों की यात्राएं की हैं। डॉ. स्टीवेंसन मनोविज्ञान के अभिनव विश्लेषणों और सिद्धांतों के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। उनका समग्र अध्ययन एक गहरी और पैनी दृष्टि लिए हुए हैं। घटनाओं के जांच कार्य में उनमें वकील का चातुर्य और तर्क की प्रबलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। विभिन्न देशों की संस्कृति, धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल आदि से संबंधित अपेक्षित ज्ञान की मौलिक एवं पूर्ण जानकारी भी वे रखते हैं।

डॉ. स्टीवेंसन द्वारा लिखित 'दी एविडेंस फार सरवाइवल फ्रोम क्लेइम्ड मेमोरिज ऑफ फोर्मर इनकारनेशनस' सन् 1960 में जर्नल ऑफ अमेरिकन सोसायटी ऑफ सायकिकल रिसर्च में प्रकाशित होकर 1961 में पुस्तकरूप में इंग्लैण्ड में प्रकाशित हुआ। 1966 में "ट्वेण्टी केसेज सजेस्टीव ऑफ रिइनकारनेशन" प्रकाशित हुआ। इस में भारत के 7, लंका के 3, ब्राजील के 2, लेबनान का 1 व दक्षिण अलास्का के 7 वृत्तान्तों का विवेचन प्रस्तुत किया गया। समय-समय पर लेख और पुस्तके प्रकाशित होती रही हैं। सन् 1969-70 दो वर्षों में भारत में 108 व बर्मा में 80 घटनाएं प्रकाश में आयी।

पुनर्जन्म के प्राप्त अनेक उदाहरणों में जिन बच्चों को पूर्व जन्मों की स्मृति हुई हैं, उनके पिछले जीवन एवं वर्तमान जीवन में कई समान प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं। जैसे आदतें, आचरण, पसन्द, नापसन्द की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वृत्तियां समान थीं तो कुछ में ये प्रवृत्तियां विषम भी देखी जा सकती हैं, जैसे—अलग-अलग भाषा-भाषी होना और पूर्वजन्म के संस्कारों से अप्रभावित होना। कुछ व्यक्तियों द्वारा पुनर्जन्म के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़े किए गए हैं, जिनका उत्तर परामनोवैज्ञानिक को अभी देना है। वे प्रश्न हैं—

1. कुछ बच्चों को ही पुनर्जन्म स्मृति क्यों होती है?
2. कुछ घटनाओं में मृत्यु के तुरन्त बाद पुनर्जन्म हो गया, तो कुछ में बहुत वर्षों बाद, ऐसा क्या?
3. कुछ घटनाओं में पुनर्जन्म उसी परिवार, उसी क्षेत्र या उसी नगर में हुआ तो कुछ में भिन्न क्षेत्र, भिन्न परिवार और भिन्न धर्म में।
4. कुछ घटनाओं में पुनर्जन्म प्राप्त शिशु सम-यौन में तो कुछ में विषम यौन का सदस्य बना। अर्थात् पुरुष मरकर पुरुष ही बना तो कहीं पुरुष मरकर स्त्री बना तथा स्त्री मरकर पुरुष बनी।
5. क्या व्यक्ति मरकर पुनः मानव ही बनता है? अब तक प्राप्त किसी पुष्ट साक्ष्य से यह स्थापित नहीं होता कि किसी को पशु-पक्षी जन्म का स्मरण हुआ हो, तो क्या पशुओं का पुनर्जन्म नहीं होता?

इन प्रश्नों का समाधान ढूंढने का प्रयास 'सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च' के तत्त्वावधान में डॉ. इयान स्टीवेंसन ने किया है।

डॉ. स्टीवेंसन ने बोधक घटना में परकाया प्रवेश के सन्दर्भ में मुजफ्फर नगर जिले की एक घटना है कि रसूलपुर गांव में गिरधारीलाल जाट के साढ़े तीन वर्षीय एक पुत्र जसबीर की सन् 1954 में चेचक से मृत्यु हो गई। उसे श्मशान ले जाने की तैयारी हो रही थी कि वह पुनः जीवित हो उठा। कुछ दिन बाद वह अपने पूर्व जन्म की अनेक बातें बताने लगा। वह बोला—मैं बहेड़ी गांव के निवासी शंकर त्यागी का पुत्र था, मुझे तब शोभाराम के नाम से जानते थे। मैं एक बार किसी की शादी में बाहर गया था, जहां पर मेरे एक कर्जदार ने मुझे जहरयुक्त मिठाई खिला दी। मैं चक्कर खाकर बहेली से नीचे गिर पड़ा, मेरे सिर में गहरी चोट आने से मेरी मृत्यु हो गई।

उस बालक के कथन की पुष्टि में विरोधाभास नजर नहीं आया। बालक ने अपने पूर्वजन्म के सभी परिजनों को पहचान लिया। सन् 1961 को डॉ. स्टीवेंसन ने जांच की तो जसबीर ने बताया कि पूर्वजन्म में जब वह मृत्यु के पश्चात् देह त्याग कर जा रहा था, तब उसे एक साधु मिला। उसने मुझे राय दी कि—मैं गिरधारीलाल जाट के पुत्र जसबीर के शरीर में प्रवेश कर जाऊं और मैंने उसी समय जसबीर की मृत देह में प्रवेश कर लिया। बालक जसबीर सन् 1964 तक बहुत सी बातें भूल चुका था। डॉ. स्टीवेंसन सन् 1971 में जसबीर से पुनः मिले, तो उसने बताया कि (शोभाराम) के कर्जदार ने मेरे रुपये लौटा दिए हैं।

बोध प्रश्न :

---

1. पुनर्जन्म के प्रमाणों को विस्तार से लिखें।

2. भारत में पुनर्जन्म पर क्या-क्या शोध हुए हैं?

3. पुनर्जन्म के संदर्भ में विज्ञान का क्या मत है?

4. पुनर्जन्म के शोध कार्यों में डॉ स्टीवेंसन का क्या सहयोग रहा है?

15.5.1 पुनर्जन्म और कर्मवाद

श्रीलंका के उरगलकलोता गांव में 17 जनवरी, सन् 1947 को तिलेरत्ने हामी के यहां विजयरत्ने नामक एक बालक ने जन्म लिया जिसके दाहिने सीने एवं हाथ में अंग-विकार के चिह्न थे। तिलेरत्ने ने अपनी पत्नी से कहा कि इस पुत्र में मेरे मृत भाई का प्रतिरूप नजर आता है। जब विजयरत्ने दो-ढाई वर्ष का हुआ तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अपनी मां से कहने लगा कि पूर्वजन्म में मैंने अपनी पत्नी की हत्या कर दी और मुझे फांसी लगी। उस वजह से मेरी बांह विकृत हो गई।

डॉ. स्टीवेंसन ने इस संबंध में मुकदमें के कागजों की प्रमाणित कॉपी प्राप्त की जिससे यह तथ्य पूर्णरूप से प्रमाणित हुआ कि विजयरत्ने ही पूर्वजन्म में अपने पिता तिलेरत्ने का भाई रतनहामी था जिसको अपनी पत्नी की हत्या के अपराध में फांसी लगी थी।

पूर्वजन्म की स्मृति के संदर्भ में विख्यात डॉ. इयान स्टीवेंसन का कहना है कि जिनकी मृत्यु प्रचण्ड आवाज सुनकर, आग्नेयास्त्र देखकर, बिजली गिरने के भय से, आशंका, अभिरुचि, बुद्धिमत्ता, उत्तेजनात्मक, आवेशग्रस्त मन:स्थिति में हुई हो, उन्हें पिछले जन्म की स्मृति अधिक स्पष्ट होती है। उनके स्मृति पटल पर पिछले जन्म के दुर्घटना चक्र, हत्या, आत्महत्या, अतृप्ति, कातरता, उद्विघ्नता या मोहग्रस्तता से युक्त चित्त-विक्षोभकारी घटना क्रम भी उभरते रहते हैं। किसी-किसी बालक में पिछले जन्म के कला-कौशल, विशिष्ट स्वभाव या आदत, विशेष शौक की छाप वर्तमान जीवन में बनी रहती है। उसको पूर्वजन्म में जिन लोगों से अधिक प्यार या द्वेष भाव रहा है, वे लोग भी इस जन्म में विशेष रूप से याद रहते हैं।

डॉ. स्टीवेंसन को अनेक केस ऐसे भी मिले, जिनमें कई रोगी उन्हीं बीमारियों से ग्रस्त थे जो पूर्वजन्म में थीं। कई रोगी पूर्वजन्म की आदतों से परेशान थे। पूर्वजन्म में शरीर पर जहां-तहां बन जाने वाले विशेष चिह्न इस जन्म में भी उसी प्रकार पाए गए। आकृति की बनावट भी कुछ समान रूप से ही पाई गई।

एक केस में डॉ. स्टीवेंसन ने पाया कि पूर्वजन्म की स्मृति रखने वाले व्यक्ति के पेट का ऑपरेशन चिह्न एक लकीर के रूप में उसी स्थान पर पाया गया, जहां पूर्वजन्म में था।

किसी स्मरण कर्त्ता को पूर्वजन्म में जिस प्रकार की दुर्घटना हुई है, वैसा वातावरण देखते ही अकारण डर लगने लगता है। जैसे किसी की मृत्यु पूर्वजन्म में बन्दूक की गोली से, बिजली के कड़कने या गिरने से हुई है, तो इस जन्म में वह साधारण पटाखों की आवाज से भी डरने लगता है। यदि पूर्वजन्म में पानी में डूबने से मृत्यु हुई है तो इस जन्म में वह जलाशयों को देखते ही अकारण ही डरने लग जाता है।

डॉ. स्टीवेंसन के अनुसार पूर्वजन्म के स्मरण वाले बच्चे 5-6 वर्ष के होने पर प्राय: पूर्वजन्म की घटना भूलने लगते हैं, अत: छोटी उम्र में ही उनसे पूछ-ताछ करनी चाहिए। जैसे जैसे आयु बढ़ती है वैसे वैसे भावुक संवेदनाएं समाप्त होती जाती हैं। व्यक्ति की व्यापार, व्यवसाय, जगत व्यवहार में प्रवेश करने के पश्चात् भावनात्मक कोमलताएं जितनी कठोर होती जाएंगी, उतनी ही उनकी संवेदनाएं और स्मृतियां धुंधली पड़ती जाएगी।

सभी प्रकार की सूचनाएं एकत्रित कर लेने के बाद परामनोवैज्ञानिक निम्न बातों को ध्यान में रख कर सारे घटनाक्रम का मूल्यांकन करता है—

1. सभी प्राप्त सूचनाएं कहां तक विश्वसनीय हैं?
2. क्या तथाकथित पूर्वजन्म की स्मृतियों में निहित तथ्यों की जानकारी संबंधित व्यक्ति के लिए सामान्यत: प्राप्त कर पाना संभव था?
3. संबंधित व्यक्ति द्वारा परासामान्य ज्ञान शक्तियों से ये सूचनाएं प्राप्त करना कहां तक संभव था?
4. क्या संबंधित व्यक्ति ने इन स्मृतियों का वर्णन किसी विशेष अवस्था जैसे तंद्रा या अचेतनावस्था में ही वर्णित किया था, आदि।

पूर्वजन्म संबंधी ऐसे बहुत से वृत्तांत पाये गए हैं जिनमें लिंग परिवर्तन वर्णित किया गया है।

ब्राजील के पोलो लॉरेंज का यह वृत्तांत इसी प्रकार के वृत्तांतों में से एक है।

"मां, अब तुम मुझे अपने पुत्र के रूप में लो, अब मैं तुम्हारा पुत्र बन कर जन्म लूंगी।" श्रीमती इडा लॉरेंज नामक एक महिला को तीन बार मृत आत्मा आह्वान संबंधी बैठकों में यह संदेश मिला। संदेश देने वाली कोई और नहीं, उन्हीं की पुत्री इमिलिया की कथित मृतात्मा थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इमिलिया लॉरिंज एफ. बी. लॉरिंज व इडा लॉरिंज की दूसरी संतान व सबसे बड़ी पुत्री थी। उसका जन्म 4 फरवरी, 1902 को हुआ था। उसका नाम 'इमिलिया', उससे पूर्व उत्पन्न एक पुत्र—जिसकी कुछ वर्ष पूर्व शैशवावस्था में ही मृत्यु हो गई थी—के नाम 'इमिलियो' पर रखा गया था।

सभी प्राप्त सूचनाओं से ज्ञात हुआ कि अपने छोटे से जीवन में इमिलिया सदा दु:खी रही। वह हमेशा स्वयं को इस बात के लिए ही कोसती रही कि वह लड़की क्यों है? लड़का क्यों नहीं? उसने अनेक बार अपने भाई-बहिनों से कहा कि यदि वास्तव में पुनर्जन्म होता है तो वह अगले जन्म में पुरुष ही होगी। उसके विवाह के लिए अनेक प्रस्ताव आए, लेकिन उसने सभी को ठुकरा दिया। हीन व निराशापूर्ण भावनाओं से ग्रसित उसने अनेक बार आत्महत्या का प्रयास किया। अन्त में वह इस कार्य में कामयाबी भी सिद्ध हुई कि 12 अक्टूबर, 1921 को उसने एक बहुत तेज जहर लेकर आखिर अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली।

3 फरवरी, 1923 को, इमिलिया की मृत्यु से लगभग डेढ़ वर्ष बाद, वास्तव में श्रीमती लॉरिंज ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम भी उन्होंने इमिलिया ही रखा, लेकिन बाद में उसे सभी पोलो नाम से पुकारने लगे।

मृत इमिलिया व पोलो की अनेक प्रवृत्तियों व रुचियों में समानता पायी गई। इमिलिया को यात्रा करने का बहुत शौक था। पोलो को भी भ्रमण का अत्यधिक शौक है।

इमिलिया सिलायी करने में निपुण थी। पोलो भी चार वर्ष का हुआ तब तक सिलायी में बिना सीखे ही निपुणता प्राप्त कर ली।

इमिलिया वायलिन सीखने की इच्छुक थी, किंतु वह प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं हो सकी। पोलो ने भी वायलिन सीखने का प्रयास किया पर असफल रहा।

इमिलिया में विचित्र प्रकार से डबलरोटी के कोने काटने की आदत थी, वही आदत पोलो में भी पायी गयी।

पोलो के इस वृत्तांत में पुनर्जन्म में लिंग परिवर्तन के अनेक प्रमाण स्पष्ट देखे गये। उसकी बहिनों ने बताया कि यह बचपन में लड़कियों की तरह ही बातें करता था कि 'मैं कितनी सुन्दर लड़की हूं।' वह चार-पांच वर्ष तक तो लड़की के ही कपड़े पहनता था। जब वह पांच वर्ष का था तो इमिलिया के पुराने स्कर्ट को काट कर उसके लिए पैंट बना दी गयी उसे पहन कर वह बहुत खुश हुआ और उसके बाद उसने लड़के के कपड़े पहनने का प्रतिकार नहीं किया।

1962 में पोलो 39 वर्ष का हो चुका था फिर भी उसके व्यक्तित्व में नारी तत्त्वों की प्रधानता पायी गयी। उसका अपनी बहिनों के अतिरिक्त किसी भी नारी से संपर्क नहीं था, उसने शादी भी नहीं की।

पोलो के व्यक्तित्व की गहरी जांच हेतु उसे मानव शरीर के चित्र बनाने के लिए दिए गये। इस परीक्षण में परीक्षार्थी को मानव शरीर का तीन बार चित्र बनाने का अवसर दिया जाता है। पहला चित्र वह चाहे स्त्री का बनाये या पुरुष का उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। दूसरा चित्र उसे विपरीत लिंग का बनाने को कहा जाता है। तीसरे चित्र में पुन: उसे छूट दी जाती है कि वह अपने मन पसन्द लिंग—स्त्री या पुरुष का चित्र बनाये। परीक्षा का निष्कर्ष इस परिणाम के आधार पर निकाला जाता है कि परीक्षार्थी ने पहला और तीसरा चित्र किस लिंग का बनाया है। पोलो ने पहला और तीसरा दोनों चित्र स्त्री के बनाये।

पोलो में ऐसे अनेक वृत्तांत पाये गये जो कि उसके पूर्वजन्म में इमिलिया के रूप में थे।

अनेक जन्मों का विवरण प्रस्तुत करने वाले प्रकरणों में जॉय बर्वे का विवरण भी उल्लेखनीय है। जॉय ने अपने पिछले दस जन्मों का विवरण बताया है। वैज्ञानिक रूप से इस विवरण का महत्त्व नहीं है क्योंकि इन विवरणों को वैज्ञानिकदृष्टि से सत्यापित नहीं किया जा सका।

अपने एक से अधिक पूर्वजन्मों का विवरण देने वालों में कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने एक जन्म में अपने किसी पशु-योनि में होने का वर्णन किया है। प्रभु नाम के एक बालक ने अपने पूर्वजन्म में हिरण होने का वर्णन किया है। इसी तरह एक बालक सतीश ने पूर्वजन्म में सर्प की योनि में होने का जिक्र किया है तथा बालिका चंचल ने पूर्वजन्म में गाय के रूप में होने का उल्लेख किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

15.5.2 कर्म स्वातंत्र्य का सिद्धान्त

जैन दर्शन कर्म को स्वतंत्र तत्व मानता है। कर्म अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध है। वे समूचे लोक में जीवात्मा की अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों के द्वारा उसके साथ बंध जाते हैं, यह उनकी बध्यमान (बंध) अवस्था है। बंधने के बाद उनका परिपाक होता है, वह सत् (सत्ता) अवस्था है। परिपाक के बाद उनसे सुख-दुखरूप तथा आवरणरूप फल मिलता है, वह उदयमान (उदय) अवस्था है। अन्य दर्शनों में कर्मो की संचित और प्रारब्ध -ये तीन अवस्थाएं बताई गई है। वे ठीक क्रमशः बन्ध, सत् और उदय की समानार्थक है। बंध के प्रति स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये चार प्रकार है।

उदीरणा– कर्म का शीघ्रफल मिलना, उद्वर्तन-कर्म की स्थिति और विपाक की वृद्धि होना, अपवर्तन-कर्म की स्थिति और विपाक में कमी होना, संक्रमण-कर्म की सजातीय प्रकृतियों का एक दूसरे के रूप में बदलना आदि आदि अवस्थाएं जैनों के कर्म सिद्धान्त के विकास की सूचक है।

वर्तमान समय में अनेक स्थानों पर पूर्वजन्म संबंधी वैज्ञानिक विधियों को अपनाते हुए अध्ययन-कार्य चल रहा है।

एक परामनोवैज्ञानिक को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए एक साथ एक इतिहासकार, एक वकील व एक मनोवैज्ञानिक की तरह कार्य करना होता है इसके लिए उसे वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक व समाजशास्त्र संबंधी विधियों में पारंगत होना भी आवश्यक होता है। उसे एक वैज्ञानिक की तरह ही सही प्रश्नों का चयन करना, उचित उपकल्पनाओं की खोज एवं निर्माण करना होता है, उपयुक्त प्रविधियों व उपकरणों आदि का सही तरीके से प्रयोग करना होता है। वैज्ञानिक व्यक्तित्व कैसा होता है? उसकी कुछ विरल विशेषताएं भी होती हैं, जैसे—दृढ़ संकल्प, धैर्य, साहस, पुरुषार्थ, श्रमशीलता, एकाग्रता, सत्यान्वेषी प्रतिभा, निष्पक्षता आदि। वास्तव में एक परामनोवैज्ञानिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व से परिपूर्ण होता है तभी उसे सफलता प्राप्त हो सकती है।

15.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. डॉ. स्टीवेंसन के शोध-कार्यों की समीक्षा करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. विज्ञान के संदर्भ में पुनर्जन्म पर प्रकाश डालें।
2. पुनर्जन्म के प्रमाणों की पुष्टि करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (एक लाइन में उत्तर दें)

1. भारतीय दर्शन की एक प्रमुख मान्यता क्या है?
2. विनोबाजी ने पुनर्जन्म के कितने प्रमाणों का उल्लेख किया है?
3. पुनर्जन्म संबंधी तीसरा प्रमाण किस पर आधारित है?
4. "आधुनिक आलोचक के पास कोई ऐसा साधन भी नहीं जिससे पुनर्जन्म की सत्यता या असत्यता स्थापित की जा सके"—यह वाक्य किसका है?
5. 'दी एविडेंस फार सरवाइवल फ्रोम क्लेइम्ड मेमोरिज ऑफ फोर्मर इनकारनेशनस'—इस पुस्तक के लेखक कौन है?

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. अथर्ववेद की तरह.....में भी पुनर्जन्म का सिद्धांत माना गया है।
2. 17 सितम्बर, 1970 को दौसा, राजस्थान में स्थापित 'सम्यक (परा) मनोविज्ञान शोध' विभाग का उद्घाटन पुरी के जगद्गुरु आचार्य.....द्वारा किया गया।
3. 1972 में श्री बनर्जी द्वारा लिखित एक पुस्तक.....प्रकाशित हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. कारण-कार्य के नियम के आधार पर.....मानना पड़ता है।
5. .....का एक मंत्र स्वर्ग के आनन्दमय जीवन की ओर संकेत करता है जहां प्राणियों की सभी इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं।

15.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय मनोविज्ञान—जगदीश विद्यालंकार
2. भारतीय मनोविज्ञान—डॉ. सीताराम जायसवाल
3. जैनपरामनोविज्ञान—डॉ. रत्नेश, डॉ. प्रभाश्री
4. जैन दर्शन और विज्ञान—मुनि महेन्द्रकुमार
5. आचारांग और महावीर—डॉ. साध्वी शुभ्रयशा
6. परामनोविज्ञान—कीर्ति स्वरूप रावत

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–16 : जैनदर्शन के संदर्भ में पुनर्जन्म–शोध की समीक्षा–पूर्वजन्म–स्मृति विकास की प्रविधियां

संरचना

16.0 प्रस्तावना

16.1 उद्देश्य

16.2 विभिन्न दर्शनों में पुनर्जन्म

16.3 जैन दर्शन के संदर्भ में पुनर्जन्म–शोध की समीक्षा

16.3.1 पुनर्जन्म का कारण

16.3.2 जातिस्मृति ज्ञान के स्रोत

16.3.3 स्व–स्मृति

16.3.4 परव्याकरण

16.3.5 दूसरों के पास सुनना

16.3.6 निमित्त के मिलने पर पूर्वजन्म की स्मृति

16.3.6.1 उपशांतमोहनीय

16.3.6.2 अध्यवसानशुद्धि

16.3.6.3 ईहा–अपोह–मार्गणा–गवेषणा

16.3.6.4 तदावरणीय कर्म के क्षयोपशम के द्वारा

16.4 पूर्वजन्म स्मृतिविकास की प्रविधियां

16.4.1 ध्यान की शक्ति को फोकस करके पीछे लौटना

16.4.2 चित्त को भूतकाल की ओर एक दिशागामी बनाना

16.4.3 वर्तमान जीवन की स्मृतियों में पीछे लौटने का प्रयोग

16.4.4 जाति–स्मरण और आलय विज्ञान

16.4.5 गर्भकाल तथा गर्भाधान की स्मृतियों में प्रवेश

16.4.6 आकस्मिक रूप से पूर्वजन्म स्मृति एवं साक्षी–भाव

16.4.7 पिछले जन्मों की स्मृतियों में प्रवेश से माया का बोध

16.4.8 पूर्वजन्म स्मृति : प्रेक्षाध्यान के प्रयोग

16.4.9 प्रेक्षा : पारदर्शन का प्रयोग

16.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

16.6 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक जगत् में आत्मा, कर्म, पुनर्जन्म आदि विषयों पर गम्भीर एवं सघन चिंतन–मन्थन हुआ है। संसारी आत्मा कर्म के कारण ही पुनर्जन्म को ग्रहण करती है। प्राणी जो कुछ भी अच्छी या बुरी प्रवृत्ति करता है, उसका मूल आधार पूर्वकृत कर्म है। वे पूर्वकृत कर्म इस जन्म के हों, पूर्वजन्म के हों या सैंकड़ों–हजारों जन्मों के पूर्ववर्ती हों पुनर्जन्म की शृंखला के कारण बनते हैं। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि जब तक आत्मा समस्त कर्मों से मुक्त नहीं होती तब तक कर्म आत्मा के साथ संलग्न रहते हैं। इस कर्म विपाक की चर्चा को स्पष्ट करते हुए सूत्रकृतांगसूत्र में कहा है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अस्सि च लोए अदुवा परत्था, सयग्गसो वा तह अण्णहा वा।
संसारमावण्ण परं परं ते, बंधति वेयंति य दुण्णियाणि ॥

इस आधार पर कर्म विपाक की चार कोटियां हो जाती हैं—

1. इस लोक में कर्म किए विपाक भी इसी लोक में प्राप्त होगा।
2. इस लोक में कर्म किए विपाक परलोक में प्राप्त होगा।
3. परलोक में कर्म किए विपाक इस लोक में प्राप्त होगा।
4. परलोक में कर्म किए विपाक भी परलोक में प्राप्त होगा।

16.1 उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप निम्न तथ्यों को जान सकेंगे—

1. विभिन्न दर्शनों में पुनर्जन्म
2. जैनदर्शन के संदर्भ में पुनर्जन्म—शोध की समीक्षा
3. पुनर्जन्म का कारण
4. जातिस्मृति ज्ञान के स्रोत
5. निमित्त के मिलने पर पूर्वजन्म की स्मृति
6. पूर्वजन्म स्मृतिविकास की प्रविधियां
7. ध्यान की शक्ति को फोकस करके पीछे लौटना
8. चित्त को भूतकाल की ओर एक दिशागामी बनाना
9. वर्तमान जीवन की स्मृतियों में पीछे लौटने का प्रयोग
10. जाति-स्मरण और आलय विज्ञान
11. गर्भकाल तथा गर्भाधान की स्मृतियों में प्रवेश
12. आकस्मिक रूप से पूर्वजन्म स्मृति एवं साक्षी-भाव
13. पिछले जन्मों की स्मृतियों में प्रवेश से माया का बोध
14. पूर्वजन्म स्मृति : प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोग
15. प्रेक्षा : पारदर्शन का प्रयोग।

16.2 विभिन्न दर्शनों में पुनर्जन्म

पुनर्जन्म का उल्लेख करते हुए कठोपनिषद् में कहा है, जैसे अन्न पकता है पुनः उत्पन्न हो जाता है वैसे ही मनुष्य भी जन्म लेता है, मरता है और पुनः उत्पन्न हो जाता है। श्रीमद्भगवदगीता में कहा है— जैसे जगत् में मनुष्य पुराने जीर्ण वस्त्रों को त्याग कर अन्य नवीन वस्त्रों को ग्रहण करते हैं, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को छोड़ कर अन्यान्य नवीन शरीरों को प्राप्त करता है। बौद्ध दर्शन में जातक कथाओं से भी पुनर्जन्म की सिद्धि होती है तथा भगवान बुद्ध ने अपने पैर में चुभने वाले कांटे को पूर्वजन्म में किए गए प्राणवध का विपाक बताया, जो कि निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है—

इत एकनवति कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः।
तेन कर्म विपाकेन, पादे विद्धोऽस्मि भिक्षवः।।

सांख्य दार्शनिकों ने आत्मा की संसार में उपस्थिति के निमित्त मुख्य दो कारणों—भोग और अपवर्ग को बता कर पुनर्जन्म को स्वीकार किया है। न्यायवैशेषिक भी पूर्वकृत कर्मों को भोगने के लिए जन्मान्तर की सिद्धि मानते हैं। जैन दर्शन के प्राचीनतम ग्रन्थ का शुभारम्भ ही पुनर्जन्म की अवधारणा से होता है। कुछ मनुष्यों को यह संज्ञा नहीं होती कि वे कहां से आए हैं? उनका पुनर्जन्म होगा या नहीं? पूर्वजन्म में वे कौन थे? यहां से च्युत होकर कहां जाएंगे? 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च।' इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वेद, उपनिषद्, आगम, त्रिपिटक, अवेस्ता, बाईबिल आदि से लेकर अधुनातन वाङ्मय में भी पुनर्जन्म पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विश्वास व्यक्त किया गया है। उत्तराध्ययनसूत्र में राग और द्वेष को पुनर्जन्म का मूल कारण बताया गया है। इस प्रकार पूर्वजन्म के अस्तित्व को भारतीय दार्शनिक जगत् में लगभग सभी ने स्वीकार किया है।

हम कौन हैं? कहां से आए हैं? मृत्युपरान्त कहां जाएंगे? आदि नाचिकेतीय जिज्ञासा भारतीय दर्शन में बहुत महत्त्व रखती है जैसा कि कठोपनिषद् में कहा गया है—

ये यं प्रेते विचिकित्सा अस्तीत्येके नायमस्तीतिचैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयं।। (कठोपनिषद्, 1/20)

उपर्युक्त जिज्ञासा से दर्शन का प्रारम्भ होता है जो पुनर्जन्मवाद का सशक्त धरातल है। कुछ दार्शनिकों को छोड़कर लगभग सभी भारतीय प्रस्थानों में पुनर्जन्म विषयिकी जिज्ञासा और उसका समाधान अनुस्यूत है।

दर्शन का अर्थ है—तत्त्व का साक्षात्कार। सबसे प्रमुख तत्त्व आत्मा है। आयारो में कहा गया है—"जो आत्मा को जानता है, वह सबको जान लेता है।" 'दर्शनं स्वात्म निश्चिति:' अपनी आत्मा का जो निश्चय है, वही दर्शन है।

दर्शन की आत्मा है—अनुभव और उसकी प्रणाली युक्ति पर आधारित होती है। दर्शन के क्षेत्र में तार्किक प्रणाली द्वारा आत्मा, परमात्मा, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म आदि तथ्यों की व्याख्या, आलोचना, स्पष्टीकरण या परीक्षा की जाती है।

अनेक व्यक्ति यह नहीं जानते कि मैं कहां से आया हूं? मेरा पुनर्जन्म होगा या नहीं? मैं कौन हूं? यहां से फिर कहां जाऊंगा?

भारतीय दर्शनों तथा पाश्चात्य दार्शनिकों ने इन प्रश्नों पर विचार किया है। इनके समाधान में मुख्यत: तीन मत प्रस्तुत हुए हैं—

1. आत्मा है, पुनर्जन्म है।
2. आत्मा-परमात्मा है पुनर्जन्म नहीं है।
3. आत्मा है, परमात्मा और पुनर्जन्म नहीं है।

आत्मवादी, पुनर्जन्मवादी परम्परा ने प्रथम विकल्प को मान्यता दी है। जैनदर्शन आत्मा और पुनर्जन्म परम्परा के अस्तित्व को स्वीकार करता है। आत्मा की त्रैकालिक सत्ता है।

ईसाई, इस्लाम आदि दर्शन द्वितीय विकल्प का समर्थन करते हैं किंतु पुनर्जन्म को नहीं मानते।

चार्वाक आदि दर्शन तीसरे विकल्प को स्वीकार करते हैं। वे आत्मा को वार्तमानिक मानते हैं पर परमात्मा एवं पुनर्जन्म के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार शरीर ही आत्मा है।

भगवान महावीर ने कहा—जैसे पूर्वजन्म का संज्ञान नहीं होता वैसे ही अनेक व्यक्ति पूर्वजन्म नहीं जानते। उन्हें यह ज्ञात नहीं होता कि मेरी आत्मा औपपातिक है, पुनर्जन्म लेने वाली है। यहां से च्युत होकर मैं कहां जाऊंगा।

आत्मवाद के ये चार मूल आधार हैं—1. मैं कौन हूं? 2. मैं कहां से आया हूं? 3. क्या मेरी आत्मा पुनर्भवी है? 4. मैं कहां जाऊंगा?

वैदिक ऋचाओं में भी पुनर्जन्म की पुष्टि के प्रमाण मिलते हैं। ऋग्वेद में बताया गया है कि परमात्मा प्राण रूप जीव को भोग के लिए एक शरीर में भेजता है। प्रस्तुत प्रसंग में जैनदर्शन सम्मत पुनर्जन्म सिद्धांत का अवलोकन और विचारणा अवधेय है।

16.3 जैनदर्शन के संदर्भ में पुनर्जन्म—शोध की समीक्षा

पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाला व्यक्ति इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसानी से दे सकता है जो कि बहुधा पूछा जाता है कि कोई व्यक्ति अपने किये गये प्रयत्न के अनुपात में इस जीवन में फल क्यों नहीं प्राप्त कर पाता। कभी-कभी कोई व्यक्ति किसी चीज को प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करता है लेकिन सारी परिस्थितियों के अनुकूल होने के बावजूद भी वह उसे प्राप्त नहीं कर पाता और कभी-कभी अपेक्षाकृत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बहुत कम प्रयास करने पर भी वांछित लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। एक व्यक्ति जो हर तरह से भोला-भाला है, लेकिन सम्पन्न देखा जाता है जब कि कभी समझदार और बुद्धिमान व्यक्ति गरीबी से ग्रस्त देखे जाते हैं। सगे भाई-बहिन जो एक ही माता-पिता से जन्म लेते हैं तथा समान पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश में पलते हैं उनके जीवन में भी बहुत असमानता मिलती है। पुनर्जन्म की धारणा में विश्वास रखने वाले के लिए इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि यह सारा अन्तर पुनर्जन्मों के कर्मों का परिणाम है न कि केवल वर्तमान जीवन में किये कर्मों का। चूंकि पुनर्जन्मों के कार्यों के परिणामों की बची प्रतिक्रियाएं वर्तमान जीवन में किये गए प्रयास उस अनुपात में परिणाम नहीं ला पाते।

पुनर्जन्म की धारणा में विश्वास करने वाले के लिए दूसरा समाधान यह हो सकता है कि पूर्वजन्म की संचित परिणति के कारण व्यक्ति बचपन में ही कवि, लेखक, कलाकार, वक्ता, गणितज्ञ, अभिनेता आदि बनने में दक्षता प्राप्त कर लेता है।

16.3.1 पुनर्जन्म का कारण

आत्मा का स्वभाव यद्यपि ज्ञान, दर्शन स्वरूप शुद्ध, बुद्ध है और यह स्थिति संसारातीत मुक्त आत्माओं की होती है। संसारी आत्मा के शरीर, इन्द्रिय आदि का संयोग बना हुआ है तब तक राग-द्वेष रूप परिणति का भी स्वभाव है। इस राग-द्वेषात्मक स्वभाव के कारण ही वह कर्मबद्ध होती है। परिणाम स्वरूप जीव को मनुष्य, तिर्यंच, नरक और देवगति आदि में परिभ्रमण करना पड़ता है। संसारी आत्माओं के शरीर आदि की प्राप्ति की एक क्रमबद्ध परम्परा है जिसको निम्न श्लोकों के माध्यम से समझा जा सकता है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदि सुगदि।।
गदिमधगदस्स देहो देहादो इन्दियाणि जायन्ते।
तेदि दु वि सयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा।
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।।

अर्थात् परलोक और पुनर्जन्म का प्रश्न संसारी आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है। जो जीव संसार में स्थित हैं, उनके राग-द्वेष रूप परिणामों के कारण 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' का चक्र अबाधगति से चलता रहता है।

महर्षि पतंजली ने भी कर्म को पुनर्जन्म का कारण मानते हुए कहा है कि 'सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः' अर्थात् अविद्या आदि क्लेशों की जड़ रहने तक उस कर्माशय का परिणाम जन्म, आयु और भोग होता है।

16.3.2 जातिस्मृति ज्ञान के स्रोत

जातिस्मृति ज्ञान में लेश्या का उत्तरोत्तर विशुद्ध होना एक अनिवार्य अंग माना गया है।

भगवान महावीर के शिष्य मेघकुमार को विशुद्ध अध्यवसाय लेश्या परिणामों में ही पूर्वभव का ज्ञान होता है। ज्ञातासूत्र में लिखा है कि जितशत्रु आदि राजाओं को मल्लिकुमारी द्वारा विविध वैराग्यरस भरी बातों का उपदेश दिया गया तथा उन्हें पूर्वकृत श्रामण्य की याद करवायी गयी, उस समय उन्हें शुभ अध्यवसाय, परिणाम और लेश्या में जातिस्मृति ज्ञान उपलब्ध हुआ।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने आचारांगभाष्य में व्याख्या करते हुए कहा है कि पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का प्रश्न न केवल आत्मवादी के लिए अपितु प्रत्येक बुद्धिवादी के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसकी उपेक्षा कर हम जीवन-मृत्यु संबंधी सत्य से आंख मूंद लेते हैं। इस प्रश्न के बिना दर्शन का जन्म भी कहां से हो सकता है? क्या आत्मा को शरीर से पृथक् किया जा सकता है। यदि यह शक्य नहीं है तो पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का कथन वास्तविक नहीं है। उसको शरीर से पृथक् किया जा सकता है तभी उसका शरीर के साथ अभेद संबंध नहीं है, यह प्रतीति की जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मेरी आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली है। मेरी आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली नहीं है। मैं पूर्वजन्म में कौन था? यहां से च्युत होकर परलोक में क्या होऊंगा?—यह संज्ञान भी सब मनुष्यों को नहीं होता। 'मैं कौन था'—यह पूर्वजन्म के संज्ञान का विचयसूत्र है—चिंतन, मनन और विश्लेषण करने वाला सूत्र है। 'परलोक में मैं क्या होऊंगा?' यह भावी-जन्म के संज्ञान का विचयसूत्र है।

क्या यह संज्ञान किया जा सकता है? इस जिज्ञासा के उत्तर में भगवान महावीर ने प्रतिपादन किया कि पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का संज्ञान किया जा सकता है। इस शक्यता के प्रतिपादन में तीन हेतुओं का निर्देश किया गया है—

1. स्व-स्मृति।
2. परव्याकरण।
3. दूसरों के पास सुनना।

16.3.3 स्व–स्मृति

स्व-स्मृति प्रथम हेतु है। कुछ बच्चों को बाल्यावस्था में ही पूर्वजन्म की सहज स्मृति प्राप्त होती है। आधुनिक परामनोवैज्ञानिकों ने पूर्वजन्म की सहज स्मृति से संबंधित अनेक घटनाओं का संग्रह किया है। जैन साहित्य में भी इससे संबंधित अनेक उल्लेख मिलते हैं।

सुश्रुत संहिता में यह निर्दिष्ट है कि पूर्वजन्म में जो व्यक्ति शास्त्रों के अभ्यास से अपना अन्तःकरण भावित कर लेते हैं, उन्हें पूर्वजन्म की स्मृति होती है।

16.3.4 परव्याकरण

यह दूसरा हेतु है। किसी आप्त के साथ व्याकरण—प्रश्नोत्तर पूर्वक मनन कर कोई उस ज्ञान को प्राप्त करता है। प्राचीन व्याख्या के अनुसार 'पर' शब्द उत्कृष्टता का वाचक है। धर्म के क्षेत्र में तीर्थंकर उत्कृष्ट होते हैं। इसलिए 'परव्याकरण' का हार्द है—'परवच व्याकरण ही जिन-व्याकरण है, क्योंकि जिन से उत्कृष्ट कोई नहीं है।' (तीर्थंकर द्वारा व्याख्यायित निर्युक्ति में इस अर्थ का समर्थन मिलता है)

चूर्णि और वृत्ति में गौतम स्वामी के उदाहरण का भी उल्लेख किया गया है। गौतम ने भगवान वर्द्धमान महावीर से पूछा—भगवन्! मुझे केवलज्ञान क्यों नहीं हो रहा है? भगवान ने कहा गौतम! इसका कारण है मेरे प्रति तुम्हारा अत्यधिक अनुराग। गौतम ने कहा—भगवन्! ऐसा ही है, ऐसा ही है। भगवान के प्रति मेरा यह स्नेह किस कारण से है?

भगवान ने तब उसके साथ अनेक जन्मों का पूर्व संबंध बतलाते हुए कहा—'गौतम तुम्हारा मेरे साथ लम्बे समय तक संसर्ग रहा है। तुम मेरे चिर-परिचित हो?' आदि। तीर्थंकर की उस वाणी को सुनकर गौतम स्वामी को विशिष्ट दिशागमन—मैं किस दिशा से, कहां से आया हूं—आदि का ज्ञान प्राप्त हुआ।

16.3.5 दूसरों के पास सुनना

यह तीसरा हेतु है। बिना पूछे किसी अतिशय ज्ञानी के द्वारा स्वतः ही निरूपित तथ्य को सुनकर कोई पूर्वजन्म का संज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस विषय में निर्युक्ति की व्याख्या इस प्रकार है—'अन्य के पास सुनकर, तीर्थंकरों से अतिरिक्त सभी अन्य हैं।' चूर्णिकार निर्युक्ति के अर्थ का विस्तार करते हुए नामोल्लेख पूर्वक बताते हैं कि तीर्थंकर से अतिरिक्त जो अन्य केवली, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, दसपूर्वी, नवपूर्वी, आठपूर्वी आदि से लेकर आचारधर, सामायिकधर, श्रावक या कोई सम्यग्दृष्टि—ये सभी व्यक्ति 'अन्य' के अन्तर्गत आते हैं।

16.3.6 निमित्त के मिलने पर पूर्वजन्म की स्मृति

कुछ मनुष्यों को पूर्वजन्म की स्मृति जन्मजात नहीं होती, लेकिन किसी निमित्त के मिलने पर उनको पूर्वजन्म की स्मृति हो जाती है। उसके ये कारण निर्दिष्ट हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. मोहनीय कर्म का उपशम।
2. अध्यवसान शुद्धि (लेश्या-विशुद्धि)।
3. ईहापोहमार्गणागवेषणाकरण।

16.3.6.1 उपशांतमोहनीय

'नमिपव्वज्जा' में मोहनीय के उपशम का उल्लेख किया गया है—

'उसका मोह उपशांत था जिससे उसे पूर्वजन्म की स्मृति हुई।'

16.3.6.2 अध्यवसानशुद्धि

मृगापुत्र ने साधु को देखकर जातिस्मृति ज्ञान प्राप्त किया। वहां मोहनीय कर्म के उपशम और अध्यवसान शुद्धि का एक साथ उल्लेख है।

'उसने वहां जाते हुए एक संयत श्रमण को देखा, जो तप, नियम और संयम को धारण करने वाला, शील से समृद्ध और गुणों का आकर था।'

मृगापुत्र ने उसे अनिमेषदृष्टि से देखा और मन ही मन सोचा—मैं मानता हूं कि ऐसा रूप मैंने पहले कहीं देखा है।

साधु के दर्शन और अध्यवसाय पवित्र होने पर 'मैंने ऐसा कहीं देखा है'—इस विषय में वह सम्मोहित हो गया, चित्तवृत्ति सघनरूप में एकाग्र हो गई और विकल्प शांत हो गए। इस अवस्था में उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो आई।

इस प्रकार हरिकेशबल ने भी विमर्श करते हुए जातिस्मृति प्राप्त की।

'चित्रसंभूति' अध्ययन की पृष्ठभूमि में भी जातिस्मृति का उल्लेख है। भृगुपुरोहित के दोनों पुत्र मुनि को देखकर जातिस्मृति को प्राप्त हुए और उन्होंने पूर्व आचरित तप, संयम को देखा।

जातिस्मृति से धर्म के प्रति श्रद्धा और संवेग में सहज वृद्धि के भाव हो जाते हैं। इस अनुभव के आधार पर भगवान महावीर ने अनेक व्यक्तियों को पूर्वजन्म का स्मरण कराया। मेघकुमार मुनि-प्रव्रज्या को छोड़ने के लिए तैयार हो गया तब भगवान महावीर ने उसे तीसरे पूर्वजन्म की स्मृति कराई। मेघकुमार को भी ईहा-अपोह-मार्गणा-गवेषणा करते हुए शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं तथा तदावरणीय (जातिस्मृति के आवारक) कर्मों का क्षयोपशम होने से संज्ञीपूर्व (समनस्क जन्मों को जानने वाला) जातिस्मृति ज्ञान उत्पन्न हुआ। सुदर्शन सेठ को भी इसी क्रम से जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ।

16.3.6.3 ईहा-अपोह-मार्गणा-गवेषणा

इस प्रसंग में ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा—ये चार पद 'जातिस्मृति' की प्रक्रिया को प्रकट करते हैं।

जैसे ही मेघमुनि ने मेरुप्रभ हाथी का नाम सुना, वहां उसकी ईहा (पूर्व स्मृति के लिए प्रारम्भिक मानसिक चेष्टा) प्रवृत्त हुई। उस हाथी को जानने के लिए चित्त में कुछ आन्दोलन शुरू हुआ। उसके बाद अपोह हुआ—'क्या मैं हाथी था?' यह तर्कणा (मीमांसा) करते हुए वह मार्गणा में प्रविष्ट हुआ। अपने अतीत का अन्वेषण करने के लिए वह अपने द्वारा अनुभूत अतीत की सीमा में प्रवेश कर गया। अतीत का चिन्तन करते करते उसने गवेषणा प्रारम्भ की। जैसे आहार की अन्वेषणा में प्रवृत्त गाय पूर्वप्राप्त आहार के स्थान को प्राप्त कर लेती है वैसे ही गवेषणा करते हुए मेघकुमार को एकाग्र अध्यवसाय से हाथी के रूप में अपने जन्म की स्मृति उपलब्ध हो गई।

16.3.6.4 तदावरणीय कर्म के क्षयोपशम के द्वारा

जाति स्मरण ज्ञान दो प्रकार का होता है—सनिमित्तक और अनिमित्तक। कुछ मनुष्यों को तदावरणीय (जातिस्मृति को आवृत करने वाले) कर्मों का क्षयोपशम होने से जाति-स्मरण ज्ञान होता है, वह अनिमित्तक है। कुछ मनुष्यों को बाह्य निमित्त उपलब्ध होने पर वह प्राप्त होता है, वह सनिमित्तक है।

यह जाति-स्मरण मतिज्ञान का ही एक प्रकार है। इससे उत्कृष्टत: पूर्ववर्ती नौ समनस्क जन्म जाने जा सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आचारांग वृत्ति के अनुसार जाति-स्मृति ज्ञान से संख्येय जन्म जाने जा सकते हैं।

संज्ञीपूर्व—जिन पूर्व जन्मों का ज्ञान किया जाता है वे समनस्क जन्म ही होते हैं। पूर्वजन्मों में जो अमनस्क जन्म होते हैं, उनको नहीं जाना जा सकता। इसकी सूचना 'संज्ञीपूर्व' इस विशेषण से मिलती है।

सबको पूर्वजन्म की स्मृति नहीं होती। इस विषय में तंदुलवेयालिय प्रकीर्णक में यह कारण निर्दिष्ट है—'जन्म और मृत्यु के समय जो दु:ख होता है उस दु:ख से सम्मूढ होने के कारण व्यक्ति को पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती।'

मूर्च्छा में स्मृति लुप्त हो जाती है, इसलिए पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती तथा विशिष्ट निमित्त के बिना पूर्वजन्म के विद्यमान संस्कारों का भी साक्षात्कार नहीं होता। यह भी स्मृति के न होने का कारण है।

जिसे 'वह मैं' इस रूप में पूर्वजन्म की स्मृति होती है उसके मन में अपने त्रैकालिक अस्तित्व के प्रति प्रगाढ आस्था पैदा हो जाती है।

'जो इन दिशाओं और अनुदिशाओं में अनुसंचरण करता है, जो सब दिशाओं और अनुदिशाओं से आकर अनुसंचरण करता है, वह मैं हूं।'

जिसको पूर्वजन्म की स्मृति हो जाती है, वह वस्तुवृत्त्या आत्मवादी होता है। उसको आत्मा के अस्तित्व में शंका नहीं रहती। आत्मा के त्रैकालिक अस्तित्व की स्वीकृति होने पर लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद का स्वीकार होना स्वाभाविक है।

जाति-स्मृति का मुख्यफल असत् से निवृत्ति और सत् में प्रवृत्ति तथा श्रद्धा की प्रगाढता है।

आयारो का सूत्र है—'से आयावाई, लोयावाई, कम्मावाई, किरियावाई।' अर्थात् आत्मा ज्ञात हो जाने पर यह ज्ञात हो जाता है कि लोक है। लोक का अर्थ है—पुद्गल। पुद्गल दृश्य है। लोक्यते इति लोक:—जो दृष्ट होता है, वह लोक है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो आत्मा और लोक को जानता है वह चेतन और अचेतन दोनों को जान जाता है।

कर्म पुद्गल है। आत्मा और कर्म का संबंध है। आत्मा और पुद्गल का भी संबंध है। आत्मा पुद्गल को प्रभावित करती है और पुद्गल आत्मा को प्रभावित करता है।

आत्मा और पुद्गल के संबंध का हेतु है—क्रिया। संबंध क्रिया और प्रवृत्ति के द्वारा स्थापित होता है। जैसे जैसे कषाय क्षीण होते हैं, आत्मा शुद्ध होती है तब पुद्गल और क्रिया का संबंध क्षीण होने लगता है। जब पूर्ण अक्रिया की स्थिति घटित होती है तब सारे संबंध क्षीण हो जाते हैं।

इस प्रकार जब ये चार वाद—आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद फलित होते हैं तब 'सोऽहं' 'मैं वह हूं'—यह प्रत्यभिज्ञा होती है, अस्तित्व की स्मृति होती है तब आत्मा पुष्ट होती है।

वैज्ञानिकों ने आत्मा के वजन को तौलने का प्रयास किया लेकिन आत्मा अमूर्त्त होने के कारण वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से नहीं पकड़ा जा सका। जैनदर्शन के अनुसार पुनर्जन्म पर शोधकार्य आत्मा पर विश्वास करके अध्यात्म की गहराइयों में उतर कर अनुभव के द्वारा किया जा सकता है।

16.4 पूर्वजन्म स्मृतिविकास की प्रविधियां

जाति-स्मरण का प्रयोग अर्थात् ध्यान की शक्ति को पिछले जन्मों की ओर प्रवाहित करना। जाति-स्मरण का अर्थ है—पिछले जन्मों की स्मरण की विधि। पहले हमारा जो होना हुआ है, उनके स्मरणों की विधि। जाति-स्मरण ध्यान का ही एक विशेष प्रयोग है।

16.4.1 ध्यान की शक्ति को फोकस करके पीछे लौटना

स्मृतियां कभी मिटती नहीं, स्मृतियां सिर्फ दबी रहती हैं। यह हमारा भ्रम है कि दबी हुई स्मृतियां हमें मिटी हुई प्रतीत होती हैं। अगर मैं आप से पूछूं कि 1950 की 1 जनवरी को आपने क्या-क्या किया था, लेकिन आप कुछ भी नहीं बता पाएंगे कि 1950 की 1 जनवरी को आपने क्या-क्या किया था। एकदम खाली हो गया है, 1950 की 1 जनवरी का दिन। परन्तु जिस दिन बीता होगा, उस दिन भरा हुआ था, लेकिन आज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खाली हो गया है। आज का दिन भी इसी तरह खाली हो जाएगा। दस वर्ष बाद आज के दिन का कोई पता नहीं चलेगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि 1950 की 1 जनवरी का दिन नहीं था। न ही इसका यह मतलब है कि 1950 की 1 जनवरी को आप नहीं थे। आपके मन में प्रश्न हो सकता है कि उस दिन का स्मरण नहीं है तो हम कैसे मानें कि वह दिन था। हम ध्यान के द्वारा अपनी चेतना को उस अतीत में भी ले जा सकते हैं। हम ध्यान के द्वारा 1 जनवरी, 1950 के दिन का स्मरण कर सकते हैं। उसके स्मरण का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है ध्यान। पूरी एकाग्रता के साथ चित्त को वहां ले जाया जा सकता है। जैसे ही ध्यान का प्रकाश उस पर पड़ेगा, आप जान कर हैरान रह जाएंगे। वह दिन उतना ही जीवंत बन कर आपके स्मृति पटल पर तरोताजा हो जाएगा। जैसे कोई टॉर्च को लेकर अंधेरे कमरे में आए और घुमाये, वह बायीं तरफ देखे तो दायीं तरफ अंधेरा हो जाता है, लेकिन दायीं तरफ मिट नहीं जाता। वह टॉर्च को घुमाये और दायीं तरफ ले आए तो दायीं तरफ फिर जीवित हो जाता है परन्तु बायीं तरफ छिप जाता है।

ध्यान का एक फोकस है अगर इसे विशेष दिशा में प्रवाहित करना हो तो ध्यान को टॉर्च की तरह प्रयोग करना पड़ता है।

16.4.2 चित्त को भूतकाल की ओर एक दिशागामी बनाना

अगर हमें जाति-स्मरण में उतरना है, अतीत को जानने की तड़प है तो हमें भविष्य की तरफ से चित्त की धारा को मोड़ना होगा। हमारा चित्त अधिकांशत: भविष्य की ओर ही गति करता है। इसका कारण यह है कि ज्यादातर व्यक्ति यही सोचते हैं कि हमारा अतीत तो व्यतीत हो गया, अब हमें अपने भविष्य को सुन्दर बनाना है। लेकिन जिसको जाति-स्मरण करना है उसे भविष्य का संवरण करके अतीत में लौटना होगा। वह दृढ़ संकल्प करे कि मैं छ: महीने तक अपने चित्त के फोकस को केवल एक दिशागामी अर्थात् अतीत की तरफ लगाए रखूंगा। अगर ऐसा करने में साधक सफल होता है तो वह निश्चय ही जाति-स्मरण को प्राप्त हो जाएगा।

16.4.3 वर्तमान जीवन की स्मृतियों में पीछे लौटने का प्रयोग

सीधा एक साथ अतीत में नहीं लौटा जा सकता। इसका क्रमिक विकास किया जा सकता है। जैसे शरीर को शिथिल करके ध्यान में चित्त को एक ही आलम्बन दें कि 1 नवम्बर 1970 को क्या हुआ था? आपका चित्त केवल इसी भावना से भावित हो जाए। ध्यान संपन्न होने के बाद भी आपके चित्त में यही संकल्प गूंजता रहे तो आप अनुभव करेंगे कि कुछ ही दिन के प्रयोग से वह दिन दृश्य बन कर आपके सामने दिखायी देने लग जाएगा।

फिर पांच वर्ष की उम्र तक आप सहजता से पीछे लौट सकते हैं। ध्यान में प्रयोग करे कि मैं पांच वर्ष का था तब क्या-क्या घटित हुआ? एकाग्रता जितनी एक दिशागामी होगी, ध्यान की सघन अवस्था होगी तो वे सारी घटनाएं स्मृति-पटल पर चलचित्र की भांति अवतरित होने लग जाएगी। उसके पश्चात् तीन वर्ष की अवस्था में भी लौटने का प्रयास करे तो सफलता मिल सकती है। इस प्रकार ध्यान के प्रयोग से हम नि:संदेह जाति-स्मरण तक पहुंच सकते हैं।

16.4.4 जाति-स्मरण और आलय विज्ञान

जाति-स्मरण को महात्मा बुद्ध ने नाम दिया है आलय विज्ञान। मानव मन का एक कोना है जिसको आलय विज्ञान कहा जाता है। आलय विज्ञान का अर्थ है—'स्टोर हाउस ऑफ कॉन्शसनेस।' जैसे घर में एक कबाड़खाना होता है जहां बेकार सारा सामान वहां डाल दिया जाता है वैसे ही अनेक अनेक जन्मों की अनावश्यक स्मृतियों को 'स्टोर हाउस ऑफ कॉन्शसनेस' में डाल दिया जाता है। हमारा शरीर बदल जाता है पर वह 'स्टोर हाउस ऑफ कॉन्शसनेस' हमारे प्रत्येक जन्म में साथ-साथ चलता है पता नहीं कौन-सी स्मृति की कब आवश्यकता पड़ जाएं। हमने अपने जीवन में अच्छा-बुरा जो कुछ भी किया है सारा का सारा वहां संग्रहीत है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.4.5 गर्भकाल तथा गर्भाधान की स्मृतियों में प्रवेश

जिस व्यक्ति को पांच वर्ष तक पीछे लौटने का अभ्यास परिपक्व हो जाता है। उसे आगे प्रयोग में उतरने में कठिनाई नहीं होगी। उसके ध्यान की प्रक्रिया वही रहेगी, पांच वर्ष के पीछे फिर एक दरवाजा है, वह आपको वहां तक ले जाएगा जहां आपका जन्म हुआ एवं पृथ्वी पर आगमन हुआ। फिर कुछ कठिनाई महसूस होती है, क्योंकि मां के पेट की स्मृतियां भी मिटती नहीं हैं। उनमें भी प्रवेश किया जा सकता है और उस क्षण तक पहुंचा जा सकता है, जिस क्षण कंसेप्शन होता है, जिस क्षण मां और पिता के अणु मिलते हैं और आत्मा प्रवेश करती है। वहां तक पहुंचने के बाद ही पिछले जन्मों में उतरा जा सकता है।

पिछले जन्म में लौटने पर पहले जो स्मरण आएगा, वह अन्तिम घटना का आएगा। ध्यान रहे, जैसे कि हम किसी फिल्म को उलटा चलाएं तो कुछ भी समझ में नहीं आएगा। अथवा कोई व्यक्ति उपन्यास को उलटा पढ़ता है तो कुछ समझ में नहीं आता और व्यक्ति दुविधा में पड़ जाता है, वैसे ही पहली बार पीछे की तरफ लौटने में कुछ भी समझ में नहीं आएगा। क्योंकि घटना के घटने का जो क्रम था, उससे वह बिलकुल उलटा क्रम है।

16.4.6 आकस्मिक रूप से पूर्वजन्म स्मृति एवं साक्षी-भाव

अगर ध्यान करते समय अपने आप ही पूर्वजन्म की स्मृति आकस्मिक हो जाए तो उसमें रस नहीं लेना चाहिए। केवल ज्ञाता-द्रष्टाभाव, साक्षी भाव से देखना चाहिए क्योंकि अनेक घटनाओं का एक साथ झेलने का सामर्थ्य नहीं होता है तो व्यक्ति विक्षिप्त भी बन सकता है। आप प्रयोग से उस धारा को तोड़ सकते हैं।

पूर्वजन्म स्मृति के लिए पहले ध्यान का प्रयोग जरूरी है ताकि मन इतना शांत और शक्तिशाली हो जाए कि उन पूर्वजन्म स्मृतियों को झेलने में समर्थ हो सके। यदि साक्षीभाव का विकास हो जाता है तो फिर दो, चार पूर्वजन्म की स्मृतियां भी मात्र स्वप्न की तरह ही प्रतीत होगी।

16.4.7 पिछले जन्मों की स्मृतियों में प्रवेश से माया का बोध

जिन लोगों ने इस जगत् को माया कहा है, उसका एक कारण जातिस्मरण भी है। जिन्होंने भी पिछले जन्म-स्मरण किये हैं, वे सब माया अर्थात् सपना (Illusion) मात्र रह गये हैं। क्योंकि पिछले जन्म में हम वर्षों तक उनके साथ रहे थे कहां गये अब वे पारिवारिक जन, मित्र, धन-दौलत, मकान आदि सब मात्र सपना है। यदि पिछले जन्म की स्मृतियां आ जाएं, तो जो जन्म अभी चल रहा है, वह सब सपना जैसा मालूम पड़ेगा। ये हवाएं कितनी दफा नहीं चलीं, आकाश में बादल कितनी दफे नहीं बहे। वे सब खो गए, ये सभी भी खो जाएंगे। ये सब खोने के क्रम में ही लगे हुए हैं।

एक अनुभव कि जगत् माया है, द्रष्टा सत्य है और दूसरा दृश्य असत्य है और द्रष्टा सत्य है। दृश्य तो रोज बदल जाते हैं, हर बार बदल गये हैं, लेकिन द्रष्टा देखने वाला वही है। यह ध्यान रहे कि जब तक दृश्य सत्य मालूम होते हैं, तब तक द्रष्टा पर ध्यान नहीं जाता है। जब दृश्य एकदम असत्य हो जाते हैं तब द्रष्टा पर ध्यान जाता है। इसलिए जाति-स्मरण का प्रयोग उपयोगी है लेकिन ध्यान की गहराई में उतरने की आवश्यकता है। तभी जीवन को सपने की तरह देखने की क्षमता प्राप्त हो सकेगी।

बोध प्रश्न :

---

1. सांख्य दर्शन के अनुसार पुनर्जन्म का क्या कारण है?
2. परव्याकरण क्या है?
3. पूर्वजन्म स्मृति की कौन-कौनसी प्रविधियां है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.4.8 पूर्वजन्म स्मृति : प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोग

आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य और युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के निर्देशन में लाडनूं में दिनांक 10 मई से 19 मई तक पूर्वजन्म स्मृति शिविर का आयोजन किया गया जिसमें मुख्यरूप से अर्हता के आधार पर 7 व्यक्तियों को मुनि श्री किशनलालजी ने पूर्वजन्म स्मृति के विशेष प्रयोग करवाये, उनमें से पांच व्यक्तियों को पूर्वजन्म स्मृति हो गयी।

उस समय एक समण मानसप्रज्ञ थे। उन्होंने अपने अनुभव को प्रेक्षा-ध्यान पत्रिका, जून-जुलाई-1993 के संयुक्तांक में लिखा है कि मुनि श्री ने शिविर के प्रारम्भ में तीन दिनों तक सभी साधकों को प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोगों का अभ्यास कराया। इन प्रयोगों से चित्त को जाति-स्मृति में उतरने के योग्य बनाने के बाद प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग जाति-स्मृति के प्रयोग करवाये गये। प्रत्येक साधक को अलग अलग कमरों में शीशे के सामने बिठाया गया। दिनांक 15 मई को मुझे जाति-स्मृति के विशेष प्रयोग के लिए बुलाया गया। मुनि श्री द्वारा बतायी गयी साधना विधि का अनुसरण करने के बाद पूरा शरीर, स्थिर, शिथिल व तनाव मुक्त हो गया। चित्त के विचार-विकल्प सब शांत हो चुके थे। इस अवस्था में मेरी पूर्वजन्म-स्मृति यात्रा प्रारम्भ हुई। मुनि श्री ने वर्तमान क्षण से लेकर माता के गर्भाशयकाल तक की यात्रा करवायी फिर विशेष ध्वनि के साथ उन्होंने मेरे चित्त को पूर्वजन्म में उतार दिया।

श्मशानघाट पर जलती हुई चिता को देखने के बाद मुझे तुरंत ही एक छोटे शहर का मुहल्ला दिखायी पड़ा। वहां लगभग सभी मकान सफेद रंग के थे। एक मकान के सामने दरवाजे पर गेहूं वर्ण का 45 वर्ष का एक तगड़ा सा आदमी (मैं स्वयं) आंखों पर काली फ्रेम वाला ऐनक लगाए खड़ा था। वहां बाहर के दरवाजे और मुख्य मकान के दरवाजे के बीच में थोड़ी-सी जगह थी। घर में इस आदमी के तीन बच्चे, बीबी और वृद्ध मां दिखाई दे रही थी। एक बच्चा बालवय और बाकी दो बच्चे किशोरवय के थे। उनकी बीबी का शरीर भी सप्रमाण था और माता मोटी लेकिन फुर्तिली दिख रही थी। इस आदमी के पांव घर से बाहर निकलने के बाद सूतर (जरी काम) के एक कारखाने की ओर बढ़ गये। जहां वह काम करता था। आदमी का नाम रमणिक भाई और शहर का नाम गोंडल (गुजरात) मालूम पड़ा। मुनि श्री की प्रश्नोत्तरी चालू थी लेकिन आगे कुछ नहीं दिखायी दिया तो वे उससे आगे और पिछले जन्म में ले गये।

इस दूसरे जन्म में एक बड़े शहर की बड़ी सड़क के एक कोने पर तीस वर्षीय आयु का एक आदमी दिखायी पड़ा। काले वर्ण का एक युवक (मैं स्वयं) सब्जी और फल की लारी चलाता हुआ। उसने लम्बी बांह का सफेद शर्ट और सफेद पाजामा पहन रखा था। रास्ते में आगे बढ़ते बढ़ते वह शहर के एक हिस्से में जहां झोपड़ियों का इलाका था, वहां पहुंच गया। उस युवक की अपनी झोपड़ी बड़ी थी, गोबर से लिपी हुई थी। बड़ा स्वच्छ वातावरण था। झोपड़ी में युवक के वृद्ध माता-पिता दिखायी दिये। पिता काष्ट की खाट के ऊपर सोये हुए थे और माता घर का काम कर रही थी। घर के और सदस्य काम करने के लिए बाहर गये हुए थे। युवक का नाम मोहन और शहर का नाम मरीन डाइव (बम्बई) था। उस समय भी मुनि श्री की प्रश्नोत्तरी चालू थी लेकिन आगे कुछ दिखायी नहीं दिया तो वापस वर्तमान जीवन के वर्तमान क्षण में ला दिया गया।

पूर्वजन्म-स्मृति की उपर्युक्त दोनों झलकों के दौरान कायगुप्ति सघनता से सधी हुई थी। स्मृति, कल्पना, चिंतन, विचार, विकल्प आदि के निवृत्ति से मनोगुप्ति भी सघनता से सधी हुई थी। उपर्युक्त घटनाएं मैंने पहले कहीं भी देखी, पढ़ी, सुनी, कही या मन से सोची नहीं थी। पूर्वजन्म सांगोपांग तो नहीं देख सका लेकिन चित्त के स्मृति-पट पर जो कुछ उभरा वह पूर्णरूप से कुदरती ढ़ंग से प्रस्फुटित हुआ। ऐसे विशेष अनुभव के आधार पर मेरा मानना है कि यह झलक मेरे पूर्वजन्मों की सच्ची झलक है और इससे मेरी अध्यात्म रूचि को प्रोत्साहन मिला है।

मुनि श्री किशनलालजी ने प्रेक्षा-ध्यान पत्रिका में लिखा है कि जाति-स्मृति से पूर्व जीवन को जानने के लिए सर्व प्रथम व्यक्ति को शिथिलीकरण का गहरा अभ्यास कराना चाहिए। उसके साथ प्राणायाम, एकाग्रता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एवं ध्यान के प्रयोगों से गुजरना होता है। जाति-स्मृति के इन प्रयोगों में व्यक्ति स्वयं भी उतर सकता है। कुशल प्रयोक्ता की देख-रेख में यदि कोई साधक प्रयोग करें तो वह स्वल्प समय में पूर्व जीवन की स्मृति और दृश्य को उपलब्ध हो सकता है।

जाति-स्मृति के ये प्रयोग प्रारम्भ में जिज्ञासावश किये गये। ज्यों ज्यों कुछ व्यक्तियों पर प्रयोग से उनकी यथार्थता सिद्ध होने लगी, उन पर और विधिवत प्रयोग किये गये।

चुरू जिले का एक कस्बा पड़िहारा है। प्रात:कालीन आसन-प्राणायाम की कक्षा चलती थी। वहां के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति शुभकरण सुराना को पारम्परिक धर्म में विश्वास नहीं था। आसन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग के प्रयोगों से वह आकर्षित हुआ, कक्षा में नियमित आने लगा। उसे पूर्व जीवन और पूर्वजन्म पर विश्वास नहीं था। दूसरे दिन कायोत्सर्ग के गहन प्रयोग के साथ जाति-स्मृति के प्रयोग को प्रारम्भ किया गया। वे जाति-स्मृति के प्रयोग में उतरने लगे। विशाल चरागाह में विशाल मेंढ़ा दिखायी देने लगा। वह बड़ा बलवान था। दूसरी भेड़े और मेंढों को सींग और सिर से बुरी तरह से मार रहा था। मेंढों की परस्पर लड़ाई में वह घायल हो गया। इस दृश्य ने उनके मानस का परिवर्तन कर दिया। प्रयोग के पश्चात् सजग अवस्था में लौट कर उन्होंने बताया कि बचपन में मैं कक्षा के छात्रों, परिवार के अन्य सदस्यों को माथे से मारता था। मुझे खिलाने वाले, व्यवस्था करने वाले तथा मेरी बहिन कहा करती थी कि तुम्हारा सिर बहुत मजबूत था, सिर से तुम सबको मारते थे। उसके पश्चात् उन्होंने अपने जीवन की अनेक घटनाओं से तुलना कर निश्चय किया कि मैं पूर्वजन्म में मेंढ़ा ही था।

इसी तरह का प्रयोग चुरू के विद्यार्थी अशोक कुमार पर किया गया। उसका परिणाम भी विचित्र था। वह लार्ड हेस्टिंग के युग में एक मुसलमान नौजवान था। उसको उसके मित्र ने गोली मारी थी। उसका कारण, वे दोनों एक ही लड़की से प्यार करते थे। उसका ही पिछला जन्म चौधरी परिवार में हुआ। वह जयपुर में मोतीडूंगरी रोड़ पर पढ़ता था। वहीं की एक लड़की से प्रेम होने पर उसकी शादी हो गयी। उसके परिवार के लोग गंगानगर में रहते थे। जांच करने पर सरस्वती भवन, मोती डूंगरी रोड़ आदि मिले। जब कि वह बालक जयपुर कभी भी नहीं गया था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य जानकारी भी प्राप्त हुई।

जापान के श्री साकामोता एवं उनके अन्य साथियों को पूर्व जीवन दर्शन का प्रयोग करवाया गया। श्री साकामोता ने अपने अनुभव को इस प्रकार व्यक्त किया—मेरी चेतना स्पष्ट थी, किंतु मैं अपने दिमाग में एक अन्य चेतना का भी प्रभाव स्पष्ट देख रहा था। अचानक एक शक्ति मेरे नीचे से उभरी और मैं अब अपने वश में नहीं रहा। मेरा सारा कार्य जापानी परम्परा के मुनियों जैसा हो रहा था। मैंने सगर्व कहा—मैं एक मुनि हूं। मैं अपनी इच्छा के बिना बोले जा रहा था और बोलने का ढंग भिन्न था। विश्व परमात्मा है। परमात्मा ही विश्व है। मैंने बहुत वर्षों तक कठिन साधना की है। मैं देखता हूं कि पानी में झरने के बीच साधनारत हूं।

मंत्र सुनकर मैंने पुन: पूर्वभव में प्रवेश किया। यह भव इस भव से भी पहले का था। मैं एक योद्धा हूं। मेरी दूसरी चेतना भी स्पष्ट थी। मैं प्रश्न और उत्तर सुन रहा था। मुझे स्वयं को भी आश्चर्य हो रहा था। एक प्रश्न आया, तुम कहां हो? मैं बहुत ऊंचाई पर अकेला हूं। मैंने अपने को बहुत तरोताजा महसूस किया क्योंकि मेरी खुशी का इजहार हो रहा था। मेरी चेतना ध्यान से लौटी तो मैंने उसी रास्ते को पुन: खोजा जिस रास्ते से यहां तक ध्यान अवस्था में पहुंचा था। उसी समय एक विशेष मंत्र कानों में पड़ा—

मेरे शरीर में शक्ति का संचय था। इसलिए मुझे उस कमरे में पूरी तरह लोट-पोट होकर उस शक्ति को बाहर निकालना पड़ा। मेरी चेतना पुन: वर्तमान में लौट आई। ध्यान संपन्न हो गया। मैंने अत्यंत शांति और प्रसन्नता का अनुभव किया।

मैं विश्वास करता हूं कि प्रेक्षा-ध्यान सम्मोहन नहीं है क्योंकि मेरी चेतना निरंतर स्पष्ट झलकती रही। मुझे याद है यह सब तब घटा जब मैं ध्यानस्थ था। मेरा पूरा विश्वास है कि प्रेक्षा-ध्यान में विश्वव्यापी होने की क्षमता है। पुनर्जन्म के प्रति मेरी आस्था दृढ़ हो गयी। अध्यात्म के प्रयोग करने की ललक पैदा हो गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.4.9 प्रेक्षा : पारदर्शन का प्रयोग

जिस व्यक्ति ने शरीर और मन में घटित होने वाली अवस्थाओं को देखने का अभ्यास किया है, वह अपने वर्तमान भव की तरह अतीत और अनागत को भी देखने लग जाता है। यह है जातिस्मरण का प्रयोग। व्यक्ति पहले स्थूल शरीर की अवस्थाओं को देखेगा, फिर तैजस शरीर की अवस्थाओं को देखेगा, कर्म शरीर में होने वाले प्रकम्पनों को देखेगा। फिर अतीत जन्म को देखने का अभ्यास हो जाएगा। व्यक्ति स्थूल से सूक्ष्म की ओर देखने की यात्रा प्रारम्भ करता है तो धीरे धीरे आगामी जन्म को देखने की स्थिति बनने लग जाती है। यह पारदर्शन की बात आत्म-दर्शन के द्वारा ही संभव बन सकती है। हम केवल दूसरों को ही देखेंगे तो समस्याओं से मुक्ति नहीं मिल सकेगी। दूसरों को देखना हमारी जन्मना प्रकृति बनी हुई है पर इस आदत का परिष्कार कर अपने आप को देखने का अभ्यास करना भी जरुरी है। जिस दिन हमारे में यह संतुलन का अभ्यास सध जाएगा तभी हमारे व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो सकेगा। उस संतुलन की स्थिति में ही हमारा जीवन परिपूर्ण बन सकेगा। यही प्रयोजन है अपने द्वारा अपने दर्शन का, आत्म-साक्षात्कार का।

16.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. जैनदर्शन के संदर्भ में पुनर्जन्म-शोध की समीक्षा करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वर्तमान जीवन की स्मृतियों में पीछे लौटने का प्रयोग क्या है? स्पष्ट करें।
2. पिछले जन्मों की स्मृतियों में प्रवेश से माया का बोध कैसे होता है? विवेचन करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (एक लाइन में उत्तर दें)

1. पारदर्शन की बात किसके द्वारा संभव बन सकती है?
2. विश्वव्यापी होने की क्षमता किसमें है?
3. भोग और अपवर्ग को बता कर पुनर्जन्म को किसने स्वीकार किया है?
4. आचारांग वृत्ति के अनुसार जाति-स्मृति ज्ञान से कितने जन्म जाने जा सकते है?
5. मृगापुत्र ने किसको देखकर जातिस्मृति ज्ञान प्राप्त किया?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. भृगुपुरोहित के दोनों पुत्र.....को देखकर जातिस्मृति को प्राप्त हुए।
2. उत्तराध्ययनसूत्र में राग और द्वेष को.....का मूल कारण बताया गया है।
3. मैं देखता हूं कि पानी में झरने के बीच.....हूं।
4. जातिस्मृति ज्ञान में.....का उत्तरोत्तर विशुद्ध होना एक अनिवार्य अंग माना गया है।
5. संसारी आत्मा कर्म के कारण ही.....को ग्रहण करती है।

16.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. आचारांगभाष्य—वाचनाप्रमुख गणाधिपति तुलसी, भाष्यकार—आचार्य महाप्रज्ञ
2. ज्ञातासूत्र, अंगसुत्ताणि, भाग-3—वाचनाप्रमुख गणाधिपति तुलसी, संपादक—आचार्य महाप्रज्ञ
3. आचारांग और महावीर—डॉ. साध्वी शुभ्रयशा
4. सूत्रकृतांगसूत्र—वाचनाप्रमुख गणाधिपति तुलसी, संपादक—आचार्य महाप्रज्ञ
5. संबोधि का समीक्षात्मक अनुशीलन—डॉ. समणी स्थितप्रज्ञा
6. श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ—प्रधान संपादक—श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री, डॉ. ए. डी. बतरा
7. कर्मवाद और पुनर्जन्म (पाठ : 22, जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्म-दर्शन)—मुनि धर्मेशकुमार
8. प्रेक्षा-ध्यान पत्रिका : जून-जुलाई, 1993
9. प्रेक्षा-ध्यान पत्रिका : अक्टूबर, 1997
10. मनन और मूल्यांकन—आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवर्ग–5 : परामनोविज्ञान एवं अध्यात्म–II

इकाई–17 : परासामान्यज्ञान या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण–मुख्य प्रकार– दूरबोध, परचित्तबोध, मनोमिति, पूर्वाभास

संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 दूरबोध
17.2.1 दूरबोध शब्द का अर्थ
17.2.2 दूरबोध का स्वरूप
17.2.3 जैन दर्शन में दूरबोध का स्वरूप
17.2.3.1 जैन दूरबोध के प्रकार
17.2.3.1.1 ऋजुमति
17.2.3.1.2 विपुलमति
17.2.4 दूरबोध के प्रकार
17.2.4.1 मनोवैज्ञानिक दूरबोध
17.2.4.2 समय का दूरबोध
17.2.4.3 एस्ट्रल दूरबोध
17.2.4.4 सत्य आध्यात्मिक दूरबोध
17.3 अतीन्द्रियदृष्टि के प्रकार
17.3.1 अनुगामी
17.3.2 अननुगामी
17.3.3 वर्धमान
17.3.4 हीयमान
17.3.5 अवस्थिता
17.3.6 अनवस्थिता
17.3.7 अतीन्द्रियदृष्टि (अवधिज्ञान) की प्राप्ति के आधार
17.4 परचित्तबोध
17.4.1 परचित्तबोध का अर्थ
17.4.2 परचित्तबोध का स्वरूप
17.4.3 ऊर्जा का भण्डार
17.4.4 विचार–संप्रेषण के प्रयोग
17.4.5 परचित्तबोध और मनःपर्यवज्ञान
17.4.6 परचित्तबोध के वैज्ञानिक प्रयोग
17.5 मनोमिति
17.5.1 मनोमिति का अर्थ
17.5.2 मनोमिति के ज्ञान का स्रोत
17.5.3.1 पहला चरण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.5.3.2 वस्तु पढने की तैयारी
17.5.3.3 वस्तु का चुनाव
17.5.3.4 पढने की विधि
17.5.3.5 छांट कर चुनाव करने की आवश्यकता
17.5.3.6 जानकारी की शुद्धता में बढोतरी
17.5.3.7 प्रस्तुतीकरण
17.5.3.8 कार्य-विधि का चुनाव
17.5.3.9 व्यक्ति की मनोमिति
17.5.3.10 निदानात्मक मनोमिति
17.5.4 सूक्ष्म ज्योति
17.5.5 आंखों का काम अंगुलियों से
17.5.6 अद्भुत क्षमताओं का विकास
17.5.7 आवश्यक सलाह
17.6 पूर्वाभास
17.6.1 पूर्वाभास का अर्थ
17.6.2 पूर्वाभास का स्वरूप
17.6.3 पूर्वाभास की वैज्ञानिकता
17.6.4 समस्या का समाधान
17.6.5 अर्थक्वेक लेडी
17.6.6 राष्ट्रपति लिंकन और पूर्वाभास
17.6.7 भविष्य वाणी
17.7 अभ्यास हेतु प्रश्न
17.8 संदर्भ ग्रंथ

17.0 प्रस्तावना

परासामान्यज्ञान या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण परामनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। योग साधना के विविध प्रयोगों का अभ्यास करके व्यक्ति अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न बन सकता है। योगशास्त्र के ज्ञाता आचार्यों ने अलौकिक क्षमताओं को जागृत करके जिन विधि-विधानों का आविष्कार किया था, आज के भौतिक विज्ञानी भी उसकी पुष्टि अपने ढंग से कर रहे हैं। ऐसा ही एक प्रयोग पिछले दिनों 'रॉयल युनिवर्सिटी ऑफ रोम' में किया गया था। विषय था 'मनुष्य की दूर-दर्शन शक्ति का विकास और प्रदर्शन।' सुप्रसिद्ध स्नायु मनोवैज्ञानिक डॉ. गिसेप कालिगोरिस ने इसके लिए एक व्यक्ति के शरीर के कुछ मर्मस्थलों को पन्द्रह मिनट तक दबाया जिससे उसकी इन्द्रियातीत क्षमता विकसित हो गई। उसने एक दीवार से दूसरी ओर अवस्थित व्यक्तियों और वस्तुओं का सूक्ष्म से सूक्ष्म सारा विवरण बता दिया। डॉ. गिसेप कालिगोरिस ने उपस्थित अन्यान्य वैज्ञानिकों, प्राध्यापकों को बताया कि "यदि शरीर के कुछ विशिष्ट स्थानों को जागृत किया जा सके तो व्यक्ति को अतीन्द्रिय अनुभूति प्राप्त हो जाती है और वह उन सब वस्तुओं को देखने में सक्षम हो जाता है जो चर्म-चक्षुओं से दिखायी नहीं देता। इस सामर्थ्य के विकसित होने पर मनुष्य कितनी भी दूर स्थित किसी भी वस्तु को एवं किसी भी घटित अथवा संभावित घटना क्रम को देख-सुन सकता है।"

यूरोप और अमेरिका के परामनोवैज्ञानिक सामान्य इन्द्रियों से परे अतीन्द्रिय शक्ति के अध्ययन में संलग्न हैं। सोवियत संघ और चेकोस्लाविया में इन दिनों अनेक परामनोवैज्ञानिक प्रयोग किये जा रहे हैं। यदि इन प्रयोगों से कोई सर्व सुलभ पद्धति प्राप्त हो गयी तो मानव मात्र के लिए पराशक्तियों को प्राप्त करना आसान हो जाएगा। आज तक पराशक्तियों को प्राप्त करना केवल योगियों का ही काम माना जाता रहा है।

(Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चेकोस्लाविया के परामनोवैज्ञानिक डॉ. मिलान रायजल ने सामान्य शक्तियों में अतीन्द्रिय व पराशक्ति जागृत करने के बहुत से सफल प्रयोग किए हैं। वे इन शक्तियों को सम्मोहन के द्वारा जागृत करते हैं। प्रेक्षाध्यान में हम संकल्पशक्ति, प्राणशक्ति, चैतन्यकेन्द्रप्रेक्षा, लेश्याध्यान आदि प्रयोगों के माध्यम से अतीन्द्रिय क्षमता को जागृत कर सकते हैं।

17.1 उद्देश्य

1. अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण क्या होता है? आप ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के प्रकारों को जान सकेंगे।
3. दूरबोध क्या होता है? समझ सकेंगे।
4. जैन दूरबोध से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
5. दूरबोध के प्रकारों को समझ सकेंगे।
6. अतीन्द्रिय दृष्टि के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
7. अतीन्द्रिय दृष्टि के आधार को समझ सकेंगे।
8. परचित्तबोध से साक्षात्कार कर सकेंगे।
9. विचार-संप्रेषण के प्रयोगों से परिचित हो सकेंगे।
10. परचित्तबोध और मनःपर्यवज्ञान से तुलना कर सकेंगे।
11. मनोमिति क्या है? समझ सकेंगे।
12. साईकोमेट्रिक के ज्ञान के स्रोतों से परिचित हो सकेंगे।
13. आंखों का काम अंगुलियों से कैसे करें? परिचित हो सकेंगे।
14. पूर्वाभास क्या होता है? समझ सकेंगे।
15. पूर्वाभास की वैज्ञानिकता को जान सकेंगे।

17.2 दूरबोध (Clairvoyance)

विचारों की अवस्था का पर्यायान्तर रूप विशेष ही दूरबोध है। चित्तवृति के इन विविध रूपों का सीधा संज्ञान ही दूरबोध कहलाता है। दूरबोध की क्षमता से निष्पन्न व्यक्ति सीधे ही किसी के मनोभावों का संज्ञान कर सकता है। जैन विचारक मनोगत भावों के सीधे संज्ञान के तो समर्थक हैं लेकिन विचारों के बाह्यपदार्थों के ज्ञान के संबंध में परामनोवैज्ञानिकों से वे कुछ भिन्न मन्तव्य रखते हैं। यह जैन परामनोविज्ञान का अपना मौलिक अवदान है।

17.2.1 दूरबोध शब्द का अर्थ

'क्लेरवॉएन्स' तथा इससे संबंधित शब्द 'क्लेरओडिएन्स' तथा 'क्लेरसेंटिएन्स' आदि उपर्युक्त शब्दों की उत्पत्ति की भाषा फ्रेंच है। 'क्लेरवॉएन्स' शब्द का अर्थ है—'स्पष्ट देखना।' 'क्लेरओडिएन्स' शब्द का अर्थ है—'स्पष्ट सुनना।' तथा 'क्लेरसेंटिएन्स' शब्द का अर्थ है—'स्पष्ट महसूस करना।

दूरबोध एक प्रकार का अतीन्द्रिय ज्ञान है, जिसका अर्थ है सामान्य भौतिक बोध से परे आधिभौतिक बोध का अहसास करना। अवचेतन मन हमारे दूरबोध का उत्पत्ति स्थल है। इस बात को हम सरलता से समझ सकते हैं कि हमारे सबके अन्दर एक आधिभौतिक पदार्थ का सूक्ष्म शरीर होता है। इस सूक्ष्म शरीर की ज्ञानेन्द्रियों को अपने चित्त की जागृत अवस्था के साथ जोड़ कर जिस अनुभव से हम गुजरते हैं वह दूरबोध है।

17.2.2 दूरबोध का स्वरूप

हमारी भारतीय योग परम्परा में चैतन्य के विकास के लिए कुछ चक्रों पर ध्यान करने की परम्परा है, जिसके द्वारा आधिभौतिक प्रत्यक्षीकरण को मस्तिष्क के अवचेतनमन से जागृत अवस्था अर्थात् चेतना के स्तर पर लाया जा सकता है। लेकिन ज्यादातर ऐसा होत है कि जब ज्ञान अवचेतन स्तर से चेतना की अवस्था में लाया जाता है तब तक अनेक प्रकार की विकृतियों का मिश्रण उसमें हो जाता है उसको जानना और समझना भी कठिन हो जाता है। विभिन्न रहस्यवादियों का मानना है हमारा दूरबोध का ज्ञान दो माध्यमों से होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक माध्यम है हमारा 'अनैच्छिक तंत्रिका-तंत्र' तथा दूसरा माध्यम है 'सेरेब्रो स्पाईनल तन्त्र।' अनैच्छिक तंत्रिका-तंत्र के रास्ते से जो दूरबोध होता है, वह धुंधला होता है तथा ऐसा दूरबोध व्यक्ति की इच्छा के अधीन नहीं होता, इसलिए आवश्यकता पड़ने पर वह कार्य नहीं करता। दूसरा माध्यम है 'सेरेब्रो स्पाईनल तन्त्र' यह दूरबोध ज्यादा उपयोगी है क्योंकि यह व्यक्ति की इच्छा के अधीन रहता है, परिस्थितियों का भी इस पर प्रभाव नहीं पड़ता अत: व्यक्ति को जब आवश्यकता हो तब वह दूरबोध का उपयोग कर सकता है। निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि दूरबोध दोनों ही माध्यमों से होता है।

दूरबोध को हम एक छोटे से उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं। यदि हम प्रकाश को प्रिज्म से गुजारते हैं तो हम देखते हैं वह प्रकाश आगे सात हिस्सों नें विभाजित हो गया है जिसके एक सिरे पर लाल रंग तथा दूसरे सिरे पर बैंगनी रंग होता है। हम यह भी जानते हैं कि लाल रंग से पहले अदृश्य 'इन्फ्रा रेड' किरणे होती हैं तथा बैंगनी रंग के बाद 'अल्ट्रा वॉइलेट' किरणे होती हैं।

यदि इन रंगों के इस बैंड को सफेद पृष्ठभूनि पर डाला जाए और एक दर्जन व्यक्तियों को बुलाकर यदि उनसे रंगों की शुरु तथा अन्तिम सीमा के निर्धारण को पूछा जाए तो अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग सीमाएं निर्धारित करेंगे। कुछ लाल रंग से पहले तथा बैंगनी रंग के आगे तक सीमा निर्धारित करते हैं तो कुछ बैंगनी से पहले तथा लाल रंग के आगे तक निर्धारित करते हैं तथा कुछ लाल एवं बैंगनी रंग तक ही सीमा निर्धारित करते हैं। ये विभिन्नताएं निर्भर करती हैं आंखों की रेटिना, लेंस तथा उस पर्दे की विभिन्न संरचनाओं पर, जिस पर लेंस तस्वीर बनाता है। यह प्रयोग इस बात को बताता है कि कुछ व्यक्ति प्रकाश की उन तरंगों को देख सकते हैं जो मानव की आंखों के लिए अदृश्य होती हैं। अत: जो ज्ञानेन्द्रियां प्रकाश की इन तरंगों का प्रत्यक्षीकरण करती हैं वे सामान्य शरीर की न होकर आधिभौतिक शरीर की होती हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह दूरबोध किसी किसी व्यक्ति को प्राप्त होता है। सूक्ष्म आधिभौतिक शरीर को 'ईथरिक शरीर' भी कहते हैं। ऐसा समझा जाता है कि इस 'ईथरिक शरीर' के द्वारा प्राणशक्ति भौतिक शरीर में प्रवेश करती है। ईथरिक प्रत्यक्षीकरण को 'एक्स-रे' प्रत्यक्षीकरण भी कहा जाता है क्योंकि ऐसा बोध रखने वाला व्यक्ति भौतिक पदार्थ को भीतर तक देख सकता है। ऐसे दूरबोध का प्रयोग शरीर के भीतर होने वाली बीमारियों को जानने के लिए भी किया जाता है।

17.2.3 जैन दर्शन में दूरबोध का स्वरूप

दूरबोध की जैन अवधारणा चित्त द्वारा चिंतित विचारों की सीधी संज्ञानात्मकता है। यह मानव मन की सीमाओं तक ही सीमित है। इसका धारक मनुष्य ही हो सकता है। इसकी प्राप्ति साधना के उच्च आचार के परिणाम स्वरूप होती है। इसके धारक विशिष्ट साधना से चारित्रसंपन्न तथा अप्रमत्तसंयम से संपन्न संयमी निर्ग्रन्थ अनगार ही होते हैं। इस प्रकार जैन दूरबोध साधना की एक उच्चतम भूमिका है। साधारण व्यक्ति को यह दूरबोध कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता, इसके लिए संयम की आराधना अवश्यम्भावी है। नन्दीसूत्र के अनुसार दूरबोध (मन:पर्यवज्ञान) का अवधारक संज्ञीपंचेन्द्रिय के मनश्चिन्तित अर्थ को प्रकट करता है। इसका संबंध मनुष्य क्षेत्र से है। यह गुणप्रत्ययिक है।

17.2.3.1 जैन दूरबोध के प्रकार

जैन दर्शन में दूरबोध को मन:पर्यवज्ञान कहा जाता है। मन:पर्यवज्ञान के दो प्रकार हैं—1. ऋजुमति और 2. विपुलमति।

17.2.3.1.1 ऋजुमति

ऋजुमति जो अपने विषय का सामान्य रूप से प्रत्यक्ष करता है। द्रव्य की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी मनोवर्गणा के अनंत-अनंत प्रदेशी स्कन्धों को जानता-देखता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्षेत्र की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी नीचे की ओर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्ववर्ती क्षुल्लकप्रतर से अधस्तन क्षुल्लकप्रतर तक ऊपर की ओर ज्योतिष्चक्र के उपरितल तक तिरछे भाग में मनुष्यक्षेत्र के भीतर अढ़ाई द्वीप समुद्र तक पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अंतर्द्वीपों में वर्तमान पर्याप्तिक समनस्क पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी जघन्यत: पल्योपम के असंख्यातवें भाग को, उत्कृष्टत: पल्योपम के असंख्यातवें भाग अतीत और भविष्य को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से ऋजुमति मन:पर्यवज्ञानी अनंत भावों को जानता-देखता है। सब भावों के अनंतवें भाग को ही जानता-देखता है।

17.2.3.2.1 विपुलमति

विपुलमति वह कहलाता है जो अपने विषय को विशेष रूप से प्रत्यक्ष करता है। द्रव्य की दृष्टि से विपुलमति मन:पर्यवज्ञानी मनोवर्गणा के अनंत-अनंतप्रदेशी स्कन्धों को ऋजुमति की अपेक्षा अधितर विपुलतर विशुद्धतर और उज्ज्वलतर रूप से जानता-देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से विपुलमति मन:पर्यवज्ञानी ऋजुमति की अपेक्षा उस क्षेत्र से अढ़ाई अंगुल अधिकतर विपुलतर विशुद्धतर और उज्ज्वलतर क्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से विपुलमति मन:पर्यवज्ञानी उस कालखंड को अधितर विपुलतर विशुद्धतर और उज्ज्वलतर रूप से जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से विपुलमति मन:पर्यवज्ञानी ऋजुमति की अपेक्षा उन भावों को अधितर विपुलतर विशुद्धतर और उज्ज्वलतर रूप से जानता-देखता है।

17.2.4 दूरबोध के प्रकार

दूरबोध चार प्रकार का बताया गया है—1. मनोवैज्ञानिक दूरबोध (Psychological Clairvoyance), 2. समय तथा आकाश का दूरबोध (Spatial Clairvovance), 3. एस्ट्रल दूरबोध (Astral Clairvovance) 4. सत्य आध्यात्मिक दूरबोध (True Spiritual Clairvoyance)

17.2.4.1 मनोवैज्ञानिक दूरबोध (Psychological Clairvoyance)

हम अपने दैनिक जीवन में किसी के प्रति विशेष प्रकार के आकर्षण का अनुभव करते हैं अथवा किसी के प्रति घृणा का भी अनुभव करते हैं। जैसा कि कहा गया है—

I do not like thee, Dr. Fell, The reason why, I cannot tell. बिना सही कारण जाने, किसी के प्रति आकर्षण अथवा घृणा का भाव हमारे मस्तिष्क में प्राय: आ जाता है। यह भाव हमारे मस्तिष्क के अवचेतन स्तर की गहराई से उभरता है। इस भाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार है कि कभी कोई व्यक्ति सहयोग करके प्रसन्नता का भाव पैदा करता है और कभी कोई हमारा अहित करके हमें दु:ख पहुंचाता है लेकिन समय के साथ उसको हम भूल जाते हैं फिर भी उसकी छाप हमारे अवचेतन मन के किसी कोने में छिपी रहती है। इस प्रकार दूरबोध दृश्य तस्वीरों, भावनात्मक संवेगों एवं हमारे मानसिक विचारों का योग है, जब हम प्रयोग करते हैं तो वे अवचेतन स्तर से चेतना के स्तर पर उभर आते हैं। दूरबोध के विकास में क्रम हो यह जरुरी नहीं है। किसी को पहले तीसरी अवस्था का हो जाता है बाद में दूसरी, पहली और चौथी अवस्था का होता है।

17.2.4.2 समय का दूरबोध (Spatial Clairvoyance)

किसी वस्तु को ध्यान का केन्द्र बना कर, उसके इतिहास को पढ़ने की क्षमता को 'साइकोमेट्री' कहते हैं। 'साइकोमेट्री' वास्तव में समय में दूरबोध है, जिसमें किसी वस्तु को आरम्भिक बिन्दु की तरह प्रयोग में लाया जाता है। कुछ व्यक्तियों को किसी वस्तु को छूने पर मस्तिष्क में धुंधली-सी तस्वीरें तथा भाव उभरते नजर आते हैं। दूरबोध क्षमता का विकास होने पर कभी-कभी व्यक्ति भविष्य के बारे में भी बताने लग जाता है। इस क्षमता वाले व्यक्ति को विशेष सावधानी की अपेक्षा है क्योंकि उसके पास बहुत सारे लोग परामर्श

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की दृष्टि से आ सकते हैं अत: व्यक्ति में अहम् भावना आ सकती है तथा इसके अत्यधिक उपयोग से उसकी विश्वसनीयता में भी कमी आ सकती है।

17.2.4.3 एस्ट्रल दूरबोध (Astral Clairvoyance)

इसका अर्थ है उन जीवित व्यक्तियों का प्रत्यक्षीकरण जिनके भौतिक शरीर नहीं है। इस प्रकार की क्षमता वाले व्यक्ति को विशेष सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि सभी प्राणी मैत्रीपूर्ण व्यवहार वाले नहीं होते। एस्ट्रल स्तर पर वस्तुओं में घनत्व नहीं होता, वे विचार तथा इच्छा की ताकत से विभिन्न प्रकार की आकृतियों में मोड़े जा सकते हैं। जिन जीवों का अस्तित्व एस्ट्रल स्तर पर होता है, वे विशेष प्रकार की परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। जिन्हें मानव मस्तिष्क समझने में अक्षम रहता है जब तक उन्हें समझने के लिए प्रशिक्षित नहीं कर लिया जाता है।

17.2.4.4 सत्य आध्यात्मिक दूरबोध (True Spiritual Clairvoyance)

नवीनतम अन्वेषणों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अतीन्द्रियदृष्टि एवं दूरबोध की वैज्ञानिक विवेचना की जा सकती है और पुरातन धार्मिक विश्वास इसकी प्राथमिक सामग्री प्रदान करते हैं। परामनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि जिन व्यक्तियों को अतीन्द्रिय दृष्टि एवं दूरबोध की शक्ति प्राप्त है वे दूसरों के गुप्त विचारों को इन्द्रियों के सहयोग के बिना भी जान सकते हैं। यह क्षमता सामान्य व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होती अपितु कुछ विशिष्ट आध्यात्मिक व्यक्तियों को ही प्राप्त होती है। जैनमनोविज्ञान भी अतीन्द्रिय दृष्टि एवं दूरबोध की प्रामाणिकता को स्वीकार करता है। इन्द्रियतर प्रत्यक्ष को हम तीन रूपों में विभाजित कर सकते हैं—सीमित इन्द्रियतर प्रत्यक्ष (अवधिज्ञान), मानसिक क्रियाओं का इन्द्रियतर प्रत्यक्ष (मन:पर्यवज्ञान) तथा पूर्ण इन्द्रियतर प्रत्यक्ष (केवलज्ञान)। परामनोविज्ञान में अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान को अतीन्द्रियदृष्टि, दूरदृष्टि तथा दूरबोध कहा जाता है।

जैनदर्शन की मान्यता है कि 'वे वस्तुएं जिनका एक निश्चित आकार, रूप, रंग हो वे ही अतीन्द्रियदृष्टि के द्वारा अनुभव में आ सकती हैं। यह क्षमता भी सब व्यक्तियों में समान नहीं होती। इसका कारण चेतना की परतों पर छाया हुआ आवरण है। अपनी उच्चतम क्षमता में अतीन्द्रियदृष्टि उन सभी वस्तुओं एवं प्रत्ययों का साक्षात् कर सकती है जो आकारवान हो। जहां तक क्षेत्र सीमा का प्रश्न है, अतीन्द्रियदृष्ट सम्पन्न व्यक्त असंख्य ब्रह्माण्डों जितने क्षेत्र को अपनी क्षमता द्वारा अवगाहित कर लेता है।'

अतीन्द्रियदृष्टि निष्पन्न व्यक्ति काल की अपेक्षा से भूत एवं भविष्य के समय चक्रों का भेदन कर प्रत्यय का प्रत्यक्षण कर सकता है पर इसकी एक सीमा यह है कि अतीन्द्रियदृष्टि वस्तु के एक भाग को ही देख सकती है न कि समस्त वस्तुओं के समस्त पर्यायों। न्यूनतम क्षमता की अवस्था में इसकी आवृति सीमा एक अंगुल जितने क्षेत्र में सीमित हो सकती है। अर्थात् एक अंगुल क्षेत्रस्थ वस्तु का ही ज्ञान करा सकती है। काल की अपेक्षा से इसका न्यूनतम टिकाऊपन एक सैकिण्ड से भी कम समय है। इस तरह इसकी देश-कालगत क्षमता के अवधारक व्यक्ति की क्षमता से निर्धारित होती है।

17.3 अतीन्द्रियदृष्टि के प्रकार

जैन परामनोविज्ञान में अतीन्द्रियदृष्टि (अवधिज्ञान) को छ: प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है—1. अनुगामी 2. अननुगामी 3. वर्धमान 4. हीयमान 5. अवस्थिता 6. अनवस्थिता।

17.3.1 अनुगामी

प्रथम अतीन्द्रियदृष्टि को अनुगामी कहा गया है। इसका धारक व्यक्ति जहां कहीं भी जाता है, यह क्षमता उसके साथ रहती है।

17.3.2 अननुगामी

दूसरी अतीन्द्रियदृष्टि अननुगामिक कहलाती है, यह ठीक अनुगामी के विपरीत होती है। जहां प्राणी जन्म ग्रहण करता है वहीं यह सक्रिय रहती है। अपने जन्म स्थान को छोड़ कर दूर जाने पर यह प्राणी का अनुगमन नहीं करती अत: इसे अननुगामी कहा गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.3.3 वर्धमान

जिस अतीन्द्रियदृष्टि की क्षमता का देश, काल के अनुरूप विस्तार होता है वह 'वर्धमान' कहलाती है।

17.3.4 हीयमान

जिस अतीन्द्रियदृष्टि में समय, क्षेत्र के अनुरूप गिरावट आती रहती है वह हीयमान है।

17.3.5 अवस्थिता

पांचवीं अतीन्द्रियदृष्टि अवस्थिता है जो न कभी घटती है और न बढ़ती है।

17.3.6 अनवस्थिता

छठी अतीन्द्रियदृष्टि अनवस्थिता कहलाती है, जो कभी बढ़ती है और कभी घटती है। (इसकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें पंचम पत्र का पाठ 18)

17.3.7 अतीन्द्रियदृष्टि (अवधिज्ञान) की प्राप्ति के आधार

इस विश्लेषण के साथ एक तथ्य और ज्ञातव्य है कि अतीन्द्रियदृष्टि की प्राप्ति के दो आधार स्वीकार किए गए हैं। प्रथम भवप्रत्यय अतीन्द्रिय क्षमता, जो विशिष्ट जन्मावस्था यथा देव, नारकीय योनि में उत्पत्ति के साथ ही प्राप्त हो जाती है। दूसरी अवस्था है गुण-प्रत्यय अतीन्द्रिय क्षमता। यह क्षमता विशिष्ट साधना से प्राप्त होती है। प्रथम भवप्रत्ययिकी अतीन्द्रिय क्षमता जीवन पर्यन्त बनी रहती है। अपरा गुण-प्रत्ययिकी अतीन्द्रिय क्षमता समय के कुहासे में विलुप्त भी हो सकती है।

अतीन्द्रियदृष्टि सभी प्राणियों को प्राप्त हो सकती है, आवश्यकता है पुरुषार्थ करने की। श्री अरविंद के शब्दों में—"यदि जो विकास प्रकृति में हो रहा है वह प्रधानतः चेतना का विकास है तो मानव जैसा वर्तमान दशा में है, इस विकास क्रम का अन्तिम सोपान नहीं हो सकता। वह आत्मा की अत्यन्त अपूर्ण अभिव्यक्ति है, बुद्धि इस अभिव्यक्ति का अत्यन्त सीमित रूप तथा उपकरण है। बुद्धि चेतना की मध्यवर्ती कड़ी है। बुद्धि का अस्तित्व केवल अन्तर्कालीन है। यदि मानव बुद्धि के अतिक्रमण में असमर्थ है तो उसे पीछे हो जाना चाहिए और पराबुद्धि तथा अतिमानव को आविर्भूत होकर सृष्टि का नेतृत्व करना चाहिए।

दूरबोध के लिए जर्मनी के पीटर हरगौस का उदाहरण लिया जा सकता है। पीटर विश्व के सर्वाधिक प्रसिद्ध और सफल भविष्य वक्ता रहे हैं। उसे अतीन्द्रिय दर्शन की यह क्षमता सहज ही प्राप्त हुई थी। वह किसी भी व्यक्ति को देखता तो उसके बारे में सब कुछ जान जाता था। इतना ही नहीं, उससे संबंधित भूत, भविष्य और वर्तमान फिल्म की भांति उसके सामने नाचने लगता था।

एक्सटर्डम—हॉलैण्ड के पास पीटर हरगौस एक सैनिक मुख्यालय में सीढ़ी से पैर फिसल जाने से तीस फिट की ऊंचाई से नीचे गिरा और उसके सिर की हड्डियां चटक-सी गयी और वह बेहोश हो गया। तीन दिन के बाद बेहोशी दूर हुई तो पीटर दूरबोध की क्षमता से संपन्न पाया गया इसके लिए उसे अपने आप पर भी आश्चर्य हो रहा था।

डॉ. पॉल ब्रण्टन ने 'क्यूएस्ट ऑफ द ऑवरसेल्फ' नामक अपनी कृति में दूरबोध एवं परचित्तबोध के शोध की प्रासंगिकता के बारे में विस्तृत वर्णन किया है, उसकी वैज्ञानिक उपयोगिता हम निम्न शब्दों में जान सकते हैं—'Half a dozen universities in different countries have announced courses in psychical research, whilst Dr. J. B. Rhine has been carrying out laboratory investigations at the Duke University in America into extra-sensory perception to a point where the reality of telepathy and clairvoyance has been established in a manner which definitely brings it within the scope of approved experimental science.'

बोध प्रश्न 1:

---

1. *परासामान्य ज्ञान क्या है?*
2. *एस्ट्रल दूरबोध क्या है?*
3. *अतीन्द्रियदृष्टि के कौन-कौन से प्रकार है?*

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.4 परचित्तबोध (Telepathy)

वैज्ञानिकों की दृष्टि अब विचारशक्ति की तरफ भी गयी है। ऊर्जा के स्रोत जैसे, परमाणु, विद्युत, भाप, प्रकाश, तेल आदि साधनों में भी विचारशक्ति को महत्त्व दिया जा रहा है। अध्यात्म के क्षेत्र में विचारशक्ति का प्रारम्भ से ही महत्त्व रहा है। टैलीपैथी इसका एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

17.4.1 परचित्तबोध का अर्थ

टैलीपैथी का अर्थ है बिना किसी आधार या यंत्र के अपने विचारों को दूसरों तक संप्रेषित करना तथा दूसरों के विचारों को ग्रहण करना। टैलीपैथी विचार संचरण का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। एक स्थान पर बैठा हुआ व्यक्ति हजारों मील की दूरी पर स्थित व्यक्ति के विचारों को जान सकता है और अपना संदेश उस तक विचार-संप्रेषण के माध्यम से पहुंचा सकता है। यह रेडियो, टेलीविजन से मिलती-जुलती पद्धति है। जो कार्य तार, टेलीफोन जैसे यंत्रों से होता है वह बिना किसी प्रत्यक्ष माध्यम के अपने आप संपन्न होने लगता है।

17.4.2 परचित्तबोध का स्वरूप

हेलिन हिचकोक ने टैलीपैथी के स्वरूप को बताते हुए अपनी पुस्तक 'द मैजिक ऑफ साइकोग्राम : न्यू वे टु पॉवर एण्ड परोस्पेरिटी' में लिखा है कि Telepathy is one of the greatest gift available to you. While you would miss not having the use of one of your five physical senses, your sixth sense has even greather value than all of the others.

Since all Telepathy is a mental or psychic process, the expression Mental Telepathy is actually redundant and erroneous when it is intended to cover all forms of Telepathy. Mental Telepathy is only one form or phase of Telepathy. ESP, Psychometry, Psychokinesis, and Precognition are some of the other branches of Telepathy as well as Psychic or Contact Telepathy.

To develop any form of Telepathy, it is necessary to sit quietly, relax, and concentrate on some quality. Since it is hard for most individuals to creat a vacuum or make their mind a blank, it might be better or easier to try to pinpoint or concentrate on one thought. (page 142)

रेडियो प्रसारण में एक स्थान से बोले हुए शब्द आकाशीय तरंगों के माध्यम से सभी दिशाओं से दूर-दूर तक फैलते हैं। जहां भी उनको सुनने के लिए यंत्र रखे जाते हैं वहां आसानी से सुन लिए जाते हैं। दूरदर्शन में भी यही प्रक्रिया होती है। एक स्थान से दृश्यों को विद्युतशक्ति के सहारे आकाश में फेंका जाता है, वे दृश्य आकाश तरंगों के रूप में अन्तरिक्ष में बिखरते हैं। उन्हें देखने के लिए जहां उपकरण लगे होते हैं वहां बटन दबाते ही दृश्य दिखायी देने शुरू हो जाते हैं। मस्तिष्क भी इसी प्रकार का एक शक्ति उत्पादक केन्द्र है। यहां से विचार उठते हैं और वे सारे ब्रह्माण्ड में फैल जाते हैं, किंतु वे पकड़ में उन्हीं के आते हैं जिसमें उनको ग्रहण करने की अनुकूल क्षमता हो। तिब्बत के महान योगी 'मिलारेपा' ने अपनी मृत्यु से सात दिन पूर्व अपने प्रिय शिष्य 'तेयुंग' को विचार-संप्रेषण के माध्यम से सूचना दे दी कि तुम अपने गुरू के अन्तिम दर्शन करने के लिए शीघ्र पहुंच जाओ। वह आता है तो दर्शन करते ही गुरू उसे रास्ता दिखाकर अदृश्य हो जाते हैं।

हेलिन हिचकोक के अनुसार, 'Mental Telepathy communicats by means of thoughts transferred from one person to another. Psychic Telepathy consists of communicating by means of symbols. The symbols may be anything such as a cross, square, a picture, an automobile, a horse, or a single word. Often the symbol is revealed to you in a dream and requires interpretation to understand. For example, you might visualise objects such as a train or a plane in your dream. This could mean you will take a trip.' (Page 143)

कुछ व्यक्तियों के अनुसार मरने वाला व्यक्ति जो बात सोचता है वह कोई अन्य व्यक्ति 'टैलीपैथी' द्वारा ग्रहण कर लेता है और फिर उस व्यक्ति का मस्तिष्क उसे एक नाटकीयरूप विभ्रम के रूप में उसे उसकी अनुभूति प्रदान करा देता है। प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक श्री एन. एम. टेरिल ने अपनी पुस्तक 'एपरिशन' में इसी विचार को मूलभूत रूप में आधार बनाकर विस्तार पूर्वक व्याख्या की है। उनके मतानुसार मन का एक स्तर सभी व्यक्तियों में समान रूप से व्याप्त है, अस्तु अनेक व्यक्ति भी एक ही प्रकार का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.4.3 ऊर्जा का भण्डार

दिव्यदृष्टि के अस्तित्व के संबंध में अनुसंधानरत मूर्धन्य वैज्ञानिक गेविन मैक्सवेल ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि यह क्षमता सभी मनुष्यों में होती है। लगातार प्रयत्न और पुरुषार्थ करने पर उसे जागृत और विकसित किया जा सकता है।

मनुष्य चेतना शक्ति का विशाल भण्डार है। यदि उस चेतना को सुनियोजित ढंग से नियंत्रित करके उसका सही दिशा में उपयोग हो तो व्यक्ति विलक्षण अद्‌भुत क्षमता को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के पास ही यह विलक्षण ऊर्जा का भण्डार है कि वह अपनी विवेक चेतना के द्वारा उसे विकसित कर सकता है, क्योंकि मानव जैसा नाड़ी-संस्थान अन्य किसी भी प्राणी के प्राप्त नहीं हुआ है।

17.4.4 विचार-संप्रेषण के प्रयोग

डॉ. सोल और श्रीमती गाल्डने ने बेसिज शिकलटन पर पत्तों के प्रयोगों की एक नई शृंखला शुरु की। इन प्रयोगों में प्रेरक और ग्राही दोनों की क्रियाओं के निरीक्षण हेतु दो व्यक्ति नियुक्त किए गए। प्रयोगों की अन्य दशाएं भी इस प्रकार से रखी गयी कि निष्कर्षों की व्याख्या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के अतिरिक्त किसी अन्य परिकल्पना द्वारा न हो। इन प्रयोगों का विस्तृत विवरण सोल ने अपने ग्रन्थ 'मॉडर्न एक्सपैरिमेन्टस इन टैलीपैथी' में दिया है। इन प्रयोगों में शिकलटन ने 3789 में से 1101 बार अगले पत्ते के बारे में सही अटकल लगाई। मात्र संयोग से ऐसा होने की संभावना 1035 में से एक बार थी। इसी प्रकार ग्लोरिया स्टेवर्ट के साथ प्रयोगों में प्राप्त परिणामों की सांख्यिकीय संभावना 1070 में से एक बार पाई गई। रूसी विद्वान एल. वासिलियेव ने सन् 1960 में बताया कि वे एक लम्बे अर्से से परचित्तबोध के प्रयोग कर रहे हैं। सोवियत विज्ञानियों ने भूमि और जलमग्न पनडुब्बी के मध्य खरगोश एवं उसके नवजात छोनों के बीच भी इस प्रकार के प्रयोगों में बहुत ही आश्चर्यकारी सफलता अर्जित की। 1966 में किया गया 'द ग्रेण्ड मास्को साइबेरिया टैलीपैथी टेस्ट' तथा 1971 में अन्तरिक्ष यात्री एडगर के द्वारा अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर विचार-संप्रेषण के प्रयोग आदि इस क्षेत्र में वैज्ञानिक अभिरुचि के प्रतीक हैं। अधिकांश प्रयोग आशातीत सफलता वाले रहे हैं।

17.4.5 परचित्तबोध और मन:पर्यवज्ञान

टैलीपैथी और मन:पर्यवज्ञान की तुलनात्मक समीक्षा करें तो हमें निम्नलिखित समानताएं प्रतीत होती है।

1. दोनों ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में इन्द्रियों तथा अन्य भौतिक उपकरणों की आवश्यकता नहीं हैं।
2. ये दोनों ही प्रक्रियाएं दिक्काल की सीमाओं से निरपेक्ष हैं।
3. दोनों ही संज्ञान विशिष्ट मनोवैज्ञानिक दशाओं में संभव हैं।

टैलीपैथी और मन:पर्यवज्ञान में उपर्युक्त समानताओं के बावजूद भी दोनों में कुछ ऐसी भिन्नताएं भी हैं जिनके कारण उनको एक नहीं माना जा सकता। इस प्रसंग में साध्वी श्रुतयशाजी ने अपनी कृति 'ज्ञान मीमांसा' में विश्लेषण किया है, जो इस प्रकार है—

1. मन:पर्यवज्ञान में ज्ञाता आत्मा है जबकि टैलीपैथी में जानने का अधिकार मन को सौंपा गया है। अत: वह जैनदृष्टि में अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष की कोटि में नहीं आ सकता।
2. मन:पर्यवज्ञानी मानसिक विचारों को जानने के लिए मनोद्रव्य का साक्षात् करता है जबकि टैलीपैथी में मनोद्रव्य का साक्षात् नहीं होता।
3. मन:पर्यवज्ञान विशिष्ट संयम एवं अवधान की अपेक्षा रखता है जबकि टैलीपैथी के प्रयोगों में उसकी अपेक्षा नहीं की गयी है।
4. टैलीपैथी में विचार संप्रेषित किए जाते हैं जबकि मन:पर्यवज्ञान में विचारों को जाना जाता है। वस्तुत: टैलीपैथी के प्रयागों में यह देखा गया है कि प्रयोगकाल में अभिप्रेषक और अभिग्राहक के अवचेतन या अचेतन मन में कोई समानता—सामंजस्य रहता है। वहीं उस अभिग्राहक में अभिव्यक्त होकर टैलीपैथी का रूप ग्रहण करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार स्पष्ट है कि टैलीपैथी आदि ज्ञान जैन ज्ञानमीमांसा के अनुसार पूर्ण विकसित मन:पर्यवज्ञान तो नहीं कहे जा सकते पर वे उसके अंश के रूप में समझे जा सकते हैं। एक सामान्य व्यक्ति भी चेहरे और हावभाव के आधार पर विचारों का अनुमान लगा लेता है। एक गर्भस्थ शिशु भी अपनी भ्रूण अवस्था में न्यूरोपेप्टाइड हार्मोन्स के स्राव के आधार पर मां के विचारों की ध्वनि तरंगों को जान लेता है, पर इन्हें अव्यक्ततम होने के कारण मन:पर्यवज्ञानी नहीं कहा जाता उसी प्रकार जैसे पांचों ज्ञानेन्द्रियों के अल्पतम विकास के आधार पर एकेन्द्रिय जीवों को संज्ञी पंचेन्द्रिय नहीं कहा जाता।

संयम करने से साधक को शक्तियां प्राप्त होती हैं। उनसे वह दिव्य दृष्टि, दिव्यश्रोत, दिव्यगंध, दिव्यवाक् तथा दिव्यस्पर्श की शक्ति प्राप्त कर निज स्वरूप में प्रतिष्ठित एवं आध्यात्मिकता के उत्कर्ष को प्राप्त कर लेता है। परामनोवैज्ञानिकों का मानना है कि ऐसे अतीन्द्रिय अनुभव टैलीपैथी के कारण होते हैं। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि मनुष्य में टैलीपैथी प्राप्त करने की योग्यता होती है। इस शक्ति के द्वारा व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का उपयोग किए बिना सीधा ही अपने विचारों को अन्य व्यक्ति के मस्तिष्क तक संप्रेषित कर देता है। जहां दो व्यक्तियों के विचारों में तादात्म्यभाव जुड़ जाता है वहां यह टैलीपैथी का प्रयोग काफी आसान हो जाता है।

17.4.6 परचित्तबोध के वैज्ञानिक प्रयोग

टैलीपैथी के क्षेत्र में 'डबलिन युनिवर्सिटी' के मूर्धन्य वैज्ञानिक सर विलियम वैरेट, इंग्लैण्ड के 'सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च' के प्रमुख प्रो. सिजविक, रूस की 'लेनिनग्राड युनिवर्सिटी' के शरीरविज्ञानी प्रो. लियोनिद वासिलयेव ने मनुष्य की दूर संचार क्षमता या विचार संप्रेषण क्षमता पर गहन अनुसंधान किया। टैलीपैथी पर चल रहे प्रयोगों को देखा, उनकी सत्यता का गहराई से निरीक्षण किया, तत्पश्चात उनमें निहित सचाई को स्वीकार किया। दूरवर्ती लोगों के मस्तिष्कों को प्रभावित करने में रूसी वैज्ञानिक लियोनिद वासिलयेव ने विशेष सफलता प्राप्त की। दूर-संचार क्षमता का अपना प्रयोग उन्होंने एक ऐसे शोध दल पर किया जो अपने चालू शोध कार्य को छोड़ कर अन्य शोध कार्य में रत करने का प्रयोग चालू रखा। उसके सफल परिणाम पर सबको आश्चर्य हुआ। लियोनिद ने अपना अभिप्राय: गुप्त कागजों में नोट करके साथियों को बता दिया था कि वे अमुक शोध मण्डली की मन:स्थिति में उच्चाटन उत्पन्न करके अन्य कार्य में रुचि बदल देंगे। वस्तुत: कुछ समय में वैसा ही परिवर्तन हो गया। उस शोध मण्डली ने अधिकांश किए हुए कार्य को छोड़ कर नया कार्य अपने हाथ में ले लिया।

17.5 मनोमिति (Psychometry)

जो ऊर्जा उपकरण से अंकित हो सकती है उसे क्या सूक्ष्म और चेतन मस्तिष्क के द्वारा नहीं देखा जा सकता? कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो किसी वस्तु या व्यक्ति का मात्र स्पर्श करके उससे संबंधित प्रत्येक बात और यहां तक कि उसका पूरा इतिहास बता देते हैं। कुछ व्यक्तियों में छठी इन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय होती है। वे अपनी छिपी हुई तरंगों को पकड़ कर चेतना के स्तर पर ला सकते हैं। इस प्रकार के लोगों को 'साईकोमेट्रिक' कहते हैं।

17.5.1 मनोमिति का अर्थ

साईकोमेट्री शब्द दो युनानी शब्दों से बना है। 'साईको' का अर्थ है आत्मा तथा 'मेट्रोन' (Matron) का अर्थ है 'माप।' इस प्रकार साईकोमेट्री का अर्थ हुआ आत्मा को मापने तथा समझने की क्षमता। इस क्षमता को साईकोमेट्री नाम प्रो. डेन्टॉन ने दिया था। उन्होंने अपनी बहिन में इस क्षमता का अनुभव किया था। उन्होंने अपनी बहिन के ऊपर कई प्रयोग भी किए थे। उनकी बहिन अपने हाथ में कोई भौगोलिक (Geological) नमूने को पकड़ कर अपने माथे पर लगाती थी। उस समय वह नमूना कई कागजों में लिपटा व छिपा रहता था, परन्तु वह अपने मस्तिष्क में उभरी कुछ तस्वीरों को देख कर उस नमूने के इतिहास के बारे में बता देती थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

किसी 'साईकोमेट्रिक' को जब विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को देख कर, उसके इतिहास के बारे में बताने को कहा जाता है, तो वह उन सभी वस्तुओं को अलग-अलग रखता है ताकि एक का प्रभाव दूसरे पर न आ सके। वस्तु के इतिहास के विवरण में तीन बातें बतायी जाती हैं—पहला वस्तु का मूल मालिक। दूसरा उसके आसपास का वातावरण। तीसरा उस वस्तु का वर्तमान मालिक। इनका क्रमश: प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्तर माना जाता है। ये तीनों स्तर प्रत्येक 'साईकोमेट्रिक' में विभिन्न अनुपातों में प्राप्त होते हैं।

17.5.2 मनोमिति के ज्ञान का स्रोत

प्रश्न होता है कि 'साईकोमेट्रिक' अर्थात् मनोमिति के ज्ञाता को वस्तु के इतिहास के बारे में किस प्रकार पता लगता है?

इसका एक उत्तर यह है कि यह ज्ञान वस्तु के मूल मालिक से विचार-संचार (Telephathically) प्राप्त किया जा सकता है। दूसरा उत्तर है—'ज्ञान का तालाब' अर्थात् 'कॉस्मिक मेमोरी' से इस ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है।

प्रश्न उठता है कि 'कॉस्मिक मेमोरी' क्या है? इसका समाधान देते हुए डॉ. सी. जी. युंग ने कहा है कि 'एक सामूहिक अवचेतना होती है, जो इन्सान की चेतना के पीछे होती है।' प्रत्येक व्यक्ति अपने अवचेतन की गहराई में सामूहिक अवचेतना से सीधा जुड़ता है। इसी वजह से कुछ परिस्थितियों में मस्तिष्क में छिपे हुए इस ज्ञान को जागृत अवस्था में लाया जा सकता है।

17.5.2.1 पहला चरण

प्रारम्भिक अवस्था में मनोमिति के साधारण संवेदन प्राप्त होते हैं। परन्तु धीरे-धीरे मनोमिति का विकास होता है और कुछ तस्वीरें दिखायी देती हैं और आवाजे भी सुनाई देने लगती हैं।

17.5.2.2 वस्तु पढ़ने की तैयारी

मनोमिति के विकास के लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए—1. प्रयोगकाल में कपड़े ढीले-ढाले हों, तंग कपडे प्रयोग में बाधक होते हैं। 2. शरीर का शिथिलीकरण आवश्यक है। 3. दीर्घश्वास का प्रयोग। लम्बा श्वास लें। श्वास को छोड़ते समय चित्त को सिर के ऊपरी सिरे पर टिकाएं तथा जैसे-जैसे श्वास को छोड़ते जाएं वैसे वैसे चित्त की यात्रा पूरे शरीर में ऊपर से नीचे तक करें। श्वास को पूर्ण खाली करते समय चित्त को पैरों के अंगूठे तक ले जाएं। पुन: श्वास लें तथा प्रक्रिया को दोहराएं।

17.5.2.3 वस्तु का चुनाव

आरम्भिक अवस्था में किसी ऐसी वस्तु का चुनाव करना चाहिए जो प्रबलतम एवं आसानी से पढ़े जा सकने वाले प्रभाव डाल सके। अपने ऐसे किसी मित्र की सहायता लेनी चाहिए जो आप के द्वारा पढ़ी हुई बातों की प्रामाणिकता को बता सके।

प्रत्येक वस्तु के साथ दो मुख्य स्मृतियां जुड़ी होती हैं—

1. व्यक्तिगत (Personal)—जो वस्तु के अपने अलग अस्तित्व से जुड़ी होती हैं।
2. एकत्रित स्मृतियां (Gathered)—जो वस्तु के सम्पर्क में आई हुई विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं के फलस्वरूप होती हैं। ये बहुत जटिल होती हैं तथा इन्हें पढ़ने के लिये विकसित कला की आवश्यकता होती है।

कई बार ऐसा होता है कि स्मृतियों का एक स्तर बहुत शक्तिशाली होता है तथा बारीकियों पर प्रधानता रखता है तथा वस्तु को सामान्य स्मृतियों की गहराई में जाने से रोकता है। अत: आरम्भ में ऐसी वस्तु का चुनाव करें जिसका एक शक्तिशाली प्राथमिक स्मृतियों का आभामण्डल हो अथवा जो कई स्थितियों से न गुजरी हो। अत: प्रारम्भिक प्रयोग साधारण होने चाहिए।

गले का हार पढ़ने के लिये अच्छी वस्तु है, परन्तु अंगुठियों अथवा छोटी वस्तुओं को पढ़ने में मुश्किल आती है। चाबियां पढ़ने के लिये अच्छी वस्तु नहीं है क्योंकि ये कई हाथों में से होकर गुजरती हैं तथा स्मृतियों को जटिल बना देती हैं। यदि दस्तानों को पढ़ना हो तो उन्हें उल्टे कर लेने चाहिए क्योंकि बाहरी सतह पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बहुत सारी स्मृतियां एकत्रित होती हैं। पत्रों को पढ़े तो उनको उनके लिफाफों से अलग कर लेना चाहिए क्योंकि लिफाफे कई हाथों से होकर गुजरते हैं।

17.5.2.4 पढ़ने की विधि

हम पत्र को पढ़ने का उदाहरण लें। पत्र को टेबल पर फैला दें। उस पर हथेलियों को रखें अथवा हस्ताक्षर पर अंगुली का पोर रखें अथवा पत्र को माथे से लगा लें। जो विधि उपयुक्त लगे, उस का चुनाव करें। पत्र का लेखक आप से परिचित हो तो अच्छा रहे लेकिन उसके बारे में कुछ अतिरिक्त आपके साइकोमेट्रिक पठन से भी पता चले, तभी पठन की सच्चाई अथवा झूठ का पता चल सकेगा।

अब पत्र को लेकर आप पत्र के साईकिक रिकॉर्ड को पढ़ने की प्रबल भावना करें। ऐसी भावना करना पर्याप्त है। अपने सबकॉन्शियस को इशारा करें कि जो कुछ भी संस्कार वहां आते हैं, वे आपकी जागृत अवस्था तक चले जाएं। यह पढ़ने को शुरू करने की प्रक्रिया है (Trigges action) अब आप चुपचाप इंतजार करें जब तक कि आपके दिमाग में नये और अलग संस्कार (Impressions) आते हैं। ये या तो साधारण संस्कार (Impressions) होंगे अथवा तस्वीरों या आवाजों से संलग्न होंगे। कभी-कभी सिर्फ तस्वीरें दिखाई दे सकती हैं, परन्तु जो कुछ भी हो, वह सभी अपने सामने बैठे मित्र को बताना चाहिए। मित्र की अनुपस्थिति में टेपरिकॉर्डर में आवाज भर लेनी चाहिए।

इन संस्कारों (Impressions) के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए तथा किसी दुर्घटना के संस्कारों (Impressions) से प्रभावित भी नहीं होना चाहिए। इन संस्कारों के माध्यम से अच्छे अथवा बुरे किसी भी प्रभाव से प्रभावित नहीं होना चाहिए तथा सभी प्रकारों को मस्तिष्क की जागृत अवस्था तक आने देना चाहिए। अगर कोई अवांछित संस्कार प्रबलता से आपको प्रभावित करे तो वस्तु को नीचे रख देना चाहिए तथा दूसरी वस्तु को छूने से पहले हाथ को अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

17.5.2.5 छांट कर चुनाव करने की आवश्यकता

पत्र को साइकोमेट्राईज करने से पत्र के लेखक के विषय में जाना जा सकता है परन्तु अगर पत्र के लेखक को कोई बड़ा मानसिक आघात लगा है तो सबसे पहले इसी के संस्कार प्रबलता से आएंगे। अत: सभी संस्कारों को, जैसे वे दिखते हैं, ऐसे नहीं लेना चाहिए बल्कि छांटकर चुनाव करना चाहिए। विचार बहुत प्रबलता से वस्तु पर प्रभाव डालते हैं अत: विचार तथा शारीरिक क्रियाओं के संस्कारों (Impressions) को अलग करके पढ़ने की आवश्यकता होती है। आरम्भिक अवस्था में यह थोड़ा मुश्किल प्रतीत होता है परन्तु अभ्यास के साथ छांटने में सुविधा होने लगती है।

संस्कार कभी तो रुक-रुक कर, थोड़े-थोड़े इंतजार के बाद आते है अथवा कभी-कभी किसी वस्तु को छूने पर इकट्ठे एक साथ बहुत सारे आ जाते हैं। अत: विचार धीरे आयें अथवा अधिक गति से, बस धैर्य से देखते जाए जो दिखाई देता है।

पत्र के लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव भी प्रबलता से पड़ता है तथा ये प्रभावशीलता का प्रबलतम स्तर बनाते हैं। पढ़ने में भी आसानी से आ जाते हैं।

17.5.2.6 जानकारी की शुद्धता में बढ़ोतरी

कभी-कभी ऐसा होता है कि वस्तु के मालिक के स्वास्थ्य की हालत का प्रत्यक्षीकरण इतनी सघनता से होता है कि उसके द्वारा महसूस किये गए दर्द को हम स्वयं महसूस करने लगते हैं। इस अवांछित अहसास को वस्तु से सम्पर्क को तोड़ कर खत्म किया जा सकता है। आरम्भ में, दस बातों में से दो ही ठीक निकलती हैं तथा अभ्यास के बाद बीस में से सोलह अथवा सत्रह ठीक निकलती हैं। अगर ऐसा हो जाता है तो स्वयं को एक अच्छा साईकॉमेट्रिस्ट समझना चाहिए।

अपने द्वारा किये गए प्रयोगों का रिकॉर्ड बनायें तथा न सिर्फ सफलताओं को बल्कि असफलताओं को भी नोट कर लें। साइकॉमेट्री की शृंखला (faculty) के साथ अपने निजी समीकरण को समझने का प्रयास करें तथा कभी भी बातों को घुमा-फिरा कर, दूसरों पर अपना अच्छा प्रभाव डालने के लिये न बोलें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

17.5.2.7 प्रस्तुतीकरण

कभी-कभी हमें किसी बीमारी अथवा मृत्यु के विषय में पता चलता है, तो इसे सीधे ही न कहकर इस तरीके से कहना चाहिए कि सम्भवत: आगे मार्ग में बाधाएं उपस्थित होने वाली हैं। सीधी कह देने से कई बार सुनने वाले पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा एक और बात का ध्यान रखा जाना बहुत आवश्यक है कि एक साइकॉमेट्रिस का जो कुछ भी पता चलता है, वह उसे बहुत ध्यान से सिर्फ अपने पास तक ही रखे अन्यथा इस के भी बहुत बुरे परिणाम निकल सकते हैं। प्राप्त की गई जानकारी का जिक्र कभी किसी के सामने नहीं करें।

17.5.2.8 कार्य-विधि का चुनाव

अभी तक तो आपके मस्तिष्क में जो कुछ भी सूचनाएं आ रही थीं आप उन सभी को प्राप्त कर रहे थे लेकिन कुछ अभ्यास एवं इस कला के विकास के साथ ही अब आप जो महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त करना चाहते हैं, उसी दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। अब आप इस प्रयोग को अपने ढंग से काम में ले सकते हैं। जैसे ही वस्तु छुई जाती है, दिमाग में एक स्लेटी रंग का धुंआ-सा उड़ता हुआ दिखाई देता है तथा उसमें विभिन्न चमकीले बिंदु भी दिखाई देते हैं। प्रत्येक बिंदु वस्तु के ज्ञान का स्रोत होता है। जब हम मानसिक रूप से प्रश्न करते हैं तो बिंदु अधिक चमक जाते हैं। हमने जो प्रश्न किया था, उसका समाधान मानो हमारे दिमाग में उडेला जा रहा है, ऐसा महसूस होता है। कई बार संस्कारों के साथ विभिन्न प्रकार के रंग भी दिमाग में उभरते हैं जो विषय से संबंधित होते हैं।

17.5.2.9 व्यक्ति की मनोमिति

प्रयोग के द्वारा व्यक्ति को भी साईकोमेट्राईज किया जा सकता है। व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित करके जो कुछ भी दिमाग में आ रहा है, उस जानकारी को प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति को पढ़ते समय उसके आभामण्डल को भी पढ़ा जा सकता है। आभामण्डल को पढ़ते समय व्यक्ति की मानसिकता पर प्रबलरूप से प्रभाव डालकर दूसरे व्यक्ति के बारे में भी जाना जा सकता है।

17.5.2.10 निदानात्मक साईकोमेट्री

रहस्यवादियों के अनुसार 'ईथरिक शरीर' हमारे भौतिक शरीर के आस-पास है तथा बीमारी के लक्षण पहले उसमें प्रदर्शित होते हैं। इसलिए बीमारी शुरू होने से पहले ही मनोमिति के द्वारा व्यक्ति की बीमारी के बारे में जानकारी करके उसका निदान किया जा सकता है। कभी कभी जीवन में अनायास होने वाले घटनाक्रमों से भी मनुष्य की दिव्य क्षमताएं जागृत हो जाती हैं। अमेरिका के कैंटुकी नगर के पास एक छोटे से गांव में रहने वाले एडगर केसी नामक व्यक्ति के साथ ऐसा ही हुआ। एक दिन अचानक वह बीमार पड़ गया। उसकी मांसपेशियों में जकड़न और दर्द इतने जोरों से होने लगा जिसका निदान वहां के प्रख्यात चिकित्सक भी न कर सके। डॉक्टर परामर्श कर ही रहे थे कि उसने आंखें खोली। उसकी छठी इन्द्रिय जागृत हो चुकी थी। मनोमिति के प्रकाश से अपनी बीमारी का नाम, उसका निदान, उपचार वह स्वयं उपस्थित चिकित्सकों को बताने लगा। उसके बताए अनुसार दवाइयां मंगाई गयी और उनके सेवन से वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। प्रकृति प्रदत्त इस शक्ति का उपयोग उसने अनेक रोगियों पर किया। प्रेक्षाध्यान में लेश्याध्यान का प्रयोग इसमें विशेषरूप से उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

17.5.4 सूक्ष्म ज्योति (Astral Light)

रहस्यवादियों के अनुसार सूक्ष्म ज्योति (Astral Light) सामूहिक अवचेतना को कहा गया है। ऐसा माना गया है कि हर भौतिक पदार्थ के अन्दर अभौतिक पदार्थ उपस्थित होता है और उसी के द्वारा सूक्ष्म ज्योति (Astral Light) अपनी गतिविधियां करती हैं। इस अन्दर छिपे अभौतिक पदार्थ में, इस ग्रह पर जितना भी जीवन है, उनका सारा रिकार्ड उपस्थित होता है। तथा इस अभौतिक पदार्थ का संबंध सृष्टि की रचना करने वाले के साथ भी होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पूर्वी देशों में इस 'कॉस्मिक मेमोरी' को 'आकाशीय रिकॉर्ड' भी कहा जाता है क्योंकि उनके अनुसार आकाश तत्त्व के द्वारा ही चेतना कार्य करती है। सथ ही ऐसा भी माना जाता है कि सूक्ष्म ज्योति (Astral Light) में आकाशीय रिकॉर्ड विभिन्न स्तरों पर मिलता है तथा उन भावात्मक और मानसिक धाराओं, जो कि इस ग्रह के सामूहिक अवचेतन (Collective unconscious) में उठती हैं, के पास आ जाने से विकृत हो जाते हैं। ऐसा भी माना जाता है कि व्यक्ति के अन्दर उपस्थित जन्मजात दिव्यता के द्वारा व्यक्ति दिव्य चेतना से जुड़ जाता है तथा 'कॉस्मिक मेमोरी' से संबंध जोड़ लेता है। 'कॉस्मिक मेमोरी' का एक हिस्सा उसकी अपनी व्यक्तिगत मेमोरी होती है।

जेम्स, फेच्नर तथा अन्य रहस्यवादियों का मानना है कि यह ग्रह मिनरल पदार्थ का बना हुआ एक अक्रिय गेंद मात्र ही नहीं है, बल्कि यह एक भीमकाय लेकिन सरल जीवन का वाहक है। तथा इसी वजह से, जो कुछ भी इस पर घटित होता है, उसकी मेमोरी का पूरा रिकॉर्ड रखती है। इस अवधारणा से यह समझा जा सकता है कि पदार्थ का प्रत्येक कण एक माध्यम है जिसके द्वारा विश्व की समस्त आत्माओं से संबंध बनाया जा सकता है।

पीटर हरगोस ने एक मामले में पुलिस को सहायता प्रदान की थी। पीटर हरगोस ने मृतक का कोट हाथ में लिया और हत्या की पूरी घटना का न केवल विस्तार से वर्णन किया वरन यह भी बता दिया कि हत्यारे का एक पैर काठ का है, उसके मूंछे हैं और वह चश्मा लगाता है। पुलिस ऐसे आदमी को पहले ही हिरासत में ले चुकी थी। पीटर हरगोस ने यह भी बता दिया कि हत्या के बाद हथियार कहां छुपाया गया है।

17.5.5 आंखों का काम अंगुलियों से

ऐसे भी बहुत से व्यक्ति देखे गए हैं, जो अपने हाथ-पैरों की अंगुलियों से आंखों का काम लेते हैं। सन् 1972 में सोवियत विज्ञान के एक आदमी के सामने एक ऐसी ही नौ वर्षीय लड़की लायी गयी। लड़की की आंखों पर अच्छी तरह पट्टी बांध दी गयी और उसके सामने शतरंज की गोट बिछा दी गयी। लड़की ने अपनी अंगुलियों से छू-छू कर काली काली गोटें एक ओर कर दी और सफेद सफेद अलग कर दी। इस प्रकार अनेक रंग-बिरंगी कागज की कतरनें भी उसने अलग अलग रंग की छांट कर अलग अलग कर दी। उसके सामने अनेक व्यक्तियों के फोटो रखे गये उनमें वह जिनको जानती थी, उन्हें पहचान कर उनके नाम भी बता दिये। उस लड़की ने बच्चों की किताब भी पढ़ कर सुना दी।

कुछ चीजों की पहचान तो उसने अपने पैर की अंगुलियों से देख कर बता दी। अंगुलियों द्वारा देखने की इस अद्भुत क्षमता का गहन अध्ययन करने के बाद मनोवैज्ञानिक प्रो. कोंस्टालिन प्लातोनेव ने निष्कर्ष निकाला है कि मानवीय चेतना विद्युत की व्यापकता को देखते हुए इस प्रकार की अनुभूति अप्रत्याशित नहीं है, क्योंकि जो शक्ति मानव नेत्रों में कार्य करती है, वही शक्ति शरीर के अन्य अवयवों के ज्ञान तंतुओं में भी विद्यमान रहती है। सवाल केवल उसे विकसित करने का है। ज्ञान तंतुओं के विकसित होने पर मस्तिष्क को वैसी ही जानकारी मिल सकती है जैसी कि आंखों से मिलती है।

17.5.6 अद्भुत क्षमताओं का विकास

मानव में ऐसी तरह तरह की विलक्षण क्षमताएं हैं, जिन्हें विकसित करके व्यक्ति अभूतपूर्व अविस्मरणीय कार्य करके दिखा सकता है। वास्तव में मानव शरीर अपरिमित क्षमताओं का भण्डार है। प्रश्न शक्ति को विकसित करने का है और शक्ति को अभ्यास द्वारा ही विकसित किया जा सकता है। शरीर की सभी प्रत्यक्ष गतिविधियां मन के इशारे पर चलती हैं। कुछ गतिविधियां स्वचलित होती हैं, किंतु ये गतिविधियां भी अचेतन मन की प्रेरणा पर निर्भर करती हैं। मन और शरीर का तालमेल एक परम्परा के अनुरूप चलता है, जिसे बदला भी जा सकता है। मन का अंकुश यदि अवयवों को दूसरे ढ़ांचे में बदलने के लिए विवश करे तो वे उसके निर्देश का पालन करने लगते हैं। क्योंकि शरीरगत मन के परमाणु लचीले स्वभाव के होते हैं, जो अभ्यास के द्वारा अनुशासित होने पर मन के निर्देशन में चलने लगते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1909 में जन्मा हॉलैण्ड का क्रोसेट भी बचपन से ही परादृष्टि से संपन्न था। उसने नाजी आक्रमण तथा जापानियों द्वारा डचों के ईस्ट इण्डीज द्वीपों के अधिग्रहण के बारे में वर्षों पूर्व ही बता दिया था। किसी भी वस्तु को स्पर्श करके उसके मालिक, नौकर, परिवार एवं मित्र संबंधियों के बारे में पूरा विवरण बता देना क्रोसेट के लिए बहुत आसान था। इतना ही नहीं वरन वह संबंधित व्यक्तियों की मन:स्थिति एवं परिस्थिति के बारे में भी सब कुछ बता देता था। वहां की पुलिस ने उसकी इस क्षमता का भरपूर लाभ उठाया और अनेक अपराधियों तथा हत्यारों को पकड़ कर जेल के सीकंजों में बंद किया।

17.5.7 आवश्यक सलाह

हमें सावधानी इस बात की रखनी है कि कला के विकास के साथ-साथ हम अपने नैतिक आचरण को न खोए तथा इसका उपयोग गलत दिशा में न करें। हम अपने लिए कुछ आदर्श के बिंदु निर्धारित कर लें और उसी के अनुरूप कार्य करें।

बोध प्रश्न 2 :

---

1. परचित्तबोध और मन:पर्यवज्ञान की तुलनात्मक समीक्षा करें।
2. मनोमिति क्या है?
3. अद्‌भुत क्षमताओं का विकास कैसे संभव है?

17.6 पूर्वाभास (Precognition)

अथर्ववेद के सातवें काण्ड के तेरहवें सूक्त के एक मंत्र में कहा गया है कि जब मन की वासनाएं दूर हट जाती हैं, उसकी वृत्तियां स्वच्छ हो उठती हैं तब उसकी शक्ति प्रकट रूप में जागृत होती है। इस प्रकार के मानव का मानस पूर्वाभास से आभासित हो उठता है।

अमेरिका के मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक डॉ. नेल्सन वाल्टर के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति में एक बलवती चेतना काम करती है। वही चेतना परोक्ष जगत की हलचलों एवं दूरस्थ वस्तुओं की जानकारी देती रहती है। हर व्यक्ति में अनन्त शक्ति विद्यमान है अत: कोई भी व्यक्ति अपनी चेतना को परिष्कृत एवं विकसित करके अतीन्द्रिय सामर्थ्य को प्राप्त कर सकता है। परोपकर के गुण से प्रेरित हो दूसरों के जीवन के उत्थान से संबंधित घटनाक्रमों की पूर्व जानकारी भी उन्हें प्रदान की जा सकती है। प्रख्यात विज्ञानवेत्ता जे. बी. राइन ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्हें विश्व में कहीं भी घटित होने वाले घटनाक्रम का पूर्व परिचय मिल जाता है। उन्होंने अपनी एक पुस्तक में चार हजार पूर्वाभासों की घटनाओं का चित्रण किया है, जो समय आने पर सच निकलीं। इस संबंध में उनके अनेकों व्याख्यान 'ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन' ने प्रसारित किये तथा उनकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

17.6.1. पूर्वाभास का अर्थ

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ साइकलोजी में पूर्वाभास के संबंध में कहा है—प्रीकॉग्नीशन अर्थात् भविष्य का ज्ञान बिना किसी मान्य आधार के भविष्य की घटनाओं का ज्ञान है।

एडगर ऐलन, मोजार्ट और आईन्स्टीन जैसे मूर्धन्य विज्ञानवेत्ताओं ने स्वीकार किया है कि उनके शोध कार्यों में पूर्वाभाषी स्वप्नों ने बहुत सहायता दी है। स्वयं आईन्स्टीन ने लिखा है कि 'जब-जब वे जटिल समीकरणों में उलझे और हल नहीं पा सके तो सोते समय ऐसा लगा कि कोई अज्ञात शक्ति सपनों में उन्हीं संदर्भों को सरल बना कर प्रस्तुत कर रही है, जिसे वे कहते हैं कि स्वप्नों में कोई ऐसा रहस्य है जिसे वैज्ञानिक समझ नहीं पा रहे हैं।' स्वामी रामतीर्थ गणित का कोई जटिल प्रश्न करते-करते थक जाते तब सो जाते स्वप्न में उन्हें समाधान मिल जाता था। अंग्रेजी के कवि कॉलरिज और उपन्यासकार स्टीवेंसन भी अपनी कृतियों के प्रेरणास्रोत पूर्वाभासी स्वप्नों को ही मानते हैं। कॉलरिज ने अपना संपूर्ण साहित्य स्वयं के द्वारा निद्रावस्था में देखे गये स्वप्नों के आधार पर लिखा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

17.6.2 पूर्वाभास का स्वरूप

विश्व विख्यात लेखक मार्क ट्वेन, जिनका असली नाम सैम्युअल क्लीमेन्स था, वे परामनोविज्ञान की शोध में अच्छी रूचि रखते थे। उन्हें स्वयं भी बहुत परासामान्य अनुभव हुए थे। अपने भाई की मिसीसिपी में एक नौका दुर्घटना से कुछ ही समय पूर्व स्वप्न में उन्होंने उसे एक काफिले में लेटे देखा था। हराल्ड शर्मन ने अपनी पुस्तक 'थॉटस थ्रू स्पेस' में मार्क ट्वेन से संबंधित एक और घटना का विवरण दिया है। सन् 1906 की बात है, एक दिन उन्हें 1885 में स्वयं द्वारा लिखित एक लेख की प्रति की आवश्यकता हुई। उन्होंने अपनी फाइलों आदि की छान-बीन की लेकिन कहीं पर भी प्रति नहीं मिली। वे लेखों की एक नवीन शृंखला चालू करना चाहते थे, इसलिए उन्हें उस लेख की आवश्यकता महसूस हुई। दूसरे ही दिन वे न्यूयार्क की फिफ्थ एवेन्यू से गुजर रहे थे। चवालीसवी स्ट्रीट पार करने हेतु आप प्रतीक्षा में खड़े थे, तभी एक नितांत अजनबी व्यक्ति दौड़ता हुआ आपके पास आया और कागजों का एक पुलिन्दा थमाते हुए बोला—मैं इन्हें बीस साल से अपने पास रखे हुए था। मुझे नहीं मालूम कि आज सुबह मेरे मन में यह चिंतन क्यों आया कि मैं इन्हें आपको भेज दूं। मैं अभी इन्हें पोस्ट करने जा ही रहा था कि आप स्वयं ही मिल गए। मार्क ट्वेन ने उसे धन्यवाद दिया। मार्क ट्वेन ने जब उस पुलिन्दे को देखा तो पाया कि उसमें वही 1885 में लिखित एवं प्रकाशित लेख की प्रति थी जिसे वे व्यग्रता से खोज रहे थे।

इंग्लैण्ड में जन्मा सामबेंजो नामक बालक बचपन से ही अतीन्द्रिय सामर्थ्य सम्पन्न था। बन्द डिब्बों के अन्दर रखी गयी अज्ञात वस्तुओं के बारे में दूर से ही देखकर वह पूरी जानकारी दे देता था। अपने पिता की मृत्यु का संदेश अपनी मां को उसने पहले ही बता दिया था। अपने एक पेण्टर मित्र की मृत्यु का पूर्वाभास उसे तीन दिन पूर्व ही हो गया था। उसने अपने मित्र को यह बता भी दिया था कि तीन दिन बाद दिवार की पुताई करते समय सीढ़ी से गिरने पर तुम्हारा प्राणान्त हो जाएगा। तीन दिन बाद ठीक वैसा ही घटित हो गया।

17.6.3. पूर्वाभास की वैज्ञानिकता

स्वप्नों की सार्थकता और पूर्वाभास की क्षमता पर प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता डॉ. जे. वी. राईन तथा श्रीमती राईन ने मिलकर वर्षों तक अन्वेषण कार्य किया। जो वी. वी. सी. के द्वारा समय-समय पर प्रसारित होते रहे हैं। उन्होंने लगभग चार सौ घटनाओं का संकलन किया है। घटनाओं का विश्लेषण करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मनुष्य के भीतर एक अज्ञात शक्ति होती है जो कि सुदूर क्षेत्र तक सम्पर्क बनाए रखती है। यही शक्ति अनुभव और ज्ञान का उचित अवसरों पर रहस्योद्घाटन करती है। जिन व्यक्तियों का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है उनमें स्वप्न संकेतों का आदान-प्रदान ज्यादा सहज और सरल हो जाता है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि इस प्रकार की अतीन्द्रिय क्षमता पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में ज्यादा होती है क्योंकि महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा धार्मिक भावना अधिक पायी जाती है। महिलाओं की भावनाओं में सुकोमलता और संवेदनशीलता पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है।

17.6.4 समस्या का समाधान

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैफनर मोरेस के अनुसार अन्त:चेतना को सुनियोजित रूप से प्रशिक्षित किया जा सके तो सार्थक स्वप्न संकेत मिलना संभव है जिससे लाभ भी उठाया जा सकता है। सिडनी (आस्ट्रेलिया) के टाम फीयर के बारे में कहा जाता है कि उसने सपनों को साध लिया था और उनके माध्यम से उसने कितनी ही समस्याओं को सुलझाया था। इस प्रकार की क्षमता का विकास करने के लिए उन्हें अनेक वर्षों तक प्रयास करना पड़ा। टामफीयर की कितनी ही स्वप्न सिद्धि की घटनाएं सिडनी के समाचार पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं। इसका एक प्रमाण सिडनी पुलिस के दफ्तर में दर्ज है, जिसमें स्वप्न के माध्यम से टामफीयर ने एक अपहृत बालक की खोज करके पुलिस की सहायता की थी। फ्रांस के इलिलास हार्वे ने सिलाई मशीन का ढांचा बनाने में सफलता प्राप्त कर ली किंतु सुई लगाकर धागा किस तरह पिरोया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जाय यह बात समझ में नहीं आयी। अनेक दिनों तक चिंतन करने के बाद भी समाधान नहीं मिला। एक दिन रात को काफी देर तक चिंतन करते करते नींद आ गयी। उसने नींद में एक सपना देखा कि वह घने जंगल में बर्बर लोगों से घिरा हुआ है, जिनके हाथों में भाले हैं। उसने देखा कि भालों के फलकों के बीचो-बीच एक छेद है। उसके ऊपर कपड़ा लटक रहा है। प्रात: जब आंख खुली तो उसके दिमाग में रात्री के सपने की स्मृति बनी हुई थी। भाले की नोंक के ऊपर छेद की विचित्रता के संकेत से उनकी समस्या का समाधान मिल गया और सूई का आविष्कार हो गया।

17.6.5 अर्थक्वेक लेडी

केलिफोर्निया की एक महिला क्लेरिसा बर्नहेड भूकम्पों की पूर्व जानकारी देने में प्रख्यात हैं। इसीलिए लोग उसे 'अर्थक्वेक लेडी' के नाम से संबोधित करते हैं। भूकम्प संबंधी उनके द्वारा दी गयी सूचना रेडियो एवं टेलीविजन से सीधी प्रसारित भी होती रहती हैं। 28 नवम्बर, 1974 को दोपहर तीन बजे केलिफोर्निया के मध्य तटवर्ती क्षेत्र में आए भूकम्प की जानकारी उसने बहुत पहले लोगों को दे दी थी। साथ ही यह भी कहा था कि उसमें जान-माल की कोई विशेष क्षति नही होगी। वास्तव में सुनिश्चित अवधि में ठीक ऐसा ही घटित हुआ था। एक दूसरे पूर्व कथन में वर्नहेड ने नवम्बर, 1975 हवाई द्वीप में आए भयंकर विनाशकारी भूकम्प की 11 महीने पूर्व ही चेतावनी दे दी थी, जिसमें बहुत अधिक जन-धन की हानि हुई थी। इसी तरह अमेरिका के ही और्गन प्रान्त की लेडी शॉरलेट किंग भूकम्पों के आने से पहले ही उनकी सूचना देने के लिए प्रख्यात हैं। होलिस्टर, न्यूजूनिया, लिवरमूर, यूरेका जैसे प्रांतों में आने वाले भूकम्पों की पूर्व घोषणा करके वह लाखों लोगों की जानें एवं करोडों की संपत्ति बचा कर ख्याति प्राप्त कर चुकी है।

17.6.6 राष्ट्रपति लिंकन और पूर्वाभास

11 अप्रैल 1865 की शाम—व्हाइट हाउस में राष्ट्रपति लिंकन और उनकी पत्नी ने अपने मित्रों को दावत पर निमंत्रित किया। हर्षोल्लास का अवसर था क्योंकि उसी समय 'ली' ने ग्रांट के समक्ष आत्म समर्पण किया था और युद्ध समाप्त हो गया था पर सबको आश्चर्य हो रहा था कि लिंकन इतने उदास और खोये-खोये क्यों हैं? श्रीमती लिंकन के पूछने पर लिंकन ने बताया कि कुछ दिन पूर्व उन्होंने एक विचित्र स्वप्न देखा जो उन्हें तभी से परेशान कर रहा है। उन्होंने स्वप्न में देखा था कि एक रात अचानक किसी के रोने की आवाजे सुन कर वे जाग गए हैं। वे उठे और व्हाइट हाउस के कमरों में उन आवाजों का कारण जानने हेतु चक्कर लगाने लगे। जब वे पूर्व की ओर एक कक्ष में पहुंचे तो वहां एक दारुण दृश्य देख कर स्तब्ध रह गये। एक व्यक्ति के पास कुछ सिपाही खड़े हैं वहां एकत्रित बहुत से लोग रो रहे हैं। 'क्या व्हाइट हाउस में किसी की मृत्यु हो गई?' उन्होंने एक सिपाही से प्रश्न किया।

राष्ट्रपति लिंकन को उत्तर मिला कि हां, किसी ने उनकी हत्या कर दी है। भीड़ के लोग और जोर से रोने लगे। चार ही दिन के भीतर राष्ट्रपति लिंकन व्हाइट हाउस में मृत पड़े थे। उनकी हत्या कर दी गई थी। ऐसा लगता है कि लिंकन का वह स्वप्न पूर्वाभासी स्वप्न था।

17.6.7 भविष्य वाणी

लन्दन में एक भारतीय की श्री राफेल हर्स्ट नामक एक अंग्रेज पत्रकार से मित्रता हो गई। भारतीय व्यक्ति ने उस अंग्रेज पत्रकार को बताया कि 'एक दिन आप भारत जाएंगे और सच्चे योगियों की खोज में पूरे भारत का परिभ्रमण करेंगे और अन्तत: आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी।' अंग्रेज पत्रकार के पूछने पर उस भारतीय सज्जन ने रहस्य बताते हुए कहा कि मुझे इस बात की अन्त:स्फुरणा हुई थी। यह अन्त:स्फुरणा की शक्ति कैसे प्राप्त की जाए—यह मुझे मेरे गुरु ने सिखाया था। मैं अपनी अन्त:स्फुरणा पर पूरा भरोसा रखकर कार्य करता हूं। समय आने पर यह बात शत-प्रतिशत सच निकली। श्री राफेल हर्स्ट ने अपनी भारतयात्रा का रोचक वर्णन डॉ. पालब्रस के उपनाम से 'ए सर्च इन सिक्रेट इण्डिया' (A search in secret India) नामक पुस्तक में किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भविष्य संबंधी स्वप्नों के अस्तित्व से हम इस निर्णय पर तो अवश्य पहुंच सकते हैं कि भविष्य में होने वाली घटनाओं का उनके घटित होने से पहले ही स्वप्न में ज्ञान हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन्द्रिय आदि साधन के अभाव में भी ज्ञान की प्राप्ति संभव है। पूर्वाभास में सीधा मानसिक ज्ञान होता है। प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोगों में यह सामर्थ्य है कि हम ध्यान के द्वारा अपनी पूर्वाभासी चेतना को जागृत कर सकते हैं।

17.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के कितने प्रकार हैं? उनका संक्षेप में विश्लेषण करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. टैलीपैथी और मनःपर्यवज्ञान का तुलनात्मक विवेचन करें।
2. क्या आंखों का काम अंगुलियों से करना संभव है?

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (केवल दो लाईन में उत्तर दें)

1. क्लेरवॉएन्स का अर्थ क्या है?
2. दूरबोध की जैन अवधारणा क्या है?
3. दूरबोध के कितने प्रकार हैं?
4. साइकोमेट्री किसे कहते हैं?
5. टैलीपैथी का क्या अर्थ है?

4. रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. द मेजिक ऑफ साइकोग्राम : न्यू वे टु पॉवर एण्ड परोस्पेरिटी के लेखक.....हैं।
2. मनुष्य चेतना शक्ति का विशाल.....है।
3. एक सामूहिक अवचेतना होती है, जो इन्सान की.....के पीछे होती है।
4. प्रयोग के द्वारा व्यक्ति को भी.....किया जा सकता है।
5. इंग्लैण्ड में जन्मा.....नामक बालक बचपन से ही अतीन्द्रिय सामर्थ्य सम्पन्न था।

17.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. अखण्ड ज्योति, जुलाई 1998
2. भारतीय मनोविज्ञान—जगदीश विद्यालंकार
3. ज्ञान-मीमांसा—डॉ. साध्वी श्रुतयशा
4. The Magic of psychograms : New Way to Power and Prosperity—by Helyn Hitchcock
5. तिब्बत का महान योगी मिलारेपा—स्वामी राजर्षि मुनि
6. परामनोविज्ञान—कीर्ति स्वरूप रावत
7. भारतीय मनोविज्ञान—डॉ. सीताराम जायसवाल
8. जैन परामनोविज्ञान—मुनि डॉ. राजेन्द्र, साध्वी डॉ. प्रभाश्री
9. Quest of The Overself—Dr. Paul Brunton
10. नंदी—वाचना प्रमुख—गणाधिपति तुलसी, संपादक/विवेचक—आचार्य महाप्रज्ञ
11. How to read the Aura, practice Psychometry, Telepathy and Clairvoyance— By W. E. Butler

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–18 : शरीर में विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों का निर्माण–चैतन्य केन्द्र और करण–अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के लिए प्रेक्षाध्यान

संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 विद्युत–चुम्बकीय–क्षेत्र–चैतन्यकेन्द्रों का स्वरूप
18.3 करण शब्द की सार्थकता
18.3.1 करण का स्वरूप
18.3.2 करण और अवधि ज्ञान
18.3.3 अवधिज्ञानी के देखने का साधन
18.4 परामनोविज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान
18.5 जैन साहित्य में चैतन्यकेन्द्र
18.6 संभिन्नस्रोतोलब्धि एवं अतीन्द्रियज्ञान
18.6.1 जीभ में नौ हजार स्वाद कलिकाएं
18.6.2 नाक पचास लाख का
18.6.3 आंख–एक छोटा सा कैमरा
18.6.4 कान–हजारों संदेशों का संदेश वाहक
18.7 चैतन्य केन्द्रों के संस्थान और परिवर्तन की प्रक्रिया
18.8 अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण की प्रक्रिया : प्रेक्षाध्यान
18.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
18.10 संदर्भ ग्रंथ

18.0 प्रस्तावना

मन:क्षेत्र का बिखराव रोकने की प्रक्रिया ही ध्यान है। ध्यान के द्वारा शक्ति की जो बचत होती है उसका अधिकांश लाभ मस्तिष्क के उस भाग को मिलता है, जिसे ब्रह्मचक्र, ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रार, ज्ञानकेन्द्र आदि नामों से पुकारते हैं। यह इस क्षेत्र में अवस्थित दो अति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियों की समन्वित प्रक्रिया का भ्रमर है। योग में उसे ही आज्ञाचक्र तथा प्रेक्षा–ध्यान में दर्शनकेन्द्र के नाम से जाना जाता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि ध्यान के दौरान मस्तिष्क का सक्रिय भाग तुरन्त पीनियल एवं पिच्यूटरी ग्रन्थियों से संबंध स्थापित कर लेता है। यह इनके हार्मोन्स के स्राव में होने वाले परिवर्तन से परिलक्षित होता है। ये दोनों ही ग्रन्थियां अध्यात्म की दृष्टि से बहुत ही रहस्यमय हैं। दोनों ही ऐसे रस का स्राव करती हैं, जो हमारे चेतना के स्तर को प्रभावित करते हैं। दार्शनिकों एवं रहस्यवादियों ने पीनियल ग्लैण्ड को 'तीसरा नेत्र' एवं आत्मा का स्थान कहा है। यह हमारे सूक्ष्म प्रमुख शक्तिकेन्द्रों में एक है तथा आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। बौद्धिक स्तर से ऊपर उठा कर अध्यात्म की गहन अनुभूतियों का साक्षात्कार कराने वाली यह एक अपूर्व शक्ति है। स्नायु–संस्थान एवं हार्मोन संस्थान की परस्पर प्रक्रिया से ही रसस्राव होता है। सारे शरीर की अन्य हार्मोन ग्रन्थियां चयापचयी एवं भावनात्मक प्रतिक्रिया को पिच्यूटरी प्रभावित करती है। अत: यह चेतना का प्रवेश द्वार है। यह अतीन्द्रियज्ञान की पराक्षमताओं को जागृत किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.1 उद्देश्य

1. विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र—चैतन्यकेन्द्रों के स्वरूप को समझ सकेंगे।
2. करण शब्द की एकार्थकता को समझ पाएंगे।
3. करण का स्वरूप क्या है जान सकेंगे।
4. करण और अवधिज्ञान के संबंधों को समझ सकेंगे।
5. अवधिज्ञानी के देखने के साधन से परिचय प्राप्त करेंगे।
6. परमनोविज्ञान के अनुसार अतीन्द्रिय ज्ञान को समझ सकेंगे।
7. जैन साहित्य में चैतन्य-केन्द्रों की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
8. संभिन्नस्रोतोलब्धि एवं अतीन्द्रियज्ञान को समझ सकेंगे।
9. चैतन्य-केन्द्रों के संस्थान और परिवर्तन की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
10. अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण की प्रक्रिया : प्रेक्षाध्यान को समझ कर आप भी प्रयोग कर सकेंगे।

18.2 विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र—चैतन्यकेन्द्रों का स्वरूप

तंत्रशास्त्र और हठयोग में छह या सात चक्रों का सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है। प्रतिपादन की प्राचीन शैली रूपकमय है। अत: चक्रों के विषय में स्पष्ट कल्पना करना कठिन है। बहुत लोगों ने उन्हें किसी विशिष्ट अवयव के रूप में स्थूल शरीर में खोजने का प्रयत्न किया, पर उन्हें अपनी खोज में कभी सफलता नहीं मिली। स्थूल शरीर में ग्रन्थियां हैं, उन्हें चक्र माना जा सकता है। शरीर-शास्त्र के अनुसार उनका कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। चक्रों और ग्रन्थियों के स्थान भी प्राय: एक ही हैं। मूलाधार चक्र का किसी ग्रन्थि से सीधा संबंध नहीं है। स्वाधिष्ठान चक्र का कामग्रन्थि (गोनाड्स) से संबंध है। मणिपूर चक्र का एड्रीनल से, अनाहत चक्र का थाइमस से, विशुद्धि चक्र का थाइराइड से, आज्ञा चक्र का पिच्यूटरी से और सहस्रार चक्र का पीनियल से संबंध स्थापित किया जा सकता है। जैन पराविद्या के अनुसार शक्ति और चैतन्य के केन्द्र अनगिनत हैं। वे पूरे शरीर में फैले हुए हैं। उन्हें ग्रन्थियों तक सीमित नहीं किया जा सकता है। ग्रन्थियों का काम सूक्ष्मतर या कर्मशरीर से आने वाले कर्म-रसायनों और भावों का प्रभाव प्रदर्शित करना है। अतीन्द्रिय चेतना को प्रकट करना उनका मुख्य कार्य नहीं है। वे अतीन्द्रिय चेतना की अभिव्यक्ति के लिए विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बन सकते हैं अथवा उनके आसपास के क्षेत्र विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बन सकते हैं। इसलिए शक्ति-केन्द्रों और चैतन्य-केन्द्रों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। हमारी पसलियों में कोख के नीचे बहुत शक्तिशाली चैतन्य-केन्द्र हैं। हमारे कंधे बहुत बड़े शक्ति-केन्द्र हैं। फलित की भाषा में कहा जा सकता है कि शक्ति-केन्द्र और चैतन्य-केन्द्र शरीर के अवयव नहीं हैं, किन्तु शरीर के वे भाग हैं, जिनमें विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बनने की क्षमता है। वे भाग नाभि से नीचे पैर की एड़ी तक तथा नाभि से ऊपर सिर की चोटी तक, आगे भी हैं, पीछे भी हैं, दाएं भी हैं और बाएं भी हैं। समता, ऋजुता आदि विशिष्ट गुणों की साधना के द्वारा वे केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं, 'करण' बन जाते हैं, तब उनमें अतीन्द्रय चेतना प्रकट होने लग जाती है। यह कोई आकस्मिक संयोग नहीं है। यह एक स्थायी विकास है। एक बार चैतन्य-केन्द्र के सक्रिय हो जाने पर जीवन भर उसकी सक्रियता बनी रहती है। अतीन्द्रिय-ज्ञानी जब चाहे तब अपनी अतीन्द्रिय चेतना का करणभूत चैतन्य-केन्द्र के द्वारा उपयोग कर सकता है। वह सूक्ष्म, व्यवहित और दूरस्थ पदार्थ का साक्षात् कर सकता है।

18.3 करण शब्द की एकार्थकता

प्राचीन ग्रन्थों में संधि, विवर, रन्ध्र, चक्र, कमल, करण आदि शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में देखा जाता है। संधि अर्थात् सुषुम्ना, संधि अर्थात् विवर। सुषुम्ना के लिए जैसे 'संधि' पद व्यवहृत हुआ है वैसे ही 'विवर' पद भी व्यवहृत हुआ है। शिवसंहिता में विवर, रंध्र और कमल—इन शब्दों की एकार्थकता प्रतिपादित है—

तस्य मध्ये सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्।
ब्रह्मरन्ध्रं तदेवोक्तमामूलाधारपंकजम्॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(सहस्रार पद्म के कंद में जो योनि है) उसके मध्ये में सुषुम्ना का विवर सहित मूल स्थित है। उसे ही ब्रह्मरंध्र कहा गया है और वही मूलाधार कमल कहलाता है।

कर्म-विवर (चैतन्य-केन्द्र) से ही अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलती हैं। नन्दीचूर्णि में ऐसा उल्लेख है—जैसे जल का अंत जलांत, वन का अंत वनांत और पर्वत का अंत पर्वतांत होता है—इनमें अंत शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त नहीं है। इसी प्रकार औदारिक शरीर के अंत में स्थित 'अंतगत' कहलाता है। स्थित और गत—दोनों एकार्थवाची हैं। शरीर के अंतर्वर्ती आत्मप्रदेशगत स्पर्धकों की विशुद्धि किसी एक दिशा में उपलब्ध होती है, इसलिए उस विशुद्धि से होने वाला अवधिज्ञान अन्तगत कहलाता है। अथवा सर्व आत्मप्रदेशों की विशुद्धि होने पर भी औदारिक शरीर के एक अंत (छोर) द्वारा एक दिशा में बोध करने वाला अवधिज्ञान अन्तर्गत कहलाता है। इसका संवादी सिद्धांत अन्यान्य ग्रन्थों में भी मिलता है।

अवधिज्ञान के प्रसंग में 'करण' शब्द का अर्थ है—शरीर का अवयव, शरीर का एक भाग, जिसके माध्यम से अवधिज्ञानी पुरुष विषय का अवबोध करता है। 'करण' अनेक आकार वाले होते हैं।

सुश्रुतसंहिता में 210 संधियां और 107 मर्म स्थानों का उल्लेख प्राप्त है। अस्थि, पेशी और स्नायुओं का संयोगस्थल संधि कहलाता है। ये आठ प्रकार के हैं। मर्म-स्थानों में प्राण की बहुलता होती है। आचार्य मल्लिषेण का मत है—शरीर के वे अवयव जहां आत्म-प्रदेशों की बहुलता होती है, मर्म-स्थान कहलाते हैं। जो चैतन्य-केन्द्र हैं वे इन्हीं मर्म-स्थानों के भीतर हैं। हठयोग में भी प्राण और चैतन्य प्रदेशों की सघनता के स्थल ध्यान के आधार रूप में सम्मत है।

जो साधक 'इस शरीर का यह वर्तमान क्षण है'—इस प्रकार जो अन्वेषण करता है—प्रतिक्षण शरीर के भीतर होने वाले सुख-दु:ख आदि संवेदनों के प्रति जागरूक रहता है, वह संयत अथवा अप्रमत्त हो सकता है। 'क्षण' शब्द का अर्थ 'मध्य' भी है। जो इस शरीर के 'मध्य' को अथवा मध्यवर्ती चैतन्य-केन्द्र को देखता है, वह संयत अथवा अप्रमत्त हो सकता है।

18.3.1 करण का स्वरूप

मनुष्य का शरीर अनेक रहस्यों से भरा हुआ है, उसमें इन्द्रिय की क्षमता है। शरीर के कुछ भाग ज्ञान और संवेदना के साधन बने हुए हैं। वे भाग 'करण' कहलाते हैं। करण का एक अर्थ होता है—निर्मल चित्त धारा। उसका दूसरा अर्थ है—चित्त की निर्मलता से होने वाली शरीर, मन आदि की निर्मलता। शरीर के जिस देश में निर्मलता हो जाती है, अर्थात् शरीर का जो भाग करणरूप में परिणत हो जाता है, उस भाग में अतीन्द्रियज्ञान होने लग जाता है। आंख एक 'करण' है। उसके माध्यम से रूप को जाना जा सकता है। किन्तु मनुष्य के पूरे शरीर में 'करण' बनने की क्षमता है। यदि संकल्प के विशेष प्रयोगों के द्वारा पूरे शरीर को 'करण' किया जा सके तो कपोलों से भी देखा जा सकता है, हाथ और पैर की अंगुलियों से भी देखा जा सकता है।

मनुष्य का स्थूल शरीर सूक्ष्मतर शरीर का संवादी होता है। सूक्ष्मतर शरीर में जिन क्षमताओं के स्पंदन होते हैं, उन सबकी अभिव्यक्ति के लिए स्थूल शरीर में केन्द्र बन जाते हैं। उसमें शक्ति और चैतन्य की अभिव्यंजना के अनेक केन्द्र हैं। वे सुप्त अवस्था में रहते हैं, अभ्यास के द्वारा उन्हें जागृत किया जाता है। अपनी जागृत अवस्था में वे 'करण' बन जाते हैं। 'करण' को विज्ञान की भाषा में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (एलेक्टो-मेग्नेटिक फील्ड) कहा जा सकता है। प्रेक्षाध्यान में जब हम राग-द्वेष से मुक्त होकर केवल जानने और केवल देखने का अभ्यास करते हैं तब चेतना की सघनता के कारण पूरा शरीर करण बन जाता है।

18.3.2 करण और अवधिज्ञान

श्वेताम्बर साहित्य में 'करण' के विषय में अर्थ की परम्परा विस्मृत हो गई। दिगम्बर साहित्य में उसकी अर्थ-परम्परा आज भी उपलब्ध है। उससे चक्र या चैतन्य-केन्द्र के बारे में बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

इस दृष्टि से हमारे शरीर में अवधिज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं, अनेक संस्थान हैं। ये संस्थान ही चक्र या चैतन्य-केन्द्र हैं। नंदीसूत्र में अवधिज्ञान के छह प्रकार बतलाये गये हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. आनुगामिक, 2. अनानुगामिक, 3. वर्धमान, 4. हीयमान, 5. प्रतिपाति, 6. अप्रतिपाति।

षट्खंडागम में अवधिज्ञान के तेरह प्रकार बतलाये गये हैं—

1. देशावधि	2. परमावधि	3. सर्वावधि
4. हीयमान	5. वर्धमान	6. अवस्थित
7. अनवस्थित	8. अनुगामी	9. अननुगामी
10. सप्रतिपाती	11. अप्रतिपाती	12. एक क्षेत्र
13. अनेक क्षेत्र।		

प्रस्तुत प्रसंग में एक क्षेत्र और अनेक क्षेत्र—ये दो भेद बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जिसमें जीव-शरीर का एक देश (चैतन्य-केन्द्र) करण बनता है, वह एक क्षेत्र अवधिज्ञान है। जो प्रतिनियत क्षेत्र के माध्यम से नहीं होता, किन्तु शरीर के सभी अवयवों के माध्यम से होता है—शरीर के सभी अवयव करण बन जाते हैं, वह अनेक क्षेत्र अवधिज्ञान है।

यद्यपि अवधिज्ञान की क्षमता सभी आत्म-प्रदेशों में प्रकट होती है, फिर भी शरीर का जो देश करण बनता है उसी के माध्यम से अवधिज्ञान प्रकट होता है। शरीर का जो भाग करणरूप में परिणत हो जाता है, वही अवधिज्ञान के प्रकट होने का माध्यम बन सकता है। नंदी सूत्र में भी सब अवयवों से जानने और किसी एक अवयव से जानने की चर्चा मिलती है।

एक क्षेत्र अवधिज्ञान में शरीर का एक चैतन्य-केन्द्र भी जागृत हो सकता है तथा दो, तीन, चार, पांच आदि चैतन्य-केन्द्र भी एक साथ जागृत हो सकते हैं।

18.3.3 अवधिज्ञानी के देखने का साधन

स्थानांगसूत्र में एक मार्मिक प्रसंग उपलब्ध होता है। जिस व्यक्ति को अतीन्द्रियज्ञान (अवधिज्ञान) प्राप्त हो जाता है, वह अवधिज्ञानी किस माध्यम से देखता है? देखने का माध्यम है—शरीर। इस शरीर से ही अवधिज्ञानरूपी ज्योति प्रकट होती है। यह शरीर एक ढक्कन है। हम जब तक स्नायु-संस्थान के भीतर यात्रा करते हैं, स्नायु-संस्थान को ही जानते-देखते हैं तब तक शरीर करण नहीं बन सकता। जब हम प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करते हैं—अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय का प्रयोग करते हैं तो पूरा शरीर करण बन जाता है। जब पूरा शरीर करण बन जाता है तो अवधिज्ञानी पूरे शरीर से देखते हैं। यदि पूरा शरीर करण नहीं बनता है, जो अवयव करण बनता है उसी से देखता है। जैसे अवधिज्ञानी का दायां कन्धा करण बनता है तब अवधिज्ञानी दाएं कन्धा से देखता है। अवधिज्ञानी का बायां कन्धा करण बनता है तब अवधिज्ञानी बाएं कन्धा से देखता है। यदि आगे के चैतन्यकेन्द्र करण बन जाए तो अवधिज्ञानी आगे से देखेगा। यदि पीछे सुषुम्ना में कोई चैतन्यकेन्द्र करण बन गया तो अवधिज्ञानी पीछे से देखेगा। यदि सहस्रारकेन्द्र करण बन गया तो अवधिज्ञानी सिर से देखेगा। यह देशावधिज्ञान है।

18.4 परामनोविज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान

परामनोविज्ञान के अनुसार पूर्वाभास अतीन्द्रिय ज्ञान माना जाता है, पर वास्तव में वह संधिकालीन ज्ञान है। उसे न इन्द्रिय-ज्ञान कहा जा सकता है और न अतीन्द्रिय-ज्ञान। वह इन्द्रिय और मन से उत्पन्न नहीं है, इसलिए उसे इन्द्रिय-ज्ञान नहीं कहा जा सकता। अतीन्द्रिय-ज्ञान की क्षमता उत्पन्न होने पर भविष्य में घटित होने वाली घटना अथवा अतीत-कालीन घटना को प्रत्येक अवधान के साथ जाना जा सकता है, किन्तु पूर्वाभास में ऐसा नहीं होता। उसमें भविष्य की घटना का आकस्मिक आभास होता है। अवधान के साथ उसके ज्ञान का निश्चित संबंध नहीं होता, इसलिए उसे अतीन्द्रिय ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता। वह दिन और रात की संधि की भांति इन्द्रिय-ज्ञान और अतीन्द्रिय-ज्ञान का संधिज्ञान है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.5 जैन साहित्य में चैतन्य-केन्द्र

प्रज्ञापना में अवधिज्ञान के दो प्रकार उपलब्ध हैं—देशावधि और सर्वावधि। नंदी में देशावधि, सर्वावधि का उल्लेख नहीं है, केवल परमावधि का उल्लेख मिलता है। गोम्मटसार में अवधिज्ञान के तीन प्रकार मिलते हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि।

नंदी में अवधिज्ञान के छह प्रकार किए गए हैं, उनमें पहला प्रकार अनुगामिक है। इसके दो प्रकार हैं—अंतगत और मध्यगत। यह विषय अन्य किसी भी उपलब्ध आगम में नहीं है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अपना मत देते हुए लिखा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि देवर्द्धिगणि ने यह पूरा प्रकरण ज्ञानप्रवाद पूर्व से लिया था। इस दृष्टि से नंदीसूत्र का मुख्य आधार ज्ञानप्रवादपूर्व हो सकता है। स्थानांग, समवायांग, भगवती आदि इसके आधार नहीं हो सकते। ज्ञानप्रवाद चौदह पूर्वों नें पांचवां पूर्व है। उसकी विशाल ग्रंथ राशि में केवलज्ञान का ही निरूपण है।

नंदी के इस प्रकरण से एक चिर-जिज्ञासित प्रश्न का समाधान होता है। कहा जाता है कि तंत्रशास्त्र और हठयोग में चक्रों का निरूपण है, किन्तु जैन साहित्य में उनका कोई निरूपण नहीं है। ध्यान की पद्धति छूट जाने के कारण इस प्रश्न का उत्तर खोजा भी नहीं गया। हरिभद्रसूरि, शुभचन्द्र, हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने अपने योगग्रंथों में हठयोग का समावेश किया, किन्तु जैन साहित्य में उपलब्ध चक्रों की ओर ध्यान नहीं दिया। देशावधिज्ञान चक्र सिद्धांत का मौलिक आधार है। नंदी सूत्र में देशावधि और सर्वावधि का उल्लेख नहीं है, किन्तु उनकी व्याख्या बहुत विस्तार से मिलती है। अंतगत देशावधि का सूचक है और मध्यगत सर्वावधि का सूचक है। अंतगत अवधिज्ञान के तीन प्रकार हैं—1. पुरत: अंतगत, 2. पृष्ठत: अंतगत, 3. पार्श्वत: अंतगत।

चूर्णिकार और हरिभद्रसूरि ने अंतगत शब्द के अनेक अर्थ किए हैं—

1. यह औदारिक शरीर के पर्यन्त भाग में स्थित होता है, इसलिए अंतगत है।
2. यह स्पर्धक अवधि होने के कारण आत्म-प्रदेशों के अंतभाग में रहता है, इसलिए अंतगत है।
3. यह औदारिक शरीर के किसी देश (भाग) से साक्षात् जानता है, इसलिए अंतगत है।

औदारिक शरीर के मध्यवर्ती स्पर्धकों की विशुद्धि, सब आत्म-प्रदेशों की विशुद्धि अथवा सब दिशाओं का ज्ञान होने के कारण यह अवधिज्ञान मध्यगत कहलाता है।

जब आगे के चक्र या चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तब पुरत: अंतगत अवधिज्ञान होता है। उससे अग्रवर्ती ज्ञेय जाना जाता है।

जब पीछे के चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तब पृष्ठत: अंतगत अवधिज्ञान होता है, उससे पृष्ठवर्ती ज्ञेय जाना जाता है।

जब पार्श्व के चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तब पार्श्वत: अंतगत अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, उससे पार्श्ववर्ती ज्ञेय जाना जाता है।

जब मध्यवर्ती चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तब मध्यगत अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, उससे सर्वत: समन्तात् (चारों ओर से) ज्ञेय जाना जाता है।

इसका निष्कर्ष है कि हमारे समूचे शरीर में चैतन्य-केन्द्र अवस्थित हैं। साधना के तारतम्य के अनुसार जो चैतन्य-केन्द्र जागृत होता है उसी में से अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलने लग जाती हैं। पूरे शरीर को जागृत कर लिया जाता है तो पूरे शरीर में से अतीन्द्रियज्ञान की रश्मियां फूट पड़ती हैं। किसी एक या अनेक चैतन्य-केन्द्रों की सक्रियता से होने वाले अवधिज्ञान का नाम देशावधि है। पूरे शरीर की सक्रियता से होने वाला अवधिज्ञान सर्वावधि है। जिसे सर्वावधिज्ञान प्राप्त होता है, वह पूरे शरीर से जानता-देखता है।

हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में करण बनने की क्षमता है। वह पारदर्शी, निर्मल और तैजस् बन जाती है और सारे आवरणों को दूर कर सकती है। आवश्यकता है करण बनने की।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करण के दो अर्थ हैं—एक अर्थ है शरीर का संस्थान और दूसरा अर्थ है चित्त की धारा, परिणाम। हमारे इस भौतिक शरीर का सबसे बड़ा शासक है—चित्त।

आचारांगभाष्य में विवेचन करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा है कि अनारंभ जीवन जीने वाला व्यक्ति आरंभ—असंयम अथवा प्रमाद से उपरत रहता है। अनारंभ की खोज या साधना करते हुए उसने 'यह संधि है' ऐसा देखा है। संधि शब्द के दो अर्थ हैं—

1. अतीन्द्रिय चेतना के उदय में हेतुभूत कर्म-विवर।
2. प्रमाद के अध्यवसाय को जोड़ने वाला शरीरवर्ती साधन जिसे चैतन्यकेन्द्र या चक्र कहा जाता है।

18.6 संभिन्नस्रोतोलब्धि एवं अतीन्द्रियज्ञान

चीन में वहरूपांक नाम का एक बारह वर्ष का बालक है। उसको ऐसी शक्ति प्राप्त है कि वह ईंटों की दीवारों के पार भी देख सकता है। वह किसी भी रोगी को देख कर यह बतला देता है कि उस रोगी के शरीर के अंदरूनी भाग में क्या गड़बड़ी है। वह जमीन को देख कर बतला देता है कि उसके नीचे भूमिगत पानी है या नहीं? वह अपनी आंखों की सहायता के बिना कानों के द्वारा पुस्तक पढ़ सकता है। अर्थात् पुस्तक उसके कान के पास रख दी जाती है और वह पुस्तक पढ़ने लगता है। चीन में और भी कई बालक हैं जो आंखों से देखे बिना कानों से देख लेते हैं।

विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य के पास आंख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियां ज्ञान के अपरिमित स्रोत हैं। चेतना की अभिव्यक्ति के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। यदि मनुष्य की इन्द्रिय चेतना पूरी तरह जागृत हो जाती है तो वह विशिष्ट शक्ति से सम्पन्न बन सकता है।

जैनदर्शन में भी सामान्यतः इन्द्रियां प्रतिनियत विषय को ही ग्रहण करती हैं, किंतु जो साधक संभिन्नस्रोतोलब्धि नाम की विशिष्ट योगज शक्ति को प्राप्त कर लेता है, वह चाहे जिस इन्द्रिय से चाहे जिस वस्तु-विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सामान्यतः नाक का काम है—गंध का ज्ञान करना किंतु संभिन्नस्रोतोलब्धि प्राप्त व्यक्ति नाक के द्वारा देख सकता है, ध्वनि का श्रवण कर सकता है, विविध रसों का रसास्वादन कर सकता है, स्पर्श संवेदन का ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है, इस प्रकार उसमें सब-कुछ जानने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। एक्यूप्रेशर एवं एक्यूपंक्चर चिकित्सा पद्धतियों के अनुसार मनुष्य की हथेलियों और पावों के तलवों में पूरे शरीर के अवयवों और मस्तिष्क के विशिष्ट केन्द्र हैं। उनको जागृत कर लेने पर पांचों इन्द्रियों और मन का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है अर्थात् पूरा शरीर ही करण बन जाता है।

18.6.1 जीभ में 9000 स्वाद कलिकाएं

हमारी जीभ में भी 9000 स्वाद कलिकाएं होती हैं। यदि वे सब जागृत हो जाएं तो हमारी जीभ किसी खाद्य-वस्तु, औषध या रसायन के 9000 स्वाद-रसों का विश्लेषण एवं पृथक्करण कर सकती है। जैन-साहित्य में ऐसे अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं, जब किसी व्यक्ति ने शताधिक वस्तुगत रसों का चखकर विश्लेषण कर दिया था। आचार्य पादलिप्त के शिष्य भुवन ने चरणोदक को चखकर उसमें निहित 107 द्रव्यों का विश्लेषण लिया। एक द्रव्य की कमी रह गयी थी, उसको गुरु ने बता दिया तो उसने आकाश गमन की विद्या को प्राप्त कर लिया। विज्ञान ने 'मासस्पेक्टोमीटर' जैसे सूक्ष्म-संवेदी यंत्रों का विकास कर लिया है, जो किसी भी वस्तुगत नेनोग्राम के दस करोड़वें हिस्से तक का विश्लेषण कर देता है।

18.6.2 नाक पचास लाख का

हमारी नाक भी अद्भुत शक्ति का खजाना है। एक छोटी-सी डाक टिकिट से भी कम जगह में 4000 गंधों तथा विशेष संवेदनशीलता की स्थिति में 10, 000 गंधों के विश्लेषण की क्षमता है। ब्रिटेन के 'अर्नेस्ट कवकर' जिसकी घ्राणशक्ति इतनी तीव्र और पटुता प्राप्त है कि वह किसी भी वस्तु को सूंघ कर 400 प्रकार की गंधों का आसानी से विश्लेषण कर सकता है, इसलिए उसकी नाक का मूल्य 10 लाख डॉलर—50 लाख

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रुपये हैं। बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएं, कम्पनियां आदि उस व्यक्ति को बुला कर विशेष औषधियां, रसायन, केमिकल्स आदि को सूंघ कर पता लगा लेती हैं कि अमुक दवा, गैस, विस्फोटक पदार्थ इत्यादि किन-किन तत्त्वों के सम्मिश्रण से बने हैं।

खोजी कुत्ते गंध के आधार पर ही अपराधियों को पकड़ने में सफल होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से एक विशेष प्रकार की गंध निकलती रहती है। उस गंध के आधार पर गंध-विशेषज्ञ उसके व्यक्तित्व की पहचान कर सकते हैं। ध्यान साधना के द्वारा भी योगी लोग ब्रह्माण्ड में व्याप्त दिव्य सुगंध का अनुभव कर लेते हैं।

18.6.3 आंख—एक छोटा-सा टी.वी. कैमरा

साध्वीश्री कनकश्रीजी ने प्रेक्षाध्यान पत्रिका में लिखा है कि हमारी आंखें भी एक बहुत ही अच्छा और एक छोटा-सा टी.वी. कैमरा है, जो किसी भी वस्तु का फोटो बड़ी सफाई से ले सकता है। हमारी आंखों में भी लाखों-करोडों प्रकाश संवेदी कोशिकाएं और सूक्ष्म तंतु हैं, जो दृश्य जगत के बिंबों को मस्तिष्क तक पहुंचाने का दायित्व निभाते हैं। आंखों की संरचना, उसके कार्य-प्रणाली की सतर्कता वस्तुत: एक बहुत बड़ा चमत्कार है। प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोगों द्वारा हम अपनी आंखों की क्षमता को और ज्यादा विकसित कर सकते हैं। प्रकाश-संवेदी कोशिकाएं जागृत हो जाती हैं।

18.6.4 कान-हजारों संदेशों का संदेश-वाहक

सभी ज्ञानेन्द्रियों की संरचना में कान की संरचना सबसे सूक्ष्म एवं जटिल मानी जाती है। जो ध्वनि तरंग कान की मुख्य श्रवण शिरा को प्रकम्पित करती है, उस शिरा का व्यास पैंसिल के सिक्के जितना है, इनमें लगभग 30, 000 विद्युत परिपंथ हैं। इतनी तंग जगह में इतने अवयव किसी बड़े नगर की टेलीफोन सेवा हेतु भी पर्याप्त हो सकते हैं।

कान का मुख्य श्रवण-यंत्र किलया हजारों संदेशों को ग्रहण करने की क्षमता रखता है। वह दो सेंटीमीटर की दूरी पर स्थित मस्तिष्क तक उन संदेशों को संप्रेषित करता है। मस्तिष्क उन संदेशों को छांटकर उन्हें अर्थपूर्ण ध्वनि में बदलता है। वस्तुत: कान ध्वनि को सुनने में सहयोगी बनते हैं, किंतु उन ध्वनियों का अर्थ तो मस्तिष्क ही पकड़ता है। इस प्रकार कान और मस्तिष्क का अन्योन्याश्रित संबंध है। प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोगों के द्वारा कान और मस्तिष्क की क्षमता को विकसित करके आशातीत परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1:

---

1. विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र क्या है?

2. करण का क्या अर्थ है?

3. नाक पचास लाख का कैसे है?

18.7 चैतन्य-केन्द्रों के संस्थान और परिवर्तन की प्रक्रिया

चैतन्य-केन्द्र अनेक संस्थान वाले होते हैं। जैसे इन्द्रियों का संस्थान प्रतिनियत होता है वैसे चैतन्य-केन्द्रों का संस्थान प्रतिनियत नहीं होता किन्तु करणरूप शरीर-प्रदेश अनेक संस्थान वाले होते हैं। कुछ संस्थानों के नाम-निर्देश मिलते हैं। जैसे—श्रीवत्स, कलश, शंख, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि। धवलाकार ने आदि शब्द के द्वारा अन्य अनेक शुभ संस्थानों का निर्देश किया है। तन्त्रशास्त्र और हठयोग में चक्रों के लिए कमल शब्द की परिकल्पना मिलती है। यहां कमल शब्द का उल्लेख नहीं है, किन्तु आदि शब्द के द्वारा उसका निर्देश स्वत: प्राप्त हो जाता है। आचार्य नेमिचन्द्र ने गुणप्रत्यय अवधिज्ञान को शंख आदि चिह्नों से उत्पन्न होने वाला बतलाया है। टीकाकार ने आदि शब्द की व्याख्या में पद्म, वज्र, स्वस्तिक, मत्स्य, कलश आदि शब्दों का निर्देश दिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। जैन साहित्य में अष्ट मंगल की मान्यता प्रचलित है। अनुमान किया जा सकता है कि अवधिज्ञान के शरीरगत चिह्नों और अष्ट मंगलों में कोई सामञ्जस्य का सूत्र रहा हो।

श्रीवत्स आदि शुभ संस्थान वाले चैतन्य-केन्द्र मनुष्य और पशु के नाभि के ऊपर के भाग में होते हैं। वीरसेन आचार्य का मत है कि शुभ संस्थान वाले चैतन्य-केन्द्र नीचे के भाग में नहीं होते। नाभि से नीचे होने वाले चैतन्य-केन्द्रों के संस्थान अशुभ होते हैं, गिरगिट आदि अशुभ आकार वाले होते हैं। आचार्य वीरसेन के अनुसार इस विषय का षट्खंडागम में सूत्र नहीं है, किन्तु यह विषय उन्हें गुरु-परंपरा से उपलब्ध है।

चैतन्य-केन्द्रों के संस्थानों में परिवर्तन भी हो सकता है। सम्यक्त्व उपलब्ध होने पर नाभि से नीचे के अशुभ संस्थान मिट जाते हैं, नाभि के ऊपर के शुभ संस्थान निर्मित हो जाते हैं। इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व अवस्था में चले जाने पर नाभि के ऊपर के शुभ संस्थान मिट जाते हैं और नाभि से नीचे के अशुभ संस्थान निर्मित हो जाते हैं।

नाभि के ऊपर के चक्रों का जब रूपांतरण होता है तब नाभि चक्र का शोधन अपने आप होने लग जाता है। आदत को बदलने का सबसे बड़ा सूत्र है—ग्रन्थि-तंत्र का परिवर्तन। ऊर्ध्वरमण से हमारी ग्रन्थियां शुद्ध होने लगती हैं। आदतों में अपने आप परिवर्तन शुरु हो जाता है। कृष्ण-लेश्या शुद्ध होते होते नील-लेश्या बन जाती है। नील-लेश्या विशुद्ध होते होते कापोत-लेश्या बन जाती है। कापोत-लेश्या जब शुद्ध होती तब तेजो-लेश्या बन जाती है। हमारी समूची यात्रा तेजो-लेश्या से प्रारम्भ होती है। रंग का मनोविज्ञान बताता है कि अध्यात्म की यात्रा लाल रंग से प्रारम्भ होती है। हमारी अध्यात्म की यात्रा तेजो-लेश्या से प्रारम्भ होती है। तेजो-लेश्या का रंग है—बालसूर्य जैसा। तेजो-लेश्या में आते ही परिवर्तन शुरु हो जाता है। पद्म-लेश्या में परिवर्तन और ज्यादा हो जाता है। शुक्ल-लेश्या में पहुंचते ही आवृत्ति कम हो जाती है, केवल तरंग की लम्बाई मात्र रह जाती है। एक ही तरंग बन जाती है। इस अवस्था में व्यक्तित्व का पूरा रूपांतरण हो जाता है।

व्यक्तित्व के रूपांतरण की प्रक्रिया है—लेश्या का शोधन। लेश्या के शोधन की प्रक्रिया है—ग्रन्थि-तंत्र का शोधन और ग्रन्थि-तंत्र के शोधन की प्रक्रिया है—प्रेक्षा-ध्यान। यदि हम प्रेक्षा-ध्यान के द्वारा पूरे शरीर को देखते हैं तो देखते-देखते पूरा शरीर करण बन जाता है। वह एक निर्मल दर्पण बन जाता है। ज्ञान का आवरण और दर्शन का आवरण समाप्त हो जाता है। शक्ति का प्रतिरोध समाप्त हो जाता है। मोह या मूर्च्छा का वलय टूट जाता है। उसके देखने की क्षमता का विकास पूर्णता को प्राप्त हो जाता है।

18.8 अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण की प्रक्रिया : प्रेक्षाध्यान

इस चर्चा से अतीन्द्रिय चेतना की प्रारंभिक अवस्था—पूर्वाभास, अतीतबोध और उसकी विकसित अवस्था की सीमा को समझा जा सकता है। मनःपर्यवज्ञान या परचित्तज्ञान भी अतीन्द्रियज्ञान है। विचार-संप्रेषण विकसित इन्द्रिय-चेतना का ही एक स्तर है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञ का मत है कि विकास के क्रम के अनुसार प्रत्येक प्राणी में चेतना अनावृत होती है। इन्द्रिय, मानसिक और बौद्धिक चेतना के साथ-साथ कुछ अस्पष्ट या धुंधली-सी अतीन्द्रिय चेतना भी अनावृत होती है। पूर्वाभास, विचार-संप्रेषण आदि उसी कोटि के हैं। उनकी स्पष्टता के लिए शरीरगत चैतन्य-केन्द्रों को निर्मल बनाना होता है। संयम और चरित्र की साधना जितनी पुष्ट होती है, उतनी ही उनकी निर्मलता बढ़ती जाती है। चैतन्य-केन्द्रों को निर्मल बनाने का सबसे सशक्त साधन है—प्रेक्षा-ध्यान। प्रियता और अप्रियता के भाव से मुक्त चित्त नाभि के ऊपर के चैतन्य-केन्द्रों (आनन्द-केन्द्र, विशुद्धि-केन्द्र, प्राण-केन्द्र, दर्शन-केन्द्र, ज्योति-केन्द्र और ज्ञान-केन्द्र) पर केन्द्रित होता है तब वे निर्मल होने लग जाते हैं। इसका दीर्घकालीन अभ्यास अतीन्द्रिय ज्ञान की आधारभूमि बन जाता है। अतीन्द्रियज्ञान के धुंधले रूप चरित्र के विकास के बिना भी संभव हो सकते हैं किन्तु अतीन्द्रिय चेतना के विकास के साथ चरित्र के विकास का गहरा संबंध है। यहां चरित्र का अर्थ समता है, रागद्वेष या प्रियता-अप्रियता के भाव से मुक्त होना है। उसको अभ्यास-पद्धति प्रेक्षाध्यान है। प्रेक्षा का अर्थ है—देखना। देखने का अर्थ है चित्त को राग-द्वेष से मुक्त कर ध्येय का अनुभव करना। दर्शन की इस प्रक्रिया को अतीन्द्रिय चेतना-विकास की प्रक्रिया कहा जा सकता है।

18.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. चैतन्य-केन्द्रों के संस्थान और उनके परिवर्तन की प्रक्रिया—प्रेक्षा-ध्यान पर विस्तृत प्रकाश डालें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. चैतन्य-केन्द्रों के स्वरूप का विवेचन करें।
2. करण शब्द की एकार्थकता का विश्लेषण करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (एक लाइन में उत्तर दें)

1. चरित्र का क्या अर्थ है?
2. तेजो-लेश्या का रंग कैसा होता है?
3. उस व्यक्ति का क्या नाम है? जो किसी भी वस्तु को सूंघ कर 400 प्रकार की गंधों का आसानी से विश्लेषण कर सकता है।
4. शिवसंहिता में किन-किन शब्दों की एकार्थकता प्रतिपादित है?
5. मनुष्य का स्थूल शरीर किस का संवादी होता है?

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

1. दार्शनिकों एवं रहस्यवादियों ने पीनियल ग्लैण्ड को.....एवं आत्मा का स्थान कहा है।
2. मनुष्य का शरीर अनेक.....से भरा हुआ है।
3. किसी एक या अनेक चैतन्य-केन्द्रों की सक्रियता से होने वाले अवधिज्ञान का नाम.....है।
4. स्नायु-संस्थान एवं हार्मोन संस्थान की परस्पर प्रक्रिया से ही.....होता है।
5. कान का मुख्य श्रवण-यंत्र किलया.....संदेशों को ग्रहण करने की क्षमता रखता है।

18.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. आचारांगभाष्यम्—वाचना प्रमुख—गणाधिपति तुलसी, भाष्यकार—आचार्य महाप्रज्ञ
2. नंदी—वाचना प्रमुख—गणाधिपति तुलसी, संपादक, विवेचक—आचार्य महाप्रज्ञ
3. मनन और मूल्यांकन—आचार्य महाप्रज्ञ
4. आभामण्डल—आचार्य महाप्रज्ञ
5. अखण्ड ज्योति : अगस्त, 1997
6. प्रेक्षाध्यान : दिसम्बर, 1986

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–19 : मन की परासामान्य शक्तियां–मुख्य प्रकार–सम्मोहन और सूचनविद्या, मन : प्रभाव

संरचना

19.0 प्रस्तावना

19.1 उद्देश्य

19.2 सम्मोहन

19.2.1 सम्मोहन का स्वरूप

19.2.2 सम्मोहन विधि का महत्व

19.2.3 सम्मोहन विधि की आलोचना

19.3 संसूचन–विद्या

19.3.1 संसूचन क्या है?

19.3.2 संसूचन का स्वरूप

19.3.3 सूचना देना सीखें

19.3.4 स्व–संसूचन का महत्व

19.3.5 ओटोजेनिक ट्रेनिंग

19.3.6 विधायक चिंतन

19.3.7 स्व–संसूचन की समीक्षा

19.4 मन:प्रभाव

19.4.1 मन:प्रभाव का स्वरूप

19.4.2 मन:प्रभाव के प्रयोग

19.4.3 मन:प्रभाव की समीक्षा

19.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

19.6 संदर्भ ग्रंथ

19.1 प्रस्तावना

हमारा अवचेतन मन अनन्त शक्ति का भण्डार है। परामनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि हम एकाग्रता के द्वारा, ध्यान के द्वारा उस अनन्त क्षमता को जागृत करके गहन अनुभवों का साक्षात्कार कर सकते हैं। मन की अनन्त शक्तियां हैं लेकिन यहां हम मन की परासामान्य मुख्य तीन प्रकार की शक्तियों—सम्मोहन, सूचनविद्या और मन:प्रभाव के बारे में चर्चा करेंगे।

19.0 उद्देश्य

1. सम्मोहन के बारे में जान सकेंगे।
2. सम्मोहन के स्वरूप को समझ सकेंगे।
3. सम्मोहन विधि को पढ सकें।
4. संसूचन विद्या के बारे में जान सकेंगे।
5. स्व–संसूचन के महत्व को जान सकेंगे।
6. मन:प्रभाव के प्रयोगों को जान सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.2 सम्मोहन (Hypnotism)

सम्मोहन असामान्य मनोविज्ञान की बहुत ही प्राचीन विधि है। सर्वप्रथम इस विधि का शुभारम्भ वियाना निवासी एन्टोन मेस्मर (Anton Mesmer, 1733-1815) ने किया था। उन्होंने सम्मोहन सिद्धांत के आधार पर असामान्य व्यवहारों की व्याख्या की तथा मानसिक रोगों का उपचार प्रारम्भ किया। यह वह अवस्था है जिसमें सम्मोहित व्यक्ति को सम्मोहक ऐसे मौखिक संकेत देता है जिससे वह शिथिल अवस्था में चला जाता है और सम्मोहनकर्त्ता के निर्देशानुसार ही वह कार्य करता है।

19.2.1 सम्मोहन का स्वरूप

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जे. डी. पेज के अनुसार—"सम्मोहन कृत्रिम रूप से उत्पन्न समाधि की वह अवस्था है जिसमें उच्च सुझाव ग्राह्यता का गुण विद्यमान होता है।" मैक्डूगल की मान्यता है कि "सम्मोहन का आधार एक विशिष्ट मूल प्रवृत्ति होती है जिसमें सम्मोहक तत्त्व मुख्य रूप से होता है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति प्रेरणा के माध्यम से होती है।" फिशर महोदय का मत है कि "सम्मोहन वह अस्थायी मानसिक मनोविच्छेद अवस्था है जिसमें उच्चतम अधीनतापन या दब्बूपन की विशेषता पाई जाती है और जो मनोवैज्ञानिक प्रविधि के माध्यम से अकृत्रिम रूप से लायी जाती है।"

मेस्मर ने सर्वप्रथम सम्मोहन के लिए चुम्बक को ही माध्यम बनाया परन्तु बाद में उन्होंने बताया कि केवल स्पर्श करने के माध्यम से ही रोगी को आराम मिल जाता है। मेस्मर के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति में एक चुम्बकीय शक्ति होती है जिसका समुचित उपयोग करने से उसे मोहित किया जा सकता है। शुरुआत में इस विधि को मेस्मेरिज्म की संज्ञा दी जाती थी। मेस्मर के अतिरिक्त इस विधि का प्रयोग जेम्स ब्रेड ने (1725–1868) ने किया है। जॉन इलियटसन (1791–´868) ने लन्दन में सम्मोहन-शून्यता की अवस्था में अनेक ऑपरेशन भी किये। आजकल मुख्यरूप से इस विधि का प्रयोग क्षोभोन्माद (hysteria) के रोगियों के उपचार के लिए किया जाता है।

सम्मोहन के प्रयोगों से अब यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के मस्तिष्क में शक्ति का कोई ऐसा रहस्यमय स्थान होता है जिसका मनुष्य को स्वयं को भी बोध नहीं है। बेरन्ट हाइमन ने एक व्यक्ति को सम्मोहित किया तथा सम्मोहन की अवस्था में उसे एक विशेष कार्य करने को दिया तथा सम्मोहन अवस्था के पश्चात् उस व्यक्ति को उस कार्य की कोई स्मृति नहीं थी। सम्मोहन की अवस्था में उस व्यक्ति ने कार्य को अच्छी तरह से किया। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य के मस्तिष्क में कोई अज्ञात शक्ति होती है जो उसे उस कार्य को करने की प्रेरणा प्रदान करती है।

हार्ट महोदय लिखते हैं कि प्राय: यह देखा गया है कि यदि सम्मोहन की अवस्था में किसी व्यक्ति से बात करते करते कान में कोई प्रश्न करे तो उसका हाथ उक्त प्रश्न का उत्तर लिख देता है। वह नहीं जानता कि उसने कागज पर इस प्रकार का उत्तर क्यों लिखा। सम्मोहन की अवस्था में उसकी स्मृति तरोताजा हो जाती है, वह उस समय में बचपन में घटित ऐसी घटनाएं भी बतला देता है जो कि उसके जीवन से विस्मृत हो चुकी थी।

19.2.2 सम्मोहन विधि का महत्त्व

अथर्ववेद के ऋषि मनोचिकित्सा के क्षेत्र में सम्मोहन विद्या से परिचित थे। अथर्ववेद के चौथे काण्ड के 13वें सूक्त का 7वां मंत्र सम्मोहन द्वारा रोगी को रोग मुक्त करने का निर्देश देता है। आस्ट्रेलिया के डी. लोराना ने आस्ट्रेलियन सोसायटी द्वारा क्लिनिकल हिप्नोसिस के 201 सदस्यों के चिकित्सा परिणामों का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया तथा अपना निष्कर्ष अमेरिकन साइकोलोजिकल एब्स्ट्रेक्ट में प्रकाशित किया। डी. लोराना के निष्कर्षानुसार सम्मोहन से व्यक्ति को बुरी आदतों से बचाया जा सकता है। जिन व्यक्तियों को नशे की आदत थी, जो गहरे मानसिक तनाव से ग्रस्त रहते थे, जिनका स्वभाव चिड़चिड़ा था एवं भय से ग्रस्त रहते थे, उनका उपचार सम्मोहन विधि से अधिक सफल रहा। अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर रोगी की चिकित्सा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आत्मविश्वास से करने का निर्देश है। इस संदर्भ में विख्यात लेखक एवं मनोवैज्ञानिक चार्ल्स टी. टार्ट ने अपनी कृति 'आल्टर्ड स्टेट ऑफ कॉन्सिअशनेश' में विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है।

टार्ट ने रूस के सरेगी स्वमनीनोफ नामक एक पियानो वादक का वर्णन किया है कि वह किस प्रकार अपनी खोई हुई क्षमता को 'ऑटोसजेशन' के माध्यम से प्राप्त कर लेता है। जब वह इक्कीस वर्ष का था तब उसे अपने प्रथम पियानो कन्सरटो में उसे अच्छी सफलता नहीं मिली। परिणाम स्वरूप वह विकृत चिंतन का शिकार हो गया। अन्त में उन्होंने हिप्नोटिक चिकित्सा के लिए विख्यात चिकित्सक डॉक्टर निकोलाई दॉल से संपर्क किया। डॉ. दॉल स्विमनीनोफ को तीन महीने तक लगातार आधे-आधे घंटे तक सेसन्स में सामान्य हिप्नोटिक चिकित्सा के साथ-साथ बार-बार एक ही सजेशन देते रहे कि "तुम पुन: संगीत की अच्छी तर्ज बना लोगे और सफलता के साथ बड़ी आसानी से उसका प्रदर्शन कर सकोगे।"

इस प्रकार का 'हिप्नोटिक सजेशन' बहुत ही प्रभावी सिद्ध हुआ। धीरे-धीरे वह क्रमश: फिर से नयी-नयी धुनें बनाने लगा। उसके मस्तिष्क में संगीत की नयी-नयी धुनें विहार करने लगीं, उनकी तर्जें बनने लगी और विस्तृत होकर स्वरमाधुरी से लबालब होने लगीं। सन् 1901 में स्विमनीनोफ ने मास्को में आयोजित एक पियानो और आर्केस्ट्रा प्रतियोगिता में भाग लिया जिसमें उसे पुरस्कृत किया गया तथा यश और कीर्त्ति भी फैली। क्रमश: उसकी लोकप्रियता और ख्याति बढ़ती गयी। आज भी संगीत समारोहों में स्विमनीनोफ की तर्ज को प्राथमिकता दी जाती है, जिसका नामकरण उसने डॉ. निकोलाई के नाम पर किया था।

19.2.3 सम्मोहन विधि की आलोचना

1. इसके माध्यम से उपचार अस्थायी होता है क्योंकि कुछ आलोचकों का कहना है कि इसके द्वारा उपचार केवल बाह्य स्तर पर होता है, आंतरिक संघर्षों को दूर करना संभव नहीं है।
2. इस विधि में रोगी के अन्दर आश्रितता की भावना का जन्म हो जाता है जिसके कारण वह अपने अनेक कार्यों का उत्तरदायित्व सम्मोहन को मानता है।
3. इस विधि के माध्यम से केवल 20% रोगों का अध्ययन किया जा सकता है। 80% रोगों का अध्ययन संभव नहीं होता है।
4. इस विधि का उपयोग सभी मनोवैज्ञानिक या चिकित्सक नहीं कर सकते, क्योंकि उसके लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।
5. यह एक आत्मनिष्ठ प्रक्रिया (subjective method) है।

19.3 संसूचन-विद्या (Suggestion)

संसूचन या संकेत के उपयोग से भी मनश्चिकित्सा में सहायता मिलती है। यह बहुत ही प्राचीन एवं सरल प्रविधि है। इस प्रविधि में मनश्चिकित्सक रोगी को साधारण प्रकार से कुछ संसूचन देता है, जिन्हें रोगी स्वीकार करके अनुकूल प्रतिक्रिया करता है। इस प्रविधि का क्षेत्र काफी व्यापक है, क्योंकि अन्य अनेक चिकित्सीय प्रविधियों में इसका उपयोग किया जाता है। रोगी के सम्मुख चिकित्सक अपने विचारों को व्यक्त कर देता है तथा उसे गानने या न गानने का कार्य उस पर ही छोड़ देता है। चिकित्साक रोगी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालता है। इसलिए रोगी का चिकित्सक के प्रति पूर्ण विश्वास हो जाता है, फिर चिकित्सक जो भी संसूचन रोगी को देता है रोगी उसे अवचेतन मन में ग्रहण कर लेता है।

19.3.1 सजेशन क्या है?

उच्च, पुष्ट तथा दृढ़ विचार, स्पर्श, ध्वनि, शब्द, भावना, अनुप्रेक्षा आदि प्रयोगों के द्वारा अपने तथा दूसरों के मन पर प्रभाव डालना अथवा अपनी इच्छा द्वारा कार्य संपन्न कराने को संकेत या सजेशन कहते हैं। व्यक्ति कुछ वाक्यों, शब्दों तथा सूत्रों का आलम्बन लेकर बार-बार उन्हें दोहराता है। अभ्यास करते करते वे विचार दिमाग में स्थायी बन जाते हैं। हम अपने में जैसा निर्माण करना चाहते हैं वैसा ही रूपांतरण घटित हो जाता है। स्वत:सूचन का सीधा प्रभाव हमारे अवचेतन मन पर पड़ता है। जब अवचेतन मन स्वत:सूचन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

से पूर्ण भावित हो जाता है, उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है तो वह कार्य रूप में उनको साकार करने लग जाता है।

19.3.2 संसूचन का स्वरूप

मैक्डूगल के अनुसार—"संसूचन वह प्रविधि है जिसमें प्रत्यक्ष आदेशों की ओर न जाते हुए व्यक्ति के विश्वासों या क्रियाओं को प्रभावित किया जाता है।" संसूचन कहां तक रोगी पर प्रभाव डालता है, यह चिकित्सक के प्रभावी व्यक्तित्व एवं पर्यावरण पर निर्भर होता है। प्राकृतिक चिकित्सक कहते हैं कि कोष्ठबद्धता हो तो पहले स्थिर बैठ कर ध्यानस्थ हो जाओ और ज्ञान तन्तुओं को सूचना दो कि शौच साफ हो रहा है, पैट साफ हो रहा है। ज्ञान-तन्तु वैसा ही आचरण करने लग जाएंगे। मानसिक विकास के क्षेत्र में स्वत:सूचन का बहुत बड़ा महत्त्व है। सम्मोहन की प्रक्रिया भी आश्चर्यकारी है। इनकी पृष्ठभूमि में ज्ञान-तंतुओं का ही चमत्कार है। इन ज्ञान-तंतुओं में विचित्र क्षमताएं हैं, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। सम्मोहन का प्रयोग सूचना के आधार पर चलता है। सूचना के आधार पर शारीरिक अवयव भी उसी प्रकार काम करने लग जाते हैं। जब सूचनाओं के आधार पर ज्ञान-तंतु काम करने में तत्पर रहते हैं तो हम उनसे लाभ क्यों नहीं उठाएं? हम अपने आप स्वत:सूचन दें, पुराने को बदल कर नये को स्थापित करने के लिए। ज्ञान-तंतुओं के साथ आत्मीयता साधने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है स्वत:सूचन का। फिर हम जो भी सुझाव देंगे वैसा घटित होने लग जाएगा, वैसा ही परिणमन प्रारम्भ हो जाएगा। मन की शक्ति विकसित होने लग जाएगी।

19.3.3 सूचना देना सीखें

मर्कस टी. बोटम्ले का मत है कि हमें अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए निम्न सुझाव देने चाहिए—

* Day after day, I am asserting my true personality more and more.
* I am unique and feel complete by free to express my desire to succeed and grow rich.
* It is my right and duty to be my self.
* The success I achieve will be in keeping with the extent to which I assert myself. I asserting myself more and more in all areas of my life.
* Every day I am increasing my self-worth tenfold and becoming more and more successful. (The Goldmine on your Shoulders-Marcus T. Bottomley, page 143)

प्रेक्षा-ध्यान में अनुप्रेक्षा का प्रयोग स्वभाव परिवर्तन की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है। हम अपने व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से जो भी सुझाव देते हैं वैसा ही घटित होने लग जाता है। इन प्रयोगों में व्यक्ति की चेतना मूर्च्छित नहीं होती अपितु व्यक्ति पूर्ण जागरूक रहता है। जागरूकता में जो भी सुझाव दिया जाता है, वह अवचेतन मन शीघ्र ही ग्रहण कर लेता है। अनुप्रेक्षाएं अनेक प्रकार की हैं, जैसे सहिष्णुता का विकास करना है तो सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा, वैसे ही करुण, मैत्री, मानवीय एकता, सामंजस्य, मृदुता, कर्त्तव्यनिष्ठता, मानसिक संतुलन, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह आदि अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास करके व्यक्ति अपने चाहे जैसे व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार अनुप्रेक्षाओं के द्वारा व्यक्तित्व का परिष्कार कर आमूलचूल परिवर्तन घटित किया जा सकता है। व्यक्ति पुरुषार्थ के द्वारा प्रतिभा संपन्न बन सकता है। पूर्ण आस्था एवं दृढ़ निश्चय के साथ संकल्प जितना पुष्ट एवं वजनदार होगा उसकी निष्पत्ति भी उतनी ही अभूतपूर्व होगी।

सुझाव देने के अनेक तरीके हैं स्वस्थता एवं प्रसन्नता के लिए निम्न सुझाव देने चाहिए—

I am healthy, strong and vital. My subconscious mind now takes over the workings of my vital organs and gives me perfect health. My heart operates under this subconscious control. It is now beating perfectly, and maintaining my body in perfect health.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

I now ask my subconscious mind to bring me events that make me happy. I wish to overcome the negative conditions and problems that keep me from being happy and having peace of mind. Show me how to think, how to live, and what to do to be happy and complete. (Norvell's Dynamic Mental Laws For Successful Living, Page 111)

एन्थोनी नोर्वे के अनुसार यदि व्यक्ति के पास में स्वसंसूचन के लिए ज्यादा समय नहीं है तो वह अल्प समय में भी सुझाव से सफलता प्राप्त कर सकता है। सफलता के लिए सुझाव इस प्रकार देना चाहिए—'I am successful. I am happy. I will attract the right conditions in my life to give me completion. I now ask my subconscious mind to guide me each day to the experiences that will bring me happiness, success, peace of mind, and perfect health.' (Norvell's Dynamic Mental Laws For Successful Living, Page 112)

19.4.4 स्व-संसूचन का महत्त्व

डॉ. स्टन्लेय फिशर ने कोन्नीइ नामक मरीज पर स्व-संसूचन का प्रयोग किया। वह बहुत बीमार थी। उसका इम्यून सिस्टम गड़बड़ाया हुआ था। उसको प्रतिदिन हाई पॉवर की दवाइयां दी जाती थी। डॉ. ने कुछ दिन उसे साथ में स्व-सूचन का प्रयोग भी कराया जिससे वह शीघ्र ठीक हो गयी। डॉ. स्टन्लेय फिशर लिखते हैं—I gave Connie a self- hypnosis exercise in which she made her body receptive to the medication. She and the medication working together would destroy and eliminate the attackers and return the immune system to its usual protective role. By being receptive to and collaborating with the medication, she could minimize the damage to her system and control the disease. That was the massage each day—and many times a day. Connie would repeat: "This medicine and I are working together to heal my body. Even though this medicine can poisonous and dangerous to me, I am taking it to help me. I am taking it so we (my body and I) will get better."

Connie's self-hypnosis exercise helped her to respond and fight a winning battle in a number of ways. For example, steroids have a tendancy to bloat you, and she asked the doctors to put her on a diet. Knowing she was going to gain a lot of weight, she wanted to fight a battle on that front too, because she was in a state of wanting her body to respond. During her weeks in the hospital, she was an active participant in trying to help her body heal.

Connie believes, as I do, that with the help of self-hypnosis, the control she had over her body and mind was a key factor in her recovery. (Discovering the Power of Self-Hypnosis—By Stanley Fisher, P.116-17)

सम्मोहन विज्ञान के ज्ञाता जानते हैं कि इस विद्या के द्वारा किस प्रकार शारीरिक और मानसिक चिकित्सा की जा सकती है और उसका लाभ औषधि उपचार की तरह रोगी को मिलता है। इसी प्रकार प्राणवान व्यक्ति अपनी जीवनीशक्ति का एक अंश दूसरों को देकर उनमें नव-जीवन का संचार कर देते हैं। इस प्रयोग के द्वारा व्यक्ति को प्रभावित करके उसके चिंतन एवं चरित्र को बदला जा सकता है। उसके स्वास्थ्य को स्वस्थ किया जा सकता है तथा शक्ति, ज्ञान एवं पराक्रम से सम्पन्न भी बनाया जा सकता है।

'डिस्कवरिंग द पॉवर ऑफ सेल्फ हिप्नोसिस' में कहा गया है—Dr. Fisher has Found in working with some 800 surgery patients over the past two decades that suggestions given by self-hypnosis, both pre-and postoperatively, can empower the patient to reduce anxiety, relax muscles, lower blood pressure, and work as a partner with the surgeon. In research with coronary bypass patients at the Albert Einstein College of Medicine, he and his collaborators established that patients with medium hypnotic capacity came through surgery with less pain, bleeding, and swelling, and recovered more quickly. (Discovering the Power of Self-Hypnosis, Foreword—By Gail Sheehy, P. viii)

प्राचीनकाल में भारतीय ऋषि-मनीषियों ने इस संदर्भ में गहन अनुसंधान एवं प्रयोग किये तथा उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। उसकी नींव पर आज भी भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास एवं परामनोविज्ञान के अनुसंधान टिके हुए हैं। आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं एवं मनोवैज्ञानिकों के अनुसंधानों ने भी अब उक्त तथ्यों की पुष्टि कर दी है। शरीरविज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि से क्या-क्या परिवर्तन देखे गए हैं? इससे हमारी जागृत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चेतना के गर्भ में अन्य परतों तक कैसे पहुंचा जा सकता है? इस दृष्टि से इस क्षेत्र में विशेष कार्य हुआ है तथा आगे भी संभावित है।

19.4.5 ओटोजेनिक ट्रेनिंग

विश्व के अनेक देशों में विगत चार दशकों से हिप्नोसिस एवं ऑटोसजेशन पर अनेकों अनुसंधान कार्य हुए हैं। यह निष्कर्ष निकाला गया कि इन प्रक्रियाओं द्वारा प्रसुप्त चेतना को जागृत किया जा सकता है तथा कार्य करने की अनन्त क्षमता को अर्जित किया जा सकता है। विश्व प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ऑल्डुअस हक्सले के अनुसार—"मनुष्य का चेतना क्षेत्र समुद्र की तरह गहरा और विशाल है। उसकी अनेकों परते हैं। ऊपरी सतह से नीचे उतरने पर पायी जाने वाली इन परतों को अचेतन, अवचेतन और सुपर चेतन की परतें कहते हैं। सक्रिय मस्तिष्क को निद्रित कर देना और अचेतन को क्रियाशील बना देना सम्मोहन एवं स्वसंकेत द्वारा संभव है। इस प्रकार की स्वसंकेत या स्व-संवेदन प्रक्रिया को 'ओटोजेनिक ट्रेनिंग' नाम दिया गया है।"

19.4.6 विधायक चिंतन

एन्थोनी नोर्वेल ने विधायक चिंतन कैसे करें इसको दर्शाते हुए 'नोर्वेल्स डायनेमिक मेंटल लॉज फॉर सक्सीशफुल लिविंग' नामक कृति में बताया है—

1. Try to think positive thoughts all the time.
2. Do not react emotionally to things that happen or things you read about. Apply reason and logic and never let the effect get to your heart or emotions.
3. Say only positive things that you want to have happen to you, not negative statements that might get caught up in your sympathetic nervous system.
4. Avoid hating or resenting people, but use the law of love and forgiveness to free you from emotional negative charges.
5. Read books that inspire and uplift you, rather than books dealing with crimes of violence and negative things that leave a negative emotional charge.

Autosuggestion actually means talking to your own subconscious mind. The following autosuggestions can be memorized and used whenever you need them. (Norvell's Dynamic Mental Laws For Successful Living, Page 110)

आचार्य श्री महाप्रज्ञ के अनुसार विधायक चिंतन के द्वारा हम अपने जीवन में आने वाली समस्याओं का समाधान स्वयं अपने भीतर खोज सकते हैं। स्व-संसूचन द्वारा विचारों का परिष्कार कर अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

19.4.7 स्व-संसूचन की समीक्षा

सम्मोहन में प्राय: सम्मोहित व्यक्ति को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। सम्मोहनकर्त्ता के निर्देशों और संकेतों के आधार पर उसे चलना पड़ता है। जिसके कारण उसके व्यक्तित्व पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। यह कमी 'ऑटोसजेशन' या 'ओटोजेनिक ट्रेनिंग' से दूर हो जाती है। यह एक प्रकार की साइकोथेरेपी है, जो स्वयं द्वारा स्वयं के लिए की जाती है। जर्मनी के मनोवैज्ञानिक जे. एच. शुल्ज ने अपनी कृति 'ओटोजेनिक ऑरगन एक्सरसाइजेज' में इस संदर्भ में विस्तार पूर्वक लिखा है। उनके अनुसार इस ट्रेनिंग में विभिन्न प्रकार के संकेतों के माध्यम से शरीर के विभिन्न अंगों में शिथिलीकरण एवं उष्मा का संचार किया जा सकता है। इन क्रियाओं के कारण शारीरिक प्रक्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों का शरीरक्रियाविज्ञानियों ने अध्ययन किया है। पुराने संस्कारों, आदतों को नष्ट करने और नवीन आदतों तथा संस्कारों को उत्पन्न करने का सबसे सरल और प्रभावकारी प्रयोग स्वत:संसूचन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परन्तु इतना होते हुए भी इसे एक वैज्ञानिक प्रविधि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि संसूचन की निम्नलिखित त्रुटियां भी हैं—

1. सीमित उपयोग—बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी संसूचनों को स्वीकार नहीं करता है।
2. अस्थायी प्रभाव—अल्प समय के लिए रोगी का उपचार संभव है क्योंकि इसके द्वारा केवल लक्षण कम या दूर होते हैं, न कि कारण।
3. सभी प्रकार के मानसिक रोगियों के लिए उपयुक्त नहीं है।

19.5 मन:प्रभाव [Psycho-keinesis]

मन द्वारा पदार्थ को सीधे प्रभावित करने की क्रिया को मन:प्रभाव (साइकोकीनेसिस) कहा गया है। बाह्य जगत् में मानवीय कार्यों के प्रति सामान्य मान्यता यही है कि प्रत्येक कार्य के लिए दैहिक अवयवों, यथा मस्तिष्क स्नायुओं, मांसपेशियों व कर्मेन्द्रियों का होना अनिवार्य है। किंतु जब कोई क्रिया बिना दैहिक माध्यम के, मन द्वारा सीधे पदार्थ को प्रभावित करके सम्पन्न होती है तो उसे परासामान्य की श्रेणी में रखा जाता है।

19.5.1 मन:प्रभाव का स्वरूप

प्राणचेतना द्वारा मनुष्यों को प्रभावित करने की तरह ही मनोबल के द्वारा पदार्थों को भी प्रभावित किया जा सकता है। उन्हें प्राण के द्वारा इधर-उधर हटाया जा सकता है, ऊपर उठाया जा सकता है, हिलाया जा सकता है, गिराया जा सकता है तथा उनके स्वरूप को बदला जा सकता है। आग और बिजली की सहायता से पदार्थों के आकार-प्रकार में परिवर्तन किया जा सकता है वैसे ही मनोबल के संयोग से भी संभव हो सकता है। मनोबल का सामान्य प्रयोग एक-दूसरे को प्रभावित करने के लिए किया जा सकता है। उसे विकसित करके व्यवस्थित लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किया जाए तो प्रतीत होगा कि वह कितना शक्तिशाली है। मनोबल के आधार पर व्यक्ति को ही नहीं पदार्थों और परिस्थितियों को भी बदला जा सकता है।

'द पॉवर ऑफ माइण्ड' नामक अपनी कृति में अलैक्जेण्डर रात्फ ने लिखा है कि प्रगाढ़ ध्यान शक्ति द्वारा एकाग्र मानव मन शरीर के बाहर स्थित सजीव एवं निर्जीव पदार्थों पर भी इच्छानुकूल प्रभाव डाल सकता है। उनका मानना है कि इच्छाशक्ति के द्वारा स्थूलजगत् पर सुनिश्चित नियंत्रण किया जा सकता है। वैज्ञानिक भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हमारा अचेतन मन एक सशक्त सुपर कम्प्यूटर की तरह कार्य करता है।

विज्ञानवेत्ता भी अब मानते हैं कि व्यक्ति स्वयं अपना विद्युत चुम्बकीय बलक्षेत्र/गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र या आभामण्डल विकसित कर सकता है। लेकिन वैज्ञानिक आभामण्डल को विकसित करने की प्रक्रिया एवं आधार को अभी तक नहीं खोज पाए हैं। मनुष्य चलता फिरता बिजलीघर है। मनुष्य शरीर का संचालन एवं उसकी आंतरिक क्रियाओं का प्रतिपादन प्राणरूपी विद्युतप्रवाह से ही होता है। वैज्ञानिक जिसे 'बायोइलेक्ट्रिसिटी' कहते हैं।

पूर्व सोवियत संघ की एक महिला सैनिक अधिकारी नेल्या मिखाइलोवा मन:शक्ति के प्रभावों के लिए विश्रुत है कि वह स्थिर रखे जड़-पात्रों को गतिशील बना देती है, चलती हुई घड़ी की सूई को रोक देती है और उसे पुन: चालू भी कर देती है। इन प्रयोगों की जांच मूर्धन्य वैज्ञानिकों द्वारा की गई और उन्हें सही पाया गया। इसी तरह तेल अबीब के यूरीगेलर नामक व्यक्ति मन:शक्ति के प्रभावों से जड़-पदार्थों में हलचल पैदा करने, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने एवं पुन: उसी स्थान पर लाने जैसे विलक्षण करतबों को दिखाने के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। बचपन में ही उसे यह विलक्षणता सहज ही प्राप्त हुई थी।

श्री डेनियल डगलस होम अपने मनोबल एवं अतीन्द्रिय क्षमता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। 'दि रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी' के तत्कालीन अध्यक्ष तथा अन्य प्रमुख वैज्ञानिकों ने डेनियल डगलस होम की विलक्षण प्रतिभा एवं चमत्कारिक कलाबाजियों का आंखों देखा विवेचन किया है। प्रख्यात वैज्ञानिक एवं थीलियम तथा गेलियम धातुओं के अन्वेषणकर्त्ता सर विलियम क्रुक्स ने भी होम का गहराई से अन्वेषण कर उसे सत्य साबित किया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हवा में ऊंचा उठ जाना, हवा में चलना और तैरना, जलते हुए अंगारे हाथ में रखना आदि करिश्में दिखाना डगलस होम के लिए साधारण बात थी। सर विलियम क्रुक्स अपने समय के शीर्षस्थ रसायनविज्ञानी थे। उन्होंने होम की हथेलियों का बारीकी से निरीक्षण किया, हाथों में कुछ भी लगा हुआ नहीं था। उसके हाथ नाजुक और मुलायम थे। फिर भी होम ने धधकती अंगीठी से सर्वाधिक लाल चमकदार कोयला उठाकर अपनी हथेली में रखा और देर तक उसे रखे रखा। क्रुक्स ने देखा कि होम के हाथ में छाले, फफोले कुछ भी नहीं हुए।

मूर्धन्य विद्वान् लार्ड अडारे ने भी 'रिपोर्ट ऑफ द डायलेक्टिकल सोसायटीज कमेटी ऑफ स्पिरिचुअलिज्म' में होम के अतिमानसिक शक्तियों एवं अदृश्य होने की क्षमताओं का विवेचन किया है। अनेक व्यक्तियों की उपस्थिति में होम कमरे की समस्त वस्तुओं को अपनी इच्छा-शक्ति से हिलाने में समर्थ है। टेबल या कुर्सी को जमीन से चार-छह फुट ऊपर उठा देना तथा होम की अपनी इच्छानुसार टेबल के उलटने-पलटने पर भी उस टेबल पर रखे हुए सामान का नीचे न गिरना उसके मन:प्रभाव का ही चमत्कार है।

बोध प्रश्न :

---

1. *सम्मोहन का क्या अर्थ है?*
2. *प्रेक्षाध्यान पद्धति में संसूचन का क्या महत्व है?*
3. *ओटोजेनिक ट्रेनिंग क्या है?*
4. *मन:प्रभाव का अर्थ बताइए।*

19.5.2 मन:प्रभाव के प्रयोग

साधना के द्वारा इन चामत्कारिक शक्तियों को प्राप्त किया जा सकता है। किसी किसी को यह क्षमता पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण सहज ही प्राप्त हो जाती है। हर व्यक्ति में अनन्त क्षमता विद्यमान रहती है, आवश्यकता है प्रयोगों के द्वारा उस सुषुप्त चेतना को जागृत करने की।

1970 में डॉ. लुइसा राइन ने मन: प्रभाव पर एक पुस्तक लिखी—'माइण्ड ओवर मैटर।' डॉ. जे. बी. राइन एवं उनके सहयोगियों ने ड्यूक विश्वविद्यालय में अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के साथ साथ अनेक वर्षों तक मन:प्रभाव संबंधी सैकड़ों परीक्षण करके मन:प्रभाव के सांख्यिकीय साक्ष्य एकत्रित किए हैं।

ड्यूक की परामनोविज्ञान प्रयोगशाला में एक दिन एक सज्जन आया, उसने बताया कि वह जुआ खेलने में माहिर है। उस सज्जन ने अपने रहस्य को उद्घाटित करते हुए बताया कि जब वह एक विशेष मन:स्थिति में होता है तो अपनी इच्छानुसार पासों को गिरने के लिए बाध्य कर सकता है। डॉ. राइन ने पासें फैंकने की सामान्य क्रिया पर मन:प्रभाव को आंकने के लिए अपने प्रयोगों को ऐसा रूप दिया कि परिणामों का सुनिश्चित सांख्यिकीय मूल्यांकन किया जा सके।

राइन के अतिरिक्त अनेक अन्य विद्वानों ने भी मन:प्रभाव संबंधी प्रयोग करके इसके साक्ष्य व प्रकृति को निश्चित करने का प्रयास किया है किंतु कुछ ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व भी हुए हैं, जिन्होंने उपर्युक्त परीक्षणों के सर्वोत्तम परिणामों को बहुत-बहुत पीछे छोड़ दिया है।

एक कुशाग्रबुद्धि एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाली महिला मादाम मिखाइलोवा ने सोवियत संघ के सर्वोच्च वैज्ञानिकों की देख-रेख में अनेक बार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं, जैसे कम्पास, धातु का बेलन, फाउन्टेन पैन, माचिस की डिबिया, काच के कवर के नीचे रखी पांच सिगरेटों आदि को बिना उन्हें स्पर्श किए, हिलाने-डुलाने अथवा खिसकाने की क्षमता का प्रदर्शन किया है।

मादाम मिखाइलोवा पर लगभग 60 फिल्में तैयार हुई जिनमें वह एक टेबल पर पड़ी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को केवल अपनी दृष्टि केन्द्रित करके अथवा उनके ऊपर अपने हाथ को चक्राकार रूप में घुमाकर उन वस्तुओं को इधर-उधर हिला-डुला रही है। अनेक बार उन्होंने ये करतब टेलीविजन के केमरे के समक्ष,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनेक वैज्ञानिकों, परामनोवैज्ञानिकों, रिपोर्टरों व अन्य दर्शकों की उपस्थिति में करके दिखाये। प्रदर्शनों से पूर्व मादाम मिखाइलोवा की पूरी अच्छी तरह से जांच-पड़ताल होती थी कि उसने कुछ ऐसी कोई चीजें छुपा कर तो नहीं रखी है। इतना ही नहीं, उसका एक्सरे भी लिया जाता था कि कहीं उसने चुम्बक छुपा कर तो नहीं रख लिया है।

1792 में एक आंग्ल भौतिकशास्त्री व डाउन-टाउन में परामनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला के निदेशक बेन्सन हर्बर्ट मादाम मिखाइलोवा का अध्ययन करने मास्को गये। सभी तरह के परीक्षण करने के बाद बेन्सन हर्बर्ट को भी कहना पड़ा कि मादाम मिखाइलोवा में 'वस्तुओं में बिना किसी भी ज्ञात शक्ति का उपयोग किये, इच्छानुसार गति उत्पन्न करने की क्षमता है।'

एक अन्य व्यक्तित्व जो कि वैज्ञानिकों के लिए उलझन बना हुआ है, वह है एक इजरायली युवक ऊरी गैलर। उसका जन्म तेल अबीब में 20 दिसम्बर, 1946 को हुआ था। उसकी माता विख्यात मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड फ्रायड की रिश्तेदार थी। गैलर का कहना है कि उनमें बचपन से ही कुछ परासामान्य क्षमताएं थीं। 1971 में न्यूयार्क विश्वविद्यालय के एक विज्ञानी डॉ. एड्रिजा पुहारिख यह जानने के लिए कि गैलर में ये क्षमताएं हैं या नहीं? उसका अध्ययन करने के लिए इजरायल गये। डॉ. पुहारिख ने वहां जो कुछ देखा, उसमें ऊरी गैलर द्वारा चम्मचों के सिरे उड़ा देना, कांटों एवं छुरियों को मोड़ देना, सोने की अंगूठियों व चैनों को तोड़ देना तथा घड़ियों को बन्द व पुनः चालू कर देना आदि अनेक करिश्में सम्मिलित थे। डॉ. पुहारिख का तो यह भी कहना है कि गैलर में वस्तु को समाप्त करके पुनः निर्माण करने की क्षमता भी विद्यमान है।

1972 में गैलर ने म्यूनिख की सड़कों पर एक रात आंखों को पूरी तरह ढक कर कार चलाई और अनेक शंकालू व्यक्तियों के आभूषणों को उनका स्पर्श किए बिना ही उन्हें तोड़-मरोड़ कर सबको आश्चर्य में डाल दिया। 'मैक्सप्लेण्क इंस्टीट्यूट फॉर प्लाज्मा' फिजिक्स के डॉ. फ्रीडबर्ट कारगर ने इसके बारे में कहा कि "इस व्यक्ति की शक्तियां अत्यन्त विलक्षण हैं। इनकी सैद्धांतिक भौतिकी द्वारा अभी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती है।"

कैलीफोर्निया की स्टैंफोर्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट में भौतिक विज्ञानी डॉ. हैराल्ड पुथोंक व रसल टार्ग ने अपनी प्रयोगशालाओं में गैलर पर अनेक परीक्षण किये। उनमें से कुछ फिल्में भी बनाई गयी। 1972 में एक प्रयोग छः सप्ताह तक चला।

19.5.3 मनःप्रभाव की समीक्षा

मनःप्रभाव के साक्ष्य हमें उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बहुचर्चित अनेक माध्यमों के जीवन में प्राप्त होते हैं। अनेक माध्यमों को धोखाधड़ी करते हुए भी पकड़ा गया तथा वैज्ञानिक नियंत्रण में परीक्षण की भी पर्याप्त सुविधा नहीं थी, अतः वैज्ञानिक अध्ययन बहुत कम किया गया। फिर भी कुछ माध्यमों को उस समय के लगभग सभी अन्वेषकों ने मान्यता प्रदान की है।

इस प्रकार मनःप्रभाव की सैंकड़ों घटनाएं प्राप्त होती हैं, आवश्यकता है परामनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में प्रामाणिक वैज्ञानिक रिसर्च की। वैज्ञानिक जगत् में ये रहस्यमय करतब आज भी जटिल पहेली बने हुए हैं।

जीवन विज्ञान शिक्षा में प्रेक्षा-ध्यान के प्रयोग मनःप्रभाव को बढाने में बहुत उपयोगी हैं। प्रेक्षा-ध्यान में मुख्यरूप से संकल्पशक्ति एवं प्राण के प्रयोगों के द्वारा अभूतपूर्व अनुभव किया जा सकता है, आवश्यकता है नियमित रूप से प्रयोग करने की। यदि व्यक्ति निष्ठा एवं संकल्प पूर्वक प्रयोग करता है तो निश्चित ही उसकी प्राणशक्ति संवर्द्धित हो सकती है।

19.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबन्धात्मक प्रश्न

1. सूचनविद्या पर एक सारगर्भित निबंध लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सम्मोहन के स्वरूप को बताते हुए सम्मोहन विधि के महत्त्व पर प्रकाश डालें।
2. मन:प्रभाव के स्वरूप का विवेचन करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'ऑल्टर्ड स्टेट ऑफ कॉन्सिअशनेश' कृति के लेखक कौन हैं?
2. डॉ. स्टन्लेय फिशर ने कौन-से मरीज पर स्व-संसूचन का प्रयोग किया?
3. 'माइण्ड ओवर मैटर' पुस्तक के लेखक कौन हैं?
4. इजरायली युवक ऊरी गैलर का जन्म कहां और कब हुआ?
5. गैलर में वस्तु को समाप्त करके पुन: निर्माण करने की क्षमता भी विद्यमान है—यह कथन किसका है?

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

1. सम्मोहन.....की बहुत ही प्राचीन विधि है।
2. हमारा अवचेतन मन अनन्त शक्ति का.....है।
3. अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर रोगी की चिकित्सा.....से करने का निर्देश है।
4. स्वत:सूचन का सीधा प्रभाव हमारे.....पर पड़ता है।
5. व्यक्ति.....के द्वारा प्रतिभा संपन्न बन सकता है।

19.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. अखण्ड ज्योति : मई, 1998
2. अखण्ड ज्योति : जुलाई, 1998
3. Discovering the Power of Self-Hypnosis—By Stanley Fisher, Ph. D.
4. चित्त और मन—आचार्य महाप्रज्ञ
5. परामनोविज्ञान—कीर्ति स्वरूप रावत
6. Norvell's Dynamic Mental Laws For Successful Living—by Anthony Norvell
7. The Goldmine on your Shoulders—Marcus T. Bottomley

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–20 : भूत–प्रेत, देव आदि का अस्तित्व–उनके साथ संचार, बातचीत, भूतावेश आदि

संरचना

20.0 प्रस्तावना
20.1 उद्देश्य
20.2.0 प्रेतात्मा का अस्तित्व
20.2.1 वैज्ञानिक भी भूतों से टकराए!
20.2.2 भूत–प्रेत के साथ बात–चीत
20.2.3 प्रेत संचार
20.2.4 स्वत:स्फूर्त लेखन
20.2.5 भूतावेश
20.2.6 प्रेत–संकेत
20.2.7 सशरीरी प्रेत
20.3.0 देवों का अस्तित्व
20.3.1 देवों का शरीर एवं गति
20.3.2 दवों की रुचि एवं शक्ति
20.3.3 व्यंतर कौन होता है?
20.3.4 देवों से संपर्क की विधि
20.3.5 देवपुत्र से साक्षात्कार
20.3.6 स्वर्ग से आए और वसीयत लिखकर चले गए!
20.4.0 अभ्यास हेतु प्रश्न
20.5.0 संदर्भ ग्रंथ

20.0 प्रस्तावना

वैज्ञानिक प्रगति होते हुए भी आधुनिक युग में प्रेतों के अस्तित्व पर विश्वास बढ़ता गया। 19 वीं सदी का उत्तरार्द्ध विज्ञान के आश्चर्य जनक करिश्मे लेकर आया, किंतु इसी समय में प्रेतवाद अथवा प्रेतविद्या को भी नवीनरूप से बढ़ावा मिला। फॉक्स परिवार ने प्रेत–संवाद से प्रेरित होकर इतना कार्य किया कि अनेक लोगों की प्रेत से संवाद करने की संख्या बढ़ती गयी। आज यह आन्दोलन प्रगति पर है और हर देश में प्रत्येक छोटे–बड़े गांव, नगर प्रेतों से संपर्क होने का दावा करते हैं।

20.1 उद्देश्य

1. प्रेत–आत्माओं के अस्तित्व को जान सकेंगे।
2. वैज्ञानिक भूतों से कैसे टकराए? उस रहस्य को जान पाएंगे।
3. आप भी चाहेंगे तो भूत–प्रेतों से बात–चीत कर सकेंगे।
4. प्रेत–संचार की विधि को जान सकेंगे।
5. स्वत:स्फूर्त लेखन से परिचित हो सकेंगे।
6. भूतावेश स्थिति को जान सकेंगे।
7. प्रेत की उपस्थिति के तरीकों को पहचान सकेंगे।
8. देवों के अस्तित्व से परिचित हो सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. देवों के शरीर एवं गति को जान सकेंगे।
10. देवों की रुचि एवं शक्ति को पहचान सकेंगे।
11. व्यंतर कौन होता है? परिचित हो सकेंगे।
12. देवों से संपर्क की विधि जान सकेंगे।
13. स्वर्ग से आए और वसीयत लिख कर चले गए, उनसे आप परिचित हो सकेंगे।

20.2.0 प्रेतात्मा का अस्तित्व

सर विलियम क्रुक्स ने एक सुन्दर हाथ के अचानक प्रकट होकर होम के बटन में लगे फूल की पत्ती को तोड़ने के दृश्य का वर्णन किया है। श्री डेनियल डगलस होम के पास किसी वस्तु के हिलने, उसके आस-पास चमकीले बादल बनने और फिर उन बादलों का हाथ के रूप में परिवर्तित हो जाना तथा उस हाथ का स्पर्श करने पर कभी अत्यधिक गर्म एवं कभी अति शीत तथा कभी जीवंतता का अनुभव होना आदि का विशद विवेचन सर विलियम क्रुक्स ने किया है।

भूत-प्रेतों का इतिहास बहुत पुराना है। सबसे पहले इनका उल्लेख लगभग 2000 वर्ष ईसा पूर्व की कहानियों में हुआ। उस समय होमर और ब्रूटस ने भी भूत-प्रेतों का वर्णन किया है, ऐसा उल्लेख मिलता है। सामर्थ्य सेन के अनुसार "ब्रिटेन के कुछ भागों में, वस्तुत: रोमन सैनिक सीने पर कांसे के कवच पहने चुस्त लिबाज में अभी भी नजर आते हैं। ब्रिटेन में लगभग दस हजार ऐसे स्थान होंगे जहां भूत रहते हैं। भूतों को देखने दिखाने का धंधा वहां बहुत चलता है। दिलचस्प यह है कि ऐसे स्थानों पर पर्यटन भी होता है। लन्दन की पुरानी मीनार 'टॉवर ऑव लन्दन' को ही लीजिए। वहां हर वर्ष लगभग 20 लाख प्रवेश टिकटों की बिक्री होती हैं। कहते हैं वहां बुलेन नाम की भूतनी दिखाई देती है।" इस मीनार की सबसे अधिक मशहूर शिकार ऐन बुलेन भी दूसरे स्थानों पर देखी गई है। केंट स्थित हेवर दुर्ग में, जहां हेनरी अष्टम ने उसका दिल जीत लिया था, वह हमेशा खुश दिखाई देती थी। लेकिन नॉरकॉफ के ब्लिंकिंग हॉल में जहां उसकी मृत्यु हुई थी, आमतौर पर वह घोड़े पर जुती एक बग्घी पर सवार दिखाई देती है और उसका भयानक सिर उसकी गोद में होता है।

इसी तरह सर वाल्टर रैले हालांकि डॉरसट स्थित अपने पुराने घर में कई बार दिखाई दे चुके हैं, फिर भी वह मीनार उनका प्रमुख डेरा है। पिछली बार वह यहां 1976 को एक दिन दिखाई दिये थे। तब यहां रहने वाले वार्डर की पत्नी ने कसमें खाकर बताया था कि जब वह नहाने जा रही थी तो रैले ने उसके चुंटी काटी थी। उसने कहा—शर्म करो! तब रैले का भूत तत्काल अदृश्य हो गया। रीडर्स डाइजेस्ट ने कई उल्लेख संकलित किये हैं, जिनसे भूत-प्रेतों के प्रति जिज्ञासा को बाजार में भुनाने का धंधा चलता है। जैसे—डुअरी लेन में स्थित थिएटर रॉयल के प्रसिद्ध 'मैड इन ग्रे' को ही लें। 17 वीं सदी में उससे ईर्ष्या करने वाले एक अभिनेता ने उसकी हत्या कर दी थी और पुरानी इमारत की दीवार में उसे चुन दिया था। उसके बाद वह कई बार दिखाई दिया है। वह प्राय: सफल आयोजनों से पूर्व दिखाई देता है, इसलिए अभिनेता उसे शुभ शकुन मानते हैं।

हैम्पटन कोर्ट पैलेस की घटनाएं हेनरी के भूतों से जुड़ी हुई हैं। 1829 में हैम्पटन चर्च ढहा दिया गया। उसके पश्चात् वहां प्रेतात्माएं घूमती रहती हैं। भूतों के कुछ विशेषज्ञ उन्हें विश्व की सर्वाधिक प्रामाणिक प्रेतात्माएं बता रहे हैं। वर्तमान में अचानक रोशनी दिखाई देना, अदृश्य व्यक्ति का कैमरे की तस्वीर में आ जाना आदि घटनाएं काफी प्रचलित हो रही हैं। पश्चिम जगत् में काला जादू काफी लोकप्रिय रहा है, मगर प्रेतात्माओं के बारे में भी विश्वास बढ़ता जा रहा है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अदृश्य के बारे में कुछ-न-कुछ जानना चाहता है।

कैम्ब्रिज में 1882 में "सोसायटी फॉर साइकिकल रिसर्च" की स्थापना की गयी। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य भी इस प्रकार के रहस्यमय दृश्यों की जांच-पड़ताल कर सत्य को प्रस्तुत करना है। इस संस्था के सदस्यों में विलियम ग्लैडस्टन, मैरी क्यूरी और सिगमण्ड फ्रायड भी रहे हैं।

एसपीआर की फाइलों के अनुसार रात में जो अजीब चीजें दिखाई देती हैं, उनमें से ज्यादातर का कारण अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाओं में ढूंढ़ा जा सकता है। जैसे—सोसायटी के कई साल तक अनुसंधान अधिकारी रहे स्वर्गीय एरिक डिंगवाल ने भूत-प्रेत संबंधी घटनाओं की जांच-पड़ताल की और ज्यादातर घटनाओं के प्राकृतिक कारण ढूंढ निकाले।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.2.1 वैज्ञानिक भी भूतों से टकराए!

राजस्थान पत्रिका 18 अप्रेल, 2001 में 'वैज्ञानिक भी भूतों से टकराए!' नामक लेख था। उस लेख में बताया गया कि अब तक वैज्ञानिक भूतों के अस्तित्व को नकारते रहे हैं, परन्तु हाल ही में एडिनबर्ग के भुतहा किले में भूतों की तलाश में जुटे वैज्ञानिकों का भूतों से टक्कर का साक्षात् अनुभव रहा है। करीब दस दिनों तक चले अन्वेषण अभियान में वैज्ञानिकों एवं आम लोगों ने किले की सुरंगों और तहखानों में व्यापक खोजबीन की।

एडिनबर्ग अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान मेले के तहत संचालित इस अभियान में करीब 250 लोग सम्मिलित हुए हर्टफोर्डशायर विश्वविद्यालय के डॉ. रिचर्ड वाइसमैन के नेतृत्व में शोधकर्ताओं ने अत्याधुनिक रिकार्डिंग उपकरणों एवं कैमरों की मदद से भुतहा गतिविधियों के सबूत प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न किये। अन्वेषण दल से शामिल लोगों ने प्रेतात्माओं को देखने तथा उनसे टकराने की जानकारी दी हैं। उन लोगों को सुरंगों में कई स्थानों पर हरे रंग के गहरे धब्बे मिले हैं। उन जगहों पर विचित्र प्रकार के चित्र भी प्राप्त हुए जिनमें असामान्य बातें दिखाई दे रही हैं। डॉ. वायसमैन का मत है कि अन्वेषण दल मे शामिल लोगों के अनुभव सत्य प्रतीत होते हैं। कुछ लोगों ने अजीब सी आकृतियां देखी, कुछ को लगा कि उनको कोई देख रहा है। कुछ लोगों को ऐसा भी अनुभव हुआ कि कोई उनका स्पर्श कर रहा है तथा उनके कपड़े खींच रहा है। उन्होंने कहा कि 'भुतहा महल' के नाम से कुख्यात इस किले में ये अनुभव सतही हो सकते हैं परन्तु हम वायु के तापमान बहने की दिशा तथा चुम्बकीय क्षेत्रों का वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। परन्तु हमने जो कुछ महसूस किया है उससे लगता है कि कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है। वरना अधिकतर लोगों के अनुभव एक जैसे नहीं होते। रात के अभियान में एक महिला स्वयंसेवक को अकेला छोड़ दिया गया। थोड़ी देर बाद उसने बताया कि उसे रोशनी की चमक दिखाई दी। करीब 20 मिनट तक उसने रोनी सूरत रखी और बोलना जारी रखा। वह काफी बदहवास थी। लोगों के जाने के बाद भी वह खड़ी रही, अपितु बीस मिनट में सामान्य हो पायी।

20.2.2 भूत-प्रेत के साथ बात-चीत

महाकवि रविन्द्रनाथ टैगोर के घर लोग एक बार प्लैनचिट पर प्रेतात्माओं को बुलाकर बात कर रहे थे, उनकी बात हो रही थी उन्हीं के एक पड़ौसी महाशय से। वह मृत्यु को प्राप्त कर चुका था, जो बहुत ही मसखरे स्वभाव का था। टैगोर के घर के लोगों ने उनसे पूछा, 'हम लोगों को बतलाइये कि इस लोक में और उस लोक में क्या अंतर है?'' उस मृतक महाशय ने अपने पूर्व स्वभाव के अनुसार ही उत्तर दिया—''वाह, बहुत होशियार हो तुम लोग! जो बात मैं मरकर जान सका तुम उसे जीवित रहकर ही जान लेना चाहते हो!''

महाकवि विलियम ब्लैक, माइकेल एंजिलो और मोजेज आदि की प्रेतात्माओं से बात-चीत किया करते थे। रात की शांत स्तब्ध घड़ियो में, अपनी एकांत शैया में अकेले जागते हुए, शताब्दियों पहले गुजरे व्यक्तियों से उनकी भेंट होती थी। क्लीओपेट्रा की प्रेतात्मा से उनकी बातचीत होती थी, और 'ब्लैक प्रिंस' उनके सामने बैठ कर अपनी तस्वीर खींचवाता था। प्रसिद्ध महापुरुषों की आत्माएं मध्यरात्री में विलियम ब्लैक के पास आया करती थी। कभी-कभी उनकी भेंट अत्यंत संक्षिप्त होती थी, लेकिन ब्लैक चाहते उतनी देर उनको वह अपने पास रख सकते थे। जोनाथन मार्टिन ने लिखा है कि ऐसे कई अवसरों पर मैं स्वयं वहां उपस्थित रहा हूं।

जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और वासनाओं को पूरा नहीं कर पाता है तो मरकर व्यंतर योनि में चला जाता है। प्रेतात्मा भौतिक शरीर के अभाव मे अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने में असमर्थ होती है। अत: ऐसी आत्माएं भौतिक लोक के आसपास ही भटकती रहती हैं और वे इस फिराक में रहती हैं कि किसी जीवित व्यक्ति को अधिकृत करके उनके शरीर के माध्यम से अपनी इच्छा पूर्ति कर ले। कभी-कभी व्यक्ति ऐसे कार्य कर लेते हैं जो कि वे करना नहीं चाहते। उनकी जिम्मेदारी किसी माध्यम के द्वारा इच्छा पूर्ति करना है। ऐसी आत्मा को हम प्रेत की संज्ञा दे सकते हैं। इन आत्माओं से साधारणतया हमारा कोई संपर्क नहीं होता। इस लोक से हम और परलोक से प्रेतात्मा चाहें तभी परस्पर संपर्क संभव होता है। जहां तक प्रेतात्मा का प्रश्न है वे प्रेरणा देकर, स्वप्न अवस्था में संदेश देकर अथवा किसी के भौतिक शरीर को कुछ समय के लिए अधिकृत करके उसे माध्यम बनाकर उससे संपर्क करते हैं। जीवित व्यक्ति और प्रेतात्मा आपस में ट्रांसमीटर, रेडियो या रिसीवर का कार्य भी करते हैं। जब प्रेतात्मा हमें प्रेरणा देती है उस समय यदि हमारा ध्यान का रिसीवर सेट ''ऑन'' नहीं होगा तो संवाद नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हो सकेगा। प्राय: मनुष्य की चेतना के रिसीवर ऑफ ही रहते हैं। क्योंकि मनुष्य मूर्च्छा का जीवन जीता है। उसे यह पता भी नही होता कि उसके पास रिसीवर है और न ही यह मालूम होता है कि उसके पास जीवंत 'ट्रांसमीटर्स' भी हैं। व्यक्ति इस लोक में रहकर प्रेतात्माओं से जिन साधनों द्वारा संपर्क स्थापित कर सकता है उनमें ध्यान अथवा योग है जो अत्यधिक साधना एवं श्रम साध्य हैं। प्लेनचिट, ओझा बोर्ड, स्वत:- लेखन आदि भी प्रेतात्माओं से संपर्क स्थापित करने के साधन हैं। वास्तव में इन सब साधनों में माध्यम कोई जीवित व्यक्ति ही होता है। अच्छा माध्यम वह होता है जो इच्छालोक की सूक्ष्म तरंगों या कंपनों को ग्रहण कर पाने के लिए यथेष्ट संवेदनशील हो, ऐसे सक्षम व्यक्ति को ''प्लेनचिट'' की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। वह स्वयं ही माध्यम बन जाता है और कोई आत्मा उसके भौतिक देह को थोड़ी देर के लिए अधिकृत कर लेती है। प्रेतात्माओं से संपर्क साधने के लिए मद्धिम प्रकाश और नि:शब्द वातावरण आवश्यक है। ऐसा लगता है कि तेज प्रकाश उनके लिए ऐच्छिक शरीर की संरचना को सहन नहीं कर सकती।

20.2.3 प्रेत संचार

प्लेनचिट के साधन के द्वारा आत्माओं से संपर्क करने के लिए जहां एक ओर अच्छे माध्यम की आवश्यकता है वहां यदि प्लेनचिट अभिमंत्रित या चार्जज्ड हो तो और भी अच्छा है। विचार या ध्यान को केन्द्रित करके हम किसी भी वस्तु को जिसमें प्लेनचिट भी सम्मिलित है विशेष उपयोग के लिए चार्जज्ड कर सकते हैं। लेकिन अभी तक हमें यह भी मालूम नहीं है कि हमारे विचारों में कितनी शक्ति होती है। प्लेनचिट अपने आप में एक उपकरण है। वास्तव में तो व्यक्ति एक माध्यम होता है। प्रेतात्मा किसी व्यक्ति को माध्यम के रूप में आकर संपर्क कर सकती है। प्लेनचिट के बिना यदि कोई प्रयत्न करे तो व्यक्ति स्वयं माध्यम बन सकता है। इस विधि को स्वत: लेखन कहते हैं। एकांत में मद्धिम प्रकाश में एक कागज और पेंसिल रखकर पेंसिल को हाथ से पकड़कर बैठ जाएं और अपने को विचार शून्य एवं शिथिल छोड़ दें। किसी आत्मा को आह्वान करना चाहें तो आह्वान करें। आपकी पेंसिल अपने आप गतिशील हो जाएगी लेकिन इसमें अच्छे माध्यम का होना जरूरी है। इसमें व्यक्ति स्वयं अपने आप का निरीक्षण कर सकता है कि वह अच्छा माध्यम है या नहीं? श्रीमती के. एम. शाह टिहरी गढ़वाल रियासत की महारानी थी। उसके पति श्री नरेन्द्र शाह एक कार दुर्घटना में चल बसे। श्रीमती शाह ने स्वत:लेखन के प्रयोग के द्वारा लगभग नौ सौ पृष्ठ लिख दिए। उसने यह सारा कथित अंग्रेजी भाषा में लिखा है जबकि वह स्वयं साधारण पढ़ी-लिखी थी। यह सारा लेखन दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों से संबंधित है।

20.2.4 स्वत:स्फूर्त्त लेखन

सन् 1857 में एम. रावेले नासिक एक व्यक्ति ने 'एलेन कार्डेक' के नाम से लिखाई गयी एक पुस्तक 'द बुक ऑव द स्पिरिट्स' प्रकाशित की। इस पुस्तक का विश्व की लगभग सभी भाषाओं में अनुवाद होकर प्रकाशित हो चुका है। प्रेत से संपर्क का एक बहुत ही लोक-प्रिय तरीका था कि मेज पर बने चक्र में वर्णमाला के अक्षर लिखे रहते थे। माध्यम और बैठक में बैठे लोग उस चक्र पर गिलास या अन्य कोई वस्तु रखकर उस पर अपनी अंगुलियां हल्के से रख देते। आत्मा के प्रभाव से वह गिलास या वस्तु एक अक्षर से दूसरे अक्षर पर सरकती जाती और इस तरह उन अक्षरों को जोड़कर एक शब्द पूर्ण किया जाता। प्रेत ऐसे ही शब्दों के माध्यम से अपना संदेश दे देता था। इस प्रकार का तरीका आगे जाकर 'ओजाबोर्ड' के रूप में विकसित हुआ, जिनमें अक्षरों के चक्र पर एक फिरकनी लगी रहती है। माध्यम का हाथ हल्के से फिरकनी पर टिका हुआ रहता है और फिरकनी अक्षर-अक्षर घूमती है, जिससे शब्द बन जाते हैं। इस प्रकार प्रेत अपना संदेश दे देता है।

'ओजाबोर्ड' का यह प्रेत-संदेश कार्य श्रम साध्य था, इसलिए माध्यमों ने आत्मा को स्वयं लिखने के लिए आमंत्रित किया। इस स्वयं स्फूर्त्त लेखन को अंग्रेजी में 'ऑटोमैटिक राइटिंग' कहते हैं। इसमें माध्यम जब प्रेत संदेश को प्राप्त करता है तो अपने हाथ में कलम या पेंसिल को सामान्यतौर पर नहीं पकड़ता है। उदाहरणार्थ माध्यम उल्टे हाथ में कलम बीच की अंगुलियों में इस तरह फंसाता है कि वह लिख न सके। प्रेत प्रभाव से कलम स्वत: चलती है। प्रेतात्माओं का सबका ज्ञान समान न होने के कारण कुछ के अक्षर अस्पष्ट होते हैं उनका सही अर्थ भी नहीं निकाला जा सकता। कभी-कभी अक्षर इतने बेढंगे होते हैं कि बैठक के लोग अपने-अपने ढंग से उनका अर्थ निकालते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हैं, इसलिए उनकी प्रामाणिकता भी असंदिग्ध नहीं होती। कुछ संकेत लिपि एकदम स्पष्ट होती है। प्लेनचिट के रूप में स्वयंस्फूर्त लेखन का उन्नत संस्करण विकसित हुआ है जिसमें 'ओजाबोर्ड' वाली फिरकनी के साथ पेंसिल जुड़ी रहती है, जो अपने आप लिखती हुई आगे बढ़ती चली जाती है।

स्वयंस्फूर्त लेखन की अनेक घटनाएं विश्व में ख्याति प्राप्त हुई हैं। सन् 1913 में अमेरिका की एक अधेड़ उम्र महिला श्रीमती पर्ल कुरन ने 'ओजाबोर्ड' द्वारा प्रेत संपर्क के माध्यम से 17 वीं सदी की एक लड़की की आत्मा से संपर्क किया, जिसका नाम 'पेशेंस वर्थ' था। पेशेंस वर्थ लड़की ने श्रीमती पर्ल कुरन को स्वयंस्फूर्त लेखन के माध्यम से अनेक निबंध, कविताएं तथा उपन्यास लिखवाएं थे। उन में प्रयुक्त भाषा 17 वीं सदी की थी। एक 'टेल्का' नामक उपन्यास से 17 वीं सदी का अभूतपूर्व चित्रण मिलता है, जिसमें ऐसे व्यक्ति एवं घटनाओं का वर्णन प्राप्त है जिनका अन्यत्र मिलना दुर्लभतम है। प्रेतात्माओं ने ब्रिटिश लेखिका जेराल्डिन कर्मिस को लगभग दो हजार शब्द प्रतिघंटे की रफ्तार से सोलह पुस्तकें लिखवायी। यह घटना ज्यादा प्राचीन नहीं है। उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में कुमारी ग्रेस रोशर नामक अंग्रेजी महिला ने अपनी एक ही अंगुली से टिकी कलम से स्वयंस्फूर्त लेखन द्वारा अपने स्वर्गीय मंगेतर से संदेश प्राप्त किए। कुमारी ग्रेस रोशर ने अन्य कई आत्माओं से संपर्क करने में सफलता प्राप्त की। सर विलियम क्रुक भी प्रेत-विद्या अनुसंधान कर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध थे।

उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक में रोजमेरी ब्राउन नामक महिला ने पराशक्तियों के संपर्क से महान संगीतज्ञों की मूल रचनाओं की मूल ध्वनियों को लिपिबद्ध करके समूचे लन्दन को आश्चर्य में डाल दिया था। रोजमेरी ब्राउन का कथन था कि ये ध्वनियां और लिपियां उसको लिस्ट, शूबर्ट, बीथोवन और महान संगीतकारों की आत्माओं ने लिखाई है। विशेषज्ञों ने परीक्षण करके रोजमेरी ब्राउन के कथन को सत्य साबित किया था।

ड्यूक विश्वविद्यालय व राइन दम्पति का परामनोविज्ञान कि दिशा में पहल किए जाने के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान है। सन् 1927 में ड्यूकविश्वविद्यालय में पहली बार मनोविज्ञान का एक पृथक् विभाग खोला गया। प्रो. विलियम मैकडूगल इसके प्रथम अध्यक्ष बनाए गए। उसी वर्ष सितम्बर में डॉ. जे. बी. राइन व उनकी पत्नी डॉ. लुइसा इ. राइन के पास दो युवा जीवशास्त्री माध्यमों के द्वारा मृत-आत्माओं से प्राप्त संदेशों का डॉ. मैकडूगल के निर्देशन में, सही मूल्यांकन करने के उद्देश्य से आए। एक विद्वान् जॉन एफ थॉमस नाम के सज्जन थे। उन्होंने बहुत सारे माध्यमों की बैठकों में मृत आत्माओं से वार्तालाप के विस्तृत विवरण एकत्र किए थे। विद्वान् जॉन एफ थॉमस चाहते थे कि इन विवरणों का सही मूल्यांकन करके यह जानना चाहिए कि मृत्यु के बाद अतिजीवन का कोई ठोस प्रमाण मिल सकता है या नहीं? परामनोविज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक ध्यान मृत-आत्माओं के आह्वान, उनसे प्राप्त संदेश व अतिजीवन के साक्ष्य आदि की समस्याओं पर दिया जाता था।

20.2.5 भूतावेश

पांच दशक पूर्व केवल अमेरिका में प्रेत-विद्या से जुड़े लोगों की संख्या डेढ लाख आंकी गई थी और अब इसकी संख्या और भी बहुत अधिक हो गयी होगी। ब्रिटेन में प्रेतों से संपर्क वाले सैंकड़ों माध्यम हैं जिनके प्रति सप्ताह होने वाले आयोजन में लाखों लोग उपस्थित होते हैं। प्रेत संपर्क के माध्यम पुरुष और महिलाएं दोनों ही हैं। आयोजन के समय भावमग्न व्यक्ति से प्रेत-संपर्क होता है, जो धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिक स्थिति में पहुंच जाता है। जिससे वह ऐसी मानसिक स्थिति में चला जाता है कि उसे अपने सामान्य क्रिया-कलाप, स्थिति और वातावरण का भी भान नहीं रहता है। इस प्रकार की गहन तन्द्रा के दौरान वह प्रेत का संदेश ग्रहण करने का माध्यम बन जाता है। सन्देश अनेक प्रकार से प्राप्त होता है, जिनमें सबसे पहले ध्वनि या संकेतों का क्रम रहता है। जैसा कि आर्केडिया के फॉक्स परिवार के घर प्रेत रहता था। अधिकांश प्रेत-आत्माएं द्वार, मेज या ऐसी ही किसी वस्तु पर दस्तक देते हुए अपनी उपस्थिति का संकेत करते हैं।

20.2.6 प्रेत-संकेत

दस्तक या खटखटाने की आवाज के अतिरिक्त प्रेत अदृश्य वाद्य-यंत्रों की ध्वनि से भी संकेत करते हैं। अठारहवीं सदी का प्रसिद्ध ब्रिटिश माध्यम 'विलियम स्टेनटन भोजेज' सामान्य दस्तकों के अतिरिक्त संगीतमय ध्वनियां भी प्रस्तुत करता था। उसकी बैठक में अक्सर तेज रोशनी हो जाती और फासफोरस के जलने की गंध आती तथा धुंआ भी उठता था। अपने आप म्युजिक बॉक्स से ध्वनि निकलने की घटनाएं तो सामान्य हैं। प्रेत इतना अधिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संगीतप्रेमी होता है कि वह और भी अनेक प्रकार के वाद्यों की ध्वनि उत्पन्न करता है। अठारहवी सदी में अमेरिका के प्रसिद्ध माध्यम 'एडवर्ड चाइल्ड्स' का जिस प्रेत से संपर्क था, वह बांसुरी बजाने का शौकिन था। तबला, सारंगी, तम्बूरा, गिटार, सितार, अकार्डियन, पियानो आदि वाद्य बजाने वाले प्रेतों के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

प्रेत-विद्या के एक ब्रिटिश अनुसंधानकर्त्ता डब्लू. एफ. बैरेट ने एक ऐसी बैठक का उल्लेख किया जिसमें प्रेत मेज के सभी पाये ऊपर उठा देता और मेज अधर में ही लटक जाती थी। कई बार मेज इस तरह से हिलती-डुलती थी कि मनुष्य इस प्रकार से नहीं हिला सकता था। अठारहवीं सदी के प्रसिद्ध ब्रिटिश माध्यम डेनियल डगलस होम की बैठक में मेज अपने आप तीस इंच तक आडी हो जाती थी। आश्चर्य इस बात का था कि मेज पर रखी मोमबत्तियां नीचे नहीं गिरती थी और न पानी से भरे गिलास से पानी छलकता था। कभी कभी दर्शकों के अनुरोध करने पर किसी वस्तु विशेष को लुढकने या गिरने के लिए कहा जाता तो वह गिर जाती थी किंतु अन्य वस्तुएं जो मेज या फर्निचर पर रखी होती थीं वे ज्यों कि त्यों स्थिर बनी रहती थीं। वहां संगीत की मधुर ध्वनियों से वातावरण संगीतमय, रोशनी से प्रकाशमय तथा मेज, फर्निचर आदि के खिसकने से आवाज तो होती थी, किंतु होम भी बैठे बैठे ही अपने आसन से उठकर अधर में स्थिर हो जाते थे। एक बार होम लन्दन के बहुमंजिले मकान की ऊपरी मंजिल पर बैठे थे उसमें थोड़ी थोड़ी दूरी पर दो खिड़कियां थीं। होम अचानक अपने आसन से उठ कर एक खिड़की से बाहर निकल गए और दूसरी खिड़की से पुनः अन्दर आ गए।

20.2.7 सशरीरी प्रेत

इन सबसे बढ कर प्रेतवादी करिश्मा है, आत्मा का सशरीर दिखना। कभी कभी तो आत्मा का केवल अंगविशेष नजर आता है और कभी कभी पूरी आकृति ही दिखायी देने लग जाती है। आर्केडिया के फॉक्स परिवार की बहिनों की बैठक में आगे चलकर एक नारी छाया दिखायी देने लगी, जो कमरे के एक कोने से निकल कर दूसरी ओर जाती हुई नजर आती और फिर अचानक लुप्त हो जाती थी। करीब सवा सौ वर्ष पहले फ्लोरेंस कुक नामक माध्यम ने पहले एक प्रेत चेहरा प्रस्तुत किया और फिर सम्पूर्ण आकृति प्रस्तुत करने लगा जिसको लोगों ने प्रकाश में देखा, उससे बातचीत की, उसका स्पर्श किया और उसके छाया चित्र भी खींचे।

प्रेत-विद्या के क्रिया-कलापों में प्रेत का माध्यम के द्वारा अपनी बात कहना सर्वाधिक सामान्य है। माध्यम जब तंद्रा में होता है तब आत्मा उस पर अपना अधिकार कर लेती है और माध्यम के मुंह से बोलने लग जाती है। एक सौ पचास वर्ष पहले स्काटलैंड के माध्यम डेविड डैग्विड पर दो हजार वर्ष पहले मृत फारस की एक शहजादी की आत्मा सवार थी। उस शहजादी ने डेविड के माध्यम से इतिहास संबंधित अनेक चर्चा-वार्ताओं में भाग लिया। उसने इतिहास की पुस्तकों में गलत ढंग से प्रस्तुत की जाने वाली घटनाओं के बारे में सही जानकारी दी। इतना ही नहीं उसने जीवन के बाद की अवस्था के बारे में भी विस्तार से चर्चा की। उन्नीसवीं सदी की अमेरिकी माध्यम श्रीमती लियोनारा पाइपर तो अनुसंधान कर्त्ताओं के लिए व्यापक शोध का विषय बन गयी थी।

20.3 देवों का अस्तित्व

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही देवों का अस्तित्व रहा है। देवों का अस्तित्व सूक्ष्म होता है वह चर्म-चक्षुओं के द्वारा दिखाई नहीं देता, फिर भी यह कहावत प्रचलित है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।' जैन आचार्यों ने भी देवों के अस्तित्व को स्वीकार किया है। व्यंतर देवों का संपर्क अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य जाति से ज्यादा है। ये अपने आवासों के अतिरिक्त समुद्रों, पर्वतों, गिरि-कन्दराओं, देवकुलों, शून्यगृहों, चौराहों, वृक्षों आदि में भी निवास करते हैं। व्यंतर देवों से मनुष्य डरता भी है और उनके सहयोग से अपना हित भी साधना चाहता है। देवों के आवेश से दूर रहना चाहता है और अपने प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए उनकी आराधना भी करता है। देव पूर्वजन्म के अनुरागवश, गुणानुराग एवं तप आदि के साथ अनुष्ठान पूर्वक आराधना करने से प्रार्थी के संपर्क में आते हैं और उनके मनोवांछित कार्य पूर्ण करते हैं।

जैन आचार्यों ने देव जाति के अस्तित्व को स्वीकार किया है। उन्होंने देवता के चार निकाय बतलाए हैं— 1. भवनपति 2. व्यंतर 3. ज्योतिष्क 4. वैमानिक। व्यंतर देवों की आठ श्रेणियां हैं—पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग व गंधर्व। ये मनुष्य के अधिक निकट में रहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ज्ञातधर्मकथासूत्र में ऐसा उल्लेख मिलता है—एक बार महारानी धारिणी के मन में गर्भ के प्रभाव से दोहद उत्पन्न होता है कि वह अकालमेघाच्छन्न आकाश के मनोरम वातावरण में हाथी पर राजा के साथ बैठ कर विहरण करना चाहती है। राजा श्रेणिक ऐसी इच्छा को पूर्ण करने में अपने आप को असमर्थ महसूस कर रहा था। यह बात अभयकुमार के पास पहुंचती है। अभयकुमार विशिष्ट विधि के साथ मित्र देव का स्मरण करके तीन दिन तक आराधना करता है। तप के प्रभाव से मित्र देव अपने दिव्यरूप के साथ अभयकुमार के समक्ष उपस्थित होते हैं और अभयकुमार की इच्छा को जानकर उसी अनुरूप वातावरण का निर्माण कर देते हैं तथा धारिणी की इच्छापूर्ति के बाद मित्रदेव चले जाते हैं।

वासुदेव श्री कृष्ण को पांच पाण्डवों के साथ लवणसमुद्र पार करना था। श्री कृष्ण ने तेले की तपस्या के साथ अनुष्ठान किया और सुस्थित देव की स्मृति की। देव उपस्थित हो जाता है तब श्री कृष्ण लवणसमुद्र को पार करने के लिए मार्ग देने का अनुरोध करते हैं। देव उसी रूप में उन्हें सहायता प्रदान करते हैं।

पूर्व वचन प्रतिबद्धता के कारण पोट्टिलदेव तैतलीपुत्र को प्रतिबोध देने के लिए उपस्थित होता है और उन्हें धर्म में प्रतिष्ठित कर चला जाता है।

पूर्व वचन प्रतिबद्धता के कारण देव आषाढभूति आचार्य को प्रतिबोध देने के लिए धरती पर आता है और आचार्य को संयम में स्थिर कर पुनः लौट जाता है।

दर्दुर देव अपने विपुल अवधिज्ञान से भगवान महावीर को देखता है और अपने दिव्य परिकर के साथ भगवान महावीर की वंदना के लिए उपस्थित होता है और अनेक प्रकार की नाट्यकला दिखा कर वापस चला जाता है।

सूर्य और चन्द्रमा भी धरती पर भगवान महावीर को वंदन करने के लिए आते हैं। वंदन कर पुनः अपने गन्तव्य स्थान पर चले जाते हैं।

इन विविध घटनाओं से स्पष्ट है कि मनुष्य अदृश्य आत्माओं से संपर्क साध सकता है। व्यक्ति देव को बुलाने के लिए आह्वान कर सकता है, देव आए या न आए यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। अदृश्य आत्माएं इच्छा और विचारों की तरंगें निरंतर प्रवाहित करते रहते हैं। व्यक्ति भी निरंतर अपनी इच्छाओं और विचारों के प्रकम्पन विकीर्ण करते रहते हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि कम्पन या तरंगें एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

20.3.1 देवों का शरीर एवं गति

देवों का शरीर मनुष्य की तरह अस्थि-मांस आदि सात धातुओं से निर्मित नहीं होता है। उनके शरीर का निर्माण सूक्ष्म परमाणु स्कन्धों से होता है। उनके शरीर में मनुष्य की तरह अशुचि पदार्थों का स्राव भी नहीं होता। वे अपनी इच्छा के अनुरूप विविध प्रकार के शरीरों का निर्माण कर सकते हैं। इसीलिए उनके शरीर को वैक्रिय शरीर कहा जाता है। वे वैक्रिय शक्ति के माध्यम से अपने अनेक रूपों और वस्तुओं के निर्माण करने की क्षमता रखते हैं। वे चाहे तो अपने शरीर को छोटा-से-छोटा और बड़ा-से-बड़ा बना सकते हैं। अभयकुमार द्वारा स्मरण किये जाने पर देव सोलह प्रकार के रत्नों—असाररूप पुद्गलों का परित्याग करता है; सारभूत पुद्गलों को ग्रहण कर उत्तर वैक्रिय शरीर का निर्माण करता है। देवों की गति मनोवेगा होती है वे चाहे तो एक क्षण में विश्व के एक कोने से दूसरे कोने में पहुंच जाते हैं।

20.3.2 देवों की रुचि एवं शक्ति

देवों में भी अनेक प्रकार की जातियां होती हैं। गंधर्व देवों को गीत, नृत्य और हास्य विशेष प्रिय होते हैं। सभी देवों की शक्ति समान नहीं होती उनमें भी मनुष्यों की तरह तरतमता होती है। उनके सामर्थ्य-प्रयोग व व्यवहार की एक झलक वासुदेव श्री कृष्ण के सामने सुस्थित देव के इस कथन से की जा सकती है—'क्या मैं देवी द्रौपदी को धातकी-खण्डद्वीप के भरत क्षेत्र से अमरकंका राजधानी में स्थित पद्मनाभ राजा के भवन से हस्तिनापुर ले आऊं अथवा पद्मनाभ राजा को, उसके नगर, सैन्य और वाहनों के साथ लवणसमुद्र में फैंक दूं?'

अभय के मित्र देव द्वारा अकाल मेघों की रचना, पोट्टिल देव द्वारा पूरे वातावरण को अपनी इच्छानुसार परिवर्तित कर देना—उनके विशेष सामर्थ्य को ही द्योतित करता है। देव उपकारी व अपकारी दोनों ही प्रकार की शक्तियां रखते हैं। वरदान और अभिशाप दोनों ही क्षमता उनमें होती हैं। देव प्रसन्न होकर अपनी भरपूर शक्तियों का लाभ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मनुष्य को प्रदान करते हैं। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी—ये छह व्यंतर देवियां हैं। ये प्रसन्न होकर तरह तरह से मनुष्य को लाभान्वित करती हैं।

20.3.3 व्यंतर कौन होता है?

जो अनिच्छा या विवशता के कारण कुछ बुराइयों से बचते हैं, जो हत्या या आत्महत्या से मरते हैं, किंतु मरते समय चित्त में संक्लेश नहीं होता, जो प्रकृति से ऋजु होते हैं, जो पहले धार्मिक जीवन जीते हैं पर मृत्यु के क्षणों में कोई वासना मन में रह जाती है—वे मनुष्य मृत्यु के बाद व्यंतर देव होते हैं। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण चित्त चंचल होता है इसलिए वे भूत ही होते हैं। देव शत्रुता के कारण पूर्वजन्म का प्रतिशोध भी लेते हैं। अपने वैरी को तरह तरह की यातनाएं देते हैं। अपने मनोरंजन के लिए भी वे दूसरों को कष्ट देते हैं।

माकंदीपुत्र जिनरक्षित व जिनपालित रत्नद्वीप देवी के आदेश की अवज्ञा कर दक्षिण वन में जाते हैं। देवी को यह ज्ञात होते ही वह कुपित हो उन्हें मारने को उद्यत हो जाती है। जिनरक्षित देवी के हाथों बुरी तरह मारा जाता है।

इस प्रकार ठाणं, ज्ञातधर्मकथा तथा उत्तराध्ययनसूत्र में देवों के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। उपर्युक्त तथ्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि विशेष परिस्थिति में आवश्यकता पड़ने पर देवों को आह्वान कर बुलाया जा सकता है।

बोध प्रश्न :

---

1. *क्या प्रेतात्मा का अस्तित्व है?*
2. *प्रेतात्मा के साथ बातचित करने की विधि लिखें।*
3. *सशरीरी प्रेत क्या होते हैं?*
4. *देवों का अस्तित्व किस प्रकार है?*

20.3.4 देवों से संपर्क की विधि

जैन आगमों में देवों से संपर्क स्थापित करने के लिए विशिष्ट विधि का उल्लेख मिलता है। तीन दिवसीय तपस्या के साथ विशिष्ट अनुष्ठान से इष्ट देव की स्मृति के साथ उनको आह्वान करने से देव सेवा में उपस्थित हो जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार मानव एक विद्युतीय प्राणी है। वह सदा अदृश्य ऊर्जाओं के सागर में तैरता रहता है। प्रत्येक मानव अपने विचारों के अनुसार, अपनी इन्द्रियों के द्वारा इन ऊर्जाओं को ग्रहण करता है और उनमें इच्छानुसार परिवर्तन करके बाह्य जगत् पर उनका प्रक्षेपण करता रहता है। अदृश्य आत्माओं से संपर्क ऐसे ही परीक्षणों के द्वारा होता है।

20.3.5 देवपुत्र से साक्षात्कार

राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह ने लिखा है कि 1934 में मेरे एक वर्षीय पुत्र की मृत्यु हो गई। मैं उन दिनों बिहार विधानसभा का सदस्य था और उस सभा के अध्यक्ष—स्पीकर थे प्रांत के प्रमुख कांग्रेसी नेता श्री रामदयालुसिंहजी। रामदयालुबाबू उन चंद लोगों में से थे जिनके लिए स्व. राजेन्द्रबाबू के हृदय में भी अपार स्नेह और आदर की भावनाएं थीं। उनकी दृष्टि आध्यात्मिक थी। वे परम भगवद् भक्त थे। मेरे प्रति उनकी असीम कृपा थी। तभी एक दिन उन्होंने मुझे अपने विधानसभा के विश्रामकक्ष में बुला भेजा। मैं गया तब वे लेटे हुए थे। उनके पास 22-23 वर्ष का एक बंगाली नवयुवक खड़ा था। उन्होंने उसकी ओर संकेत करते हुए कहा—"यह एक माध्यम है परलोकगत आत्माओं से संपर्क साधने का। मैंने इसकी मदद से अपने परिवार की एक प्रेत-आत्मा को बुलाया और उसमें मुझे जो सफलता मिली उससे मैं बहुत ही प्रभावित हूं। मेरी इच्छा है कि तुम भी इसकी परीक्षा लो।"

यह बात सुन कर मैं असमंजस में पड़ गया क्योंकि मैं ऐसी बातों पर विश्वास नहीं करता था। पर श्रद्धेय रामदयाल बाबू की बात को मैं टाल न सका। मैंने उस माध्यम को अपने घर आने का निमंत्रण दिया। वह आया और उसकी आत्मा आह्वान की पद्धति को जानकर मैं काफी प्रभावित हुआ। पद्धति इस प्रकार थी—उसके पास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काठ की बनी हुई एक हाथ लम्बी और चौड़ी पटरी थी, जिसे वह बोर्ड कहता था। उस में तरह तरह के पतले तार लगे हुए थे और इनसे निकला हुआ एक मोटा तार था, जो कई हाथ लम्बा था। उस तार में एक मोटी पेंसिल लगा दी जाती थी। आत्मा बुलाने वाला स्नान करके माध्यम के सम्मुख एक ऊन के आसन पर बैठ जाता था। सिर पर एक स्लेट रखता, जिस पर माध्यम कोने काट कर सादा कागज रख देता और उसे किसी बड़े कागज से लपेट देता। आह्वानकर्त्ता प्रेतात्मा के नाम एक पत्र लिख कर अपने पास रख लेता, उसे माध्यम को नहीं दिखाता था। वह पत्र किसी भी भाषा में हो सकता था। फिर वह तार में लगी हुई पेंसिल को उस स्लेट के ऊपर रखता और अपने गुरु का स्मरण करके पटरी पर एक खास प्रकार का पत्थर रगड़ता। यदि आत्मा आती तो वह तार उठ कर खड़ा हो जाता। पेंसिल एक सेकंड के लिए स्लेट पर चलती और गिर जाती। तार का ढीला पड़ जाना इस बात का द्योतक था कि आत्मा आकर चली गयी। फिर वह स्लेट निकाला जाता जिस सटे हुए कागज के दोनों ओर पत्र का जवाब लिखा होता था। चूंकि बोर्ड की गाइड आत्मा स्वयं जाकर परलोक से प्रेत-आत्मा को बुला लाती थी। साथ में उसका यह नियम था कि अप केवल अपने रक्त से संबंधित आत्मा को ही बुला सकते हैं। इस प्रकार के तरीके में किसी भूलोक से शरारती आत्मा को आकर धोखा देने का मौका ही नहीं मिलता है। यदि कभी बुलायी गई आत्मा परलोक में किसी कार्य में व्यस्त होती तो गाइड आत्मा जो स्वयं किसी की चिट्ठी नहीं लाती थी, वह आकर लिख देती थी कि अभी अमुक आत्मा कार्य में व्यस्त है वह अभी नहीं आ सकती, अमुक तिथि को आप उसको आह्वान करना।

मैंने तथा मेरी पत्नी ने मिलकर अपने मृत पुत्र की आत्मा को आह्वान किया हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा क्योंकि उसने मेरी जेब में सुरक्षित पत्र का केवल जवाब ही नहीं दिया अपितु अपना चित्र भी बना दिया। इस प्रकार 9 वर्ष तक मेरा उस माध्यम से संपर्क बना रहा और मैं साल में तीन-चार बार उक्त आत्मा से संपर्क करता। ऊंचे लोक में होने के कारण ज्यादा बार आने में उसे दिक्कत होती थी।

वह आत्मा आती तब परलोक की भी बातें बताती तथा भगवान के रूप का भी वर्णन करता एवं परिवार में कोई बीमार होता तो उसकी दवा भी बता देता था। एक बार हाई-ब्लडप्रेशर की दवा भी उसने बतायी—पीपल के पेड़ की छाल लेकर उसे महीन पीस कर एक बोतल में भर कर रख दीजिए और सुबह-शाम आधे तोले की खुराक बना कर शुद्ध मधु के साथ उसे सुबह-शाम सेवन कीजिए। हाई-ब्लडप्रेशर एकदम ठीक हो जाएगा लेकिन इस दवा का शुभारम्भ मंगलवार या रविवार को करना चाहिए। एक बार लड़की को टायफाइड हो गया तब उस आत्मा ने शून्य से एक जड़ी नीचे गिरायी वह पीसकर उसे पिलाते ही टायफाइड एक दिन में एकदम ठीक हो गया। इस प्रकार दिव्य लोक की आत्माएं मनुष्य की सहायता भी करती हैं।

20.3.6 स्वर्ग से आए और वसीयत लिखकर चले गए!

राजस्थान पत्रिका 7 मई 2001 के अंक में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि स्वर्ग से आत्माएं आईं, उन्होंने अपनी वसीयत लिख करके पुन: स्वर्ग में प्रस्थान कर दिया। कहने सुनने को भले ही हमें यह बात अजीब लगती है तथा असंभव भी प्रतीत होती है, लेकिन ऐसा हुआ है। हिसार के न्यायिक मजिस्ट्रेट ए.के. सिंघल की अदालत में दायर फर्जी वसीयतों के संबंधित मामलों से तो यही पता चलता है। आदमपुर के तहसीलदार ने वर्षों पहले गुजर चुके सदलपुर गांव के दो लोगों की वसीयतों को मंजूर कर सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार की मिसाल कायम की है। इतना ही नहीं, कानूनगो, पटवारी और दो पंचों के अलावा अन्य गवाहों ने भी वसीयतकर्त्ता की मौजूदगी की पुष्टि की है।

गांव धान्सू के बस्तीराम जाणी और मंगतराम सिहना ने अदालत में दायर इस्तगासे में कहा है कि गांव सदलपुर के हरद्वारी कल्याण की पत्नी मीरा की मौत 25 वर्ष पहले 2 दिसम्बर, 1973 को हुई थी। उसके नाम से 28 नवम्बर 1998 को वसीयत लिखी गई जिसे आदमपुर के तहसीलदार ने 28 जुलाई 1999 को मंजूर किया।

मामले के अनुसार मुंशीराम के नाम से भी एक और वसीयत लिखी गई जिसकी मृत्यु 28 मार्च, 1988 को हुई थी। उसने अपनी वसीयत 16 फरवरी, 1999 को मंजूर की। इन वसीयतों के माध्यम से करीब 40 लाख रुपये कीमत की 132 कनाल कृषि भूमि पांच में से दो हिस्सेदारों के नाम राजस्व रिकार्ड में दर्ज कर दी गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University)/Ladnun

अदालत में दायर इस्तगासे में कहा गया कि ऐसा करने के बदले में तहसीलदार, कानूनगो और पटवारी ने कथित तौर पर मोटी रकम घूस के तौर पर ली। गांव सदलपुर के दो पंचों तथा एक चौकीदार ने भी वसीयतों में अपनी गवाही में वसीयतकर्त्ताओं को जीवित बताया। बस्तीराम जाणी ने जिला उपायुक्त से भी शिकायत कर इस पूरे प्रकरण की सी.बी.आई. से जांच कराने की मांग की है तथा दोषी अधिकारियों के खिलाफ जांच-पड़ताल करने की मांग की है।

आज विश्व के सैंकड़ों केन्द्रों में परलोक विद्या का अध्ययन होता है और परलोकगत आत्माओं से संपर्क साधा जाता है। अमेरिकी परलोक समिति का लिलिडेल स्थित केन्द्र विशेष विधि से अदृश्य आत्माओं के छायाचित्र भी लेने में सफल हुआ है। 1944 में विश्वविख्यात अमेरिकी भौतिकशास्त्री जार्ज गैमो ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया था, उसके अनुसार यह संभव है कि परमाणुओं के कोई वर्ग के समाघात के अंतर्वर्तित प्रतिरूप धारण करने पर सारी शक्ति एक ही स्थल पर केन्द्रित हो जाए। ऐसी स्थिति में जो कौतुक होंगे, जैसे कमरे में रखी अंगीठी के कोयले अपने आप जलने लगें, गिलास में रखा पानी अपने आप उबलने लगे या अचानक कोई विस्फोट हो जाए, वे भूतों के कौतुक जैसे ही होंगे। मात्र संयोग से परमाणुओं की ऐसी सक्रियता की संभावना बहुत कम है, पर इरादी कोशिशों से ऐसा कभी भी किया जा सकता है।

भूतों के कारण हुई अलौकिक और असामान्य घटनाएं, चंचल मन के व्यक्ति की ऐसी ही इरादी कोशिशों के परिणामस्वरूप होती है। यही भूतों और उनके कौतुकों की वैज्ञानिक व्याख्या है।

20.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

1. देवों के अस्तित्व को बताते हुए उनकी गति, शक्ति एवं उनसे संपर्क की विधि का वर्णन करें।

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैज्ञानिक भी भूतों से टकराए! कैसे? स्पष्ट करें।
2. स्वत:स्फूर्त लेखन का विवेचन करें।

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्लेनचिट क्या है?
2. भूत-प्रेतों का इतिहास कितना पुराना है?
3. विश्व की लगभग सभी भाषाओं में अनुवादित होकर प्रकाशित होने वाली पुस्तक का नाम क्या है?
4. ड्यूकविश्वविद्यालय में मनोविज्ञान का पृथक् विभाग कब खोला गया?
5. पोट्टिलदेव किसको प्रतिबोध देने आता है?

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

1. देव.....के कारण पूर्वजन्म का प्रतिशोध भी लेते हैं।
2. वैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य एक.....प्राणी है।
3. अमेरिकी परलोक समिति का.....स्थित केन्द्र विशेष विधि से अदृश्य आत्माओं के छायाचित्र भी लेने में सफल हुआ है।
4. ब्रिटेन के कुछ भागों में, वस्तुत: रोमन सैनिक सीने पर.....के कवच पहने चुस्त लिबास में अभी भी नजर आते हैं।
5. कैम्ब्रिज में 1882 में.....की स्थापना की गयी।

20.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. अखण्ड ज्योति : जुलाई, 1998
2. राजस्थान पत्रिका : जुलाई, 2001

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University/Ladnun)

3. राजस्थान पत्रिका : 18 अप्रेल, 2001
4. राजस्थान पत्रिका : 7 मई, 2001
5. अंगसुत्ताणि भाग-3, नायाधम्मकहाओ—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक युवाचार्य महाप्रज्ञ
6. ज्ञातधर्मकथा : एक समीक्षात्मक अध्ययन—डॉ. समणी सत्यप्रज्ञा
7. उत्तराध्ययनसूत्र, भाग-1—वाचना प्रमुख गणाधिपति तुलसी, संपादक युवाचार्य महाप्रज्ञ
8. नवभारत टाइम्स वार्षिकांक, पराविद्या के रहस्य, 1976
9. परामनोविज्ञान—कीर्तिस्वरूप रावत
10. जैन परामनोविज्ञान—मुनि डॉ. राजेन्द्र 'रत्नेश', साध्वी डॉ. प्रभाश्री

☆☆☆

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ-341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

एम.ए./एम.एस-सी. (उत्तरार्द्ध)

विषय - योग एवं जीवन विज्ञान

पंचम पत्र : अध्यात्म और विज्ञान

संवर्ग

संवर्ग	1	मन और मानसिक प्रशिक्षण
संवर्ग	2	चित्त और चैतसिक प्रशिक्षण
संवर्ग	3	भाव और भावात्मक प्रशिक्षण
संवर्ग	4	परामनोविज्ञान एवं अध्यात्म–I
संवर्ग	5	परामनोविज्ञान एवं अध्यात्म–II

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. संग्रामसिंह नाथावत**
   आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   एमिटी विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

2. **प्रो. ए.के. मलिक**
   पूर्व आचार्य, मनोविज्ञान विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

3. **प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा**
   प्रो. एवं डीन, स्कूल ऑफ लाईफ साईंस,
   गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर

4. **डॉ. साधना दौनेरिया**
   सविभागाध्यक्ष, योग विभाग
   बरकत्तुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

5. **प्रो. समणी मल्लीप्रज्ञा**
   आचार्या, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)

6. **डॉ. बी.पी. गौड़**
   पूर्व सहआचार्य, जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग विभाग
   जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूँ (राज.)

लेखक

डॉ. समणी स्थितप्रज्ञा

संपादक

प्रो.ए.के. मलिक, जोधपुर

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 900

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

<u>Printed at</u>

M/s Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

इकाई	अध्याय	पृष्ठ सं.
संवर्ग 1	**मन और मानसिक प्रशिक्षण**	
	1. मन का स्वरूप मन की समस्याएं, मानसिक विकास	1
	2. मन के तत्त्व और मानसिक स्वास्थ्य	16
	3. मन का अनुशासन	26
	4. अनुप्रेक्षाओं का वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक आधार	36
संवर्ग 2	**चित्त और चैतसिक प्रशिक्षण**	
	5. चेतना के स्तर, चित्त और मन	47
	6. चित्त समाधि का स्वरूप एवं महत्व	64
	7. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा : आध्यात्मिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं प्रक्रिया	74
	8. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा : प्रयोजन एवं निष्पत्तियां	87
संवर्ग 3	**भाव और भावात्मक प्रशिक्षण**	
	9. लेश्या का सिद्धान्त लेश्या और भाव	96
	10. लेश्या और आभामण्डल	108
	11. लेश्याध्यान : वैज्ञानिक आध्यात्मिक दृष्टिकोण, प्रयोजन एवं निष्पत्तियां तथा रंग चिकित्सा	120
	12. तेजोलेश्या और कुण्डलिनी जागरण का आध्यात्मिक वैज्ञानिक महत्व	144
संवर्ग 4	**परामनोविज्ञान एवं अध्यात्म–I**	
	13. आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व–विकास की अवधारणा–गणाधिपति श्री तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ का दृष्टिकोण	155
	14. संक्षिप्त इतिहास संभावनाएं और शोध के क्षेत्र–आध्यात्मिक मान्यताओं के साथ उसका सह–संबंध, सामान्य विधि–वैज्ञानिक दृष्टि	168
	15. पुनर्जन्म एवं पूर्वजन्म–स्मृति–भारत एवं पश्चिम में अध्ययन एवं शोधकार्य– डॉ. स्टीवेन्सन के प्रयत्नों का मूल्यांकन	179
	16. जैन दर्शन के संदर्भ में पुनर्जन्म–शोध की समीक्षा–पूर्वजन्म–स्मृति विकास की प्रविधियां	190
संवर्ग 5	**परामनोविज्ञान एवं अध्यात्म–II**	
	17. परासामान्य ज्ञान या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण–मुख्य प्रकार–दूरबोध परचित्त बोध, मनोमिति, पूर्वाभास	202
	18. शरीर में विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों का निर्माण –चैतन्य केन्द्र और करण अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण के लिए प्रेक्षाध्यान	220
	19. मन की परासामान्य शक्तियां–मुख्य प्रकार–सम्मोहन और सूचनविद्या मनः प्रभाव	229
	20. भूत–प्रेत, देव आदि का अस्तित्व –उनके साथ संचार बातचीत भूतावेश आदि	239

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun